जीवराज जैन ग्रंथमाला, सोलापुर.
(हिंदी विभाग - पुष्प)

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कृत

गोम्मटसार कर्मकाण्ड

(रेखाचित्र एवं तालिकाओं में)

GommatSar Karmkand in Charts & Tables

प्रस्तुतकर्ता

श्री प्रकाश छाबड़ा

-प्रकाशक-
जैन संस्कृति संरक्षक संस्कृति संघ
(जीवराज जैन ग्रंथमाला)
टी. पी. प्लॉट नं. ५६/१०, बुधवार पेठ, जूना पुणे नाका, सोलापुर-२
फोन: ०२१७-२३२१००८, मो. ०९४२१०४००२२

प्रकाशक : श्री अरविंद रावजी दोशी,
अध्यक्ष, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर -२.

प्रथम संस्करण : १२०० २५/१०/२०२२ वीरसंवत् - २५४९

अर्थ सहयोग :

* श्रीमती जयश्री रूपचंदजी टोंग्या, इन्दौर ५१,०००/-
* श्रीमान मनोज धन्यकुमार गुलालकरी जैन, कारंजा ५१,०००/-
* YJSG कर्मकांड स्वाध्याय ग्रुप १,३२,०००/-

प्राप्ति स्थान : * श्रीमान विमलचन्द छाबड़ा
५३, मल्हारगंज, मेनरोड, इन्दौर
फोनः ९९२६०-४०१३७, ९४२४४-१४७९६
* जीवराज जैन ग्रंथमाला, सोलापुर
फोनः ९४२१०-४००२२

लागत मूल्य : ३०० रुपए
न्यौछावर राशि : १०० रुपए

मुद्रण स्थल : श्री प्रेरणा एंटरप्राईजेस्, पुणे ४११ ०५१

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित है। प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इसके रेखाचित्र एवं तालिकाओं को फोटोकॉपी एवं रिकॉर्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से, अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुर्न प्रयोग की प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, अनुवाद, नकल पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता।

© 2022 All rights reserved to publisher

जीवराज जैन ग्रंथमाला का परिचय

सोलापुर निवासी श्रीमान् स्व.ब्र.जीवराज गौतमचंद दोशी कई वर्षों से संसार से उदासीन होकर धर्मकार्य में अपनी वृत्ति लगाते रहे। सन् १९४० में उनकी यह प्रबल इच्छा हो उठी कि अपनी न्यायोपार्जित संपत्ति का उपयोग विशेषरूप से धर्म और समाज की उन्नति के कार्य में करें। तदनुसार उन्होंने समस्त भारत का परिभ्रमण कर जैन विद्वानों से इस बात की साक्षात् और लिखित संमतियाँ संग्रह की कि कौन से कार्य में संपत्ति का उपयोग किया जाय। स्फुट मतसंचय कर लेने के पश्चात् सन् १९४१ के ग्रीष्मकाल में ब्रह्मचारीजी ने श्री सिद्धक्षेत्र गजपंथ की पवित्र भूमि पर विद्वानों की समाज एकत्रित की और ऊहापोहपूर्वक निर्णय के लिये उक्त विषय प्रस्तुत किया। विद्वत् संमेलन के फलस्वरूप ब्रह्मचारीजी ने जैन संस्कृति तथा साहित्य के समस्त अंगोंके संरक्षण, उद्धार और प्रचार हेतु **'जैन संस्कृति संरक्षक संघ'** की स्थापना की और उसके लिये तीस हजार रुपयों के दान की घोषणा कर दी। उनकी परिग्रह-निवृत्ति बढ़ती गई। सन् १९४४ में उन्होंने लगभग दो लाख रुपयों की अपनी संपूर्ण संपत्ति संघ को ट्रस्टरूप से अर्पित की। इसी संघ के अंतर्गत **'जीवराज जैन ग्रंथमाला'** का संचालन हो रहा है।

– रतनचंद सखाराम शहा

*** - विश्वस्त मंडल - ***

श्री. अरविंद रावजी दोशी, मुंबई.

श्री. रतनचंद सखाराम शहा, सोलापुर.

श्री. ब्र. विद्युल्लता हिराचंद शहा, सोलापुर.

डॉ. सौ. त्रिशलादेवी अप्पासाहेब नाडगौडा पाटील, रबकवी

श्री. हर्षवदन रतनचंद शहा, सोलापुर.

सौ. शोभना त्रिभुवन शहा, अकलूज.

सौ. प्रियदर्शनी सी. जदेरिया, हैद्राबाद.

प्रस्तावना

–बा.ब्र.पण्डित रतनलाल जैन
इन्द्रभवन, तुकोगंज, इन्दौर

श्री गोम्मटसारजी करणानुयोग का अद्वितीय ग्रंथ है। यह दो भागों में विभाजित है – जीवकाण्ड एवं कर्मकाण्ड। गोम्मटसार ग्रंथ को सामान्यजन कठिन समझकर अध्ययन ही नहीं करते अथवा करते भी हैं तो समझ में न आने से बीच में ही छोड़ देते हैं। सभी लोग सरलता से इसे समझकर आत्मसात कर सकें इसी प्रशस्त भावना से प्रेरित होकर चारों अनुयोगों का गहन अध्ययन कर चुके, तत्त्वों के मर्मज्ञ श्री प्रकाशजी जैन (छाबड़ा) द्वारा इसके प्रथम भाग "जीवकाण्ड" को रेखाचित्रों एवं तालिकाओं द्वारा ग्रंथाकार रूप में प्रस्तुत किया जा चुका है। जीवकाण्ड के बाद अब आपने "कर्मकाण्ड" को भी प्रस्तुत ग्रंथ में चार्टस एवं टेबल्स के रूप में प्रस्तुत किया है। चार्ट के द्वारा विषयवस्तु सरलता से समझ में आ जाती है – जो इन्होंने अथक परिश्रम से अत्यंत सुन्दर, सरस एवं सरल रचना के रूप में प्रस्तुत की है। कर्मकाण्ड में जितने कठिन प्रकरण हैं, उन सभी की सुन्दर तालिकाएँ बना दी हैं। जैसे – निक्षेप के भेद, कर्म निषेक रचना, यवमध्य रचना, गुणस्थानों में बंध, उदय, सत्त्व रचना, पंच भागहार, मोहनीय के उदयस्थान एवं भंग में कूट रचना, नामकर्म के भुजाकारादि भंग, मोहनीय एवं नामकर्म के त्रिसंयोगी भंग, आश्रव के स्थानादि पाँच अधिकार, जीव के असाधारण भावों के स्थान एवं भंग, तीन करण, त्रिकोणयंत्र जोड़, अर्थात् सभी विषयों की तालिकाएँ बना दी हैं जिससे पाठक स्वयं पढ़कर भी विषयवस्तु को समझ सकते हैं।

श्री प्रकाशजी छाबड़ा में ज्ञान एवं वैराग्य का अद्भुत संयोग है। आपने अमेरिका में मास्टर्स ऑफ कम्प्यूटर साइंस की उपाधि प्राप्त कर विश्व की सर्वोच्च कम्पनी माइक्रोसॉफ्ट कॉरपोरेशन, अमेरिका में सॉफ्टवेयर इंजीनियर के रूप में कार्य किया। सात वर्षों के अमेरिका प्रवास में भी आपका धार्मिक अध्ययन व अध्यापन चलता रहा।

आत्मकल्याण की भावना से प्रेरित होकर अमेरिका व लाखों की नौकरी छोड़कर, मात्र ३१ वर्ष की अवस्था में निवृत्त जीवन जीने का संकल्प कर आप भारत वापस आ गए। आप यहाँ अत्यन्त सादगीमय व भौतिक साधनों से विरत होकर एक आदर्श श्रावक का जीवन यापन कर रहे हैं एवं अनंत संसार के अभाव के लिये ही अपना समग्र पुरुषार्थ लगाकर आगे बढ़ रहे हैं। अध्ययन के साथ-साथ शास्त्र प्रवचन, धार्मिक कक्षाओं में अध्यापन, नई तकनीक के माध्यम से करणानुयोग के विषय की अत्यंत सरलता से प्रस्तुति, बाल एवं युवा संस्कार शिक्षण शिविर आदि का आयोजन कर रहे हैं। आप इसी प्रकार अन्य ग्रंथराज लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार आदि की तालिकाएँ भी स्व-पर कल्याण हेतु अवश्य ही बनावें।

आप इसी प्रकार स्व-पर कल्याण में रत रहें एवं सभी भव्यात्माऐं अल्पकाल में अक्षय अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त करें इसी मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ।

प्राक्कथन

श्री गोम्मटसार जैनदर्शन में करणानुयोग का मुख्य, सर्वमान्य एवं सारभूत ग्रंथ है। इसकी रचना आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती जी ने की है। यह ग्रंथराज दो भागों में विभक्त है (१) जीवकाण्ड (२) कर्मकाण्ड। जीवकाण्ड में जीव के गुणस्थान-मार्गणास्थान आदि का तथा कर्मकाण्ड में आठों कर्मों की प्रकृतियों आदि का निरूपण किया गया है। गोम्मटसार जीवकाण्डजी के हमारे द्वारा रेखाचित्र एवं तालिकाओं के रूप में तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। कई वर्षों से अनेक लोगों की कर्मकाण्डजी की भी जीवकाण्डजी ग्रंथ की तरह रेखाचित्र एवं तालिकाओं के रूप में प्रस्तुत करने की माँग आने लगी थी जिसके फलस्वरूप यह ग्रंथ तैयार हुआ है। प्रस्तुत ग्रंथ मैंने ४ वर्ष पूर्व ही कॉपी में लगभग तैयार कर लिया था लेकिन इस ग्रंथ में रेखाचित्र एवं तालिकाओं को कम्प्यूटर पर बनाने और उन्हें व्यवस्थित रूप से सेट करने का अत्यंत दुरूह कार्य था जिसके लिये हमे अनेक महीनों, वर्षों तक योग्य व्यक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकी। अंतोत्गत्वा मेरी धर्मपत्नी श्रीमती पूजा छाबड़ा ने स्वयं ही कम्प्यूटर पर चार्टादि बनाने का कार्य अनेक महीनों तक लगकर पूर्ण किया, साथ ही ग्रंथ के अंतिम दो अध्याय को पूर्णरूपेण तैयार किया, समस्त अधिकारों की विषयवस्तु को व्यवस्थित रूप दिया जिसके कारण आज यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी।

पूजाजी द्वारा कम्प्यूटर पर सेट करने के साथ-साथ ही मैंने इसे कोरोना काल के दौरान मध्यान्ह ऑनलाईन कक्षा में पढ़ाया, जिसमें विद्यार्थियों ने तो उत्साह पूर्वक इसका अध्ययन किया ही साथ ही उनके साथ सम्पूर्ण पुस्तक की प्रूफ रिडिंग भी हो गई। पुस्तक का कवर पेज तैयार करने में श्रीमती कीर्ति बड़जात्या "श्रीकमल", इन्दौर का सहयोग प्राप्त हुआ। उनका एवं सभी विद्यार्थियों का मैं अत्यंत आभारी हूँ। जनमानस इस ग्रंथराज के अध्ययन की ओर आकर्षित हो व इसे कठिन न समझते हुए इसका समुचित ज्ञान प्राप्त करे इसी भावना से मूल ग्रंथराज की गाथाओं को ही चार्ट एवं तालिकाओं के रूप से पुस्तकाकार तैयार कर प्रस्तुत किया गया है। अपनी ओर से विश्लेषण या व्याख्या नहीं की है। पाठक अब यदि बड़ी टीका सहित ग्रंथराज का अध्ययन इस पुस्तक को साथ में रखकर करेंगे तो उन्हें पूर्ण विषय-वस्तु अत्यंत सरलता से समझ में आकर सदैव के लिये हृदयंगम हो जावेगी।

प्रस्तुत ग्रंथ को तैयार करने में श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास एवं भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली द्वारा प्रकाशित गोम्मटसार कर्मकाण्ड का, आर्यिका आदिमती माताजी द्वारा रचित टीका का तथा श्रीमती उज्ज्वला शहा द्वारा अनुवादित पण्डित टोडरमलजी विरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका का यथोचित उपयोग किया है। मैं परम आदरणीय बा.ब्र. पं.श्री रतनलालजी शास्त्री का विशेष आभारी हूँ जिनके सान्निध्य में मैंने अध्ययन किया है।

"को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे" के अनुसार तथा प्रथम संस्करण होने से पुस्तक में त्रुटियाँ होना सम्भव है। सुधी पाठकों से अनुरोध है कि त्रुटियों को सुधारकर पढ़ें व मुझे भी अवगत करावें ताकि आगामी संस्करण में उसकी पुनरावृत्ति न हो।

सभी साधर्मीजन इस महान ग्रंथ के माध्यम से संसार का स्वरूप दुःखमय जानकर उससे विरक्त होकर अनंतसुखरूप आत्मतत्त्व की रुचि उत्पन्नकर अतीन्द्रिय मोक्षसुख प्राप्त करें इसी भावना के साथ विराम लेता हूँ।

२५-१०-२०२२

प्रकाश छाबड़ा

99260-40137

www.yjsg.in

* पूर्व प्रकाशित तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ, गोम्मटसार जीवकाण्डजी ग्रंथ, प्रस्तुत ग्रंथ, जैन बेसिक्स के ५ लेवल के PDF एवं अन्य सामग्री - www.yjsg.in/sm

* प्रवचन एवं कक्षाएँ - www.youtube.com/c/JainLectures

विषय अनुक्रमणिका

	अधिकार	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
१	प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकार	१-८६	८६	१
२	बंध उदय सत्त्व अधिकार	८७-३५७	२७१	३७
३	सत्त्वस्थान भंग अधिकार	३५८-३९७	४०	२१४
४	त्रिचूलिका अधिकार	३९८-४५०	५३	२३३
५	स्थान समुत्कीर्तन अधिकार	४५१-७८४	३३४	२५६
६	आस्रव अधिकार	७८५-८१०	२६	३९३
७	भाव चूलिका अधिकार	८११-८९५	८५	४१३
८	त्रिकरणचूलिका अधिकार	८९६-९१२	१७	४५५
९	कर्मस्थिति रचना अधिकार	९१३-९७२	६०	४६६
	कुल गाथाएँ		**९७२**	
	परिशिष्ट	विचारणीय विषय		५०४

अधिकार १ - प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकार

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
मंगलाचरण पूर्वक ग्रंथ प्रतिज्ञा	१	१	१
प्रकृति का स्वरूप तथा जीव-कर्म का संबंध	२	१	१
दृष्टांतपूर्वक कर्म परमाणुओं का ग्रहण	३	१	२
बंध, उदय और सत्त्वरूप कर्म परमाणुओं का प्रमाण	४-५	२	२
कर्म सामान्य के भेद-प्रभेद	६-७	२	३
आठ मूल प्रकृतियों के नाम	८	१	३
घातिया-अघातिया भेद	९	१	४
घातिया कर्म द्वारा घाते जाने वाले जीव के गुण	१०	१	५
अघातिया कर्मों के कार्य	११-१४	४	५
कर्मों के क्रम का कारण	१५-२०	६	६
आठ कर्मों के दृष्टांत	२१	१	८

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
उत्तर प्रकृतियों की संख्या एवं स्वरूप	२२	१	८
उत्तर प्रकृतियों का स्वरूप			९
पाँच निद्राओं का कार्य	२३–२५	३	१५
तीन दर्शनमोह होने का विधान	२६	१	१६
पाँच शरीरों के १५ भंग	२७	१	१६
शरीरों के अंगोपांग	२८	१	१७
किस–किस संहनन से कहाँ–कहाँ तक के स्वर्ग–नरक में जन्म	२९–३१	३	१७
कर्मभूमि की स्त्रियों के संहनन	३२	१	१८
आतप, उद्योत व उष्ण प्रकृतियों का स्वरूप एवं स्वामित्व	३३	१	१८
अभेद विवक्षा से जो–जो प्रकृतियाँ अन्य में गर्भित हैं	३४	१	१९
अभेद विवक्षा से बंध, उदय, सत्त्वरूप प्रकृतियाँ	३५–३८	४	१९
घातिया कर्मों में सर्वघाति–देशघाति प्रकृतियाँ	३९–४०	२	२१
अघातिया कर्मों में प्रशस्त–अप्रशस्त प्रकृतियाँ	४१–४४	४	२२
अनंतानुबंधी आदि ४ कषायों का कार्य तथा उनका वासना काल	४५–४६	२	२३
पुद्गलविपाकी, भवविपाकी,क्षेत्रविपाकी, जीवविपाकी प्रकृतियाँ	४७–५१	५	२४
नामादि ४ निक्षपों से कर्म का स्वरूप	५२–६६	१५	२६
मूल तथा उत्तर प्रकृतियों में नामादि ४ निक्षेप	६७–६८	२	३०
मूल प्रकृतियों के नोकर्म	६९	१	३०
उत्तर प्रकृतियों के नोकर्म	७०–८५	१६	३०
नोआगम भावकर्म	८६	१	३६
कुल गाथाएँ	**१–८६**	**८६**	

गोम्मटसार कर्मकाण्ड
(रेखाचित्र एवं तालिकाओं में)

पणमिय सिरसा णेमिं गुणरयणविभूसणं महावीरं।
सम्मत्तरयणणिलयं पयडिसमुक्कित्तणं वोच्छं।।१।।

अर्थ – ज्ञानादि गुणरूपी रत्नों के आभूषणों को धारण करने वाले, मोक्षरूपी महालक्ष्मी को देने वाले, सम्यक्त्वरूपी रत्न के स्थान, ऐसे श्री नेमिनाथ तीर्थंकर को मस्तक नवाकर, प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकार को कहता हूँ।।१।।

मंगलाचरण में

नमस्कार
↓
शीश नमाकर नेमिनाथ भगवान को नमस्कार करता हूँ
↓
कैसे हैं नेमिनाथ भगवान

* गुणरूपी रत्नों के आभूषण
* मोक्षरूपी महालक्ष्मी को देने वाले
* सम्यक्त्वरूपी रत्न के स्थान

प्रतिज्ञा
↓
प्रकृति समुत्कीर्तन नाम के अधिकार को कहता हूँ

पयडी सील सहावो जीवंगाणं अणाइसंबंधो।
कणयोवले मलं वा ताणत्थित्तं सयं सिद्धं।।२।।

अर्थ – प्रकृति, शील, स्वभाव का जीव के साथ अनादि संबंध है स्वर्ण-पाषाण में मल के समान, यह संबंध स्वयं-सिद्ध है।।२।।

प्रकृति

पर्यायवाची शब्द

* शील
* स्वभाव

उदाहरण

*आग की	प्रकृति	ऊपर जाना
*पवन की		तिरछा जाना
*जल की		नीचे जाना

सिद्धांत

जीव का विभाव स्वभाव	रागादिकरूप परिणमना
कर्म का स्वभाव	रागादि उत्पत्ति में निमित्त होना

जीव और कर्म

संबंध

↓

अनादि (नये मिले नहीं)

जैसे–खदान से निकले सुवर्ण और मैल का

दोनों का अस्तित्व

↓

स्वयं सिद्ध

देहोदयेण सहिओ जीवो आहरदि कम्म णोकम्मं।
पडिसमयं सव्वंगं तत्तायसपिंडओव्व जलं।।३।।

अर्थ – कार्मण शरीर नामकर्म के उदय से, कर्म और नोकर्म को प्रतिसमय, सर्व प्रदेशों से जीव ग्रहण करता है, जैसे तप्तायमान लोहा जल को सब ओर से खींचता है।।३।।

संसारी जीव के नवीन कर्म-नोकर्म का ग्रहण कैसे ?

* शरीर नामकर्म के उदय से
* योग सहित जीव

ज्ञानावरणादि आठ कर्म | औदारिकादि नोकर्म ग्रहण करता है

कहाँ से

↓

सर्व आत्मप्रदेशों से

जैसे–तप्त लोह का गोला सर्व ओर से पानी खींचता है

सिद्धाणंतिमभागं अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव।
समयपबद्धं बंधदि जोगवसादो दु विसरित्थं।।४।।
जीरदि समयपबद्धं पओगदो णेगसमयबद्धं वा।
गुणहाणीण दिवड्ढं समयपबद्धं हवे सत्तं।।५।।

अर्थ – यह आत्मा, सिद्धजीवराशि के अनंतवें भाग और अभव्य जीवराशि से अनंतगुणे समयप्रबद्ध को बांधता है। इतनी विशेषता है कि मन, वचन, काय की प्रवृत्तिरूप योगों की विशेषता से कभी थोड़े और कभी बहुत परमाणुओं का भी बंध करता है।।४।।

अर्थ – प्रतिसमय एक कार्मण समयप्रबद्ध की निर्जरा अर्थात् उदय होता है। अथवा सातिशय क्रिया सहित आत्मा के सम्यक्त्व आदि की प्रवृत्तिरूप प्रयोग के कारण जो निर्जरा के ११ स्थान कहे है उनकी विवक्षा से एक समय में अनेक समयप्रबद्ध की निर्जरा करता हैं। तथा प्रतिसमय डेढ़ गुणहानि प्रमाण समयप्रबद्ध का सत्त्व होता है। इसका विशेष कथन आगे चलकर कर्मस्थिति रचना अधिकार में कहेंगे। वहीं पर गुणहानि आयाम वगैरह का भी खुलासा किया जायेगा।।५।।

बंध, उदय, सत्ता का स्वरूप

बंध	जीव के मोह, राग,द्वेषरूप परिणामों का निमित्त पाकर कार्मण वर्गणाओं का आत्म-प्रदेशों के साथ होने वाले विशिष्ट परस्पर एक क्षेत्रावगाहरूप संबंध को बंध कहते हैं
उदय	स्थिति को पूरी करके कर्म के फल देने को उदय कहते हैं
सत्ता	अनेक समयों में बंधे हुये कर्मों का विवक्षित काल तक जीव के प्रदेशों के साथ अस्तित्व होने को सत्ता कहते हैं

प्रति समय कितने कर्म परमाणुओं का बंधादि होता है

बंध	एक समयप्रबद्ध ***(समयप्रबद्ध = एक समय में बंधने वाले परमाणुओं का समूह)***	$\frac{\text{सिद्धराशि}}{\text{अनंत}}$ (अनंतानंतप्रमाण) , या
		अभव्य राशि (जघन्य युक्तानंतप्रमाण) x अनंत
		योग के कम ज्यादा होने पर बंध भी कम-ज्यादा होता है
उदय	एक समयप्रबद्ध	प्रतिसमय सामान्य से एक समयप्रबद्ध
		सातिशय क्रिया संयुक्त जो आत्मा उसके सम्यक्त्वादिक रूप योग से अनेक समयप्रबद्ध
सत्त्व	कुछ कम डेढ़ गुणहानि x समयप्रबद्ध	

कम्मत्तणेण एक्कं दव्वं भावोत्ति होदि दुविहं तु।
पोग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु।।६।।
तं पुण अट्ठविहं वा अडदालसयं असंखलोगं वा।
ताणं पुण घादित्ति अघादित्ति य होंति सण्णाओ।।७।।
णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणियं।
आउगणामं गोदंतरायमिदि अट्ठपयडीओ।।८।।

आवरणमोहविग्घं घादी जीवगुणघादणत्तादो।
आउगणामं गोदं वेयणियं तह अघादित्ति।।९।।

अर्थ – सामान्यपने से कर्म एक ही है, उसमें भेद नहीं है। लेकिन द्रव्य तथा भाव के भेद से उसके दो प्रकार है। उसमें पुद्‌गल द्रव्य का पिंड – द्रव्यकर्म है, और उस द्रव्यपिंड में फल देने की जो शक्ति – वह भावकर्म हैं।।६।।

अर्थ – वह कर्म सामान्य से आठ प्रकार का है। अथवा एक सौ अड़तालीस या असंख़्यात लोकप्रमाण भी उसके भेद होते हैं। उन आठ कर्मों में भी घातिया तथा अघातिया – ये दो भेद हैं।।७।।

अर्थ – ज्ञानावरण १, दर्शनावरण २, वेदनीय ३, मोहनीय ४, आयु ५, नाम ६, गोत्र ७ और अंतराय ८ – ये आठ कर्मों की मूल प्रकृतियाँ (स्वभाव) हैं।।८।।

अर्थ – ज्ञानावरण १, दर्शनावरण २, मोहनीय ३, अंतराय ४ – ये चार घातियाकर्म हैं। क्योंकि जीव के अनुजीवी गुणाों को घातते (नष्ट) करते हैं। आयु १, नाम २, गोत्र ३ और वेदनीय ४ – ये चार अघाति कर्म हैं। क्योंकि जली हुई रस्सी की तरह इनके रहने से भी अनुजीवी गुणों का नाश नहीं होता।।९।।

कर्म के भेद

सामान्य से	१–कर्म २–द्रव्यकर्म, भावकर्म	**मूल प्रकृति**	८
उत्तर प्रकृति	१४८ (संख्यात)	**भावों की अपेक्षा**	असंख्यात लोकप्रमाण

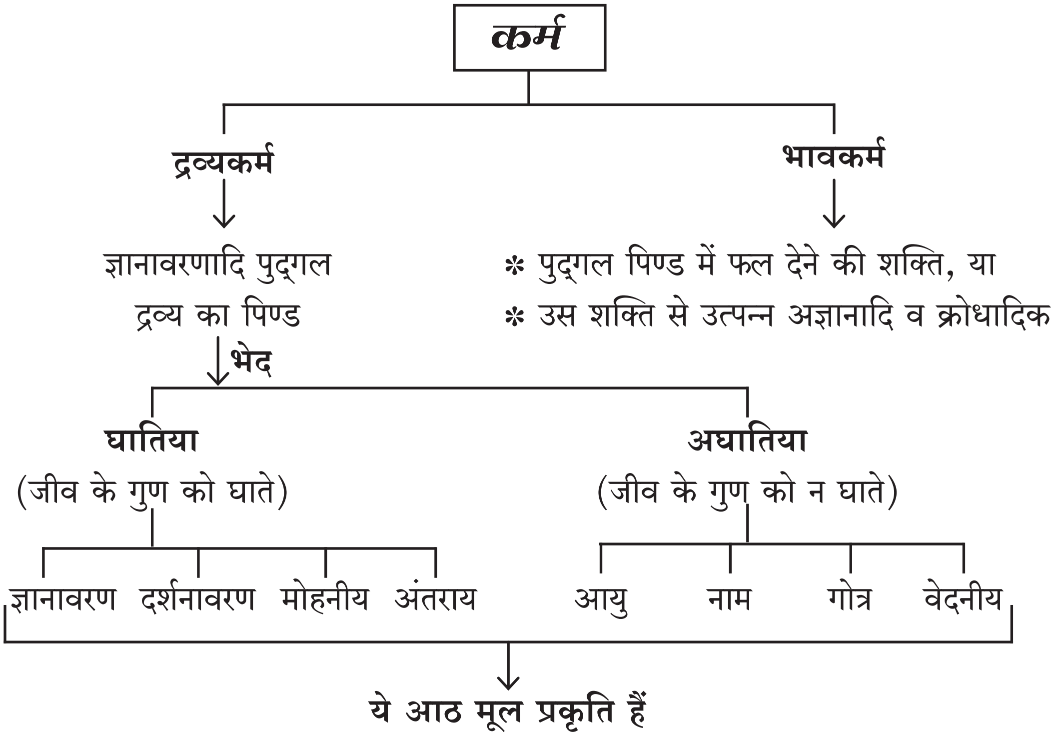

केवलणाणं दंसणमणंतविरियं च खयियसम्मं च।
खयियगुणे मदियादी खओवसमिए य घादी दु।।१०।।

अर्थ – केवलज्ञान १, केवलदर्शन २, अनंतवीर्य ३ और क्षायिकसम्यक्त्व ४, तथा च शब्द से क्षायिक चारित्र और क्षायिक दानादि; इन क्षायिक भावों को तथा मतिज्ञान आदि क्षायोपशमिक भावों को भी ये ज्ञानावरणादि चार घातियाकर्म घातते हैं।।१०।।

घातियाकर्म-स्वरूप

कर्म	स्वरुप
ज्ञानावरण	जो ज्ञान को आवरित करें
दर्शनावरण	जो दर्शन को आवरित करें
मोहनीय	जो मोहित (असावधान) करें
अंतराय	जो दानादि में विघ्न डालें (जो दातार और पात्र आदि में परस्पर अंतर को प्राप्त करायें)

जीव के गुण और उनको घातने में निमित्त कर्म

क्षायिक गुण	क्षायोपशमिक गुण	घातने में निमित्त कर्म
केवलज्ञान	मति आदि ४ ज्ञान	ज्ञानावरण
केवलदर्शन	चक्षु आदि ३ दर्शन	दर्शनावरण
क्षायिक सम्यक्त्व	क्षायोपशमिक सम्यक्त्व	दर्शन मोहनीय
क्षायिक चारित्र	क्षायोपशमिक चारित्र	चारित्र मोहनीय
अनंतवीर्य /क्षायिक दानादि ५	क्षायोपशमिक दानादि ५	अंतराय

कम्मकयमोहवड्ढिय संसारम्हि य अणादिजुत्तम्हि।
जीवस्स अवट्ठाणं करेदि आऊ हलिव्व णरं।।११।।
गदिआदि जीवभेदं देहादी पोग्गलाणभेदं च।
गदियंतरपरिणमनं करेदि णामं अणेयविहं।।१२।।
संताणकमेणागयजीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा।
उच्चं णीचं चरणं उच्चं णीचं हवे गोदं।।१३।।
अक्खाणं अणुभवणं वेयणियं सुहसरूवयं सादं।
दुक्खसरूवमसादं तं वेदयदीदि वेदणियं।।१४।।

अर्थ – कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ और मोह से वृद्धि को प्राप्त हुआ संसार अनादि है।

उसमें जीव का अवस्थान रखने वाला आयुकर्म है। वह उदयरूप होकर मनुष्यादि चार गतियों में जीव की स्थिति करता है। जैसे कि काठ (खोड़ा) – जो कि जेलखानों में अपराधियों के पाँव को बांध रखने के लिये रहता है, अपने छेद में जिसका पैर आ जाये उसको बाहर नहीं निकलने देता, उसी प्रकार उदय को प्राप्त हुआ आयुकर्म जीवों को उन-उन गतियों में रोककर रखता है।।११।।

अर्थ – नामकर्म; गति आदि अनेक तरह का है। वह नारकी वगैरह जीव की पर्यायों के भेदों को, और औदारिक शरीर आदि पुद्गल के भेदों को, तथा जीव के एक गति से दूसरी गतिरूप परिणमन को करता है। अर्थात् चित्रकार की तरह वह अनेक कार्यों को किया करता है।।१२।।

अर्थ – कुल की परिपाटी के क्रम से चला आया जो जीव का आचरण उसकी गोत्र संज्ञा है- अर्थात् उसे गोत्र कहते हैं। उस कुलपरंपरा में ऊँचा (उत्तम) आचरण होय तो उसे उच्च गोत्र कहते हैं; जो निंद्य आचरण होय तो वह नीचगोत्र कहा जाता है।।१३।।

अर्थ – इंद्रियों का अपने-अपने रूपादि विषय का अनुभव करना वेदनीय है। उसमें दुःखरूप अनुभव करना; असाता वेदनीय है, और सुखरूप अनुभव करना; साता वेदनीय है। उस सुखदुःख का अनुभव जो करावे वह वेदनीय कर्म है।।१४।।

अघातिया कर्म-स्वरूप

आयु	❊ कर्मकृत और मोह से वृद्धि को प्राप्त अनादि संसार ❊ में जीव की स्थिति कराने वाला
नाम	❊ गति आदि जीव भेदों को ❊ शरीरादि पुद्गल के भेदों को ❊ एक गति से दूसरी गति रूप परिणमन को करता है ❊ अनेक भेद हैं
गोत्र	❊ संतान-क्रम से चला आया जीव का आचरण ❊ ऊँचा आचरण उच्च गोत्र और ❊ नीचा आचरण नीच गोत्र है
वेदनीय	❊ इन्द्रिय विषयों का अनुभव कराने वाला ❊ सुखस्वरूप साता, और ❊ दुःखस्वरूप असाता है

अत्थं देक्खिय जाणदि पच्छा सद्दहदि सत्तभंगीहिं।
इदि दंसणं च णाणं, सम्मत्तं होंति जीव गुणा।।१५।।
अब्भरहिदादु पुव्वं णाणं तत्तो हि दंसणं होदि।
सम्मत्तमदो विरियं जीवाजीवगदमिदि चरिमे।।१६।।

घादीवि अघादिं वा णिस्सेसं घादणे असक्कादो।
णामतियणिमित्तादो विग्घं पडिदं अघादिचरिमम्हि।।१७।।
आउबलेण अवट्ठिदि भवस्स इदि णाममाउपुव्वं तु।
भवमस्सिय णीचुच्चं इदि गोदं णामपुव्वं तु।।१८।।
घादिंव वेयणीयं मोहस्स बलेण घाददे जीवं।
इदि घादीणं मज्झे मोहस्सादिम्हि पढिदं तु।।१९।।
णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणियं।
आउगणामं गोदंतरायमिदि पढिदमिदि सिद्धं।।२०।।

अर्थ – संसारी जीव पदार्थ को देखकर जानता है। पीछे सात भङ्ग (भेद) वाली नयों से निश्चय कर श्रद्धान करता है। इस प्रकार दर्शन ज्ञान और सम्यक्त्व – ये तीन जीव के गुण होते हैं।।१५।।

अर्थ – आत्मा के सब गुणों में ज्ञानगुण पूज्य है, इस कारण सबसे पहले ज्ञान को कहा है। क्योंकि व्याकरण में भी ऐसा नियम है कि जो पूज्य हो उसको पहले कहना। उसके पीछे दर्शन कहा है। और उसके बाद सम्यक्त्व कहा है। तथा वीर्य शाक्तिरूप है। वह जीव और अजीव दोनों में पाया जाता है। इसी कारण वह सबके पीछे कहा गया है।।१६।।

अर्थ – (अंतरायकर्म) घातिया होते हुये भी अघातिया कर्मवत् है, समस्तपने से जीव के गुण घातने को समर्थ नहीं है। नाम, गोत्र, वेदनीय इन तीन कर्म के निमित्त से ही इसका व्यापार है, इसी कारण अघातिया के भी बाद अंत में अंतराय कर्म कहा है।।१७।।

अर्थ – आयु के बल से भव की अवस्थिति होती है, भव होने पर ही शरीर वा चतुर्गतिरूप स्थिति होती है। भव का आश्रय करके नीच-उच्चपना होता है इसलिए नाम के पश्चात् गोत्र कर्म कहा।।१८।।

अर्थ – घातिया कर्मवत् वेदनीय कर्म मोह के बल से जीव का घात करता है। इसलिए घातिया कर्म के बीच मोह कर्म के पहले वेदनीय को कहा है।।१९।।

अर्थ – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय – इस प्रकार जो – पाठ का क्रम है वह पहले पाठ की तरह ही सिद्ध हुआ।।२०।।

शास्त्र-कथित कर्मों का पाठ्यक्रम

१. ज्ञानावरण	**२. दर्शनावरण**	**३. वेदनीय**	**४. मोहनीय**
५. आयु	**६. नाम**	**७. गोत्र**	**८. अंतराय**

शास्त्र कथित कर्मों का पाठ्यक्रम

ज्ञानावरण	✻ सर्व गुणों में ज्ञान पूज्य, प्रधान है ✻ इसलिए उसे आवरित करने वाला कर्म भी सर्व प्रथम बताया है ✻ ज्ञान-दर्शन आत्मा का विशेष गुण (स्वभाव) होने से उसे प्रथम कहा है, उसमें भी ज्ञान में अक्षर भी दर्शन से कम हैं ***(व्याकरण नियम अनुसार)***
दर्शनावरण	✻ उसके पीछे दर्शन कहा है
वेदनीय	✻ घातिया कर्मवत् मोहनीय के बल से जीव का घात करता है ✻ इसलिए घातिया कर्मों के बीच ✻ मोहनीय के पहले रखा है
मोहनीय	✻ संसारी जीवों को देखने के बाद जानना, जानकर पदार्थ का निश्चय/श्रद्धान होता है ✻ इसलिए दर्शन के बाद ज्ञान फिर सम्यक्त्व ऐसा गुणों का क्रम है ✻ इसलिए दर्शन ज्ञान के पश्चात् सम्यक्त्व का घातक कर्म कहा है
आयु	✻ आयु से भव-स्थिति होने पर शरीर की रचना है ✻ इसलिए नाम कर्म के पूर्व कहा है
नाम **गोत्र**	✻ (नाम कर्म के भेद) चार गति के आश्रय ऊँच-नीचपना है, अतः गोत्र के पूर्व कहा है
अंतराय	✻ वीर्य गुण जीव-अजीव दोनों में पाया जाता है ✻ इसलिए उसका घातक कर्म अंत में कहा ✻ घातिया होने पर भी अघातियावत् है ✻ सर्व जीव के गुण घातने में नाम, गोत्र, वेदनीय के निमित्त बिना समर्थ नहीं है ✻ इसलिए अघातिया के बाद अंत में कहा है

पडपडिहारसिमज्ज्राहलिचित्तकुलालभंडयारीणं।
जह एदेसिं भावा तहवि य कम्मा मुणेयव्वा।।२१।।
पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी।
तेउत्तरं सयं वा दुगपणगं उत्तरा होंति।।२२।।

अर्थ - पट, प्रतिहारी, असि, शराब, काठ का यंत्र-खोड़ा, चित्रकार, कुंभकार, भंडारी - इन आठों के जैसे-जैसे अपने-अपने कार्य करने के भाव होते हैं, उसी तरह क्रम से कर्मों के भी स्वभाव समझना।।२१।।

अर्थ - पाँच, नौ, दो, अट्ठाइस, चार, तिरानवे अथवा एक सौ तीन, दो और पाँच; उत्तर प्रकृतियाँ होती हैं।।२२।।

आठ कर्मों के दृष्टांत और उत्तर भेदों (प्रकृतियों) की संख्या

कर्म	दृष्टांत	भेद
ज्ञानावरण	मूर्ति पर पड़ा पर्दा	५
दर्शनावरण	राजद्वार पर बैठा हुआ द्वारपाल	९
वेदनीय	शहद लपेटी तलवार की धार	२
मोहनीय	मदिरा	२८
आयु	बेड़ी	४
नाम	चित्रकार	९३
गोत्र	कुम्भकार	२
अंतराय	खजांची	५
कुल		**१४८**

उत्तर प्रकृतियों का स्वरूप

ज्ञानावरण

५ ज्ञान को आवरण करने वाले ५ भेद

मति ज्ञानावरण

श्रुत ज्ञानावरण

अवधि ज्ञानावरण

मनःपर्यय ज्ञानावरण

केवल ज्ञानावरण

दर्शनावरण

(प्रत्येक भेद के साथ दर्शनावरण लगावें)

- **४ आवरण**
  - चक्षु
  - अचक्षु
  - अवधि
  - केवल
- **५ निद्रा**
  - ↓ *आगे गाथा २३ से २५ में देखें*

दर्शन

- **चक्षु** — ✻ नेत्रजन्य मतिज्ञान से पहले
- **अचक्षु** — ✻ नेत्र के सिवाय शेष इन्द्रियों व मन संबंधी मतिज्ञान से पहले
- **अवधि** — ✻ अवधिज्ञान से पहले
- **केवल** — ✻ केवलज्ञान के साथ

होने वाला सामान्य प्रतिभास

यहाँ ४ दर्शन बताये हैं, ऊपर इनको आवरण करने वाले ४ दर्शनावरण कर्म जानना।

वेदनीय

- **साता**
  - ✻ सुखरूप अनुभव
  - *उपचार से* ✻ अनुकूल सामग्री की प्राप्ति
- **असाता**
  - ✻ दुःखरूप अनुभव
  - *उपचार से* ✻ प्रतिकूल सामग्री की प्राप्ति

आत्मा का सुख गुण

- **स्वभाव परिणमन**
  - ✻ निराकुलता
  - ↓ अतीन्द्रिय सुख
- **विभाव परिणमन**
  - ✻ आकुलता
  - ↓ इन्द्रिय सुख / इन्द्रिय दुःख
  - ***इनमें वेदनीय कर्म निमित्त है***

मोहनीय

सभी में 'जिसके उदय से' शुरू में लगायें

दर्शन मोहनीय (३)

✻ सम्यक्त्व गुण का घात हो

सम्यक्त्व	मिथ्यात्व	सम्यक्त्वमिथ्यात्व
सम्यक्त्व का मूल घात न हो, पर दोष लगे	अतत्त्व श्रद्धा हो	मिश्र परिणाम, तत्त्व-अतत्त्व दोनों श्रद्धा हो

चरित्र मोहनीय (२)

✻ चारित्र गुण का घात हो

कषाय(१६)

नोकषाय(९)

✻ किंचित् कषाय हो

कषाय(१६)

अनंतानुबंधी	अप्रत्याख्यानावरण	प्रत्याख्यानावरण	संज्वलन
क्रोध, मान, माया, लोभ	क्रोध, मान, माया, लोभ	क्रोध, मान, माया, लोभ	क्रोध, मान, माया, लोभ
✻स्वरूपाचरण/सम्यक्त्वाचरण का घात हो	✻देश चारित्र का घात हो	✻सकल चारित्र का घात हो	✻यथाख्यात चारित्र का घात हो
✻अनंत संसार (मिथ्यात्व) के साथ बँधे	✻किंचित् त्याग न होने दे	✻पूर्ण त्याग न होने दे	✻जो संयम के साथ प्रज्वलित रहे

नोकषाय(९)

हास्य	रति	अरति	शोक	भय	जुगुप्सा	स्त्रीवेद	पुरुषवेद	नंपुसकवेद
हँसी आये	देशादि में उत्सुकता हो	देशादि में उत्सुकता न हो	इष्ट का वियोग होने पर दुःख हो	उद्वेग (चित्त में घबराहट) हो	अपने दोष छुपाने व दूसरे के प्रकट करने एवं ग्लानि का भाव हो	पुरुष	स्त्री	स्त्री-पुरुष दोनों
						से रमने का भाव इत्यादि		

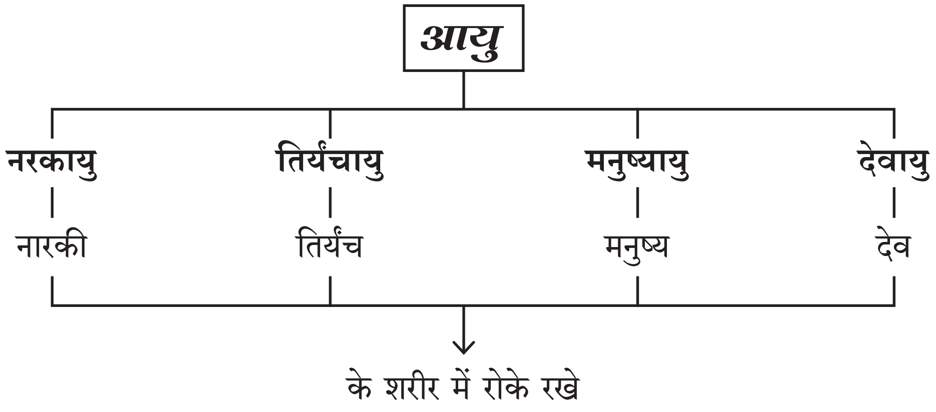

नाम कर्म

	१४ पिण्ड प्रकृति	८ प्रत्येक प्रकृति	१० जोड़े	कुल
अभेद विवक्षा	१४	८	२०	४२
भेद विवक्षा	६५	८	२०	९३

८ प्रत्येक प्रकृति

निर्माण	अगुरुलघु	उपघात	परघात	आतप	उद्योत	उच्छ्वास	तीर्थंकर
अंगोपांग की यथास्थान यथाप्रमाण रचना हो	शरीर भारी व हल्का न हो	अपना ही घात करने वाले अंग हो	दूसरे का घात करने वाले अंगोपांग हो	शरीर की आभा उष्ण हो	शरीर की आभा शीत हो	श्वास-उच्छ्वास हो	अर्हंत पद के साथ धर्मतीर्थ प्रवर्तन हो

१४ पिण्ड प्रकृति

नाम	गति	जाति	शरीर	अंगोपांग	बंधन	संघात	संस्थान	संहनन	स्पर्श	रस	गंध	वर्ण	आनुपूर्वी	विहायोगति
स्वरूप	जीव भवांतर में जाता है	समानता से इकट्ठे किये जाते हैं	शरीर की रचना हो	हाथ-पैर आदि अंग व नाकादि उपांग की रचना हो	शरीर के परमाणु छिद्र सहित इकट्ठे बँधें	शरीर के परमाणु छिद्र रहित एकता को प्राप्त हो	शरीर की आकृति बने	हड्डियों के बंधन में विशेषता हो	शरीर में स्पर्श हो	शरीर में रस हो	शरीर में गंध हो	शरीर में वर्ण हो	विग्रह गति में पूर्व शरीर का आकार बना रहे	आकाश (द्रव्य) में गमन हो
भेद	४	५	५	३	५	५	६	६	८	५	२	५	४	२
भेदों के नाम	नरक तिर्यंच मनुष्य देव	एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय	औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस कार्मण	औदारिक वैक्रियिक आहारक	५ शरीर वाले भेद	५ शरीर वाले भेद	आगे देखें	आगे देखें					नरकगति तिर्यंचगति मनुष्यगति देवगति	अप्रशस्त प्रशस्त

शरीर , बंधन, संघात में अंतर

दृष्टांत-जैसे दीवार बनाने के लिये

शरीर	बंधन	संघात
ईंट जमाना	ईंट को गारे से जोड़ना	सीमेंट से मजबूत करना

संस्थान

समचतुस्र	न्यग्रोध	स्वाति	कुब्जक	वामन	हुण्डक
शरीर ऊपर नीचे व मध्य में समभाग हो	वट वृक्षवत् नाभि के नीचे के अंग छोटे एवं ऊपर के बड़े हों	सर्प की बाँबीवत् ऊपर के अंग छोटे एवं नीचे के बड़े हों	कुबड़ा शरीर हो	बौना शरीर हो	अनेक विरूप अवक्तव्य आकार हों

संहनन

वज्रवृषभ	व्रजनाराच	नाराच	अर्द्धनाराच	कीलक	असंप्राप्ता-सृपाटिका
वज्र के हाड़ बेठन व कीलियाँ हो	वज्र के हाड़ कीली हो	वज्र रहित कीलित हड्डियों की संधि हो	हड्डियों की संधि अर्द्ध कीलित हो	हड्डियाँ परस्पर कीलित हो	जुदे-जुदे हाड़ नसों से बँधे हों

दस जोड़े

प्रशस्त		अप्रशस्त	
प्रत्येक शरीर	एक शरीर, एक स्वामी	**साधारण शरीर**	एक शरीर,अनेक स्वामी (इनका उदय निगोदिया जीव को ही होता है)
त्रस	द्वीन्द्रियादि में जन्म हो	**स्थावर**	एकेन्द्रियों में उत्पत्ति हो
सुभग	दूसरे जीव अपने से प्रीति करें	**दुर्भग**	दूसरे जीव अपने से प्रीति न करें
सुस्वर	अच्छा स्वर हो	**दुस्वर**	अच्छा स्वर न हो
शुभ	शरीर के अवयव सुन्दर हों	**अशुभ**	शरीर के अवयव सुन्दर न हों
बादर	दूसरों को रोके व दूसरों के द्वारा रुके, ऐसा शरीर हो	**सूक्ष्म**	न किसी को रोके, न रुके ऐसा शरीर हो
पर्याप्त	अपने-२ योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण हों	**अपर्याप्त**	एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो
स्थिर	शरीर की धातु-उपधातु अपने ठिकाने रहे	**अस्थिर**	शरीर की धातु-उपधातु अपने ठिकाने न रहे
आदेय	प्रभा सहित शरीर उपजे	**अनादेय**	प्रभा रहित शरीर उपजे
यशः-कीर्ति	संसार में यश हो रहा है ऐसा जीव के द्वारा माना जाना	**अयशः-कीर्ति**	अपयश हो रहा है ऐसा जीव के द्वारा माना जाना

गोत्र

- **उच्च** ↓ ✼ लोक पूजित कुल में जन्म हो
- **नीच** ↓ ✼ निन्दित कुल में जन्म हो

अंतराय

- **दानांतराय** ↓ ✼ देने की इच्छा करता हुआ भी नहीं देता
- **लाभांतराय** ↓ ✼ प्राप्ति की इच्छा रखता हुआ भी नहीं प्राप्त करता
- **भोगांतराय** ↓ ✼ भोगने की इच्छा रखता हुआ भी नहीं भोग सकता
- **उपभोगांतराय** ↓ ✼ उपभोगने की इच्छा रखता हुआ भी नहीं उपभोग सकता
- **वीर्यांतराय** ↓ ✼ शक्ति प्रकट करने की इच्छा हो, पर शक्ति प्रकट न हो

थीणुदयेणुट्ठविदे सोवदि कम्मं करेदि जप्पदि य।
णिद्दाणिद्दुदयेण य ण दिट्ठिमुग्घादिदुं सक्को।।२३।।
पयलापयलुदयेण य बहेदि लाला चलंति अंगाइं।
णिद्दुदये गच्छंतो ठाइ पुणो वइसइ पडेई।।२४।।
पयलुदयेण य जीवो ईसुम्मीलिय सुवेइ सुत्तोवि।
ईसं ईसं जाणदि मुहुं मुहुं सोवदे मंदं।।२५।।

अर्थ – स्त्यानगृद्धि के उदय में सोता हुआ भी काम कर लेता है, बोलता है और निद्रा-निद्रा के उदय में आँख खोलने में समर्थ नहीं होता।।२३।।

अर्थ – प्रचलाप्रचला के उदय में मुख से लार बहती है, हाथ-पैर आदि अंग चलरूप होते हैं, निद्रा के उदय में चलता हुआ खड़ा हो जाता है, खड़ा हुआ बैठ जाता है या गिर पड़ता है।।२४।।

अर्थ – प्रचला के उदय में जीव थोड़े नेत्रों को उघाड़कर सोता है, थोड़ा-थोड़ा जागता है, कभी जागता है, कभी सोता है।।२५।।

दर्शनावरण के ५ निद्रा का स्वरूप

स्त्यानगृद्धि	निद्रा-निद्रा	प्रचला-प्रचला	निद्रा	प्रचला
* उठा हुआ भी सोना * अनेक कार्य करना, बोलना, कुछ सावधान न रहना	* बहुत कोशिश करके भी नेत्रों को न उघाड़ पाना	मुख से लार आना, हाथ-पैर चलाना	गमन करते हुए खड़ा हो जाना, बैठना, गिरना	* नेत्र कुछ उघाड़े हुए सोना, ऊँघना * कुछ-कुछ जानता है * बारंबार मंद सोना

जंतेण कोद्दवं वा पढमुवसमसम्मभावजंतेण।
मिच्छं दव्वं तु तिधा असंखगुणहीणदव्वकमा।।२६।।

अर्थ - घटी यंत्र द्वारा कौदों के समान प्रथमोपशम सम्यक्त्वरूप भाव-यंत्र द्वारा मिथ्यात्व प्रकृति का द्रव्य असंख्यात गुणा हीन द्रव्य के अनुक्रम से तीन प्रकार का हो जाता है।।२६।।

मिथ्यात्व मोहनीय के भेद (टुकड़े)

जैसे - * घटी यंत्र द्वारा	***वैसे ही*** - * प्रथमोपशम सम्यक्त्व रूप भाव यंत्र के द्वारा
* दले हुए कोदौ	मिथ्यात्व प्रकृति का द्रव्य (परमाणुओं का समूह)
* तुष, तंदुल, कणी- तीन अवस्था को प्राप्त होते हैं	* मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्व प्रकृति - तीन प्रकृतिरूप असंख्यात गुणा घटता हुआ द्रव्य होता है

तेजाकम्मेहिं तिए तेजा कम्मेण कम्मणा कम्मं।
कयसंजोगे चदुचदुचदुदुग एक्कं च पयडीओ।।२७।।

अर्थ - तैजस-कार्मण का तीन (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक) के संयोग से और तैजस और कार्मण के संयोग से चार-चार और एक-एक भंग होते हैं।।२७।।

नामकर्म के पाँच शरीर के १५ भंग

	प्रधान शरीर	शरीर				कुल
१.	**औदारिक (औ.)**	औ.औ.	औ.तै.	औ.का.	औ.तै.का.	४
२.	**वैक्रियिक (वै.)**	वै.वै.	वै.तै.	वै.का.	वै.तै.का.	४
३.	**आहारक (आ.)**	आ.आ.	आ.तै.	आ.का.	आ.तै.का.	४
४.	**तैजस (तै.)**	तै.तै.	तै.का.			२
५.	**कार्मण (का.)**	का.का.				१
						१५

*नोट – * औ.औ. – औदारिक शरीर नोकर्म स्कंधों का अन्य औदारिक शरीर नोकर्म स्कंधों के साथ बंध*

** औ.तै. – औदारिक शरीर पुद्‌गलों का और तैजस शरीर पुद्‌गलों का एक जीव में परस्पर बंध*

** इसी प्रकार औदारिक कार्मण आदि अन्य शरीरों में जानना*

णलया बाहू य तहा णियंबपुट्ठी उरो य सीसो य।
अट्ठेव दु अंगाइं, देहे सेसा उवंगाइं।।२८।।

अर्थ – दो पैर, दो हाथ, नितंब, पीठ, हृदय और मस्तक; देह में ये आठ अंग होते हैं। शेष सब उपांग हैं।।२८।।

शरीर के ८ अंग

२ पैर | २ हाथ | नितंब | पीठ | हृदय | मस्तक

नोट– शेष सर्व अंगुलि आदि उपांग हैं

सेवट्टेण य गम्मइ आदीदो चदुसु कप्पजुगलोत्ति।
तत्तो दुजुगलजुगले खीलियणारायणद्धोत्ति।।२९।।
णवगेविज्ञाणुद्दिसणुत्तरवासीसु जांति ते णियमा।
तिदुगेगे संघडणे णारायणमादिगे कमसो।।३०।।
सण्णी छस्संहडणो वज्जदि मेघं तदो परं चापि।
सेवट्टादीरहिदो पण पणचदुरेगसंहडणो।।३१।।

अर्थ – सृपाटिकासंहनन वाले जीव यदि देवगति में उत्पन्न हों तो पहले सौधर्मयुगल से चौथे लांतवयुगल तक; चार युगलों में उत्पन्न होते हैं। फिर चौथे युगल के बाद दो–दो युगलों में क्रम से

कीलित संहनन वाले और अर्द्धनाराच संहनन वाले जीव जन्म धारण करते हैं।।२९।।

अर्थ – तीसरे नाराच संहनन से, दूसरे वज्रनाराच संहनन से, और पहले वज्रऋषभनाराच संहनन से – क्रम से नवग्रैवेयक पर्यंत, नव अनुदिश पर्यंत और अनुत्तर विमान पर्यंत जन्म ले सकते हैं।।३०।।

अर्थ – छह संहनन वाले संज्ञी जीव यदि नरक में जन्म लेवें तो मेघा (तीसरे नरक) पर्यंत जाते हैं। सृपाटिका संहनन रहित पाँच संहनन वाले अरिष्टा नामक पाँचवे नरक की पृथ्वी तक उपजते हैं। चार संहनन (अर्द्धनाराच पर्यंत) वाले मघवी (छठी पृथ्वी) पर्यंत और वज्रऋषभनाराच संहनन वाले माघवी (सातवीं पृथ्वी) पर्यंत उत्पन्न होते हैं।।३१।।

किस संहनन सहित मरा जीव कहाँ जन्म ले सकता है?

संहनन	स्वर्ग में	नरक में
६ संहनन	आठवें (८) स्वर्ग तक	पहले (३) तक
प्रथम ५	बारहवें (१२) स्वर्ग तक	पाँचवें (५) तक
प्रथम ४	सोलहवें (१६) स्वर्ग तक	छठे (६) तक
प्रथम ३	नवमें ग्रैवेयक तक	छठे (६) तक
प्रथम २	नवमें अनुदिश तक	छठे (६) तक
केवल प्रथम	पाँचवें अनुत्तर तक	सातवें (७) तक

अंतिमतियसंहडणस्सुदओ पुण कम्मभूमिमहिलाणं।
आदिमतिगसंहडणं णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।३२।।

अर्थ – कर्मभूमि की स्त्रियों के अंत के तीन (अर्द्धनाराचादि) संहननों का ही उदय होता है और आदि के तीन (वज्रऋषभनाराचादि) संहनन उनके नहीं होते – ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।।३२।।

कर्मभूमि की स्त्रियों के संहनन

अंत के ३

अर्द्धनाराच | कीलित | सृपाटिका

मूलुण्हपहा अग्गी आदावो होदि उण्हसहियपहा।
आइच्चे तेरिच्छे उण्हूणपहा हु उज्जोओ।।३३।।

अर्थ – अग्नि के मूल और प्रभा दोनों ही उष्ण रहते हैं। इस कारण उसके स्पर्श नामकर्म के भेद – उष्णस्पर्श नामकर्म का उदय जानना। जिसकी केवल प्रभा (किरणों का फैलाव) ही उष्ण हो उसको आतप कहते हैं। इस आतपनामकर्म का उदय सूर्य के बिम्ब में उत्पन्न हुये बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवों के होता है। उष्णता रहित प्रभा हो उसको नियम से उद्योत जानना।।३३।।

आतप, उद्योत, उष्ण - कौन-सा नामकर्म?

	आतप	उद्योत	उष्ण
आभा	गर्म	ठंडा	गर्म
मूल (शरीर)	ठंडा	ठंडा	गर्म
जैसे	सूर्य का विमान	चंद्रमा का विमान	अग्निकायिक का शरीर

देहे अविणाभावी बंधणसंघाद इदि अबंधुदया।
वण्णचउक्केऽभिण्णे गहिदे चत्तारि बंधुदये।।३४।।
पंच णव दोण्णि छव्वीसमवि य चउरो कमेण सत्तट्ठी।
दोण्णि य पंच य भणिया एदाओ बंधपयडीओ।।३५।।
पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण सत्तट्ठी।
दोण्णि य पंच य भणिया एदाओ उदयपयडीओ।।३६।।
भेदे छादालसयं इदरे बंधे हवंति वीससयं।
भेदे सव्वे उदये बावीससयं अभेदम्हि।।३७।।
पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी।
दोण्णि य पंच य भणिया एदाओ सत्तपयडीओ।।३८।।

अर्थ - शरीर नामकर्म के साथ अपना-अपना बंधन और अपना-अपना संघात; ये दोनों अविनाभावी हैं। अर्थात् ये दोनों शरीर के बिना नहीं हो सकते। इस कारण पाँच बंधन और पाँच संघात - ये १० प्रकृतियाँ बंध और उदय अवस्था में अभेद विवक्षा से जुदी नही गिनी जाती,शरीर नामक प्रकृति में ही शामिल हो जाती हैं। वर्ण,गंध,रस,स्पर्श-इन चार में ही इनके बीस भेद शामिल हो जाते हैं। इस कारण अभेद की अपेक्षा से इनके भी बंध और उदय अवस्था में चार ही भेद माने हैं।।३४।।

अर्थ - ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ९, वेदनीय की २, मोहनीय की २६, आयुकर्म की ४, नामकर्म की ६७, गोत्रकर्म की २, अंतरायकर्म की ५ - ये सब बंध होने योग्य प्रकृतियाँ हैं क्योंकि मोहनीय में सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति बंध में नहीं है यह पहले कह चुके हैं। नामकर्म में पहले गाथा में १०+१६=२६ प्रकृतियाँ अभेद विवक्षा से बंध अवस्था में नहीं है - ऐसा कह आये हैं। सो ९३ में से २६ कम करने पर (९३-२६=६७) ६७ बाकी रह जाती हैं।।३५।।

अर्थ - पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, सड़सठ, दो और पाँच - ये सब उदय प्रकृतियाँ हैं (मोहनीय की बंध-योग्य छब्बीस प्रकृतियों में सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति - ये दो भी उदय अवस्था में शामिल करने से अट्ठाईस प्रकृतियाँ हो जाती हैं)।।३६।।

अर्थ - बंध अवस्था में, भेदविवक्षा से १४६ प्रकृतियाँ हैं; क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक् प्रकृति - ये दोनों बंध-योग्य नहीं हैं और अभेद की विवक्षा से १२० प्रकृतियाँ कहीं हैं क्योंकि २६ प्रकृतियाँ दूसरे भेदों में शामिल कर दी गई हैं। उदय अवस्था में, भेदविवक्षा से १४८ प्रकृतियाँ हैं

और अभेद की विवक्षा से १२२ प्रकृतियाँ कहीं हैं।।३७।।

अर्थ - पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, तिरानवे, दो और पाँच - इस तरह सब १४८ सत्तारूप प्रकृतियाँ कही हैं।।३८।।

बंध, उदय व सत्ता योग्य कुल प्रकृतियाँ

	बंध	उदय	सत्ता
ज्ञानावरण	५	५	५
दर्शनावरण	९	९	९
वेदनीय	२	२	२
मोहनीय	२६(२८-२)	२८	२८
आयु	४	४	४
नाम	६७(९३-१०-१६)	६७	९३
गोत्र	२	२	२
अंतराय	५	५	५
कुल	**१२० (१४८-१०-१६-२)**	**१२२ (१२०+२)**	**१४८**

बंधादि के अयोग्य प्रकृतियाँ व उनका हेतु

कर्म	प्रकृति	
मोहनीय	२ = सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति	***बंध के अयोग्य प्रकृतियाँ*** हेतुः- सम्यक्त्व होने पर तीन टुकड़े होने पर इनकी सत्ता होती है, नवीन बंध नहीं होता है
नाम	१० = ५ बंधन, ५ संघात	***बंध एवं उदय दोनों के अयोग्य*** हेतुः- * शरीर के साथ अभेद विवक्षा * क्योंकि शरीर से अविनाभावी
	१६ = र्स्पशादि (२०-४ मूल प्रकृति)	***बंध एवं उदय दोनों के अयोग्य*** हेतुः- मूल ४ प्रकृति में शेष अभेद विवक्षा से गर्भित

केवलणाणावरणं दंसणछक्कं कसायबारसयं।
मिच्छं च सव्वघादी सम्मामिच्छं अबंधह्मि।।३९।।
णाणावरणचउक्कं तिदंसणं सम्मगं च संजलणं।
णव णोकसाय विग्घं छब्बीसा देसघादीओ।।४०।।

अर्थ - केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और पाँच निद्रा - इस प्रकार दर्शनावरण के छः भेद, तथा अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ - ये बारह कषाय और मिथ्यात्व मोहनीय - सब मिलकर २० प्रकृतियाँ सर्वघाति हैं। तथा सम्यक्मिथ्यात्वप्रकृति भी बंध रहित अवस्था में (अर्थात् उदय और सत्ता में) सर्वघाति है। परंतु यह सर्वघाति जुदी ही जाति की है।।३९।।

अर्थ - ज्ञानावरण के चार भेद (केवलज्ञानावरण को छोड़कर), दर्शनावरण के तीन भेद (पूर्व कथित छः भेदों के सिवाय), सम्यक् प्रकृति, संज्वलन क्रोधादि चार, हास्यादि नोकषाय नव और अंतराय के पाँच भेद - इस तरह छब्बीस देशघाति कर्म हैं (क्योंकि इनके उदय होने पर भी जीव का गुण प्रगट रहता है)।।४०।।

सर्वघाति-देशघाति प्रकृतियाँ

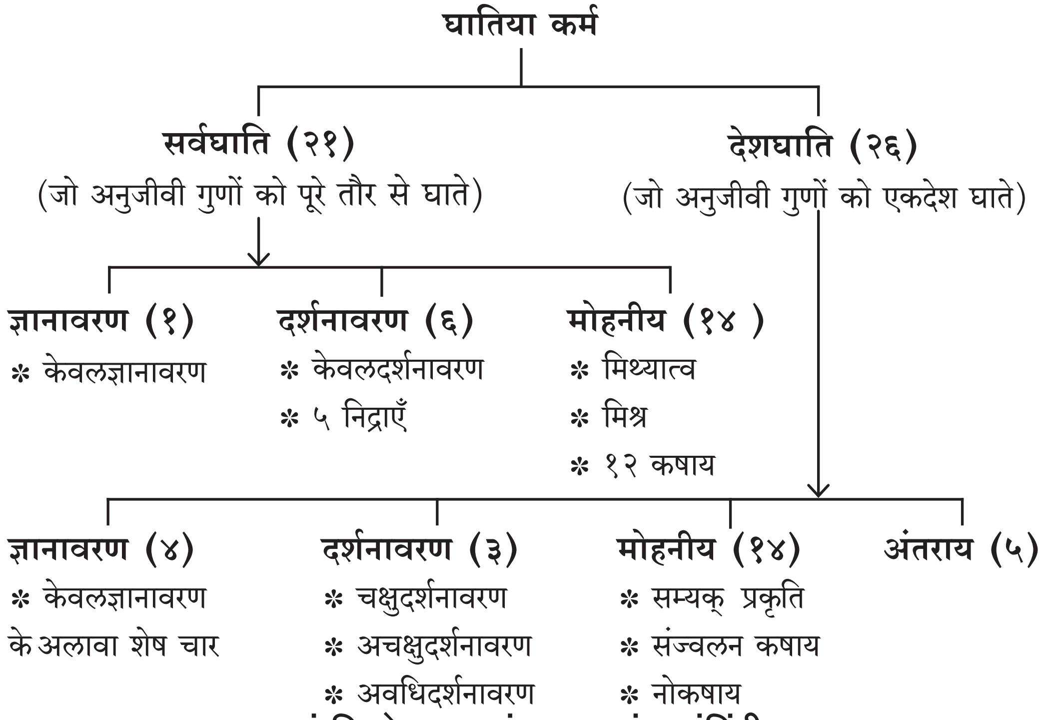

सादं तिण्णेवाऊ उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी।
देहा बंधणसंघादंगोवंगाइं वण्णचओ।।४१।।
समचउरबज्जरिसहं उवघादूणगुरुछक्क सग्गमणं।
तसबारसट्ठसट्ठी बादालमभेददो सत्था।।४२।।

घादीणीचमसादं णिरयाऊ णिरयतिरियदुगजादी।
संठाणसंहदीणं चदुपणपणगं च वण्णचओ।।४३।।
उवघादमसग्गमणं थावरदसयं च अप्पसत्था हु।
बंधुदयं पडि भेदे अडणउदि सयं दुचदुरसीदिदरे।।४४।।

अर्थ – सातावेदनीय १, तिर्यंच-मनुष्य-देवायु ३, उच्चगोत्र १, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति १, शरीर ५, बंधन ५, संघात ५, अंगोपांग ३, शुभ वर्ण-गंध-रस-स्पर्श – इन चार के २० भेद, समचतुरस्र संस्थान, वज्रऋषभनाराच संहनन, उपघात के बिना अगुरुलघु आदि सात, प्रशस्त विहायोगति और त्रस आदिक दस – इस प्रकार ६८ प्रकृतियाँ भेद विवक्षा से प्रशस्त (पुण्यरूप) कही हैं। और अभेद विवक्षा से ४२ ही पुण्य प्रकृतियाँ हैं क्योंकि पहले कहे अनुसार २६ कम हो जाती हैं।।४१-४२।।

अर्थ – चारों घातिया कर्मों की ४७ प्रकृतियाँ, नीचगोत्र, असाता वेदनीय, नरकायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि ४ जाति, समचतुरस्र को छोड़कर ५ संस्थान, पहिले संहनन के सिवाय ५ संहनन, अशुभ वर्ण-रस-गंध-स्पर्श ये चार अथवा इनके बीस भेद, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और स्थावर आदिक दस – ये अप्रशस्त (पाप) प्रकृतियाँ हैं। ये भेद-विवक्षा से बंधरूप ९८ हैं और उदयरूप १०० हैं। तथा अभेद-विवक्षा से बंधयोग्य ८२ और उदयरूप ८४ प्रकृतियाँ हैं।।४३-४४।।

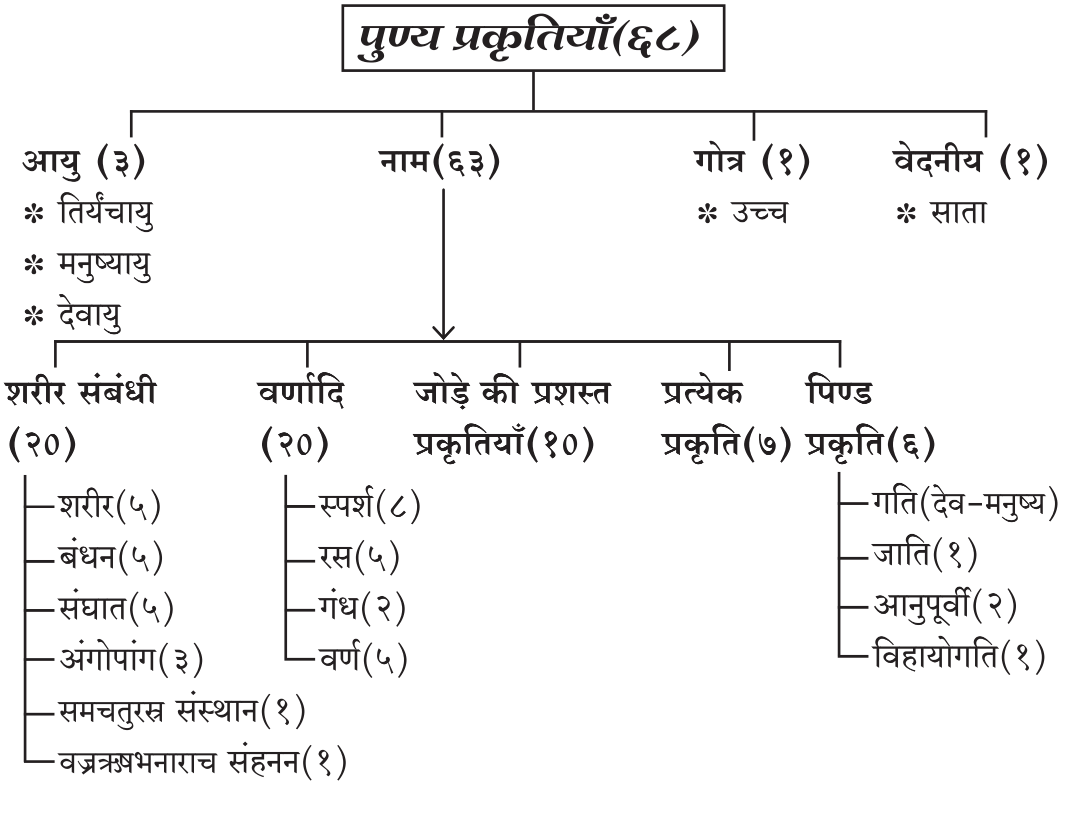

पाप प्रकृतियाँ(१००)

- घातिया(४७)
- आयु (१)
  - ❊ नरकायु
- गोत्र (१)
  - ❊ नीच
- वेदनीय (१)
  - ❊ असाता
- नाम(५०)
  - शरीर संबंधी(१०)
    - ❊ ५ संस्थान
    - ❊ ५ संहनन
  - वर्णादि (२०)
  - जोड़े की अप्रशस्त प्रकृतियाँ(१०)
  - प्रत्येक प्रकृति(१)
    - ❊ उपघात
  - पिण्ड प्रकृति(९)
    - गति(नरक-तिर्यंच)
    - जाति(४)
    - आनुपूर्वी(२)
    - विहायोगति(१)

२० वर्णादि प्रशस्त व अप्रशस्त दोनों होते है।
इसलिए १४८ +२० = १६८

प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतियाँ - भेद-अभेद विवक्षा

		पुण्य	पाप	कुल
बंध	भेद विवक्षा	६८	९८ (२ मोहनीय नहीं)	१६६
	अभेद विवक्षा	४२ = ६८-२६ (२६ = ५ बंधन,५ संघात, १६ वर्णादि नहीं)	८२ = ९८-१६ (१६ वर्णादि नहीं)	१२४
उदय	भेद विवक्षा	६८	१००	१६८
	अभेद विवक्षा	४२ (बंध के समान)	८४ = १००-१६ (१६ वर्णादि नहीं)	१२६

पढमादिया कसाया सम्मत्तं देससयलचारित्तं।
जहखादं घादंति य गुणणामा होंति सेसावि।।४५।।
अंतोमुहुत्त पक्खं छम्मासं संखऽसंखणंतभवं।
संजलणमादियाणं वासणकालो दु णियमेण।।४६।।

अर्थ - पहली अनंतानुबंधी आदि कषाय, क्रम से सम्यक्त्व को, देशचारित्र को, सकलचारित्र को और यथाख्यात चारित्र को घातती हैं। इनके सिवाय दूसरी जो प्रकृतियाँ हैं वे भी सार्थक नाम वाली ही हैं।।४५।।

अर्थ - संज्वलन आदि कषायों का वासनाकाल क्रम से अंतर्मुहूर्त, पक्ष, छः महीना और संख्यात, असंख्यात तथा अनंतभव हैं, ऐसा निश्चय कर समझना।।४६।।

संज्वलनादि ४ कषाय का कार्य व वासना काल

	अनंतानुबंधी	अप्रत्याख्यान	प्रत्याख्यान	संज्वलन
किसे घातती *(प्रकट नहीं होने देती)* **है**	सम्यक्त्व को	देशचारित्र को	सकल चारित्र को	यथाख्यात चारित्र को
स्वरूप	अनंत संसार (मिथ्यात्व) के साथ बंधे	किंचित् त्याग न होने दे	पूर्ण त्याग न होने दे	जो संयम के साथ प्रज्वलित रहे
वासना काल *(कषाय का संस्कार रहने का काल)*	संख्यात, असंख्यात, अनंत भव तक	६ महीने	१ पक्ष (पंद्रह दिन)	अंतर्मुहूर्त मात्र

देहादी फासंता पण्णासा णिमिणतावजुगलं च।
थिरसुहपत्तेयदुगं अगुरुतियं पोग्गलविवाई।।४७।।
आऊणि भवविवाई खेत्तविवाई य आणुपुव्वीओ।
अट्टत्तरि अवसेसा जीवविवाई मुणेयव्वा।।४८।।
वेदणियगोदघादीणेकावण्णं तु णामपयडीणं।
सत्तावीसं चेदे अट्टत्तरि जीवविवाई।।४९।।
तित्थयरं उस्सासं बादरपज्जत्तसुस्सरादेज्जं।
जसतसविहायसुभगदु चउगइ पणजाइ सगवीसं।।५०।।
गदि जादी उस्सासं विहायगदि तसतियाण जुगलं च।
सुभगादिचउज्जुगलं तित्थयरं चेदि सगवीसं।।५१।।

अर्थ - पाँच शरीरों से लेकर स्पर्शनाम तक ५०, तथा निर्माण, आतप, उद्योत, तथा स्थिर, शुभ और प्रत्येक का जोड़ा (स्थिर-अस्थिर आदि छह) तथा अगुरुलघु आदि तीन (ये सब ६२ प्रकृतियाँ) पुद्गल-विपाकी हैं।।४७।।

अर्थ - (नरकादिक चार) आयु भवविपाकी हैं, चार आनुपूर्वी प्रकृतियाँ क्षेत्रविपाकी हैं। शेष अठहत्तर प्रकृतियों को जीवविपाकी जानों।।४८।।

अर्थ - वेदनीय की २, गोत्र की २, घातियाकर्म की ४७ - इस प्रकार ५१ और नामकर्म की २७, इस तरह ५१+२७=७८ प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं।।४९।।

अर्थ - तीर्थंकर प्रकृति और उच्छ्वास तथा बादर-पर्याप्त-सुस्वर-आदेय-यशस्कीर्ति-त्रस-विहायोगति और सुभग इनका जोड़ा (बादर-सूक्ष्म आदि १६) और नरकादि चार गति तथा एकेन्द्रियादि ५ जाति - इस प्रकार सत्ताईस नामकर्म की प्रकृतियाँ जीवविपाकी जानना।।५०।।

अर्थ - गति, जाति, उच्छ्वास, विहायोगति, त्रस-बादर-पर्याप्त; इन तीन का जोड़ा (त्रस-स्थावर आदि) एवं सुभग-सुस्वर-आदेय-यशस्कीर्ति; इन चार का जोड़ा (सुभग-दुर्भग आदि) और एक तीर्थंकर प्रकृति - इस प्रकार क्रम से सत्ताईस की गिनती कही है।।५१।।

जीव विपाकी, पुद्गल विपाकी आदि प्रकृतियाँ

मूल प्रकृति	जीव विपाकी	पुद्गल विपाकी	भव विपाकी	क्षेत्र विपाकी
स्वरूप (फल होता है)	नरकादि जीव की पर्यायों में	पुद्गल (शरीर) में	नरकादि पर्यायों के होने में	पर लोक को गमन करते हुये जीव के मार्ग में
४ घाति कर्म	४७(सभी)			
वेदनीय	२ (सभी)			
गोत्र	२ (सभी)			
आयु			४ (सभी आयु)	
नाम	२७	६२		४ (सभी आनुपूर्वी)
कुल(१४८)	७८	६२	४	४

नाम कर्म की जीव व पुद्गल विपाकी प्रकृतियाँ

जीव विपाकी (२७)

गति	४
जाति	५
विहायोगति	२
तीर्थंकर प्रकृति, उच्छ्वास	२
स्थिर, शुभ, प्रत्येक के अलावा शेष ७ युगल	१४
	२७

पुद्गल विपाकी (६२)

शरीर संबधी

शरीर	५
बंधन	५
संघात	५
संस्थान	६
अंगोपांग	३
संहनन	६
वर्णादि	२०
	५०

+

प्रत्येक प्रकृति

निर्माण	१
आतप	१
उद्योत	१
अगुरुलघु	१
उपघात	१
परघात	१
	६

+

जोड़े

स्थिर	२
शुभ	२
प्रत्येक	२
	६

= ६२

णामं ठवणा दवियं भावोत्ति चउव्विहं हवे कम्मं।
पयडी पावं कम्मं मलंति सण्णा हु णाममलं।।५२।।
सरिसासरिसे दव्वे मदिणा जीवट्ठियं खु जं कम्मं।
तं एदंत्ति पदिट्ठा ठवणा तं ठावणाकम्मं।।५३।।
दव्वे कम्मं दुविहंआगमणोआगमंति तप्पढमं।
कम्मागमपरिजाणुगजीवो उवजोगपरिहीणो।।५४।।
जाणुगसरीर भवियं तव्वदिरित्तं तु होदि जं बिदियं।
तत्थ सरीरं तिविहं तियकालगयं ति दो सुगमा।।५५।।
भूदं तु चुदं चइदं चदंति तेधा चुदं सपाकेण।
पडिदं कदलीघादपरिच्चागेणूणयं होदि।।५६।।
विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसेहिं।
उस्सासाहाराणं णिरोहदो छिज्जदे आऊ।।५७।।
कदलीघादसमेदं चागविहीणं तु चइदमिदि होदि।
घादेण अघादेण व पडिदं चागेण चत्तमिदि।।५८।।
भत्तपइण्णाइंगिणिपाउग्गविधीहिं चत्तमिदि तिविहं।
भत्तपइण्णा तिविहा जहण्णमज्झिमवरा य तहा।।५९।।
भत्तपइण्णाइविहि, जहण्णमंतोमुहुत्तयं होदि।
बारसवरिसाजेट्ठा तम्मज्झे होदिमज्झिमया।।६०।।
अप्पोवयारवेक्खं परोवयारूणमिंगिणीमरणं।
सपरोवयारहीणं मरणं पाओवगमणमिदि।।६१।।
भवियंति भवियकाले कम्मागमजाणगो स जो जीवो।
जाणुगसरीरभवियं एवं होदित्ति णिद्दिट्ठं।।६२।।
तव्वदिरित्तं दुविहं कम्मं णोकम्ममिदि तहिं कम्मं।
कम्मसरूवेणागय कम्मं दव्वं हवे णियमा।।६३।।
कम्मद्दव्वादण्णं दव्वं णोकम्म दव्वमिदि होदि।
भावे कम्मं दुविहं आगमणोआगमंति हवे।।६४।।
कम्मागमपरिजाणगजीवो कम्मागमम्हि उवजुत्तो।
भावागमकम्मोत्ति य तस्स य सण्णा हवे णियमा।।६५।।
णोआगमभावो पुण कम्मफलं भुंजमाणगो जीवो।
इदि सामण्णं कम्मं चउव्विहं होदि णियमेण।।६६।।

मूलुत्तरपयडीणं णामादी एवमेव णवरिं तु।
सगणामेण य णामं ठवणा दवियं हवे भावो।।६७।।

अर्थ – नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव के भेद से कर्म चार तरह का है। इनमें पहला भेद संज्ञारूप है। प्रकृति, पाप, कर्म और मल – ये कर्म की संज्ञाएँ हैं। इन संज्ञाओं को ही नाम निक्षेप से कर्म कहते हैं।।५२।।

अर्थ – सदृश अर्थात् कर्म सरीखा और असदृश अर्थात् जो कर्म के समान न हो ऐसे किसी भी द्रव्य में अपनी बुद्धि से ऐसी स्थापना करना कि जो जीव में कर्म मिले हुये हैं वे ही ये हैं – इस अवधानपूर्वक किये गये निवेश को ही स्थापना कर्म कहते हैं।।५३।।

अर्थ – द्रव्यनिक्षेपरूप कर्म दो प्रकार है – एक आगमद्रव्यकर्म, दूसरा नोआगमद्रव्यकर्म। इन दोनों में जो कर्म का स्वरूप कहने वाले, शास्त्र का जानने वाला परंतु वर्तमान काल में उस शास्त्र में उपयोग नहीं रखने वाला जीव है वह पहला आगमद्रव्यकर्म है।।५४।।

अर्थ – दूसरा जो नोआगमद्रव्यकर्म है वह ज्ञायकशरीर, भावि और तद्व्यतिरिक्त के भेद से तीन प्रकार का है। उनमें से ज्ञायकशरीर भूत, वर्तमान, भावी – इस तरह तीन कालों की अपेक्षा तीन प्रकार का है। उन तीनों में से वर्तमान तथा भावी शरीर – इन दोनों का अर्थ समझने में सुगम है, कठिन नहीं है।।५५।।

अर्थ – भूतज्ञायकशरीर च्युत, च्यावित, त्यक्त के भेद से तीन तरह का है। उनमें जो दूसरे किसी कारण के बिना केवल आयु के पूर्ण होने पर नष्ट हो जाये वह च्युतशरीर है। यह च्युतशरीर कदलीघात और संन्यास; इन दोनों अवस्थाओं से रहित होता है।।५६।।

अर्थ – विष भक्षण से अथवा विष वाले जीवों के काटने से, रक्तक्षय अर्थात् रक्त जिसमें सूखता जाता है ऐसे रोग से अथवा धातुक्षय से, भय से, शस्त्रों के घात से, संक्लेश अर्थात् शरीर, वचन तथा मन द्वारा आत्मा को अधिक पीड़ा पहुँचाने वाली क्रिया होने से, श्वासोच्छ्वास के रुक जाने से और आहार नहीं करने से आयु के छिदने को कदलीघात मरण कहते हैं।।५७।।

अर्थ – जो ज्ञायक का भूत शरीर कदलीघातसहित नष्ट हो गया हो परंतु संन्यास विधि से रहित हो उसे च्यावितशरीर कहते हैं और जो कदलीघातसहित अथवा कदलीघात के बिना संन्यासस्वरूप परिणामों से शरीर छोड़ दिया हो उसे त्यक्त कहते हैं।।५८।।

अर्थ – भक्तप्रतिज्ञा, इंगिनी और प्रायोग्य की विधि से त्यक्तशरीर तीन प्रकार का है। उनमें भक्तप्रतिज्ञा जघन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट के भेद से तीन तरह की है।।५९।।

अर्थ – भक्तप्रतिज्ञा अर्थात् भोजन की प्रतिज्ञा कर जो संन्यास मरण हो उसके काल का प्रमाण जघन्य अंतर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट बारह वर्ष प्रमाण है तथा मध्य के भेदों का काल एक-एक समय बढ़ता हुआ है। उसका अंतर्मुहूर्त से ऊपर और बारह वर्ष के भीतर जितने भेद हैं उतना प्रमाण समझना।।६०।।

अर्थ – अपने शरीर की टहल आप ही अपने अंगों से करे, किसी दूसरे से रोगादि का उपचार न करावे, ऐसे विधान से जो संन्यास धारण कर मरण करे उस मरण को इंगिनीमरण संन्यास कहते

हैं। जिसमें अपने तथा दूसरे के भी उपचार से रहित हो अर्थात् अपनी टहल न तो आप करे, न दूसरे से ही करावे ऐसे संन्यासमरण को प्रायोपगमन संन्यास कहते हैं।।६१।।

अर्थ – जो कर्म के स्वरूप को कहने वाले शास्त्र का जानने वाला आगे होगा वह जीव ज्ञायकशरीर भावी है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।।६२।।

अर्थ – तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकर्म कर्म और नोकर्म के भेद से दो प्रकार का है। ज्ञानावरणादि मूलप्रकृतिरूप अथवा उनके भेद मतिज्ञानावरणादि उत्तरप्रकृतिस्वरूप परिणमता हुआ जो कार्मणवर्गणारूप पुद्गल द्रव्य वह कर्म–तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकर्म है ऐसा नियम से जानना।।६३।।

अर्थ – कर्ममलरूप द्रव्य से भिन्न जो द्रव्य है वह नोकर्म–तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकर्म है। और भावनिक्षेपस्वरूप कर्म; आगम तथा नोआगम के भेद से दो प्रकार का होता है।।६४।।

अर्थ – जो जीव कर्मस्वरूप के कहने वाले आगम का जानने वाला और वर्तमान समय में उसी शास्त्र के उपयोगसहित हो उस जीव का नाम भावागमकर्म अथवा आगमभावकर्म निश्चय से कहा जाता है।।६५।।

अर्थ – कर्म के फल को भोगने वाला जो जीव वह नोआगम भावकर्म है। इस तरह निक्षेपों की अपेक्षा सामान्य कर्म चार प्रकार का नियम से जानना।।६६।।

अर्थ – कर्म की मूलप्रकृति ८ तथा उत्तर प्रकृति १४८ हैं। इन दोनों के जो नामादि चार निक्षेप है उनका स्वरूप सामान्य कर्म की तरह समझना। परंतु इतनी विशेषता है कि, जिस प्रकृति का जो नाम हो उसी के अनुसार नाम, स्थापना, द्रव्य तथा भाव निक्षेप होते हैं।।६७।।

निक्षेप - कर्म कृत भेद

- **नाम कर्म** → प्रकृति, पाप, कर्म, मल
- **स्थापना कर्म**
  - **तदाकार** – सदृश–कर्म जैसा
  - **अतदाकार** – असदृश–कर्म जैसा नहीं
  - (दोनों) ऐसे द्रव्य में ऐसी स्थापना की यह वह कर्म है
- **द्रव्य कर्म**
  - **आगम द्रव्य कर्म**
    - * कर्म स्वरूप निरूपित शास्त्र का जानकार
    - * परंतु वर्तमान में उसके उपयोग से रहित
  - **नोआगम द्रव्य कर्म**
    - **ज्ञायक शरीर** – कर्म स्वरूप के जानने वाले जीव का शरीर
      - **भूत** – जिसे छोड़ आया है
        - **च्युत**
          - * दूसरे किसी कारण बिना केवल आयु पूर्ण होने पर नष्ट होना
          - * कदलीघात व संन्यास दोनों से रहित
        - **च्यावित**
          - * कदलीघात से नष्ट होना
          - * संन्यास से रहित
        - **त्यक्त**
          - * संन्यास सहित नष्ट होना
          - * कदलीघात सहित या रहित
          - **भक्त प्रतिज्ञा** – * भोजन का त्याग
            - **जघन्य** –अंतर्मुहूर्त
            - **मध्यम** –दोनों के बीच का काल
            - **उत्कृष्ट** –१२ वर्ष
          - **इंगिनी** – * स्वयं के शरीर की वैयावृत्ति स्वयं करता अन्य से नहीं कराता
          - **प्रायोपगमन** – * वैयावृत्ति न स्वयं करें न अन्य से करावें
      - **वर्तमान** – जिसे धारण कर रहा है
      - **भावि** – जिसे धारण करेगा
    - **भावि** – कर्म स्वरूप निरूपित शास्त्र को भविष्य में जानने वाला जीव
    - **तद्व्यतिरिक्त**
      - **कर्म** – ज्ञानावरणादि मूल प्रकृति या उनकी उत्तर प्रकृतिरुप परिणमा पुद्गल द्रव्य
      - **नोकर्म** – कर्म स्वरुप द्रव्य से अन्य परंतु कर्म को फल देने में सहायता करने वाला
- **भाव कर्म**
  - **आगम भावकर्म**
    - * कर्म स्वरुप निरुपित शास्त्र का जानकार
    - * और वर्तमान में उसमें उपयोग सहित
  - **नोआगम भावकर्म**
    - * कर्म के फल को भोगने वाला जीव

**** कदलीघात = विष, तीव्र वेदना, रक्तक्षय, तीव्र भय, शस्त्र घात, क्रोधादिरूप तीव्र संक्लेश, श्वास रुकना,आहार रुकना-इन कारणों से शरीर नष्ट होना।***

**** नोट-जैसे सामान्य कर्म का वर्णन ४ प्रकार से किया वैसे ही मूल ८ प्रकृति और उत्तर १४८ प्रकृति का वर्णन जानना।***

मूलुत्तरपयडीणं णामादि चउव्विहं हवे सुगमं।
वज्जित्ता णोकम्मं णोआगमभावकम्मं च।।६८।।
पडपडिहारसिमज्जा आहारं देह उच्चणीचंगं।
भंडारी मूलाणं णोकम्मं दवियकम्मं तु।।६९।।

अर्थ - मूलप्रकृति तथा उत्तरप्रकृतियों के नामादिक चार भेदों का स्वरूप समझना सरल है, परंतु उनमें द्रव्य तथा भावनिक्षेप के भेदों में से नोकर्म तथा नोआगमभावकर्म का स्वरूप समझना कठिन है।।६८।।

नोकर्म

जिस प्रकृति के फल देने में जो निमित्तकारण हो

अर्थ - ज्ञानावरणादि ८ मूलप्रकृतियों के नोकर्म; द्रव्यकर्म के क्रम से वस्तु के चारों तरफ लगा हुआ कनात का कपड़ा, द्वारपाल, शहद लपेटी तलवार की धार, शराब, अन्नादि आहार, उच्च-नीच शरीर, शरीर और भंडारी - ये आठ जानना।।६९।।

ज्ञानावरणादि मूल प्रकृतियों में नोकर्म द्रव्यनिक्षेप

ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय
↓	↓	↓	↓	↓	↓	↓	↓
वस्तु के चारों तरफ लगा हुआ कनात का कपड़ा	राजा के दर्शन न करने देने वाला द्वारपाल	शहद लपेटी तलवार की धार	मदिरा	अन्नादि आहार	शरीर	ऊँचा-नीचा शरीर	भंडारी

पडविसयपहुदि दव्वं मदिसुदवाघादकरणसंजुत्तं।
मदिसुदबोहाणं पुण णोकम्मं दवियकम्मं तु।।७०।।
ओहिमणपज्जवाणं पडिघादणिमित्तसंकिलेसयरं।
जं बज्झट्ठं तं खलु णोकम्मं केवले णत्थि।।७१।।

अर्थ – वस्तुस्वरूप के ढांकने वाले वस्त्र आदि पदार्थ मतिज्ञानावरण के नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। और इन्द्रियों के रूपादिक विषय श्रुतज्ञान को नहीं होने देते इस कारण वे श्रुतज्ञानावरण कर्म के नोकर्म हैं।।७०।।

अर्थ – अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान इन दोनों के घात करने का निमित्त कारण जो संक्लेशरूप परिणाम उसको करने वाली जो बाह्य वस्तु वह अवधिज्ञानावरण तथा मनःपर्ययज्ञानावरण का नोकर्म है। और केवलज्ञानावरण का नोकर्म कोई वस्तु नहीं है।।७१।।

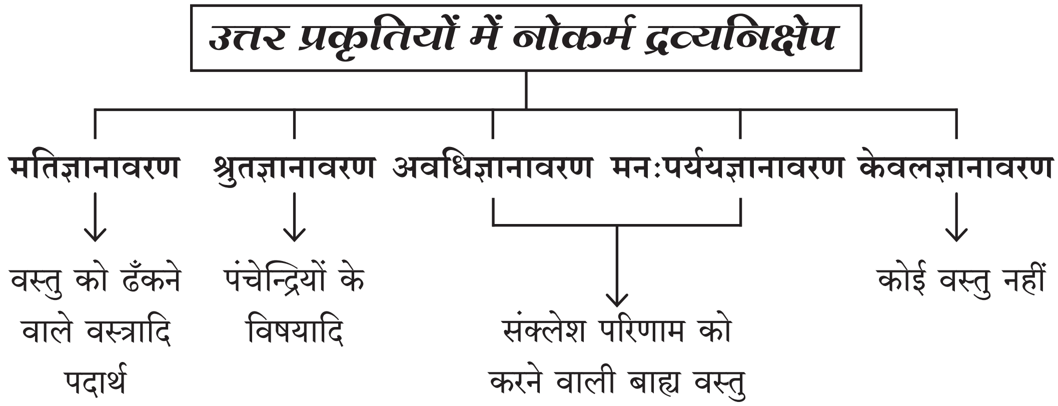

पंचण्हं णिद्दाणं माहिसदहिपहुदि होदि णोकम्मं।
वाघादकरपडादी चक्खुअचक्खूण णोकम्मं।।७२।।
ओहीकेवलदंसणणोकम्मं ताण णाणभंगो व।
सादेदरणोकम्मं इट्ठाणिट्ठण्णपाणादि।।७३।।

अर्थ – पाँच निद्राओं के नोकर्म भैंस का दही, लहसन, खली इत्यादि हैं। चक्षु तथा अचक्षुदर्शन के रोकने वाले वस्त्रादि द्रव्य चक्षुदर्शनावरण और अचक्षुदर्शनावरण कर्म के नोकर्म हैं।।७२।।

अर्थ – अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण का नोकर्म अवधिज्ञानावरण तथा केवलज्ञानावरण के नोकर्म की तरह ही जानना। साता वेदनीय तथा असाता वेदनीय का नोकर्म क्रम से अपने को रुचने वाली तथा अपने को नहीं रुचे ऐसी खाने-पीने आदि की वस्तु जानना।।७३।।

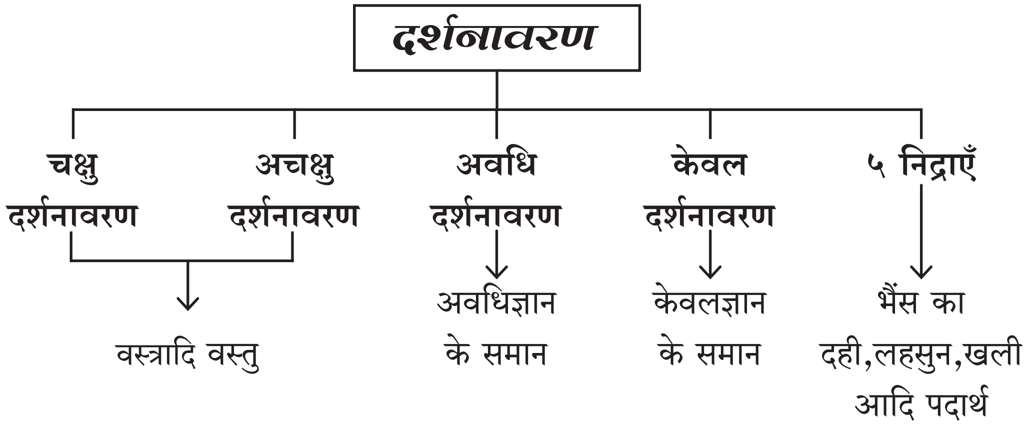

वेदनीय

- **साता** → इष्ट अन्नपानादि वस्तु
- **असाता** → अनिष्ट अन्नपानादि वस्तु

आयदणाणायदणं सम्मे मिच्छे य होदि णोकम्मं।
उभयं सम्मामिच्छे णोकम्मं होदि णियमेण।।७४।।

अर्थ – छह आयतन सम्यक्त्व प्रकृति के नोकर्म हैं। छह अनायतन मिथ्यात्व प्रकृति के नोकर्म हैं। तथा आयतन और अनायतन दोनों मिले हुये सम्यग्मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय के नोकर्म हैं। ऐसा निश्चय कर समझना।।७४।।

दर्शन मोहनीय

- **सम्यक्त्व** → ६ आयतन
  - जिन
  - जिनमंदिर
  - जिनागम
  - जिनागम के धारक
  - तप
  - तप के धारक
- **मिथ्यात्व** → ६ अनायतन
  - कुदेव
  - कुदेव का मंदिर
  - कुशास्त्र
  - कुशास्त्र के धारक
  - कुतप
  - कुतप के धारक
- **सम्यक्मिथ्यात्व** → आयतन एवं अनायतन दोनों मिले हुये

अणणोकम्मं मिच्छत्तायदणादी हु होदि सेसाणं।
सगसगजोग्गं सत्थं सहायपहुदी हवे णियमा।।७५।।
थीपुंसंढसरीरं ताणं णोकम्म दव्वकम्मं तु।
वेलंबको सुपुत्तो हस्सरदीणं च णोकम्मं।।७६।।
इट्ठाणिट्ठवियोग जोगं अरदिस्स मुदसुपुत्तादी।
सोगस्स य सिंहादि णिंदिददव्वं च भयजुगले।।७७।।

अर्थ – अनंतानुबंधी कषाय के नोकर्म; मिथ्या आयतन अर्थात् कुदेव आदि छह अनायतन हैं। और बाकी बची हुई बारह कषायों के नोकर्म देशचारित्र, सकलचारित्र तथा यथाख्यातचारित्र के घात

में सहायता करने वाले (काव्य, नाटक, कोक शास्त्र और पापी जार (कुशीली) पुरुषों की संगति करना इत्यादि) हैं। ऐसा नियम से जानना।।७५।।

अर्थ – स्त्रीवेद का नोकर्म स्त्री का शरीर, पुरुषवेद का नोकर्म पुरुष का शरीर है और नपुंसकवेद का नोकर्म नपुंसक का शरीर है। हास्य कर्म के नोकर्म विदूषक व बहुरूपिया आदि हैं। रतिकर्म का नोकर्म अच्छा गुणवान् पुत्र है।।७६।।

अर्थ – अरति कर्म का नोकर्म इष्ट का वियोग होना और अनिष्ट वस्तु का संयोग होना है। शोक का नोकर्म सुपुत्र, स्त्री आदि का मरना है। सिंहादि भय के करने वाले पदार्थ भयकर्म के नोकर्म हैं। तथा निंदित वस्तु जुगुप्सा कर्म की नोकर्म है।।७७।।

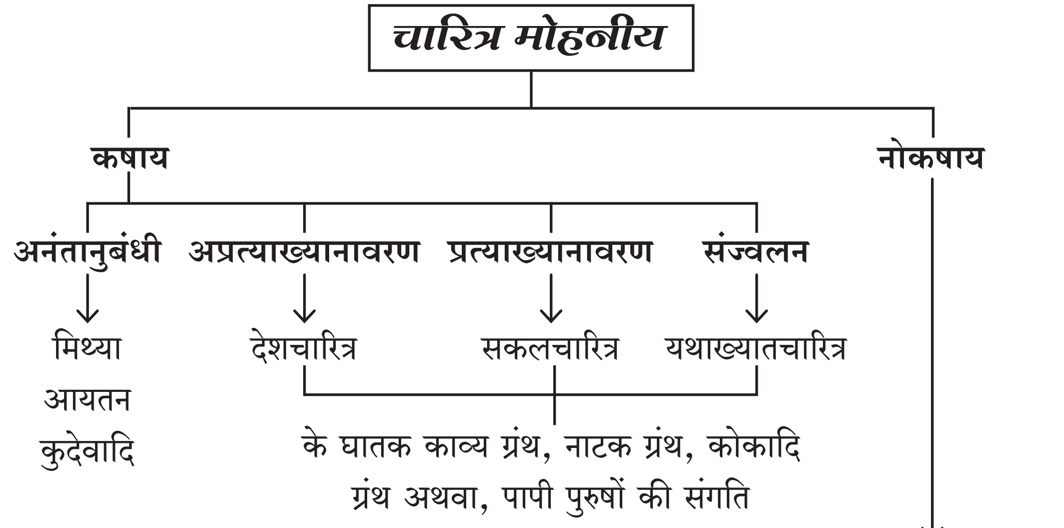

स्त्रीवेद	पुरुषवेद	नंपुसकवेद	हास्य	रति	अरति	शोक	भय	जुगुप्सा
स्त्री का शरीर	पुरुष का शरीर	नपुंसक का शरीर	विदूषक बहुरूपियादि हँसने के पात्र	सुपुत्र आदि	इष्ट वियोग व अनिष्ट संयोग	सुपुत्रादि का मरण	सिंहादि भयकारी वस्तु	निंदित वस्तु

णिरयायुस्स अणिट्ठाहारो सेसाणमिट्ठमण्णादी।
गदिणोकम्मं दव्वं चउगदीणं हवे खेत्तं।।७८।।

अर्थ – अनिष्ट आहार अर्थात् नरक की विषरूप मिट्टी आदि नरकायु का नोकर्म है। बाकी तिर्यंच आदि तीन आयुकर्मों का नोकर्म इन्द्रियों को प्रिय लगे ऐसा अन्न-पानी आदि है। गति नामकर्म का नोकर्म द्रव्य चार गतियों का क्षेत्र है।।७८।।

आयु

नरकायु → अनिष्ट आहार नरक की विषरूप माटी

बाकी ३ आयु (तिर्यंच, देव, मनुष्य) → इष्ट अन्नादिक वस्तु

णिरयादीण गदीणं णिरयादी खेत्तयं हवे णियमा।
जाईए णोकम्मं दव्विंदियपोग्गलं होदि।।७९।।
एइंदियमादीणं सगसगदव्विंदियाणि णोकम्मं।
देहस्स य णोकम्मं देहुदयजदेहखंधाणि।।८०।।
ओरालियवेगुव्वियआहारयतेजकम्मणोकम्मं।
ताणुदयजचउदेहा कम्मे विस्संचयं णियमा।।८१।।
बंधणपहुदिसमण्णियसेसाणं देहमेव णोकम्मं।
णवरि विसेसं जाणे सगखेत्तं आणुपुव्वीणं।।८२।।
थिरजुम्मस्स थिराथिररसरुहिरादीणि सुहजुगस्स सुहं।
असुहं देहावयवं सरपरिणदपोग्गलाणि सरे।।८३।।

अर्थ – नरकादि चार गतियों का नोकर्म नियम से नरकादि गतियों का अपना-अपना क्षेत्र है। जातिकर्म का नोकर्म द्रव्येन्द्रियरूप पुद्‌गल की रचना है।।७९।।

अर्थ – एकेन्द्रिय आदि पाँच जातियों के नोकर्म अपनी-अपनी द्रव्येन्द्रिय है। शरीर नामकर्म का नोकर्म शरीर नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुये अपने शरीर के स्कंधरूप पुद्‌गल जानना।।८०।।

अर्थ – औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस शरीरनामकर्म का नोकर्म अपने-अपने उदय से प्राप्त हुई शरीरवर्गणा हैं। और कार्मणशरीर का नोकर्म विस्रसोपचयरूप (स्वभाव से कर्मरूप होने योग्य कार्मण वर्गणा) परमाणु हैं।।८१।।

अर्थ – बंधन नामकर्म से लेकर जितनी पुद्‌गलविपाकी प्रकृतियाँ हैं उनका, और पहले कही हुई प्रकृतियों के सिवाय जीवविपाकी प्रकृतियों में से जितनी बाकी बची उनका नोकर्म शरीर ही है। इतना विशेष है कि क्षेत्रविपाकी चार आनुपूर्वी प्रकृतियों का नोकर्म अपना-अपना क्षेत्र ही है।।८२।।

अर्थ – स्थिरकर्म का नोकर्म अपने-अपने ठिकाने पर स्थिर रहने वाले रस, रक्त आदि हैं और अस्थिर प्रकृति के नोकर्म अपने-अपने ठिकाने से चलायमान हुये रस, रक्त आदि हैं। शुभ प्रकृति के नोकर्म शरीर के शुभ अवयव हैं तथा अशुभ प्रकृति के नोकर्म शरीर के अशुभ अवयव हैं। स्वर नामकर्म का नोकर्म सुस्वर-दुःस्वररूप परिणमे पुद्‌गल परमाणु हैं।।८३।।

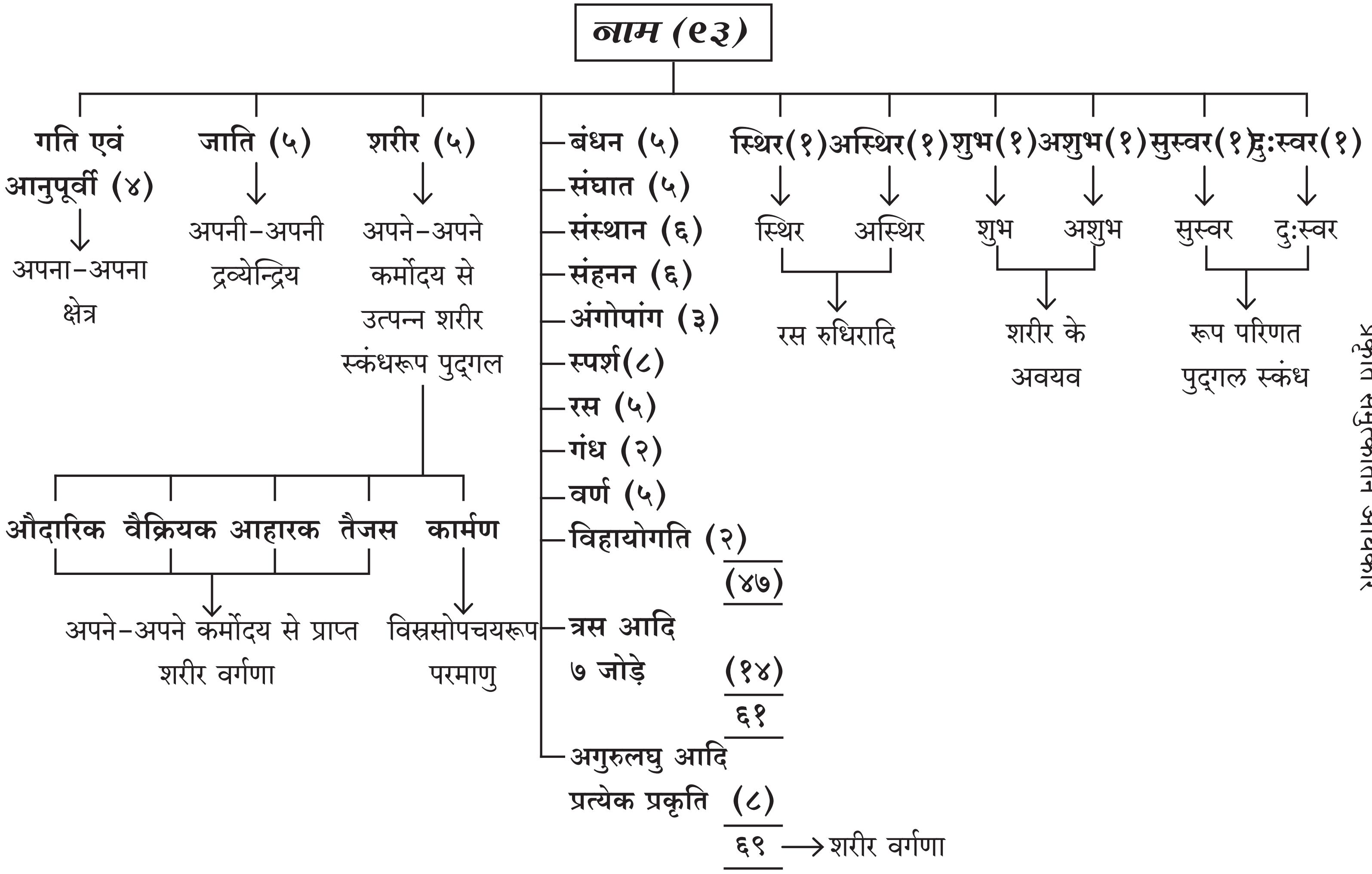

नाम (९३)
गति एवं आनुपूर्वी (४)
अपना-अपना क्षेत्र
जाति (५)
अपनी-अपनी द्रव्येन्द्रिय
शरीर (५)
अपने-अपने कर्मोदय से उत्पन्न शरीर स्कंधरूप पुद्गल
औदारिक वैक्रियक आहारक तैजस कार्मण
अपने-अपने कर्मोदय से प्राप्त शरीर वर्गणा
विस्रसोपचयरूप परमाणु
बंधन (५)
संघात (५)
संस्थान (६)
संहनन (६)
अंगोपांग (३)
स्पर्श(८)
रस (५)
गंध (२)
वर्ण (५)
विहायोगति (२)
(४७)
त्रस आदि ७ जोड़े (१४)
६१
अगुरुलघु आदि प्रत्येक प्रकृति (८)
६९
शरीर वर्गणा
स्थिर(१) अस्थिर(१) शुभ(१) अशुभ(१) सुस्वर(१) दुःस्वर(१)
स्थिर अस्थिर
रस रुधिरादि
शुभ अशुभ
शरीर के अवयव
सुस्वर दुःस्वर
रूप परिणत पुद्गल स्कंध

उच्चस्सुच्चं देहं णीचं णीचस्स होदि णोकम्मं।
दाणादिचउक्काणं विग्घगणगपुरिसपहुदी हु।।८४।।
विरियस्स य णोकम्मं रुक्खाहारादिबलहरं दव्वं।
इदि उत्तरपयडीणं णोकम्मं दव्वकम्मं तु।।८५।।

अर्थ – उच्चगोत्र का नोकर्म लोकपूजित कुल में उत्पन्न हुआ शरीर है और नीच गोत्र का नोकर्म लोकनिंदित कुल में प्राप्त हुआ शरीर है। दानादि चार का अर्थात् दान, लाभ, भोग और उपभोगांतराय कर्म का नोकर्म दानादि में विघ्न करने वाले पर्वत, नदी, पुरुष, स्त्री आदि जानने।।८४।।

अर्थ – वीर्यांतराय कर्म के नोकर्म रूखा आहार आदि बल के नाश करने वाले पदार्थ हैं। इस प्रकार उत्तरप्रकृतियों के नोकर्म द्रव्यकर्म का स्वरूप कहा।।८५।।

गोत्र

ऊँच
✻ ऊँचे लोकपूजित कुल में उत्पन्न शरीर

नीच
✻ नीच कुल में उत्पन्न शरीर

अंतराय

दानांतराय **लाभांतराय** **भोगांतराय** **उपभोगांतराय**
↓
अपने-अपने दानादि में विघ्न करनेवाले
पर्वत, नदी, पुरुष, स्त्री आदि

वीर्यांतराय
↓
बल को नाश करने वाले
रुखे आहारादि पदार्थ

णोआगमभावो पुण सगसगकम्मफलसंजुदो जीवो।
पोग्गलविवाइयाणं णत्थि खु णोआगमो भावो।।८६।।

अर्थ – जिस-जिस कर्म का जो-जो फल है उस फल को भोगते हुए जीव को ही उस-उस कर्म का नोआगमभावकर्म जानना। पुद्गलविपाकी प्रकृतियों का नोआगमभावकर्म नहीं होता है।।८६।।

नोआगम भावकर्म

जीव विपाकी
✻ अपनी-अपनी प्रकृति
के फल को भोगता जीव

पुद्गल विपाकी
✻ कोई नहीं
✻ पुद्गल कर्म के फल को नहीं अनुभवता
✻ जीवविपाकी प्रकृति की सहायता बिना साक्षात्
सुखादि की उत्पत्ति नहीं होती है।

अधिकार २ - बंध उदय सत्त्व अधिकार

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
अनेक प्रकृतियों के सूचक संक्षिप्त नाम			४०
अनेक संख्याओं के सूचक संक्षिप्त सहनानी			४१
मंगलाचरण पूर्वक कथन प्रतिज्ञा	८७	१	४१
स्तवादि का स्वरूप	८८	१	४१
बंध	**८९-२६०**	**१७२**	
प्रकृतिबंधादि ४ भेद तथा उनके भी उत्कृष्टादि ४ भेद-प्रभेद	८९-९१	३	४२
प्रकृति बंध	**९२-१२६**	**३५**	
प्रकृतिबंध के नियम	९२-९३	२	४३
गुणस्थानों में बंध व्युच्छित्ति, बंध, अबंध प्रकृतियाँ	९४-१०४	११	४५
१४ मार्गणाओं में गुणस्थान अपेक्षा व्युच्छित्ति, बंध, अबंध प्रकृतियाँ	१०५-१२१	१७	५०
मूल व उत्तर प्रकृतियों में सादि आदि ४ प्रकार का बंध	१२२-१२६	५	७०
स्थिति बंध	**१२७-१६२**	**३६**	
मूल प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति	१२७	१	७३
उत्तर प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति	१२८-१३३	६	७३
उत्कृष्ट एवं जघन्य स्थितिबंध का कारण	१३४	१	७५
उत्कृष्ट स्थितिबंध के स्वामी	१३५-१३८	४	७५
मूल तथा उत्तर प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बंध	१३९-१४३	५	७७
एकेन्द्रिय आदि असंज्ञी पर्यंत जीवों के मोहनीय आदि कर्मों का उत्कृष्ट व जघन्य स्थितिबंध	१४४-१४५	२	७९
उपरोक्त जीवों में आबाधा तथा आबाधाकांडक प्रमाण	१४६-१४७	२	८१
१४ जीवसमास में जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबंध	१४८-१५०	३	८३
जघन्य स्थितबंध के स्वामी	१५१	१	८७
अजघन्य स्थिति आदि ४ बंध में संभवित सादि आदि भेद	१५२-१५३	२	८८
३ आयु के सिवाय समस्त प्रकृतियों की स्थिति अशुभरूप ही हैं	१५४	१	८८

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
आबाधा	१५५-१५९	५	८९
कर्मों के निषेक का स्वरूप, निषेकों में द्रव्यप्रमाण तथा अंक संदृष्टि द्वारा गुणहानि आदि का स्वरूप	१६०-१६२	३	९३
अनुभाग बंध	**१६३-१८४**	२२	
उत्कृष्ट-जघन्य अनुभागबंध कारण	१६३	१	९६
उत्कृष्ट अनुभागबंध स्वामी	१६४-१६९	६	९६
जघन्य अनुभागबंध स्वामी	१७०-१७७	८	९९
उत्कृष्ट अनुभाग आदि के सादि आदिक भेद	१७८-१७९	२	१०२
घातिया कर्मों में अनुभाग फल दृष्टांत	१८०	१	१०३
घातिया-अघातियाकर्मों में संभवित अनुभाग शक्ति	१८१-१८३	३	१०४
अघातिया कर्मों में प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग फल के दृष्टांत	१८४	१	१०५
प्रदेश बंध	**१८५-२१७**	३३	
एकक्षेत्र-अनेकक्षेत्र संबंधी योग्य-अयोग्य सादि-अनादिरूप पुद्‌गल का प्रमाणादिक	१८५-१९०	६	१०६
समयप्रबद्ध का प्रमाण व उसका मूल प्रकृतियों में बँटवारा	१९१-१९५	५	१११
उत्तर प्रकृतियों में बँटवारे का क्रम, घातिया कर्मों में सर्वघाति व देशघाति का बँटवारा, मोहनीय कर्म में विशेषता	१९६-२०६	११	११४
मूल तथा उत्तर प्रकृतियों में उत्कृष्टादि प्रदेशबंध के सादि आदि भेद	२०७-२०९	३	१२६
प्रदेशबंध की सामग्री	२१०	१	१२७
मूल,उत्तर प्रकृतियों के उत्कृष्ट-जघन्य प्रदेशबंध का स्वामी	२११-२१७	७	१२७
योगस्थान	**२१८-२६०**	४३	
३ प्रकार के योगस्थान, उनका स्वरूप एवं उनके १४ जीवसमास अपेक्षा जघन्य-उत्कृष्ट भेद	२१८-२२२	५	१३१
योग के अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि, नानागुणहानि, स्थानों का स्वरूप, प्रमाण व विधान	२२३-२२९	७	१३३

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
सर्व योगस्थान की प्राप्ति का क्रम व अपूर्व स्पर्द्धक, उनमें अंतर, गुणकार व गुणकार का अनुक्रम	२३०-२३१	२	१३७
८४ योगस्थान व योग स्तंभ रचना	२३२-२४१	१०	१३८
तीनों प्रकार के योग के निरंतर प्रर्वतने का काल	२४२	१	१४४
निरंतर प्रर्वतने वाले योगस्थान के प्रमाण लाने हेतु काल यव मध्य रचना	२४३	१	१४४
परिणाम योगस्थानों में जीवों के प्रमाण जानने हेतु गुणहानि आदि विशेष लिये जीव यवमध्य रचना	२४४-२४९	६	१४६
योगस्थानों में होने वाला प्रदेशबंध	२५०	१	१४९
जघन्य स्थान से उत्कृष्ट स्थान पर्यंत प्रदेश बंध का क्रम	२५१-२५६	६	१५०
चार प्रकार के बंध का कारण	२५७	१	१५१
योगस्थानादि का अल्पबहुत्व	२५८-२६०	३	१५२
उदय	**२६१-३३२**	**७२**	
प्रकृतियों के उदय का नियम	२६१-२६२	२	१५४
गुणस्थानों में उदय, अनुदय व उदय व्युच्छित्ति	२६३-२७७	१५	१५५
उदय और उदीरणा में विशेषता	२७८-२८०	३	१६१
गुणस्थानों में उदीरणा, अनुदीरणा व उदीरणा व्युच्छित्ति	२८१-२८३	३	१६२
मार्गणाओं में प्रकृतियों के उदय के नियम	२८४-२८९	६	१६२
१४ मार्गणाओं में उदय, अनुदय व उदय व्युच्छित्ति	२९०-३३२	४३	१६५
सत्त्व	**३३३-३५७**	**२५**	
तीर्थंकर प्रकृति व आहारकद्विक के सत्त्व का नियम	३३३	१	१९९
आयु बंध होने पर सम्यक्त्व-व्रत होने का नियम विशेष	३३४-३३६	३	२००
नवमें आदि गुणस्थानों में सत्त्व व्युच्छित्ति	३३७-३४१	५	२०१
गुणस्थानों में सत्त्व-असत्त्व प्रकृतियाँ	३४२	१	२०१
उपशम श्रेणी में २१ प्रकृतियों के उपशम का क्रम	३४३	१	२०४
१४ मार्गणाओं में गुणस्थान अपेक्षा सत्त्व,असत्त्व,व्यच्छित्ति	३४४-३५६	१३	२०४
अंत मंगलाचरण	३५७	१	२१३
कुल गाथाएँ	**८७-३५७**	**२७१**	

अनेक प्रकृतियों के सूचक संक्षिप्त नाम

प्रकृतियाँ	संक्षिप्त
नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी	नरकद्विक
तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी	तिर्यंचद्विक
मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी	मनुष्यद्विक
देवगति, देवगत्यानुपूर्वी	देवद्विक
औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग	औदारिकद्विक
वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग	वैक्रियिकद्विक
आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग	आहारकद्विक
तैजस शरीर, कार्मण शरीर	तैजसद्विक
भय,जुगुप्सा	भयद्विक
आतप, उद्योत	आतपद्विक
सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त	सूक्ष्मत्रिक
दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय	दुर्भगत्रिक
त्रस, बादर, पर्याप्त	त्रसत्रिक
स्त्यानगृद्धि आदि तीन बड़ी निद्रा	स्त्यानगृद्धित्रिक
देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग	देवचतुष्क
तिर्यंचायु, तिर्यंचद्विक, उद्योत	शतार चतुष्क
अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास	अगुरुलघु चतुष्क
त्रस, प्रत्येक, बादर, पर्याप्त	त्रस चतुष्क
स्पर्श, रस, गंध, वर्ण	वर्ण चतुष्क
अस्थिर, अशुभ, अनादेय, अयशःकीर्ति, दुर्भग, दुस्वर	अस्थिर षट्क
स्थिर, शुभ, आदेय, यशःकीर्ति, सुभग, सुस्वर	स्थिर षट्क
वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी	वैक्रियिक षट्क

अनेक संख्याओं के सूचक संक्षिप्त सहनानी

संख्या	सहनानी	संख्या	सहनानी
सागर	सा.	**पल्य**	प.
संख्यात	सं.	**असंख्यात**	असं.
अनंत	अनंत	**अंतर्मुहूर्त**	अंत.

णमिऊण णेमिचंदं असहायपरक्कमं महावीरं।
बंधुदयसत्तजुत्तं ओघादेसे थवं वोच्छं।।८७।।

अर्थ – मैं (नेमिचन्द्र आचार्य) कर्मरूप वैरी के जीतने में असहाय पराक्रम वाले तथा महावीर ऐसे नेमिनाथ तीर्थंकररूपी चंद्रमा को नमस्कार करके, गुणस्थान और मार्गणास्थानों में कर्मों के बंध, उदय, सत्त्व को बताने वाले स्तवरूप ग्रन्थ को अब कहूँगा।।८७।।

मंगलाचरण

नमस्कार
↓ किसे ?
नेमिनाथ तीर्थंकर को
↓
कैसे हैं वे तीर्थंकर ?
↓
※ महावीर – वंदनेवालों के समूह को मनवांछित अर्थ के दाता
※ असहाय पराक्रम – कर्मवैरी के जीतने में जिसके अन्य कोई सहाय नहीं है ऐसे जो रत्नत्रय स्वरूप निजभावना की सामर्थ्यरूप पराक्रम है जिनमें

प्रतिज्ञा
↓
गुणस्थान और मार्गणास्थानों में
↓
कर्मों के बंध, उदय, सत्त्वादि का प्रतिपादक
↓
स्तवरूप ग्रंथ को कहूँगा

सयलंगेक्कंगेक्कंगहियार सवित्थरं ससंखेवं।
वण्णणसत्थं थयथुइ धम्मकहा होइ णियमेण।।८८।।

अर्थ – जिसमें सर्वांगसंबंधी अर्थ विस्तारसहित अथवा संक्षेपता से कहा जाये ऐसे शास्त्र को स्तव कहते हैं। जिसमें एक अंग (अंश) का अर्थ विस्तार से अथवा संक्षेप से हो उस शास्त्र को स्तुति कहते हैं। अंग के एक अधिकार का अर्थ जिसमें विस्तार से वा संक्षेप से कहा जाये उसे वस्तु कहते हैं। प्रथमानुयोगादि शास्त्र को धर्मकथा कहते हैं।।८८।।

स्तवादि

स्तव	सकल अंगों संबंधी अर्थ	विस्तार या संक्षेप से जिसमें पाया जाता है, ऐसा शास्त्र
स्तुति	एक अंग संबंधी अर्थ	
वस्तु	एक अंग के अधिकार संबंधी अर्थ	
धर्मकथा	प्रथमानुयोगादि शास्त्र	
यहाँ बंध, उदय, सत्तारूप कर्म के कथन में सकल अंगों संबंधी अर्थ विस्तार सहित व संक्षेप सहित कहेंगे, इसलिये स्तव कहते हैं।		

बंध प्रकरण

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधोत्ति चदुविहो बंधो।
उक्कस्समणुक्कस्सं जहण्णमजहण्णग त्ति पुधं।।८९।।
सादिअणादी धुव अद्धुवो य बंधो दु जेट्ठमादीसु।
णाणेगं जीवं पडि ओघादेसे जहाजोग्गं।।९०।।
ठिदिअणुभागपदेसा गुणपडिवण्णेसु जेसिमुक्कस्सा।
तेसिमणुक्कस्सो चउव्विहोऽजहण्णेवि एमेव।।९१।।

अर्थ - प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध - इस तरह बंध के ४ भेद हैं। तथा इनमें भी हर एक बंध के उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य इस तरह चार-चार भेद हैं।।८९।।

अर्थ - उत्कृष्ट आदिक भेदों के भी सादिबंध, अनादिबंध, ध्रुवबंध और अध्रुवबंध - इस प्रकार चार-चार भेद हैं। इन बंधों को नाना जीवों की तथा एक जीव की अपेक्षा से गुणस्थान और मार्गणास्थानों में यथासंभव घटित कर लेना चाहिये।।९०।।

अर्थ - गुणप्रतिपन्न अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि, सासादनादि ऊपर-ऊपर के गुणस्थानवर्ती जीवों में जिन कर्मों का स्थिति-अनुभाग-प्रदेशबंध उत्कृष्ट होता है उन्हीं कर्मों का अनुत्कृष्ट स्थिति, अनुभाग, प्रदेशबंध सादि बंधादि के भेद से चार तरह का होता है। इसी तरह जिन कर्मों का स्थिति-अनुभाग-प्रदेशबंध ऊपर-ऊपर के गुणस्थानों में जघन्य पाया जाता है उन्हीं कर्मों का अजघन्य बंध चार प्रकार का होता है। इनका उदाहरण कहते हैं- उपशमश्रेणी चढ़ने वाला जीव सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती हुआ, वहाँ उच्च गोत्र का उत्कृष्ट अनुभागबंध करके पश्चात् उपशांतकषाय गुणस्थानवर्ती हुआ। वहाँ से उतरकर सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती हुआ, वहाँ उच्चगोत्र का अनुत्कृष्ट अनुभागबंध किया। वहाँ उच्चगोत्र के अनुत्कृष्ट अनुभागबंध को **सादि** कहते हैं, क्योंकि उच्चगोत्र के अनुत्कृष्ट अनुभागबंध का अभाव होकर पुन: सद्भाव हुआ, इसलिए सादि कहते हैं। सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान से नीचे के गुणस्थानवर्ती जीवों के वह (अनुत्कृष्ट) बंध **अनादि** है। अभव्य में वह बंध **ध्रुव** है। उपशमश्रेणी वाले के जहाँ अनुत्कृष्ट को छोड़कर उत्कृष्ट बंध होता है वहाँ वह **अध्रुव** है। इस तरह उच्चगोत्र के अनुत्कृष्ट अनुभागबंध में सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव चार प्रकार कहे। इसी तरह अजघन्य भी चार

प्रकार का है, वह कहते हैं। सप्तम नरक पृथ्वी में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सम्मुख हुआ मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व गुणस्थान के अंतिम समय में नीचगोत्र के जघन्य अनुभाग को बांधता है। वह जीव सम्यग्दृष्टि होकर पश्चात् मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यादृष्टि हुआ, वहाँ नीचगोत्र के अजघन्य अनुभाग को बांधता है। वहाँ इस नीचगोत्र के अजघन्य अनुभाग को **सादि** कहते हैं। उस मिथ्यादृष्टि के उस अंतिम समय के पहले वह बंध **अनादि** है। अभव्य जीव के वह बंध **ध्रुव** है। वहाँ अजघन्य को छोड़कर जघन्य प्राप्त हुआ वहाँ वह बंध **अध्रुव** है। इस तरह नीचगोत्र के अजघन्य अनुभाग में सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव चार प्रकार कहे। इसी तरह यथासंभव अन्य बंध में भी सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव चार प्रकार जानने। प्रकृतिबंध में उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य भेद नहीं हैं।।९१।।

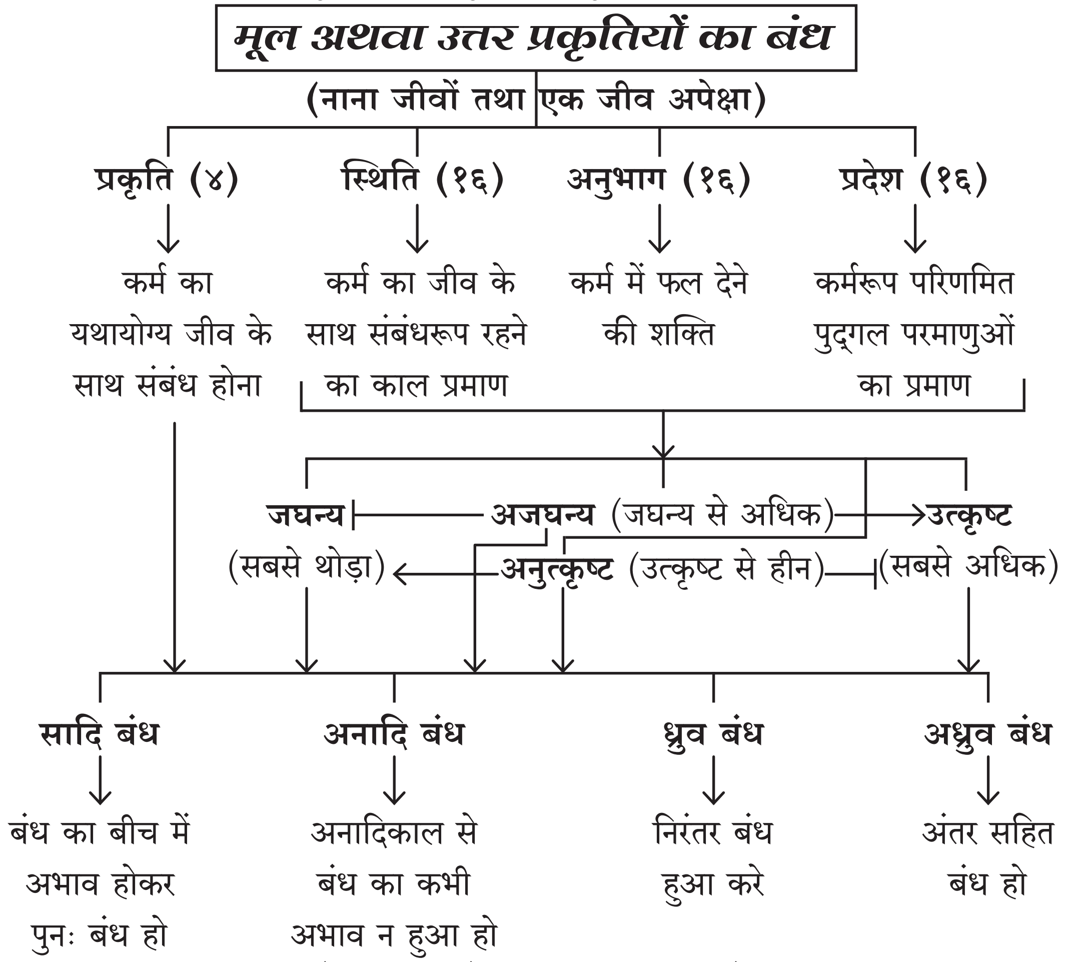

सम्मेव तित्थबंधो आहारदुगं पमादरहिदेसु।
मिस्सूणे आउस्स य मिच्छादिसु सेसबंधोदु।।९२।।

अर्थ – सम्यग्दृष्टि के ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है। आहारकद्विक का बंध प्रमाद रहित के ही होता है। आयुकर्म का बंध मिश्र गुणस्थान के सिवाय शेष मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्त गुण-स्थान तक ही होता है। शेष प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में अपनी-अपनी बंध की व्युच्छित्ति तक होता है।।९२।।

प्रकृति बंध के कुछ नियम

प्रकृति	बंध योग्य गुणस्थान
तीर्थंकर प्रकृति	४^{थे} से ८^{वें} के छठें भाग तक
आहारक शरीर-आहारक अंगोपांग	७^{वें} से ८^{वें} के छठें भाग तक
आयुकर्म	१^{ले} से ७^{वें} तक (३^{रे} गुणस्थान तथा निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्था को छोड़कर)
पूर्वोक्त प्रकृतियों के बिना शेष प्रकृतियाँ	अपनी-अपनी बंध व्युच्छित्ति पर्यंत

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि।
तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते॥९३॥

अर्थ - प्रथमोपशम सम्यक्त्व में या शेष तीनों सम्यक्त्व में, असंयत से लेकर अप्रमत्त गुणस्थान तक मनुष्य ही, केवली तथा श्रुतकेवली (द्वादशांग के पारगामी) के निकट ही तीर्थंकर प्रकृति के बंध का आरंभ करते हैं॥९३॥

तीर्थंकर प्रकृति के बंध का विशेष नियम

निम्न सामग्री प्राप्त जीव ही तीर्थंकर प्रकृति के बंध को प्रारंभ करता है

		कारण
किस गति में	मनुष्य हो	* चूंकि अन्य गतिवाले जीवों के विशिष्ट विचार, क्षयोपशमादि सामग्री का अभाव है * बंध प्रारंभ होने के पश्चात् तिर्यंच को छोड़कर शेष ३ गति के जीव बांधते हैं
कौन से सम्यक्त्व सहित	प्रथमोपशम सम्यक्त्व	* कुछ आचार्यों के मत से - प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल अंतर्मुहूर्त मात्र होने से * षोडशकारण भावना भायी नहीं जा सकती * इसलिए तीर्थंकर प्रकृति का बंध यहाँ संभव नहीं है
	द्वितीयोपशम, क्षयोपशम, क्षायिक सम्यक्त्व	
किनके निकट	प्रत्यक्ष केवली अथवा श्रुतकेवली के निकट ही	चूंकि अन्यत्र तीर्थंकर प्रकृति के बंध योग्य विशुद्धि का अभाव है
काल	जघन्य ⟶ अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट ⟶ ३३ सागर + २ करोड पूर्व - ८ वर्ष,अंतर्मुहूर्त	

बंध व्युच्छित्ति, बंध, अबंध का स्वरूप

बंध व्युच्छित्ति	✻ विवक्षित प्रकृति का उस गुणस्थान के अंत समय तक बंध जानना ✻ उसके ऊपर के गुणस्थान में बंध न जानना
बंध	✻ विवक्षित प्रकृति का विवक्षित गुणस्थान में बंध जानना
आगे-आगे के गुणस्थान में बंध योग्य प्रकृतियाँ =	✻ पहले-पहले के गुणस्थान में जितना बंध - पहले की बंध व्युच्छित्ति - विवक्षित गुणस्थान में बंध योग्य नहीं + विवक्षित गुणस्थान में बंध योग्य विशेष प्रकृति जो पूर्व में नहीं बंधने योग्य
अबंध =	✻ कुल बंध योग्य प्रकृतियाँ (१२०) - विवक्षित गुणस्थान की बंध योग्य प्रकृतियाँ

सोलस पणवीस णभं दस चउ छक्केक्क बंधवोच्छिण्णा।
दुग तीस चदुरपुव्वे पण सोलस जोगिणो एक्को।।९४।।
मिच्छत्तहुंडसंढाऽसंपत्तेयक्खथावरादावं।
सुहुमतियं त्रियलिंदिय णिरयदुणिरयाउगं मिच्छे।।९५।।
विदियगुणे अणथीणतिदुभगतिसंठाणसंहदिचउक्कं।
दुग्गमणित्थीणीचं तिरियदुगुज्जोवतिरियाऊ।।९६।।
अयदे विदियकसाया वज्जं ओरालमणुदुमणुवाऊ।
देसे तदियकसाया णियमेणिह बंधवोच्छिण्णा।।९७।।
छट्ठे अथिरं असुहं असादमजसं च अरदिसोगं च।
अपमत्ते देवाऊ णिट्ठवणं चेव अत्थित्ति।।९८।।
मरणूणम्मि णियट्टीपढमे णिद्दा तहेव पयला य।
छट्ठे भागे तित्थं णिमिणं सग्गमणपंचिंदी।।९९।।
तेजदुहारदुसमचउसुरवण्णागुरुचउक्कतसणवयं।
चरिमे हस्सं च रदी भयं जुगुच्छा य बंधवोच्छिण्णा।।१००।।
पुरिसं चदुसंजलणं कमेण अणियट्टिपंचभागेसु।
पढमं विग्घं दंसणचउजसउच्चं च सुहुमंते।।१०१।।
उवसंतखीणमोहे जोगिम्हि य समयियट्ठिदी सादं।
णायव्वो पयडीणं बंधस्संतो अणंतो य।।१०२।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थान में क्रम से १६, २५, शून्य, १०, ४, ६, १ प्रकृति की व्युच्छित्ति होती है। आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान के सात भागों में से पहले भाग में दो की, छठे भाग में तीस की, सातवें भाग में चार प्रकृतियों की बंध-व्युच्छित्ति होती है। नवमें में ५, दसवें में १६ एवं सयोगी (तेरहवें) गुणस्थान में १ प्रकृति की बंध-व्युच्छित्ति होती है।।९४।।

अर्थ – मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थान, नपुंसक वेद, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय,स्थावर, आतप, सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक, नरकद्विक, नरकायु – ये १६ प्रकृतियाँ मिथ्यात्व गुणस्थान के अंतसमय में बंध से व्युच्छिन्न हो जाती हैं।।९५।।

अर्थ – दूसरे सासादन गुणस्थान के अंतसमय में अनंतानुबंधी क्रोधादि चार, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला – ये तीन; दुर्भग तीन, न्यग्रोधादि चार संस्थान, वज्रनाराचादि चार संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यंचद्विक, उद्योत और तिर्यंचायु – इन २५ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है।।९६।।

अर्थ – चौथे असंयत गुणस्थान के अंतिम समय में अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि चार कषाय, वज्रऋषभनाराच संहनन, औदारिकद्विक, मनुष्यद्विक और मनुष्यायु – ये १० प्रकृतियाँ बंध से व्युच्छिन्न होती हैं। पाँचवें देशविरत गुणस्थान के अंतिम समय में तीसरी प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि ४ कषायें नियम से बंध से व्युच्छिन्न होती हैं।।९७।।

अर्थ – छठे गुणस्थान के अंतिम समय में अस्थिर, अशुभ, असाता वेदनीय, अयशःकीर्ति, अरति और शोक-इन छह प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति होती है, क्योंकि ये प्रमाद के निमित्त से बंधती हैं।पुनः श्रेणी चढ़ने के लिये जिसके अधःकरणादि नहीं हुये हों ऐसे स्वस्थान अप्रमत्तसंयत के अंतिम समय में देवायु व्युच्छित्तिरूप होती है,क्योंकि अधःकरणादिरूप परिणत हुये सातिशयअप्रमत्तादि गुण-स्थानों में देवायु के बंध के कारणभूत मध्यम विशुद्धतारूप संज्वलन के परिणाम नहीं पाये जाते।।९८।।

अर्थ – निवृत्ति (आठवें अपूर्वकरण) के चढ़ने के काल में मरण से रहित ऐसे प्रथम भाग में निद्रा और प्रचला इन २ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है। छठे भाग के अंतसमय में तीर्थंकर प्रकृति, निर्माण,प्रशस्त विहायोगति,पंचेन्द्रिय जाति, तैजसद्विक,आहारकद्विक, समचतुरस्रसंस्थान, तथा देव-चतुष्क, वर्णादि चार, अगुरुलघुचतुष्क और त्रसादि नौ-इन ३० प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है। अंत के सातवें भाग में हास्य, रति, भय और जुगुप्सा-इन ४ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है।।९९-१००।।

अर्थ – नवमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के पाँच भागों में से पहले भाग में पुरुषवेद की व्युच्छित्ति, बाकी के चार भागों में क्रम से संज्वलन क्रोधादि चार कषायों की व्युच्छित्ति जानना। दसवें सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान के अंतिम समय में ज्ञानावरण की पाँच, अंतराय की पाँच, चक्षुदर्शनावरणादि चार, यशः कीर्ति और उच्च गोत्र – इस प्रकार १६ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है।।१०१।।

अर्थ – उपशांतमोह गुणस्थान, क्षीणमोह गुणस्थान और सयोगकेवली गुणस्थान में एक समय की स्थिति वाला एक साता वेदनीय प्रकृति का ही बंध होता है। वह योग के निमित्त से है क्योंकि कषाय का वहाँ अभाव है। इस कारण तेरहवें गुणस्थान के अंतसमय में साता वेदनीय प्रकृति की ही व्युच्छित्ति होती है। इस प्रकार प्रकृतियों के बंध की व्युच्छित्ति जानना।।१०२।।

गुणस्थानों (ओघ) में बंध व्युच्छिति

गुणस्थान	प्रकृति संख्या	मूल कर्म	उत्तर कर्म
१	१६	मोहनीय-२	* मिथ्यात्व * नपुंसक वेद
		आयु - १	* नरकायु
		नाम - १३	* नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि ४ जाति, हुण्डक संस्थान,असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, सूक्ष्म,साधारण,अपर्याप्त, स्थावर, आतप
२	२५	मोहनीय-५	* अनंतानुबंधी ४, स्त्री वेद
		दर्शनावरण-३	* ३ बड़ी निद्रा-स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला
		आयु - १	* तिर्यंचायु
		गोत्र - १	* नीच गोत्र
		नाम - १५	* तिर्यंचगति-तिर्यंचगत्यानुपूर्वी,उद्योत न्यग्रोधादि बीच के ४ संस्थान, वज्रनाराचादि बीच के ४ संहनन, दुर्भग,दुःस्वर,अनादेय,अप्रशस्त विहायोगति
३	०		
४	१०	मोहनीय-४	* अप्रत्याख्यानावरण ४
		आयु - १	* मनुष्यायु
		नाम - ५	* मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर- औदारिक अंगोपांग, वज्रऋषभनाराच संहनन
५	४	मोहनीय-४	* प्रत्याख्यानावरण ४
६	६	मोहनीय-२	* अरति, शोक
		वेदनीय - १	* असाता वेदनीय
		नाम - ३	* अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति
७	१	आयु - १	* देवायु

८ (७ भाग)	कुल ३६		
	प्रथम भाग	दर्शनावरण-२	* निद्रा, प्रचला
	दूसरे भाग से पाँचवें भाग तक	-	
	छठा भाग	नाम - ३०	* देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक-आहारक शरीर-अंगोपांग ४, तैजस-कार्मण शरीर,पंचेन्द्रियजाति,४वर्णादि, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, प्रत्येक प्रकृति ६-तीर्थंकर,निर्माण,अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, यशःकीर्ति बिना त्रसादि जोड़े की ९ प्रशस्त प्रकृति
	सांतवाँ भाग	मोहनीय - ४	* हास्य, रति, भय, जुगुप्सा
९ (५ भाग)	कुल - ५	मोहनीय - ५	
	प्रथम भाग		* पुरुष वेद
	द्वितीय भाग		* संज्वलन क्रोध
	तृतीय भाग		* संज्वलन मान
	चतुर्थ भाग		* संज्वलन माया
	पाँचवाँ भाग		* संज्वलन लोभ
१०	१६	ज्ञानावरण-५	* मति ज्ञानावरणादि ५
		दर्शनावरण-४	* चक्षुदर्शनावरणादि ४
		अंतराय - ५	* दानांतरायादि ५
		गोत्र - १	* उच्च गोत्र
		नाम - १	* यशःकीर्ति
११	०		
१२	०		
१३	१	वेदनीय - १	* साता वेदनीय
१४	-		

सत्तरसेकग्गसयं चउसत्तत्तरि सगट्ठि तेवट्ठि।
बंधा णवट्ठवण्णा दुवीस सत्तारसेकोघे।।१०३।।
तिय उणवीसं छत्तियतालं तेवण्ण सत्तवण्णं च।
इगिदुगसट्ठी बिरहिय सय तियउणवीससहिय वीससयं।।१०४।।

अर्थ - मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में क्रम से ११७, १०१, ७४, ७७, ६७, ६३, ५९, ५८, २२, १७, १, १, १ प्रकृतियों का बंध तेरहवें गुणस्थान तक होता है। (चौदहवें गुणस्थान में बंध नहीं होता)।।१०३।।

अर्थ - मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थानों में क्रम से ३, १९, ४६, ४३, ५३, ५७, ६१, ६२, दो रहित सौ (९८), तीन सहित सौ (१०३), ११९ तीन जगह (ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें में) और चौदहवें में १२० प्रकृतियों का अबंध है।।१०४।।

गुणस्थानों में बंध, अबंध, व्युच्छित्ति प्रकृतियों की संख्या

गुण-स्थान	बंध		बंध/अबंध विवरण	अबंध (पूर्व गुणस्थान का अबंध + पूर्व गुणस्थान की व्युच्छित्ति)		व्युचिछत्ति
१	१२०-३ =	११७	३=तीर्थंकर,आहारकद्विक		३	१६
२	११७-१६ =	१०१		३+१६ =	१९	२५
३	१०१-२५-२=	७४	२=मनुष्यायु,देवायु	१९+२५+२=	४६	0
४	७४-0+३ =	७७	३=मनुष्यायु,देवायु,तीर्थंकर	४६+0- ३ =	४३	१0
५	७७-१0 =	६७		४३+१0 =	५३	४
६	६७-४ =	६३		५३+४ =	५७	६
७	६३-६+२ =	५९	२=आहारकद्विक	५७+६-२ =	६१	१
८	५९-१ =	५८		६१+१ =	६२	३६
९	५८-३६ =	२२		६२+३६ =	९८	५
१०	२२-५ =	१७		९८+५ =	१०३	१६
११	१७-१६ =	१		१०३+१६ =	११९	0
१२		१			११९	0
१३		१			११९	१
१४	१-१ =	-		११९+१ =	१२०	-

ओघे वा आदेसे णारयमिच्छम्मि चारि वोच्छिण्णा।
उवरिम वारस सुरचउ सुराउ आहारयमबंधा।।१०५।।
घम्मे तित्थं बंधदि वंसामेघाण पुण्णगो चेव।
छट्ठोत्ति य मणुवाऊ चरिमे मिच्छेव तिरियाऊ।।१०६।।
मिस्साविरदे उच्चं मणुवदुगं सत्तमे हवे बंधो।
मिच्छा सासणसम्मा मणुवदुगुच्चं ण बंधंति।।१०७।।

अर्थ – मार्गणाओं में व्युच्छित्ति आदि तीनों अवस्थाएँ गुणस्थान के समान जानना। परंतु विशेष यह है कि नरक में मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्यात्वादि ४ की ही व्युच्छित्ति होती है। उपरिम(शेष बची) १२, देव चतुष्क, देवायु एवं आहारकद्विक नरक में अबंध प्रकृतियाँ है।।१०५।।

अर्थ – प्रथम धर्मा नरक में तीर्थंकर प्रकृति (पर्याप्त एवं अपर्याप्त दोनों अवस्थाओं में) बंधती है। दूसरे वंशा एवं तीसरे मेघा नरक में तीर्थंकर प्रकृति पर्याप्त अवस्था में ही बंधती है। छठे नरक तक ही मनुष्यायु का बंध है, क्योंकि चरम(सातवें)नरक में मिथ्यात्व अवस्था में ही तिर्यंचायु का बंध होता है।।१०६।।

अर्थ – सातवें नरक में मिश्र एवं अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में ही उच्च गोत्र एवं मनुष्यद्विक का बंध होता है। मिथ्यात्व एवं सासादन सम्यक्त्व में मनुष्यद्विक एवं उच्च गोत्र का बंध नहीं होता।।१०७।।

मार्गणाओं में बंध, अबंध, व्युच्छित्ति

↓

** गुणस्थान के समान जानना, जो विशेषताऐं हैं वह आगे वर्णित हैं।*

** गुणस्थान का एक पर्यायवाची नाम ओघ है, अतः आगे गुणस्थान को ओघ शब्द से कहा है।*

गति मार्गणा

नरकगति मार्गणा

नरकगति में बंध के अयोग्य प्रकृतियाँ

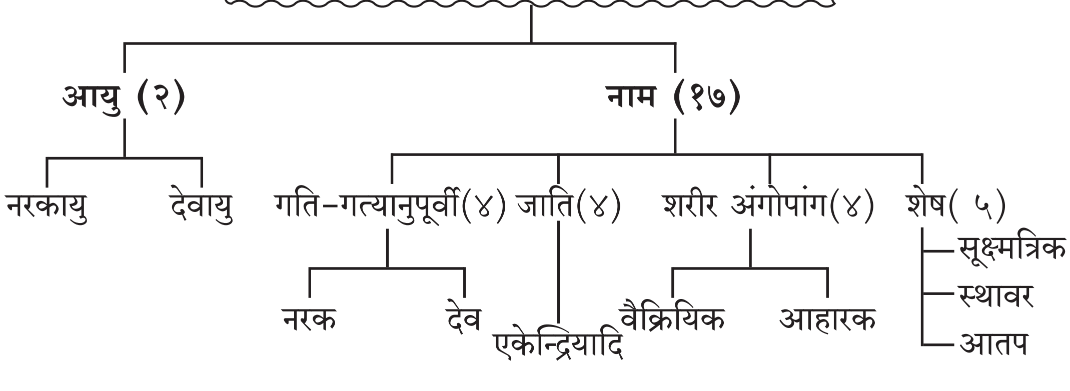

नरकगति में बंध के योग्य प्रकृतियाँ

कुल बंध योग्य प्रकृतियाँ-अबंध प्रकृतियाँ = १२०-१९ = १०१

सातों पृथ्वियों के पर्याप्त काल

पहली से तीसरी पृथ्वी

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१००	१	१=तीर्थंकर प्रकृति	४	मिथ्यात्व,नपुंसकवेद, हुंडक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन
२	९६	१+४=५		२५	ओघवत्
३	७०	५+२५+१=३१	१=मनुष्यायु	0	
४	७२	३१+0-२=२९	२=मनुष्यायु,तीर्थंकर	१०	

चौथी से छठी पृथ्वी

बंध योग्य प्रकृतियाँ १०० = १०१-१(तीर्थंकर प्रकृति)

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१००	0		४	पहली पृथ्वीवत्
२	९६	४		२५	ओघवत्
३	७०	४+२५+१=३०	१=मनुष्यायु	0	
४	७१	३0+0-१=२९	१=मनुष्यायु	१०	

सातवीं पृथ्वी

बंध योग्य प्रकृतियाँ ९९ = १०१-२(तीर्थंकर प्रकृति,मनुष्यायु)

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	९६	३	मनुष्यद्विक,उच्चगोत्र	५	तिर्यंचायु + पूर्वोक्त४
२	९१	३+५=८		२४	तिर्यंचायु बिना २४
३	७०	८+२४-३=२९	मनुष्यद्विक,उच्चगोत्र	0	
४	७०	२९		९	मनुष्यायु बिना ९

सातों पृथ्वियों के अपर्याप्त काल

बंध योग्य प्रकृतियाँ ९९ = १२०-२१(१९+२ आयु)

पहली पृथ्वी

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	९८	१	१=तीर्थंकर प्रकृति	२८	४+२४ (४=पर्याप्तवत्+ २४=तिर्यंचायु बिना ओघवत्)
४	७१	२८	१=तीर्थंकर प्रकृति	९	मनुष्यायु बिना ओघवत्

दूसरी से छठी पृथ्वी

बंध योग्य प्रकृतियाँ ९८ = ९९-१(तीर्थंकर प्रकृति)

गुणस्थान	बंध	अबंध	विवरण
१	९८	०	इन पृथ्वियों में अपर्याप्त काल में एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है

सांतवी पृथ्वी

बंध योग्य प्रकृतियाँ ९५ = ९९-४(तीर्थंकर प्रकृति,मनुष्यद्विक,उच्चगोत्र)

गुणस्थान	बंध	अबंध	विवरण
१	९५	०	इस पृथ्वी में अपर्याप्त काल में एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है

तिरिए ओघो तित्थाहारूणो अविरदे छिदि चउरो।
उवरिमछण्हं च छिदी सासणसम्मे हवे णियमा।।१०८।।
सामण्णतिरियपंचिंदियपुण्णगजोणिणीसु एमेव।
सुरणिरयाउ अपुण्णे वेगुव्वियछक्कमवि णत्थि।।१०९।।

अर्थ - तीर्थंकर प्रकृति एवं आहारकद्विक को छोड़कर शेष प्रकृतियों की व्युच्छित्ति तिर्यंच में ओघवत् है। तिर्यंच में तीर्थंकर प्रकृति एवं आहारकद्विक प्रकृतियों का बंध ही नहीं होता है। तिर्यंच में अविरत गुणस्थान में चार प्रकृतियों की ही बंध व्युच्छित्ति होती है। उपरिम(शेष) छह की व्युच्छित्ति सासादन सम्यक्त्व में ही नियम से हो जाती है।।१०८।।

अर्थ - सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्त तिर्यंच एवं योनिमति (स्त्रीवेदी) तिर्यंच में इसी प्रकार (उपरोक्तवत्) व्युच्छित्ति जानना। अपर्याप्त (लब्धि अपर्याप्त) तिर्यंच में देवायु, नरकायु तथा वैक्रियिक षट्क का बंध नहीं है।।१०९।।

तिर्यंचगति मार्गणा

सामान्यादि ४ प्रकार के तिर्यंच पर्याप्त

४ प्रकार के तिर्यंच

१.	सर्व भेदों का समुदायरूप सामान्य तिर्यंच
२.	पंचेन्द्रिय तिर्यंच
३.	पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त
४.	स्त्रीवेदरूप योनिमति तिर्यंच

बंध प्रकृतियाँ ११७ = १२०-३(तीर्थंकर प्रकृति,आहारकद्विक)

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	११७	०		१६	ओघवत्
२	१०१	१६		२५+६= ३१	६=मनुष्यायु, मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक, वज्रवृषभनाराच संहनन
३	६९	१६+३१+१=४८	१=देवायु	०	
४	७०	४८-१=४७	१=देवायु	४	अप्रत्याख्यानावरण ४
५	६६	४७+४=५१		४	प्रत्याख्यानावरण ४

सामान्यादि ४ प्रकार के निर्वृत्ति अपर्याप्त तिर्यंच

बंध प्रकृतियाँ १११ = ११७-६(४ आयु, नरकद्विक)

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०७	४	४= देवचतुष्क	१३	नरकायु, नरकद्विक बिना ओघवत्
२	९४	४+१३=१७		२४+५= २९	तिर्यंचायु बिना २४ + ५(मनुष्यायु बिना पर्याप्तवत्)
४	६९	१७+२९-४=४२	४= देवचतुष्क	०	अप्रत्याख्यानावरण ४

लब्धि अपर्याप्त तिर्यंच

बंध प्रकृतियाँ १०९ = ११७-८(नरकायु, देवायु, वैक्रियिक षट्क)

गुणस्थान	बंध	अबंध	विवरण
१	१०९	०	लब्धि अपर्याप्त तिर्यंच में एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है

तिरियेव णरे णवरि हु तित्थाहारं च अत्थि एमेव।
सामण्णपुण्णमणुसिणिणरे अपुण्णे अपुण्णेव।।११०।।

अर्थ – मनुष्य में तिर्यंच के समान व्युच्छित्ति है। इतनी विशेषता है कि मनुष्य में तीर्थंकर प्रकृति एवं आहारकद्विक का बंध होता है। सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य एवं मनुष्यनी में मनुष्य की तरह बंध व्युच्छित्ति है तथा अपर्याप्त मनुष्य में अपर्याप्त तिर्यंच की तरह बंध व्युच्छित्ति है।।११०।।

मनुष्यगति मार्गणा

सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, स्त्रीवेदरूप मनुष्यनी

बंध प्रकृतियाँ १२०(ओघवत्)

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	११७	३	ओघवत्	१६	ओघवत्
२	१०१	३+१६=१९	ओघवत्	३१	२५+६(तिर्यंचवत्)
३	६९	१९+३१+१=५१	१=देवायु	०	
४	७१	५१-२=४९	२=तीर्थंकर प्रकृति,देवायु	४	अप्रत्याख्यानावरण ४
५	६७	४९+४=५३		४	ओघवत्
६-१४	ओघवत्				

सामान्य मनुष्य,पर्याप्त मनुष्य,मनुष्यनी -निर्वृत्ति अपर्याप्त

बंध प्रकृतियाँ १११२ = १२०-८(४ आयु,नरकद्विक,आहारकद्विक)

यहाँ इतनी विशेषता है कि मनुष्यनी के चौथा एवं छठा गुणस्थान नहीं होता है

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०७	५	५=तीर्थंकर, देवचतुष्क	१३	नरकायु, नरकद्विक बिना ओघवत्
२	९४	५+१३=१८		२९	तिर्यंचायु बिना २४ + ५(मनुष्यायु बिना पर्याप्तवत्)
४	७०	१८+२९-५=४२	५=तीर्थंकर, देवचतुष्क	८	अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४
६	६२	४२+८=५०		६१	६+३४+५+१६=६१
१३	१	५०+६१=१११		१	साता वेदनीय

लब्धि अपर्याप्त मनुष्य

बंध प्रकृतियाँ

१०९ = १२०-११(नरकायु, देवायु, वैक्रियिक षट्क, तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक)

गुणस्थान	बंध	अबंध	विवरण
१	१०९	०	लब्धि अपर्याप्त मनुष्य में एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है

णिरयेव होदि देवे आईसाणोत्ति सत्त वाम छिदी।
सोलस चेव अबंधो भवणतिये णत्थि तित्थयरं।।१११।।
कप्पित्थीसु ण तित्थं सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं।
तिरियाऊ उज्जोवो अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ।।११२।।

अर्थ – देव में नरक के समान व्युच्छित्ति है। परंतु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्व गुणस्थान में दूसरे ईशान स्वर्ग तक सात प्रकृतियों की ही व्युच्छित्ति है। बची ९ तथा अन्य ७(देवचतुष्क, देवायु तथा आहारकद्विक) इस प्रकार कुल १६ प्रकृतियाँ देव में अबंध हैं। भवनत्रिक में तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं है।।१११।।

अर्थ – कल्पवासिनी स्त्रियों में तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं है। तथा सहस्रार स्वर्ग तक ही शतार चतुष्क (तिर्यंचायु, तिर्यंचद्विक, उद्योत) का बंध है। सहस्रार स्वर्ग के ऊपर इनका बंध नहीं है।।११२।।

देवगति मार्गणा

देवगति में बंध के अयोग्य प्रकृतियाँ

- आयु (२)
  - देवायु
  - नरकायु
- नाम (१४)
  - वैक्रियिक षट्क(६)
  - आहारकद्विक(२)
  - विकलेन्द्रिय(३)
  - सूक्ष्मत्रिक(३)

देवगति में बंध के योग्य प्रकृतियाँ

कुल बंध योग्य प्रकृतियाँ-अबंध प्रकृतियाँ = १२०-१६ = १०४

भवनत्रिक एवं कल्पवासी देवियाँ - पर्याप्त

बंध योग्य प्रकृतियाँ १०३ = १०४-१(तीर्थंकर प्रकृति)

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०३	०		७	मिथ्यात्व,नपुंसकवेद, हुंडक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन,एकेन्द्रिय, आतप,स्थावर
२	९६	७		२५	ओघवत्
३	७०	७+२५+१=३३	१=मनुष्यायु	०	
४	७१	३३-१=३२	१=मनुष्यायु	१०	

भवनत्रिक एवं कल्पवासी देवियाँ - निर्वृत्ति अपर्याप्त

बंध योग्य प्रकृतियाँ १०१=१०३-२(मनुष्यायु, तिर्यंचायु)

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०१	०		७	पर्याप्तवत्
२	९४	७		२४	तिर्यंचायु बिना

सौधर्म-ईशान - पर्याप्त

बंध योग्य प्रकृतियाँ १०४

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०३	१	१=तीर्थंकर प्रकृति	७	भवनत्रिकवत्
२	९६	१+७=८		२५	ओघवत्
३	७०	८+२५+१=३४	१=मनुष्यायु	०	
४	७२	३४-२=३२	२=तीर्थंकर,मनुष्यायु	१०	

सौधर्म-ईशान - अपर्याप्त

बंध योग्य प्रकृतियाँ १०२ = १०४-२(मनुष्यायु,तिर्यंचायु)

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०१	१	१=तीर्थंकर प्रकृति	७	पर्याप्तवत्
२	९४	८		२४	तिर्यंचायु बिना
४	७१	३२-१=३१	१=तीर्थंकर प्रकृति	९	मनुष्यायु बिना

३रे सानतकुमार स्वर्ग से १२वें सहस्रार स्वर्ग तक -पर्याप्त

बंध योग्य प्रकृतियाँ १०१ = १०४-३(एकेन्द्रिय,आतप,स्थावर)

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१००	१	१=तीर्थंकर प्रकृति	४	मिथ्यात्व,नपुंसकवेद, हुंडक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन(नरकवत्)
२	९६	५		२५	ओघवत्
३	७०	३०+१=३१	१=मनुष्यायु	०	
४	७२	३१-२=२९	२=तीर्थंकर,मनुष्यायु	१०	

सानतकुमार स्वर्ग से सहस्रार स्वर्ग तक - अपर्याप्त

बंध योग्य प्रकृतियाँ ९९ = १०१-२(मनुष्यायु,तिर्यंचायु)

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	९८	१	१=तीर्थंकर प्रकृति	४	पर्याप्तवत्
२	९४	५		२४	तिर्यंचायु बिना
४	७१	५+२४-१=२८	१=तीर्थंकर प्रकृति	९	मनुष्यायु बिना

१३वें आनत स्वर्ग से ९वें ग्रैवेयक तक - पर्याप्त

बंध योग्य प्रकृतियाँ ९७ = १०१-४(तिर्यंचायु,तिर्यंचद्विक,उद्योत)

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	९६	१	१=तीर्थंकर प्रकृति	४	उपरोक्तवत्
२	९२	५		२१	२५-४(शतार चतुष्क)
३	७०	२६+१=२७	१=मनुष्यायु	०	
४	७२	२७-२=२५	२=तीर्थंकर,मनुष्यायु	१०	ओघवत्

१३वें आनत स्वर्ग से ९वें ग्रैवेयक तक - अपर्याप्त

बंध योग्य प्रकृतियाँ ९६ = ९७-१(मनुष्यायु)

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	९५	१	१=तीर्थंकर प्रकृति	४	उपरोक्तवत्
२	९१	५		२१	पर्याप्तवत्
४	७१	२६-१=२५	१=तीर्थंकर प्रकृति	९	मनुष्यायु बिना

नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर

	बंध	अबंध	व्युच्छित्ति	विवरण	
पर्याप्त	७२	०	१०	ग्रैवेयक के चतुर्थ गुणस्थान के	पर्याप्तवत्
अपर्याप्त	७१	०	९		अपर्याप्तवत्
यहाँ एक चतुर्थ गुणस्थान ही है					

पुण्णिदरं विगिविगले तत्थुप्पण्णो हु सासणो देहे।
पज्जतिं ण वि पावदि इदि णरतिरियाउगं णत्थि।।११३।।

अर्थ – एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिय में अपर्याप्त की तरह बंध है। तथा इनमें मिथ्यात्व एवं सासादन ये दो ही गुणस्थान हैं। तथा इनमें मिथ्यात्व गुणस्थान में ही तिर्यंचायु एवं मनुष्यायु की व्युच्छित्ति हो जाती है। इसका हेतु यह है कि सासादन का वहाँ काल थोड़ा और निर्वृत्ति अपर्याप्त का काल बहुत होने से सासादन गुणस्थान के रहते हुये शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं करता। यहाँ सासादन में तिर्यंचायु,मनुष्यायु का बंध नहीं होता, इस कारण मिथ्यात्व में ही व्युच्छित्ति कही है।।११३।।

इन्द्रिय मार्गणा

एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक

लब्धि अपर्याप्तवत् जानना

बंध योग्य १०९=१२०-११(नरकायु,देवायु,वैक्रियिक षट्क,तीर्थंकर,आहारकद्विक)

गुणस्थान	बंध	अबंध	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०९	०	१५=१६-३+२	१६-३(नरकायु, नरकद्विक) +२(मनुष्यायु, तिर्यंचायु)
२	९४	१५	२९	पूर्वोक्त निर्वृत्ति अपर्याप्त तिर्यंचवत्

पंचेंदियेसु ओघं एयक्खे वा वणप्फदीयंते।
मणुवदुगं मणुवाऊ उच्चं ण हि तेउवाउम्मि।।११४।।

अर्थ – पंचेन्द्रिय में ओघ के समान है। पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय पर्यंत में एकेन्द्रिय की तरह है। इतनी विशेषता हैं कि अग्निकायिकों एवं वायुकायिकों में मनुष्यद्विक, मनुष्यायु तथा उच्च गोत्र का बंध नहीं है।।११४।।

पंचेन्द्रिय - पर्याप्त

ओघवत्

पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त

बंध योग्य

मनुष्य निर्वृत्ति अपर्याप्तवत् ११२ = १२०-८(४ आयु,नरकद्विक,आहारकद्विक)

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०७	५	५=तीर्थंकर,देवचतुष्क	१३	नरकायु,नरकद्विक बिना
२	९४	१८		२४	तिर्यंचायु बिना
४	७५	३७	५=तीर्थंकर प्रकृति,देवचतुष्क	१३	मनुष्यायु बिना ९ + प्रत्याख्यानावरण ४
६	६२	५०		६१	निर्वृत्ति अपर्याप्तमनुष्यवत्
१३	१	१११		१	साता वेदनीय

पंचेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त

* मनुष्य लब्धि अपर्याप्तवत् जानना
* गुणस्थान एकमात्र मिथ्यात्व ही

बंध योग्य १०९

काय मार्गणा

पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक

एकेन्द्रियवत् सारी रचना

अग्निकायिक, वायुकायिक

बंध योग्य १०५=एकेन्द्रियों के बंध योग्य १०९-४(मनुष्यायु,मनुष्यद्विक,उच्च गोत्र)

* गुणस्थान एकमात्र मिथ्यात्व ही

ण हि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे।
ओघं तस मणवयणे ओराले मणुवगइभंगो।।११५।।

अर्थ - तेजद्विक (तेजसकायिक एवं वायुकायिक) में, लब्धि अपर्याप्त में, साधारण में एवं सूक्ष्मों में सासादन गुणस्थान नहीं होता। एकमात्र मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता हैं। त्रसकायिक में तथा मनोयोग एवं वचनयोग में ओघवत् हैं। औदारिक काययोग में मनुष्यगति की तरह हैं।।११५।।

त्रसकायिक

↓ ओघवत्

त्रसकायिक निर्वृत्ति अपर्याप्त

↓ पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्तवत्

योग मार्गणा

मनोयोग — **वचनयोग**

* ओघवत्
* सत्य-अनुभय मनोयोग-वचनयोग में गुणस्थान १३
* असत्य-उभय मनोयोग-वचनयोग में गुणस्थान १२

औदारिक काययोग

* मनुष्यगतिवत्
* गुणस्थान १३

ओराले वा मिस्से ण सुरणिरयाउहारणिरयदुगं।
मिच्छदुगे देवचओ तित्थं ण हि अविरदे अत्थि।।११६।।
पण्णारसमुनतीसं मिच्छदुगे अविरदे छिदी चउरो।
उवरिमपणसट्ठीवि य एक्कं सादं सजोगिम्हि।।११७।।

अर्थ - औदारिक मिश्र काययोग में औदारिक काययोग के समान है। इतनी विशेषता है कि देवायु, नरकायु, आहारकद्विक एवं नरकद्विक का औदारिक मिश्र में बंध नहीं होता है तथा उसमें भी मिथ्यात्व एवं सासादन गुणस्थानों में देवचतुष्क तथा तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं होता है। इनका बंध अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में होता है।।११६।।

अर्थ - औदारिक मिश्र काययोग में मिथ्यात्व में १५ प्रकृतियों की एवं सासादन में २९ प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति होती है। तथा अविरत गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली ४ तथा ऊपर के गुणस्थानों की ६५ - इस तरह कुल ६९ प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति होती है। तथा सयोग केवली गुणस्थान में एक साता वेदनीय की व्युच्छित्ति होती है।।११७।।

औदारिक मिश्र काययोग

बंध योग्य ११४ = १२०-६(नरकायु,देवायु,नरकद्विक,आहारकद्विक)

निर्वृत्ति अपर्याप्त

- ✼ मनुष्य निर्वृत्ति अपर्याप्तवत्
- ✼ बंधयोग्य ११२
- ✼ गुणस्थान १, २, ४, १३

लब्धि अपर्याप्त

- ✼ मनुष्य लब्धि अपर्याप्तवत्
- ✼ बंधयोग्य १०९
- ✼ गुणस्थान १

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०९	५	५=तीर्थंकर, देवचतुष्क	१३+२=१५	१३(नरकायु, नरकद्विक बिना ओघवत्)+२ (तिर्यंचायु,मनुष्यायु)
२	९४	५+१५=२०		२९	मनुष्य निर्वृत्ति अपर्याप्तवत्
४	७०	२०+२९-५=४४	५=तीर्थंकर, देवचतुष्क	४+६५=६९	४+६५(४+६+०+३४+५+१६)
१३	१	४४+६९=११३		१	साता वेदनीय

देवे वा वेगुव्वे मिस्से णरतिरियआउगं णत्थि।
छट्ठगुणंवाहारे तम्मिस्से णत्थि देवाऊ।।११८।।

अर्थ – वैक्रियिक काययोग में देवगति के समान हैं। वैक्रियिक मिश्र काययोग में मनुष्य एवं तिर्यंचायु का बंध नहीं है। आहारक काययोग में छठे गुणस्थान के समान है। तथा आहारक मिश्र में देवायु का बंध नहीं है।।११८।।

वैक्रियिक काययोग

↓ सौधर्म ईशानवत्

वैक्रियिकमिश्र काययोग

↓ सौधर्म ईशान अपर्याप्तवत्

आहारक काययोग

↓

प्रमत्त गुणस्थानवत्

आहारक मिश्रकाययोग

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति
६	६२	५८	प्रमत्तगुणस्थानवत् परंतु देवायु का बंध नहीं होता	६

कम्मे उरालमिस्सं वा णाउदुगंपि णव छिदी अयदे।
वेदादाहारोत्ति य सगुणट्ठाणाणमोघं तु।।११९।।

अर्थ - कार्मण काययोग में औदारिक मिश्र के समान हैं। इतनी विशेषता है कि विग्रहगति में आयु का बंध न होने से मनुष्यायु एवं तिर्यंचायु का बंध कार्मण काययोग में नहीं होता तथा अविरत गुणस्थान में ९ प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति होती है। वेद मार्गणा से आहारक मार्गणा तक अपने-अपने गुणस्थान अनुसार ओघवत् जानना।।११९।।

कार्मण काययोग

बंध योग्य ११२ = औदारिकमिश्रकाययोग की ११४-२(मनुष्यायु, तिर्यंचायु)

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०७	५	५=तीर्थंकर, देवचतुष्क	१३	१३(नरकायु,नरकद्विक बिना ओघवत्)
२	९४	१८		२४	तिर्यंचायु बिना
४	७५	४२-५=३७	५=तीर्थंकर, देवचतुष्क	९+६५= ७४	मनुष्यायु बिना ९ +६५(औदारिकमिश्रवत्)
१३	१	१११		१	साता वेदनीय

वेद मार्गणा

↓

✻ बंध योग्य प्रकृतियाँ १२०

✻ स्त्री वेदी और नपुंसक वेदी के तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक का उदय तो नहीं होता, पुरुष वेदी के होता है, परंतु बंध होने मे कोई विरोध नहीं है। तीनों वेद वाले के होता है।

✻ गुणस्थान १ से ९

✻ ८वें गुणस्थान तक ओघवत्

स्त्री, नपुंसक और पुरुष वेद - पर्याप्त

वेद	गुणस्थान	समय	बंध	अबंध	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
स्त्री और नपुंसक	९	प्रथम भाग का द्विचरम समय	२२	९८	१	पुरुषवेद
	९	प्रथम भाग का चरम समय	२१	९९	०	
पुरुष	९	प्रथम भाग का चरम समय	२२	९८	१	पुरुषवेद

स्त्री वेद - निर्वृत्ति अपर्याप्त

बंध योग्य १०७ = १२०-१३(४ आयु,तीर्थंकर प्रकृति,आहारकद्विक,वैक्रियिक षट्क)

गुणस्थान	बंध	अबंध	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०७	०	१३	नरकायु,नरकद्विक बिना
२	९४	१३	२४	तिर्यंचायु बिना

नपुंसक वेद - निर्वृत्ति अपर्याप्त

बंध योग्य १०८ = १०७+१ *(नारक असंयत की अपेक्षा तीर्थंकर प्रकृति अधिक है)*

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०७	१	तीर्थंकर प्रकृति	१३	स्त्री वेदवत्
२	९४	१४		२४	
४	७१	३७	तीर्थंकर प्रकृति	९	मनुष्यायु बिना

पुरुष वेद - निर्वृत्ति अपर्याप्त

बंध योग्य ११२ = १२०-८ (४ आयु,नरकद्विक,आहारकद्विक)

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध/अबंध विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०७	५	तीर्थंकर, देवचतुष्क	१३	नपुंसक वेदवत्
२	९४	१८		२४	
४	७५	३७	तीर्थंकर, देवचतुष्क	९	

कषाय मार्गणा → समस्त रचना ओघवत्

ज्ञान मार्गणा

कुमति,कुश्रुत,विभंग

बंध योग्य ११७ =१२०-३

(तीर्थंकर, आहारकद्विक)

गुणस्थान	बंध	अबंध	व्युच्छित्ति
१	११७	०	१६
२	१०१	१६	२५

मति,श्रुत,अवधि

७९ =१२०-४१(१६+२५)

(मिथ्यात्व,सासादन व्युच्छित्ति)

गुणस्थान	बंध	अबंध	व्युच्छित्ति
४	७७	२	१०
५	६७	१२	४
६	६३	१६	६
७	५९	२०	१
८	५८	२१	३६
९	२२	५७	५
१०	१७	६२	१६
११	१	७८	०
१२	१	७८	०

मन:पर्यय

६५ = १२०-५५*

(१६+२५+०+१०+४)

(१ से ५ गुणस्थान की व्युच्छित्ति)

गुणस्थान	बंध	अबंध	व्युच्छित्ति
६	६३	२	६
७	५९	६	१
८	५८	७	३६
९	२२	४३	५
१०	१७	४८	१६
११	१	६४	०
१२	१	६४	०

** मन:पर्यय ज्ञानियों के आहारकद्विक का उदय होने में विरोध है, बंध में नहीं*

केवलज्ञान

= १(साता वेदनीय)

= १२०-११९

गुणस्थान	बंध	अबंध	व्युच्छित्ति
१३	१	०	१
१४	०	१	०

संयम मार्गणा

असंयम — बंध योग्य = ११८ = १२०-२ (आहारकद्विक)

देशसंयम — देशसंयम गुणस्थानवत्

सामायिक, छेदोपस्थापना — = ६५ = ६३(६ गुणस्थान की) +२(आहारकद्विक)

परिहार विशुद्धि — =६५ = ६३ + २

सूक्ष्म साम्पराय — सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानवत्

यथाख्यात — = १ (साता वेदनीय)

गुणस्थान	१	२	३	४	५	६	७	८	९	६	७	१०	११	१२	१३	१४
बंध	गुणस्थानवत्				६७	गुणस्थानवत्				६३	५९	१७	गुणस्थानवत			
अबंध	१	१७	४४	४१	५३	२	६	७	४३	२	६	१०३	०	०	०	१
व्युच्छित्ति	गुणस्थानवत्				४	गुणस्थानवत्				६	१	१६	गुणस्थानवत			

** परिहार विशुद्धि संयम में आहारद्विक का उदय होने में विरोध है, बंध में नहीं*

दर्शन मार्गणा

	चक्षु,अचक्षु दर्शन	अवधिदर्शन	केवलदर्शन
गुणस्थान	१–१२	४–१२	१३–१४
बंध रचना	गुणस्थानवत्	अवधिज्ञानवत्	केवलज्ञानवत्

णवरि य सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण।
मिच्छस्संतिम णवयं बारं ण हि तेउपम्मेसु।।१२०।।
सुक्के सदरचउक्कं वामंतिमबारसं च ण व अत्थि।
कम्मेव अणाहारे बंधस्संतो अणंतो य।।१२१।। जुम्मं।

अर्थ – विशेषता यह है कि सभी उपशम सम्यक्त्व (प्रथमोपशम एवं द्वितीयोपशम सम्यक्त्व) में मनुष्य एवं देवायु का नियम से बंध नहीं होता हैं। तेज (पीत) लेश्या में मिथ्यात्व गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली १६ में से अंत की नौ प्रकृतियों का तथा पद्म लेश्या में अंत की बारह प्रकृतियों का बंध नहीं होता है। शुक्ल लेश्या में पद्म लेश्या में अंत की कही १२ तथा ४ (शतार चतुष्क) इस तरह कुल १६ प्रकृतियों का बंध नहीं होता है। आहारक मार्गणा में कार्मण काययोग की तरह बंधादि जानना।।१२०-१२१।।

लेश्या मार्गणा

	कृष्ण,नील, कापोत				पीत(तेजो लेश्या)							पद्म लेश्या							शुक्ल लेश्या												
बंध योग्य प्रकृतियाँ	११८ = १२०-२ (आहारकद्विक)				१११ = १२०-९ (सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रय, नरकद्विक, नरकायु)							१०८ = १२०-९-३ (आतप,स्थावर,एकेन्द्रिय)							१०४ = १२०-९-३-४ (शतार चतुष्क)												
गुणस्थान	१	२	३	४	१	२	३	४	५	६	७	१	२	३	४	५	६	७	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
बंध	गुणस्थानवत्				१०८	शेष गुणस्थानवत्						१०५	शेष गुणस्थानवत्						१०१	९७	शेष गुणस्थानवत्										
अबंध	१	१७	४४	४१	३	१०	३७	३४	४४	४८	५२	३	७	३४	३१	४१	४५	४९	३	७	३०	२७	३७	४१	४५	४६	८२	८७	१०३		
व्युच्छित्ति	गुणस्थानवत्				७	शेष गुणस्थानवत्						४	शेष गुणस्थानवत्						४	२१	शेष गुणस्थानवत्										

भव्य मार्गणा अगले पृष्ठ पर है

सम्यक्त्व मार्गणा

- उपशम सम्यक्त्व
  - प्रथमोपशम सम्यक्त्व
  - द्वितीयोपशम सम्यक्त्व
- क्षयोपशम सम्यक्त्व
- क्षायिक सम्यक्त्व
- मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र → स्व-स्व गुणस्थानवत्

बंध योग्य प्रकृतियाँ	= ७७ = १२०-१६-२५ -२(देवायु, मनुष्यायु)[4]				= ७७ = १२०-१६-२५-२					= ७९ = १२०-१६-२५				= ७९ = १२०-४१						
गुणस्थान	४	५	६	७	४-७[3]	८	९	१०	११	४	५	६	७	४-७	८	९	१०	११-१३	१४	सिद्ध
बंध	७५[1]	६६	६२	५८	प्रथमो-पशम सम्यक्त्व वत्	५८	२२	१७	१	गुणस्थानवत्				क्षयो-पशम वत्	गुणस्थानवत्					
अबंध	२	११	१५	१९		१९	५५	६०	७६	२	१२	१६	२०		२१	५७	६२	७८	७९	–
अबंध विवरण	आहार-कद्विक			आहार-कद्विक[2]																
व्युच्छित्ति	९	४	६	0		३६	५	१६	0	गुणस्थानवत्					गुणस्थानवत्					

** १ प्रथमोपशम सम्यक्त्व में कई आचार्य तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं मानते है, पर यहाँ वह विवक्षा नहीं है*

** २ प्रथमोपशम सम्यक्त्व में आहारद्विक का उदय होने में विरोध है, बंध में नहीं*

** ३ द्वितीयोपशम सम्यक्त्व ४ से ७ गुणस्थान में उतरते समय ही होता है*

** ४ प्रथमोपशम सम्यक्त्व में तथा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में श्रेणी चढ़ते समय अपूर्वकरण के पहले भाग में मरण नहीं, होता अन्यत्र मरण हो सकता है*

भव्य मार्गणा

	भव्य	अभव्य
बंध योग्य प्रकृतियाँ	१२०	११७=१२०- ३(आहारकद्विक,तीर्थंकर प्रकृति)
गुणस्थान	१४	१
रचना	गुणस्थानवत्	

संज्ञी मार्गणा

	संज्ञी	असंज्ञी
बंध योग्य प्रकृतियाँ	१२०	११७ = १२०- ३(आहारकद्विक,तीर्थंकर प्रकृति)
गुणस्थान	१-१२	१,२
रचना	गुणस्थानवत्	

गुणस्थान	बंध	अबंध	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	११७	०	१९	१६+३ (नरकायु छोड़कर बाकी तीन आयु)*
२	९८	१९	२९	विकलेन्द्रियवत्

** सासादन में कार्मण एवं मिश्र योग होने से वहाँ ४ आयु का बंध नहीं है*

आहार मार्गणा

	आहारक	अनाहारक
बंध योग्य प्रकृतियाँ	१२०	११२ = १२०- ८(कार्मण काययोगवत्)
गुणस्थान	१-१३	१,२,४,१३,१४
रचना	गुणस्थानवत्	कार्मण काययोगवत्

सादिअणादी धुव अद्धुवो य बंधो दु कम्मछक्कस्स।
तदियो सादियसेसो अणादिधुवसेसगो आऊ।।१२२।।
सादी अबंधबंधे सेढि अणारूढगे अणादी हु।
अभव्वसिद्धम्मि धुवो भवसिद्धे अद्धुवो बंधो।।१२३।।

अर्थ – छह कर्मों का प्रकृतिबंध सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुवरूप; चारों प्रकार का होता है। परंतु तीसरे वेदनीय कर्म का बंध तीन प्रकार का होता है, सादि बंध नहीं होता और आयुकर्म का अनादि तथा ध्रुव बंध के सिवाय दो प्रकार का अर्थात् सादि और अध्रुव बंध ही होता है।।१२२।।

अर्थ – जिस कर्म के बंध का अभाव होकर पुनः बंधे, वह सादि बंध है। जो उपशम अथवा क्षपक श्रेणी पर आरुढ़ नहीं हुआ अर्थात् जिसके बंध का अभाव नहीं हुआ वह अनादिबंध है। अभव्यसिद्ध जीव के ध्रुव बंध होता है– जिसका न आदि है न अंत है। भव्य जीवों के अध्रुव बंध होता है जिसका कि अंत आ जावे।।१२३।।

मूल प्रकृतियों में सादि अनादि ४ प्रकार के बंध

	सादि	अनादि	ध्रुव	अध्रुव
अर्थ	जिस कर्म के बंध का अभाव होकर पुनः बंध शुरू हो जाये	जिस गुणस्थान से जिस कर्म के बंध की व्युच्छित्ति होती है उस गुणस्थान के अनंतर ऊपर के गुणस्थान को श्रेणी कहते है। उस श्रेणी में जो जीव नहीं पहुँचा उसका बंध	निरंतर बंधती प्रकृ–तियों का बंध	बंध का अभाव और सद्भाव दोनों पाया जाता है
उदाहरण	११वें गुणस्थान से उतरे जीव को ज्ञानावरण का बंध	११वें गुणस्थान को नहीं प्राप्त हुये जीव को ज्ञाना–वरण का बंध	अभव्य जीव	भव्य जीव
ज्ञानावरण,दर्शनावरण, मोहनीय,नाम,गोत्र,अंतराय	हैं	हैं	हैं	हैं
वेदनीय	नहीं[1]	हैं	है	हैं
आयु	हैं	नहीं[2]	नहीं[2]	हैं

१. श्रेणी के चढ़ने–उतरने में साता की उपेक्षा वेदनीय का निरंतर बंध है, इसलिए सादिपना नहीं पाया जाता

२. एक पर्याय (भव) में एक बार, दो बार; ऐसे उत्कृष्टपने से आठ बार आयु बंधती है इसलिये सादिबंध है, अंतर्मुहूर्त तक ही बंधती है इसलिये अध्रुव है

घादितिमिच्छकसाया भयतेजगुरुदुगणिमिणवण्णचओ।
सत्तेत्तालधुवाणं चदुधा सेसायणं तु दुधा।।१२४।।

अर्थ – मोहनीय के बिना तीन घातिया कर्मों की १९ प्रकृतियाँ तथा मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय द्विक, तैजसद्विक एवं अगुरुलघुद्विक तथा निर्माण एवं वर्ण चतुष्क – इस प्रकार से कुल ४७ प्रकृतियाँ ध्रुव बंधी है। इनका चारों प्रकार का (अनादि, सादि, ध्रुव, अध्रुव) बंध होता है। शेष ७३ प्रकृतियाँ अध्रुव बंधी है– उनका दो प्रकार का ही (सादि एवं अध्रुव) बंध होता है।।१२४।।

उत्तर प्रकृतियों में सादि अनादि ४ प्रकार के बंध

	सादि	अनादि	ध्रुव	अध्रुव
४७ प्रकृतियाँ	हैं	हैं	हैं	हैं
७३ प्रकृतियाँ	हैं	नहीं	नहीं	हैं

४७ प्रकृतियाँ (ध्रुव बंधी)

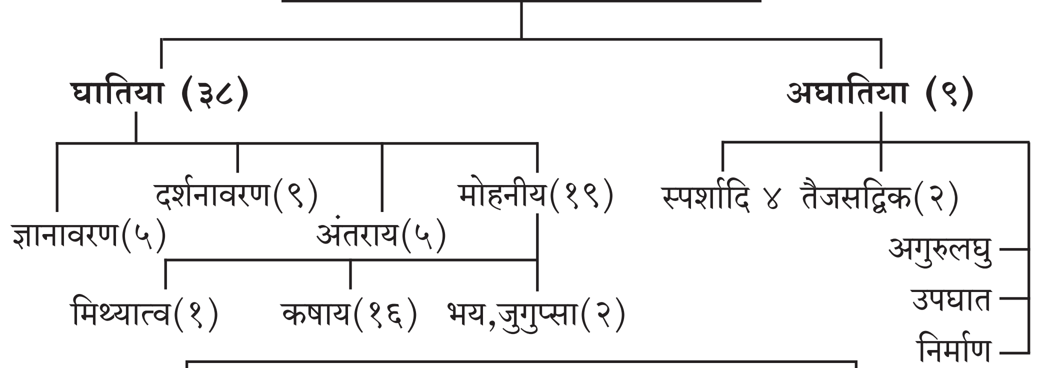

७३ प्रकृतियाँ (सादि और अध्रुव बंध)

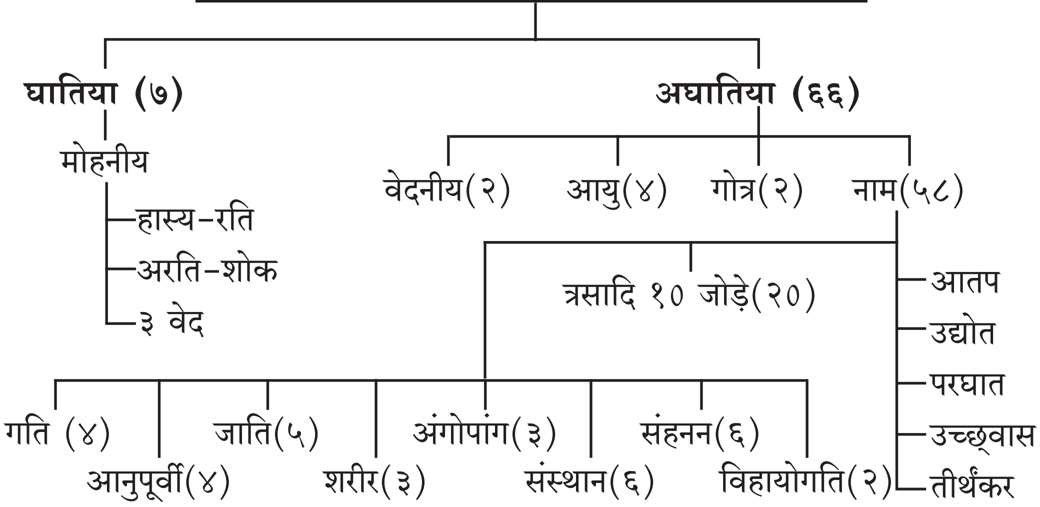

सेसे तित्थाहारं परघादचउक्क सव्व आऊणि।
अप्पडिवक्खा सेसा सप्पडिवक्खा हु बासट्ठी।।१२५।।
अवरो भिण्णमुहुत्तो तित्थाहाराण सव्वआऊणं।
समओ छावट्ठीणं बंधो तम्हा दुधा सेसा।।१२६।।

अर्थ – ४७ ध्रुव प्रकृतियों से बाकी बची हुई ७३ प्रकृतियों मेंसे तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक, परघात चतुष्क तथा सर्व आयु (४) – इस प्रकार ये ११ प्रकृतियाँ अप्रतिपक्षी हैं। शेष बची ६२ प्रकृतियाँ सप्रतिपक्षी हैं।। १२५।।

अर्थ – तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक एवं सर्व आयु (४) – इन ७ प्रकृतियों के निरंतर बंध होने का जघन्य काल अंतर्मुहूर्त हैं। शेष ६६ प्रकृतियों के निरंतर बंध का जघन्य काल एक समय है। इसीलिये इन सब ७३ प्रकृतियों के सादि एवं अध्रुव – ये दो बंध ही कहे गये हैं।।१२६।।

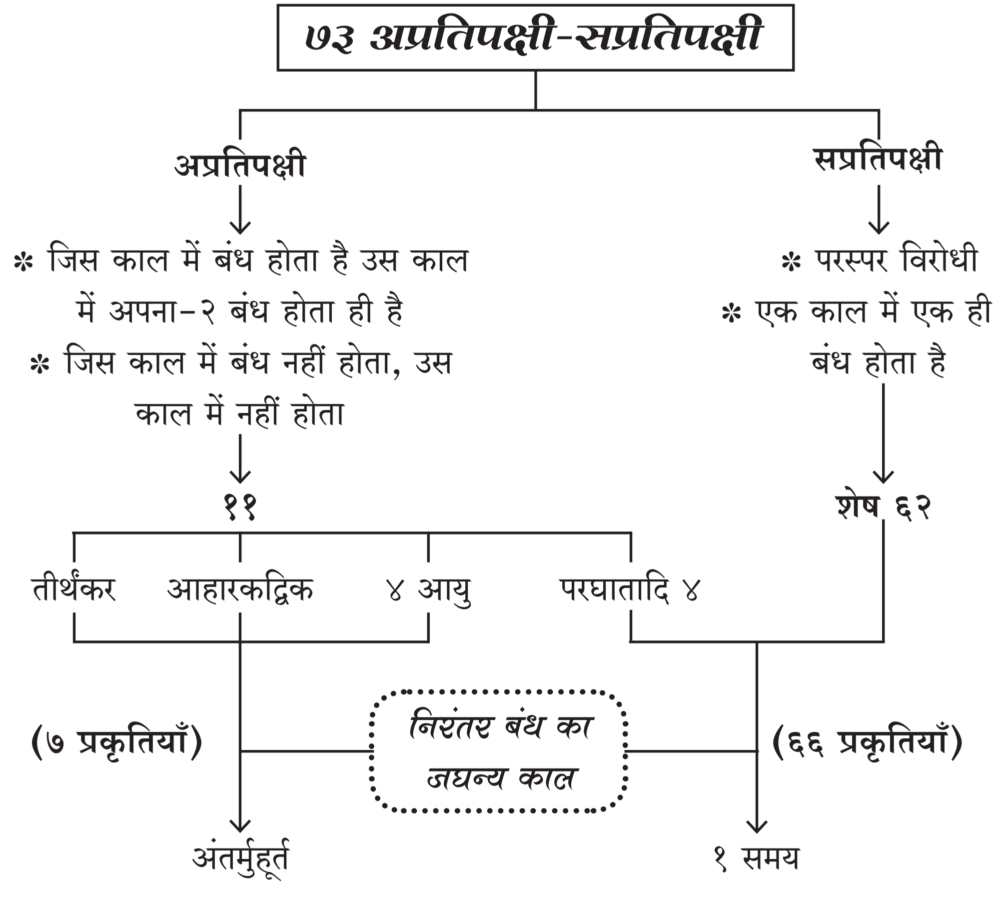

तीसं कोडाकोडी तिघादितदियेसु वीस णामदुगे।
सत्तरि मोहे सुद्धं उवही आउस्स तेतीसं।।१२७।।

अर्थ – तीन घातिया कर्मों (अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय) का और तीसरे वेदनीय कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। नाम और गोत्र का उत्कृष्ट स्थितिबंध बीस कोड़ाकोड़ी सागर है। मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है और आयु कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध शुद्ध तैंतीस सागर है।।१२७।।

स्थिति बंध

मूल कर्म उत्कृष्ट-जघन्य स्थितिबंध

मूल कर्म	उत्कृष्ट स्थितिबंध	जघन्य स्थितिबंध
ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय	३० कोड़ाकोड़ी सागर	अंतर्मुहूर्त
वेदनीय		१२ मुहूर्त
नाम, गोत्र	२० कोड़ाकोड़ी सागर	८ मुहूर्त
मोहनीय	७० कोड़ाकोड़ी सागर	अंतर्मुहूर्त
आयु	३३ सागर	

दुक्खतिघादीणोघं सादिच्छीमणुदुगे तदद्धं तु।
सत्तरि दंसणमोहे चरित्तमोहे य चत्तालं।।१२८।।
संठाणसंहदीणं चरिमस्सोघं दुहीणमादित्ति।
अट्ठरसकोडकोडी वियलाणं सुहुमतिण्हं च।।१२९।।
अरदीसोगे संढे तिरिक्खभयणिरयतेजुरालदुगे।
वेगुव्वादावदुगे णीचे तसवण्णअगुरुतिचउक्के।।१३०।।
इगिपंचेंदियथावरणिमिणासग्गमण अथिरछक्काणं।
वीसं कोडाकोडीसागरणामाणमुक्कस्सं।।१३१।।
हस्सरदिउच्चपुरिसे थिरछक्के सत्थगमणदेवदुगे।
तस्सद्धमंतकोडाकोडी आहारतित्थयरे।।१३२।।
सुरणिरयाऊणोघं णरतिरियाऊण तिण्णि पल्लाणि।
उक्कस्सट्ठिदिबंधो सण्णीपज्जत्तगे जोगे।।१३३।।कुलयं।

अर्थ – असाता वेदनीय तथा तीन घातिया कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध ओघ के समान है (३० कोड़ाकोड़ी सागर)। साता वेदनीय, स्त्री वेद एवं मनुष्यद्विक का उससे आधा अर्थात् १५ कोड़ाकोड़ी

सागर है। दर्शनमोह अर्थात् मिथ्यात्व का ७० कोड़ाकोड़ी सागर है। चारित्र मोह अर्थात् १६ कषायों का ४० कोड़ाकोड़ी सागर है।।१२८।।

अर्थ – चरम (हुंडक) संस्थान एवं (असंप्राप्तासृपाटिका) संहनन का ओघ के समान (२० कोड़ाकोड़ी सागर) है। अवशेष में २-२ कोड़ाकोड़ी सागर घटता हुआ हैं। विकलत्रिक एवं सूक्ष्मत्रिक का १८ कोड़ाकोड़ी सागर है।।१२९।।

अर्थ – अरति, शोक, नपुंसकवेद तथा तिर्यंच, भय, नरक, तैजस, औदारिक, वैक्रियक, आतप – इन ७ द्विकों का; नीच गोत्र एवं त्रस, वर्ण, अगुरुलघु – इन ३ चतुष्क का; एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, स्थावर, निर्माण, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर षट्क – इन सब प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध २० कोड़ाकोड़ी सागर है।।१३०-१३१।।

अर्थ – हास्य, रति, उच्च गोत्र, पुरुषवेद, स्थिर षटक, प्रशस्त विहायोगति, देवद्विक का उससे आधा (अर्थात् १० कोड़ाकोड़ी सागर) है। आहारकद्विक एवं तीर्थंकर प्रकृति का अंतः कोड़ाकोड़ी सागर है।।१३२।।

अर्थ – देवायु एवं नरकायु का ओघ के सामान (३३ सागर) है। मनुष्यायु एवं तिर्यंचायु का ३ पल्य है। यह सभी उत्कृष्ट स्थितिबंध संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त योग्य जीव के ही होता है।।१३३।।

उत्तर प्रकृति उत्कृष्ट स्थितिबंध

उत्तर प्रकृति	संख्या	उत्कृष्ट स्थिति (कोड़ाकोड़ी सागर में)
✻ ज्ञानावरण(५) ✻ दर्शनावरण(९) ✻ अंतराय(५) ✻ असाता वेदनीय(१)	२०	३०
✻ साता वेदनीय(१) ✻ स्त्री वेद(१) ✻ मनुष्यद्विक(२)	४	१५
✻ दर्शनमोह (मिथ्यात्व)	१	७०
✻ चारित्र मोह (१६ कषाय)	१६	४०
✻ अरति,शोक,नपुंसकवेद,भयद्विक(५) ✻ नरकद्विक,तिर्यंचद्विक,एकेन्द्रिय,पंचेन्द्रिय,औदारिकद्विक, वैक्रियकद्विक,तैजसद्विक,हुंडक संस्थान,असंप्राप्तासृपाटिका संहनन,वर्णचतुष्क,निर्माण,अगुरुलघुचतुष्क,आतपद्विक,अप्रशस्त विहायोगति,त्रसचतुष्क,स्थावर,अस्थिर षट्क(३७) ✻ नीच गोत्र(१)	४३	२०
✻ वामन संस्थान,कीलित संहनन,विकलत्रिक,सूक्ष्मत्रिक	८	१८
✻ कुब्जक संस्थान,अर्द्धनाराच संहनन	२	१६

❋ स्वाति संस्थान,नाराच संहनन	२	१४
❋ न्यग्रोध परिमंडल संस्थान,वज्रनाराच संहनन	२	१२
❋ हास्य,रति,पुरुषवेद(३) ❋ देवद्विक,समचतुरस्र संस्थान,वज्रवृषभनाराच संहनन, स्थिर षट्क,प्रशस्त विहायोगति(११) ❋ उच्च गोत्र(१)	१५	१०
❋ आहारकद्विक,तीर्थंकर प्रकृति	३	अंतः
❋ देवायु,नरकायु	२	३३ सागर मात्र
❋ मनुष्यायु,तिर्यंचायु	२	३ पल्य मात्र
❋ उत्कृष्ट स्थितिबंध संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त योग्य जीव के ही होता है		
❋योग्य कहने से सर्व ही कर्म संसार का कारण है,इसलिए ३ आयु छोड़कर शुभाशुभ कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम के धारक चतुर्गति जीवों द्वारा ही बंधती है		
❋ अंतः कोड़ाकोड़ी = कोड़ी (१ करोड़) के ऊपर तथा कोड़ाकोड़ी (करोड़ X करोड़) के नीचे		

सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ दु उक्कस्ससंकिलेसेण।
विवरीदेण जहण्णो आउगतियवज्जियाणं तु।।१३४।।

अर्थ – सभी प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध यथायोग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणामों से होता है। जघन्य स्थितिबंध उससे विपरीत (अर्थात् उत्कृष्ट विशुद्ध परिणामों से) होता है। तीन आयु का बंध इससे वर्जित है।।१३४।।

उत्कृष्ट व जघन्य स्थितिबंध के योग्य परिणाम

कर्म	उत्कृष्ट स्थितिबंध	जघन्य स्थितिबंध
तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु	यथायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धि	यथायोग्य उत्कृष्ट संक्लेश
शेष ११७	यथायोग्य उत्कृष्ट संक्लेश	यथायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धि

सव्वुक्कस्सठिदीणं मिच्छाइट्ठी दु बंधगो भणिदो।
आहारं तित्थयरं देवाउं वा विमोत्तूण।।१३५।।
देवाउगं पमत्तो आहारयमप्पमत्तविरदो दु।
तित्थयरं च मणुस्सो अविरदसम्मो समज्जेइ।।१३६।।
णरतिरिया सेसाउं वेगुव्वियछक्कवियलसुहुमतियं।
सुरणिरया ओरालियतिरियदुगुज्जोवसंपत्तं।।१३७।।
देवा पुण एइंदियआदावं थावरं च सेसाणं।
उक्कस्ससंकिलिट्ठा चदुगदिया ईसिमज्झिमया।।१३८।।जुम्मं।

उत्कृष्ट स्थितिबंध :-

अर्थ - आहारकद्विक, तीर्थंकर प्रकृति, देवायु - इन चार प्रकृतियों को छोड़कर शेष एक सौ सोलह प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यादृष्टि जीव ही बांधता है। इन चारों की सम्यग्दृष्टि ही बांधता है।।१३५।।

अर्थ - देवायु की प्रमत्तविरत जीव बांधता है। आहारकद्विक की अप्रमत्तविरत जीव बांधता है। तीर्थंकर प्रकृति की अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य बांधता है।।१३६।।

अर्थ - शेष ३ आयु (नरक, तिर्यंच, मनुष्य), वैक्रियिक षट्क, विकलत्रय तथा सूक्ष्मत्रय को मनुष्य और तिर्यंच बांधता है। औदारिकद्विक, तिर्यंचद्विक, उद्योत तथा असंप्राप्तासृपाटिका संहनन को देव और नारकी बांधता है।।१३७।।

अर्थ - एकेंन्द्रिय, आतप और स्थावर को देव बांधता है। शेष प्रकृतियों को उत्कृष्ट संक्लेशी और ईषत्, मध्यम संक्लेशी चारों गतियों के जीव बांधते हैं।।१३८।।

उत्कृष्ट स्थितिबंध - स्वामी

४ प्रकृति स्वामी - सम्यग्दृष्टि

४ प्रकृति	स्वामी
देवायु	अप्रमत्तविरत गुणस्थान चढ़ने को सम्मुख प्रमत्तविरत गुणस्थानवर्ती जीव
आहारकद्विक(२)	प्रमत्त गुणस्थान के सम्मुख अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती संक्लेश परिणामी जीव
तीर्थंकर प्रकृति	नरकगति जाने के सम्मुख असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य

शेष ११६ प्रकृति स्वामी - मिथ्यादृष्टि

११६ उत्तर प्रकृतियाँ	कुल प्रकृतियाँ	स्वामी
देवायु बिना ३ आयु, वैक्रियिक षट्क, विकलत्रिक, सूक्ष्मत्रिक	१५	मनुष्य एवं तिर्यंच
औदारिकद्विक, तिर्यंचद्विक, उद्योत, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन	६	देव एवं नारकी
एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप	३	देव
अवशेष प्रकृतियाँ (११६-१५-६-३)	९२	उत्कृष्ट इषत् मध्यम संक्लेशी चारों गतियों के जीव
	११६	

बारस य वेयणीये णामे गोदे य अट्ठ य मुहुत्ता।
भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी जहण्णयं सेसपंचण्हं।।१३९।।

अर्थ - जघन्य स्थितिबंध वेदनीय में बारह मुहूर्त, नाम और गोत्र में आठ मुहूर्त एवं अवशेष पाँच कर्मों में अंतर्मुहूर्त प्रमाण है।।१३९।।

इस गाथा के विषय की तालिका पृष्ठ क्र. -(गाथा १२७)- पर देखें

लोहस्स सुहुमसत्तरसाणं ओघं दुगेकदलमासं।
कोहतिये पुरिसस्स य अट्ठ य वस्सा जहण्णठिदी।।१४०।।
तित्थाहाराणंतोकोडाकोडी जहण्णठिदिबंधो।
खवगे सगसगबंधच्छेदणकाले हवे णियमा।।१४१।।
भिण्णमुहुत्तो णरतिरियाऊणं वासदससहस्साणि।
सुरणिरयआउगाणं जहण्णओ होदि ठिदिबंधो।।१४२।।
सेसाणं पज्जत्तो बादरएइंदियो विसुद्धो य।
बंधदि सव्वजहण्णं सगसगउक्कस्सपडिभागे।।१४३।।

जघन्य स्थितिबंध :-

अर्थ - लोभ और सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में जिनका बंध पाया जाता है ऐसी सत्रह प्रकृतियों का मूलप्रकृतिवत् जानना। क्रोध का दो महीना, मान का एक महीना, माया का पंद्रह दिन, पुरुषवेद का आठ वर्ष प्रमाण जघन्य स्थितिबंध जानना।।१४०।।

अर्थ - तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक इन तीन प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध अंतःकोड़ाकोड़ी प्रमाण है, जो नियम से क्षपक श्रेणी वाले के अपनी-अपनी बंध की व्युच्छित्ति के समय में होता है।।१४१।।

अर्थ - मनुष्यायु, तिर्यंचायु का जघन्य स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त प्रमाण है। देवायु, नरकायु का दस हजार वर्ष प्रमाण है।।१४२।।

अर्थ - अवशेष इक्यानवे प्रकृतियों में से वैक्रियिकषट्क और एक मिथ्यात्व - इन सात को छोड़कर शेष चौरासी प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध यथायोग्य विशुद्धि का धारक बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव करता है, वहाँ अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति के प्रतिभाग द्वारा त्रैराशिक विधान से जो-जो प्रमाण हो, उतना-उतना जघन्य स्थितिबंध का प्रमाण जानना।।१४३।।

उत्तर प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबंध व उनके स्वामी

यहाँ अनेक प्रकतियों के स्वामी महाबंध जी पुस्तक २ पृष्ठ २८५ से दिये गये है

उत्तर प्रकृतियाँ	कुल	जघन्य स्थितिबंध	स्वामी
५ ज्ञानावरण , ४ दर्शनावरण, ५ अंतराय	१४	अंतर्मुहूर्त	क्षपक जीव (सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान के अंत में स्थित)
यश:कीर्ति,उच्च गोत्र	२	८ मुहूर्त	
साता वेदनीय	१	१२ मुहूर्त	
सूक्ष्म संज्वलन लोभ	१	अंतर्मुहूर्त	क्षपक जीव (अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के अंत में स्थित)
संज्वलन क्रोध	१	२ महीना	अनिवृत्तिकरण क्षपक जीव
संज्वलन मान	१	१ महीना	
संज्वलन माया	१	१५ दिन	
पुरुष वेद	१	८ वर्ष	
तीर्थंकर,आहारकद्विक	३	अंतः कोड़ाकाड़ी सा.	अपूर्वकरण क्षपक जीव
नरकायु,देवायु	२	१०,००० वर्ष	संज्ञी व असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव
तिर्यंचायु,मनुष्यायु	२	अंतर्मुहूर्त	एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक सब जीव
नरकद्विक	२	$\text{१००० सा.} \times \frac{\text{२}}{\text{७}} - \frac{\text{प.}}{\text{सं.}}$	असंज्ञी पंचेन्द्रिय तत्प्रायोग्य विशुद्ध जीव
देवचतुष्क	४	यथायोग्य	असंज्ञी पंचेन्द्रिय सर्व विशुद्ध जीव
५ निद्रा	५	$\text{सा.} \times \frac{\text{३}}{\text{७}} - \frac{\text{प.}}{\text{असं.}}$	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त सर्वविशुद्ध जीव
असाता वेदनीय	१		बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त तत्प्रायोग्य विशुद्ध जीव
मिथ्यात्व	१	$\text{सा.} - \frac{\text{प.}}{\text{असं.}}$	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त सर्वविशुद्ध जीव
कषाय	१२	$\text{सा.} \times \frac{\text{४}}{\text{७}} - \frac{\text{प.}}{\text{असं.}}$	

हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति,औदारिकद्विक तेजसद्विक,समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, त्रसचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, यश:कीर्ति छोड़कर स्थिरादि ५, निर्माण	३०	यथायोग्य	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त सर्वविशुद्ध जीव
स्त्रीवेद,नपुंसकवेद,अरति ,शोक,जाति४, संस्थान ५,संहनन ५,आतप,अप्रशस्त विहायोगति,स्थावरादि १०,	३०		बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त तत्प्रायोग्य विशुद्ध जीव
तिर्यंचद्विक,उद्योत, नीचगोत्र	४	$\frac{२}{७}$ सा. − $\frac{प.}{असं.}$	बादर पर्याप्त अग्निकायिक, वायुकायिक सर्वविशुद्ध जीव
मनुष्यद्विक	२	$\frac{३}{१४}$ सा. − $\frac{प.}{असं.}$	बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक सर्वविशुद्ध जीव
	१२०		

एयं पणकदि पण्णं सयं सहस्सं च मिच्छवरबंधो।
इगिविगलाणं अवरं पल्लासंखूणसंखूणं।।१४४।।
जदि सत्तरिस्स एत्तियमेत्तं किं होदि तीसियादीणं।
इदि संपाते सेसाणं इगिविगलेसु उभयठिदी।।१४५।।

अर्थ – मिथ्यात्व कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध – एकेंन्द्रिय जीव एक सागर, द्वीन्द्रिय जीव २५ सागर, त्रीन्द्रिय जीव ५० सागर, चतुरिन्द्रिय जीव १०० सागर तथा पंचेन्द्रिय असंज्ञी जीव १००० सागर बांधता है। मिथ्यात्व कर्म की जघन्य स्थिति – एकेन्द्रिय जीव तो अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण कम बांधता है तथा द्वीन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण कम बांधते है।।१४४।।

अर्थ – यदि सत्तर का इतना बंधता है तो तीस आदि का कितना बंधेगा? – इस प्रकार त्रैराशिक करने पर शेष एकेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय में समस्त कर्मों की अपनी-अपनी उत्कृष्ट एवं जघन्य स्थिति का प्रमाण निकल आता है।।१४५।।

मिथ्यात्वादि समस्त कर्मों की एकेन्द्रियादि जीवों में उत्कृष्ट एवं जघन्य स्थितिबंध

संज्ञी पंचेन्द्रिय	मिथ्यात्व (७० कोड़ाकोड़ी सा.)		चालीसीया (४० कोड़ाकोड़ी सा.) चारित्र मोहनीय		तीसीया (३० कोड़ाकोड़ी सा.) (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अंतराय)		बीसीया (२० कोड़ाकोड़ी सा.) (नाम, गोत्र)	
जीव	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य
एकेन्द्रिय	१ सा.	$\text{सा.} - \frac{\text{प.}}{\text{असं.}}$	$\text{सा.} \times \frac{४}{७}$	$\text{सा.} \times \frac{४}{७} - \frac{\text{प.}}{\text{असं.}}$	$\text{सा.} \times \frac{३}{७}$	$\text{सा.} \times \frac{३}{७} - \frac{\text{प.}}{\text{असं.}}$	$\text{सा.} \times \frac{२}{७}$	$\text{सा.} \times \frac{२}{७} - \frac{\text{प.}}{\text{असं.}}$
द्वीन्द्रिय	२५ सा.	$२५\ \text{सा.} - \frac{\text{प.}}{(\text{सं.})^{४}}$	$२५\ \text{सा.} \times \frac{४}{७}$	$२५\text{सा.} \times \frac{४}{७} - \frac{\text{प.}}{(\text{सं.})^{४}}$	$२५\ \text{सा.} \times \frac{३}{७}$	$२५\text{सा.} \times \frac{३}{७} - \frac{\text{प.}}{(\text{सं.})^{४}}$	$२५\ \text{सा.} \times \frac{२}{७}$	$२५\text{सा.} \times \frac{२}{७} - \frac{\text{प.}}{(\text{सं.})^{४}}$
त्रीन्द्रिय	५० सा.	$५०\ \text{सा.} - \frac{\text{प.}}{(\text{सं.})^{३}}$	$५०\ \text{सा.} \times \frac{४}{७}$	$५०\text{सा.} \times \frac{४}{७} - \frac{\text{प.}}{(\text{सं.})^{३}}$	$५०\ \text{सा.} \times \frac{३}{७}$	$५०\text{सा.} \times \frac{३}{७} - \frac{\text{प.}}{(\text{सं.})^{३}}$	$५०\ \text{सा.} \times \frac{२}{७}$	$५०\text{सा.} \times \frac{२}{७} - \frac{\text{प.}}{(\text{सं.})^{३}}$
चतुरिन्द्रिय	१०० सा.	$१००\ \text{सा.} - \frac{\text{प.}}{(\text{सं.})^{२}}$	$१००\ \text{सा.} \times \frac{४}{७}$	$१००\text{सा.} \times \frac{४}{७} - \frac{\text{प.}}{(\text{सं.})^{२}}$	$१००\ \text{सा.} \times \frac{३}{७}$	$१००\text{सा.} \times \frac{३}{७} - \frac{\text{प.}}{(\text{सं.})^{२}}$	$१००\ \text{सा.} \times \frac{२}{७}$	$१००\text{सा.} \times \frac{२}{७} - \frac{\text{प.}}{(\text{सं.})^{२}}$
असंज्ञी पंचेन्द्रिय	१००० सा.	$१०००\ \text{सा.} - \frac{\text{प.}}{\text{सं.}}$	$१०००\ \text{सा.} \times \frac{४}{७}$	$१०००\text{सा.} \times \frac{४}{७} - \frac{\text{प.}}{\text{सं.}}$	$१०००\ \text{सा.} \times \frac{३}{७}$	$१०००\text{सा.} \times \frac{३}{७} - \frac{\text{प.}}{\text{सं.}}$	$१०००\ \text{सा.} \times \frac{२}{७}$	$१०००\text{सा.} \times \frac{२}{७} - \frac{\text{प.}}{\text{सं.}}$
	इसी प्रकार १८,१६,१५,१४,१२,१० कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण अन्य कर्म प्रकृतियों का भी जानना							

सण्णि असण्णिचउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा।
जेट्ठे संखेज्जगुणा आवलिसंखं असंखभागहियं।।१४६।।

अर्थ - संज्ञी, असंज्ञी चतुष्क (असैनी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय) और एकेन्द्रिय में जघन्य आबाधा अंतर्मुहूर्त है। इनमें उत्कृष्ट आबाधा जघन्य आबाधा से संज्ञी आदि उपरोक्त जीवों में क्रम से संख्यात गुणा, आवली के संख्यातवें भाग अधिक तथा आवली के असंख्यातवें भाग अधिक है।।१४६।।

एकेन्द्रियादि जीवों में मिथ्यात्व कर्म की उत्कृष्ट एवं जघन्य आबाधा तथा आबाधा के कुल भेद

उदय अपेक्षा आबाधा - कर्मबंध होने के पश्चात् जितने काल तक उदय नहीं प्रवर्तता			
जीव	**उत्कृष्ट आबाधा**	**जघन्य आबाधा**	**आबाधा के भेद**
	= ज. आबाधा से अधिक/गुणित	= अंतर्मुहूर्त	= उ.-ज.आबाधा +१
एकेन्द्रिय	अंतर्मुहूर्त+ $\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$	अंतर्मुहूर्त	$\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$
द्वीन्द्रिय	२५ अंतर्मुहूर्त+ $\frac{\text{आवली}}{\text{सं.}^{४}}$	अंतर्मुहूर्त × २५	$\frac{\text{आवली}}{\text{सं.}^{४}}$
त्रीन्द्रिय	५० अंतर्मुहूर्त+ $\frac{\text{आवली}}{\text{सं.}^{३}}$	अंतर्मुहूर्त × ५०	$\frac{\text{आवली}}{\text{सं.}^{३}}$
चतुरिन्द्रिय	१०० अंतर्मुहूर्त+ $\frac{\text{आवली}}{\text{सं.}^{२}}$	अंतर्मुहूर्त × १००	$\frac{\text{आवली}}{\text{सं.}^{२}}$
असंज्ञी पंचेन्द्रिय	१००० अंतर्मुहूर्त+ $\frac{\text{आवली}}{\text{सं.}}$	अंतर्मुहूर्त × १०००	$\frac{\text{आवली}}{\text{सं.}}$
संज्ञी पंचेन्द्रिय	अंतर्मुहूर्त × सं. × सं.	अंतर्मुहूर्त × संख्यात	संख्यात अंतर्मुहूर्त

जेट्ठाबाहोवट्टियजेट्ठं आबाहकंडयं तेण।
आबाहवियप्पहदेणेगूणेणूणजेट्ठमवरठिदी।।१४७।।

अर्थ – एकेन्द्रियादि जीवों की अपनी-अपनी उत्कृष्ट आबाधा का जो प्रमाण कहा उसका भाग कर्मों की अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति को देने पर जो-जो प्रमाण आता है, वह-वह आबाधाकांडक का प्रमाण है। इतने-इतने स्थिति भेदों में आबाधा का प्रमाण एकरूप पाया जाता है। पूर्वोक्त अपने-अपने आबाधा के भेदों के प्रमाण को अपने-अपने आबाधाकांडक के प्रमाण से गुणा करने पर जो-जो प्रमाण आता है, उसमें से एक-एक घटाने पर जो-जो प्रमाण रहता है, उतना-उतना अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति में से घटाने पर जो-जो प्रमाण रहता है, उतना-उतना जघन्य स्थितिबंध का प्रमाण जानना।।१४७।।

आबाधाकाण्डक

आबाधाकाण्डक =	स्थिति के जितने भेदों में आबाधा का प्रमाण एक ही होता है
आबाधाकाण्डक सूत्र =	$\frac{\text{उत्कृष्ट स्थिति}}{\text{उत्कृष्ट आबाधा}}$
अंकसंदृष्टि उदाहरण:-	मान लो, उत्कृष्ट स्थिति = ६४ समय, उत्कृष्ट आबाधा = १६ समय, जघन्य आबाधा = १२ समय आबाधाकाण्डक = $\frac{६४}{१६}$ = ४
आबाधा के कुल भेद =	(उत्कृष्ट आबाधा - जघन्य आबाधा) + १ = (१६ - १२) + १ = ५
स्थिति के भेद =	आबाधाकाण्डक × आबाधा के भेद = ४ × ५ =२०
जघन्य स्थिति =	उत्कृष्ट स्थिति - (स्थिति भेद - १) = ६४ - (२० - १) = ४५ समय

स्थिति भेद	६४	६३	६२	६१	६०	५९	५८	५७	५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५
उदयकाल	४८	४७	४६	४५	४५	४४	४३	४२	४२	४१	४०	३९	३९	३८	३७	३६	३६	३५	३४	३३
आबाधाकाल	१६				१५				१४				१३				१२			
आबाधाकाण्डक	४				४				४				४				४			

बासूप-बासूअ-वरट्ठिदीओ सूबाअ-सूबाप-जहण्णकालो।
बीबीवरो बीबिजहण्णकालो सेसाणमेवं वयणीयमेदं।।१४८।।
मज्झे थोवसलागा हेट्ठा उवरिं च संखगुणिदकमा।
सव्वजुदी संखगुणा हेट्ठुवरिं संखगुणमसण्णित्ति।।१४९।।
सण्णिस्स हु हेट्ठादो ठिदिठाणं संखगुणिदमुवरुवरिं।
ठिदिआयामोवि तहा सगठिदिठाणं व आबाहा।।१५०।।

अर्थ – बासूप अर्थात् बादर-सूक्ष्म पर्याप्त और बासूअ अर्थात् बादर-सूक्ष्म अपर्याप्त दोनों मिलकर चार तरह के जीवों के कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तथा इन्हीं चारों प्रकार के जीवों की जघन्य स्थिति – (इस तरह एकेन्द्रिय की कर्म-स्थिति के आठ भेद हुये)। बीबी अर्थात् द्वीन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्त दोनों तरह के जीवों के कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तथा जघन्य स्थिति –(इस तरह द्वीन्द्रिय जीव की कर्म-स्थिति के चार भेद हुये)। अवशेष त्रीन्द्रिय आदि जीवों के भी ४-४ भेद जानना।।१४८।।

अर्थ – संज्ञी जीव की स्थिति के ४ भेदों को छोड़कर बाकी जीवों की स्थिति के २४ भेदों की जो संख्यास्वरूप शलाकाएँ हैं – वे मध्यभाग में थोड़ी हैं। किंतु नीचे के भाग तथा ऊपर के भाग के भेदों की संख्या पहले से क्रम से संख्यातगुणी जानना। सबका जोड़ अर्थात् पहले जो भी शलाकाएँ कहीं उनके जोड़ से संख्यातगुणी शलाकाएँ पुनः नीचे के जीवों की स्थिति के भेद की होती हैं। पुनः उससे संख्यात गुणी ऊपर के जीवों की स्थिति के भेद की होती हैं। इस प्रकार नीचे के भाग से ऊपर के भाग में असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक जीवों में संख्यातगुणी शलाकाएँ जानना।।१४९।।

अर्थ – संज्ञी के चार भेदों में नीचे से लेकर अर्थात् संज्ञी पर्याप्त के जघन्य स्थितिबंध से ऊपर-ऊपर चौथे भेद तक स्थिति के स्थान (भेदों का प्रमाण) संख्यात गुणे क्रम से है और स्थिति का काल भी संख्यातगुणा है। तथा आबाधाकाल का प्रमाण स्थिति के स्थानों की तरह जानना।।१५०।।

१४ जीवसमास में उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबंध के भेद

एकेन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्व कर्म की स्थिति के भेद

स्थिति के कुल भेद =	$\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}$
उदाहरण में (स्थिति के भेद) =	कुल शलाकाएँ
कुल शलाकाएँ =	१९६+२८+४+१+२+१४+९८ = ३४३
अंतराल (स्थिति के भेद) =	कुल स्थिति भेद × $\frac{\text{अपनी-अपनी शलाका}}{\text{कुल शलाका}}$
आबाधा के कुल भेद =	$\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$

	जीव	शलाका	स्थिति के भेद	स्थिति	
उत्कृष्ट	बादर पर्याप्त			सागर	सा. − प./असं. × ०/३४३
		९८×२= ↕ १९६	प./असं. × १९६/३४३		
	सूक्ष्म पर्याप्त			बापउ − प./असं. × १९६/३४३	सा. − प./असं. × १९६/३४३
		१४×२= ↕ २८	प./असं. × २८/३४३		
	बादर अपर्याप्त			सूपउ − प./असं. × २८/३४३	सा. − प./असं. × २२४/३४३
		२×२= ↕ ४	प./असं. × ४/३४३		
	सूक्ष्म अपर्याप्त			बाअउ − प./असं. × ४/३४३	सा. − प./असं. × २२८/३४३
		↕ १	प./असं. × १/३४३		
जघन्य	सूक्ष्म अपर्याप्त			सूअउ − प./असं. × १/३४३	सा. − प./असं. × २२९/३४३
		१×२= ↕ २	प./असं. × २/३४३		
	बादर अपर्याप्त			सूअज − प./असं. × २/३४३	सा. − प./असं. × २३१/३४३
		(४+१+२=७) ७×२= ↕ १४	प./असं. × १४/३४३		
	सूक्ष्म पर्याप्त			बाअज − प./असं. × १४/३४३	सा. − प./असं. × २४५/३४३
		(२८+४+१+२+१४=४९) ४९×२= ↕ ९८	प./असं. × ९८/३४३		
	बादर पर्याप्त			सूपज − प./असं. × ९८/३४३	सा. − प./असं.

एकेन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्व कर्म की आबाधा के भेद

जीव		शलाका	आबाधा के भेद	आबाधा
उत्कृष्ट	बादर पर्याप्त	स्थिति की शलाका के समान		अंतर्मुहूर्त+ $\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$
			$\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \frac{१९६}{३४३}$	
	सूक्ष्म पर्याप्त			बापउ− $\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \frac{१९६}{३४३}$
			$\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \frac{२८}{३४३}$	
	बादर अपर्याप्त			सूपउ− $\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \frac{२८}{३४३}$
			$\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \frac{४}{३४३}$	
	सूक्ष्म अपर्याप्त			बाअउ− $\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \frac{४}{३४३}$
			$\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \frac{१}{३४३}$	
जघन्य	सूक्ष्म अपर्याप्त			सूअउ− $\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \frac{१}{३४३}$
			$\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \frac{२}{३४३}$	
	बादर अपर्याप्त			सूअज− $\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \frac{२}{३४३}$
			$\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \frac{१४}{३४३}$	
	सूक्ष्म पर्याप्त			बाअज− $\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \frac{१४}{३४३}$
			$\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \frac{९८}{३४३}$	
	बादर पर्याप्त			सूपज− $\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \frac{९८}{३४३}$

जिसप्रकार यह मिथ्यात्व की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति तथा उत्कृष्ट और जघन्य आबाधा के अनुसार स्थितिबंध और आबाधा का कथन किया उसी प्रकार सभी प्रकृतियों का अपनी–अपनी उत्कृष्ट–जघन्य स्थिति और उत्कृष्ट–जघन्य आबाधा के अनुसार स्थितिबंध और आबाधा का कथन जानना।

द्वीन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्व कर्म की स्थिति व आबाधा के भेद

स्थिति के कुल भेद =	$\frac{प.}{(सं.)^४}$	**आबाधा के कुल भेद =**	$\frac{आवली}{(सं.)^४}$
उदाहरण में कुल शलाकाएँ =	४+१+२ = ७		

जीव	श–लाका	स्थिति के भेद	स्थिति		आबाधा के भेद	आबाधा
उत्कृष्ट पर्याप्त			२५ सागर	२५ सा.– $\frac{प.}{(सं.)^४}\times\frac{०}{७}$		२५ अंत.+ $\frac{आवली}{(सं.)^४}\times\frac{७}{७}$
	↕ २×२ =४	$\frac{प.}{(सं.)^४}\times\frac{४}{७}$			$\frac{आवली}{(सं.)^४}\times\frac{४}{७}$	
उत्कृष्ट अपर्याप्त			द्वीपउ– $\frac{प.}{(सं.)^४}\times\frac{४}{७}$	२५ सा.– $\frac{प.}{(सं.)^४}\times\frac{४}{७}$		२५ अंत.+ $\frac{आवली}{(सं.)^४}\times\frac{३}{७}$
	↕ १	$\frac{प.}{(सं.)^४}\times\frac{१}{७}$			$\frac{आवली}{(सं.)^४}\times\frac{१}{७}$	
जघन्य अपर्याप्त			द्वीअउ– $\frac{प.}{(सं.)^४}\times\frac{१}{७}$	२५ सा.– $\frac{प.}{(सं.)^४}\times\frac{५}{७}$		२५ अंत.+ $\frac{आवली}{(सं.)^४}\times\frac{२}{७}$
	↕ १×२ =२	$\frac{प.}{(सं.)^४}\times\frac{२}{७}$			$\frac{आवली}{(सं.)^४}\times\frac{२}{७}$	
जघन्य पर्याप्त			द्वीअज– $\frac{प.}{(सं.)^४}\times\frac{२}{७}$	२५ सा.– $\frac{प.}{(सं.)^४}\times\frac{७}{७}$		२५ अंत.+ $\frac{आवली}{(सं.)^४}\times\frac{०}{७}$

जैसा द्वीन्द्रिय का शलाकाएँ आदि कथन कहा वैसे ही त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय का शलाकाएँ आदि कथन जानना। विशेष – इनके स्थिति के भेदों का प्रमाण, स्थिति का प्रमाण, आबाधा के भेदों का प्रमाण, आबाधा काल का प्रमाण यथायोग्य जानना।

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्व कर्म की स्थिति व आबाधा के भेद

स्थिति के कुल भेद =	उत्कृष्ट स्थिति – जघन्य स्थिति + १ =७० कोड़ाकोड़ीसागर – अंतःकोड़ाकोड़ी सागर + १
आबाधा के कुल भेद =	उत्कृष्ट आबाधा – जघन्य आबाधा + १ = ७००० वर्ष – अंतर्मुहूर्त + १
स्थिति के भेद निकालने की विधि	बहुभाग-एकभाग निकालने का विधान
उदाहरण में	बहुभाग=४ और एकभाग=१

स्थिति	स्थिति के भेद	जीव	आबाधा
७० कोड़ा कोड़ी सा.		उत्कृष्ट पर्याप्त	७००० वर्ष
	सर्व भेद का बहुभाग	स्थिति एवं आबाधा ↕ के कुल भेद × $\frac{४}{५}$	
		उत्कृष्ट अपर्याप्त	
	सर्व भेद के एक भाग का बहुभाग	स्थिति एवं आबाधा ↕ के कुल भेद × $\frac{१}{५}$ × $\frac{४}{५}$	
		जघन्य अपर्याप्त	
	सर्व भेद के एक भाग का एकभाग	स्थिति एवं आबाधा ↕ के कुल भेद × $\frac{१}{५}$ × $\frac{१}{५}$	
अंतःकोड़ा कोड़ी सा.		जघन्य पर्याप्त	अंतर्मुहूर्त

सत्तरसपंचतित्थाहाराणं सुहुमबादरापुव्वो।
छव्वेगुव्वमसण्णी जहण्णमाऊण सण्णी वा।।१५१।।

अर्थ – सूक्ष्म-सांपराय गुणस्थान में बंधने वाली ज्ञानावरणादि १७ प्रकृतियों की जघन्य स्थिति को दसवें गुणस्थानवर्ती जीव बाँधता है। पुरुष वेद और संज्वलन-४ की जघन्य स्थिति को नवमें गुणस्थानवर्ती जीव, तीर्थंकर प्रकृति तथा आहारकद्विक की जघन्य स्थिति को आठवें गुणस्थानवर्ती जीव, वैक्रियिकषट्क की जघन्य स्थिति को असैनी पंचेन्द्रिय जीव तथा आयुकर्म की जघन्य स्थिति को संज्ञी तथा असंज्ञी दोनों ही बाँधते हैं।।१५१।।

इस गाथा के विषय की तालिका पृष्ठ क्र. -(गाथा १४०)- पर देखें

अजहण्णट्ठिदिबंधो चउव्विहो सत्तमूलपयडीणं।
सेसतिये दुवियप्पो आउचउक्केवि दुवियप्पो।।१५२।।
संजलणसुहुमचोद्दस-घादीणं चदुविधो दु अजहण्णो।
सेसतिया पुण दुविहा सेसाणं चदुविधावि दुधा।।१५३।।

अर्थ - आयु के बिना सात मूल प्रकृतियों का अजघन्य स्थितिबंध सादि आदि के भेद से चार तरह का है और बाकी के उत्कृष्ट आदि तीन बंधों के सादि, अध्रुव - ये दो ही भेद हैं। आयुकर्म के उत्कृष्टादिक चार भेदों में स्थितिबंध सादि, अध्रुव - ऐसे दो प्रकार का ही है।।१५२।।

अर्थ - संज्वलन कषाय की चौकड़ी, दसवें सूक्ष्मसांपराय की मतिज्ञानावरणादि घातिया कर्मों की १४ प्रकृतियाँ - इन १८ प्रकृतियों का अजघन्य स्थितिबंध सादि आदि के भेद से चार प्रकार का है और शेष जघन्यादि तीन भेदों के सादि, अध्रुव - ये दो ही भेद हैं। शेष प्रकृतियों के जघन्यादिक चार भेदों के सादि, अध्रुव दो भेद हैं।।१५३।।

अजघन्यादि स्थिति के भेदों में सादि आदि भेद

कर्म	अजघन्य	जघन्य	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट
मूल कर्म प्रकृति				
❋ आयु को छोड़कर ज्ञानावरणादि ७ कर्म	४*	२*	२	२
❋ आयु कर्म	२	२	२	२
उत्तर कर्म प्रकृति				
❋ १०वें गुणस्थान में बंधने वाली घातिया कर्म की १४ प्रकृतियाँ (५ ज्ञानावरण,४ दर्शनावरण, ५ अंतराय) + ४ संज्वलन = १८	४	२	२	२
❋ शेष कर्म प्रकृतियाँ = १२०-१८=१०२	२	२	२	२
	४* = अनादि, सादि, ध्रुव, अध्रुव			
	२* = सादि, अध्रुव			

सव्वाओ दु ठिदीओ सुहासुहाणंपि होंति असुहाओ।
माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण सेसाणं।।१५४।।

अर्थ - मनुष्य, तिर्यंच, देवायु के सिवाय बाकी सब शुभ तथा अशुभ प्रकृतियों की स्थितियाँ अशुभरूप ही हैं।।१५४।।

कौन से जीवों को कितना स्थिति बंध होता हैं?

	तीव्र कषायी संक्लेशी जीव	मंद कषायी विशुद्ध जीव
तिर्यंचायु, देवायु, मनुष्यायु (३)	कम स्थितिबंध	अधिक स्थितिबंध
शेष सभी प्रकृतियाँ (११७) (संसार के कारण होने से)	अधिक स्थितिबंध(अशुभ)	कम स्थितिबंध(शुभ)

कम्मसरूवेणागयदव्वं ण य एदि उदयरूवेण।
रूवेणुदीरणस्स व आबाहा जाव ताव हवे।।१५५।।
उदयं पडि सत्तण्हं आबाहा कोडकोडि उवहीणं।
वाससयं तप्पडिभागेण य सेसट्ठिदीणं च।।१५६।।

अर्थ – कार्मणशरीर नामक नामकर्म के उदय से योग द्वारा आत्मा में कर्मस्वरूप से परिणमता हुआ जो पुद्गलद्रव्य जब-तक उदयस्वरूप अथवा उदीरणा स्वरूप न हो तब-तक के उस काल को आबाधा कहते हैं।।१५५।।

अर्थ – आयुकर्म को छोड़कर सात कर्मों की उदय की अपेक्षा आबाधा एक कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति की सौ वर्ष जानना और बाकी स्थितियों की आबाधा इसी प्रतिभाग से जानना।।१५६।।

आबाधा

कर्मबंध होने के पश्चात् जितने काल तक उदय या उदीरणा रूप न प्रवर्ते उतना काल

फल देने रूप परिणमना

बिना ही काल आये अपक्व कर्म का पकना(फल देना)

आबाधा निकालने की विधि

	स्थिति	आबाधा
अगर –	१ कोड़ाकोड़ी सा.	१०० वर्ष
तो –	७० कोड़ाकोड़ी सा.	७००० वर्ष
इसी प्रकार सभी स्थितियों की आबाधा जानना		

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
१ कोड़ाकोड़ी सा.	१०० वर्ष	७० कोड़ाकोड़ी सा.	७००० वर्ष आबाधा

मूल प्रकृतियों में एकेन्द्रिय आदि जीवों की उत्कृष्ट आबाधा

जीव	मिथ्यात्व	चालीसीया	तीसीया	बीसीया
संज्ञी पंचेन्द्रिय	७००० वर्ष	४००० वर्ष	३००० वर्ष	२००० वर्ष
असंज्ञी पंचेन्द्रिय	$१०००अंत. + \frac{आवली}{सं.}$	$१०००अंत. + \frac{आवली}{सं.} \times \frac{४}{७}$	$१०००अंत. + \frac{आवली}{सं.} \times \frac{३}{७}$	$१०००अंत. + \frac{आवली}{सं.} \times \frac{२}{७}$
चतुरिन्द्रिय	$१००अंत. + \frac{आवली}{सं.^{२}}$	$१००अंत. + \frac{आवली}{सं.^{२}} \times \frac{४}{७}$	$१००अंत. + \frac{आवली}{सं.^{२}} \times \frac{३}{७}$	$१००अंत. + \frac{आवली}{सं.^{२}} \times \frac{२}{७}$
त्रीन्द्रिय	$५०अंत. + \frac{आवली}{सं.^{३}}$	$५०अंत. + \frac{आवली}{सं.^{३}} \times \frac{४}{७}$	$५०अंत. + \frac{आवली}{सं.^{३}} \times \frac{३}{७}$	$५०अंत. + \frac{आवली}{सं.^{३}} \times \frac{२}{७}$
द्वीन्द्रिय	$२५अंत. + \frac{आवली}{सं.^{४}}$	$२५अंत. + \frac{आवली}{सं.^{४}} \times \frac{४}{७}$	$२५अंत. + \frac{आवली}{सं.^{४}} \times \frac{३}{७}$	$२५अंत. + \frac{आवली}{सं.^{४}} \times \frac{२}{७}$
एकेन्द्रिय	$अंत. + \frac{आवली}{असं.}$	$अंत. + \frac{आवली}{असं.} \times \frac{४}{७}$	$अंत. + \frac{आवली}{असं.} \times \frac{३}{७}$	$अंत. + \frac{आवली}{असं.} \times \frac{२}{७}$

अंतोकोडाकोडिट्ठिदिस्स अंतोमुहुत्तमाबाहा।
संखेज्जगुणविहीणं सव्वजहण्णट्ठिदिस्स हवे।।१५७।।

अर्थ – अंत:कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति की अंतर्मुहूर्त आबाधा है। सब जघन्य स्थितियों की उससे संख्यातगुणी कम आबाधा होती है।।१५७।।

जघन्य आबाधा

स्थिति	आबाधा
अंत:कोड़ाकोड़ी सा.	अंतर्मुहूर्त
सर्व कर्मों की	↑उससे संख्यातगुणा हीन

१ सागर की आबाधा

स्थिति	आबाधा
१ कोड़ाकोड़ी सागर	= १०० वर्ष
१ कोड़ाकोड़ी सागर	= १०० × ३६० × ३० मुहूर्त
१ कोड़ाकोड़ी सागर	= १०८०००० मुहूर्त
१ करोड़ × १ करोड़ सागर / १०८००००	= १ मुहूर्त (३७७३ श्वासोच्छ्वास)
१००००००० × १००००००० सागर / १०८००००	= १ मुहूर्त (३७७३ श्वासोच्छ्वास)
९२५९२५९२ ६४/१०८ सागर	= १ मुहूर्त (३७७३ श्वासोच्छ्वास)
१ सागर	३७७३ श्वासोच्छ्वास / ९२५९२५९२ × ६४/१०८
१ सागर	श्वासोच्छ्वास / संख्यात
अर्थात् १ सागर स्थिति की आबाधा श्वासोच्छ्वास का संख्यातवां भाग है	

पुण्वाणं कोडितिभा-गादासंखेपअद्ध वोत्ति हवे।

आउस्स य आबाहा ण ट्ठिदिपडिभागमाउस्स।।१५८।।

अर्थ - आयुकर्म की आबाधा १ कोटि पूर्व के तीसरे भाग से लेकर असंक्षेपाद्धा प्रमाण है। (अन्य कर्मों जैसे) आयुकर्म की आबाधा स्थिति के अनुसार भाग की हुई नहीं है।।१५८।।

आयुकर्म की आबाधा

उत्कृष्ट
↓
१ कोटि पूर्व / ३

१ पूर्व =८४ लाख×८४ लाख वर्ष
= ७० लाख ५६ हजार करोड़ वर्ष

जघन्य
↓
✻ अंतर्मुहूर्त अथवा असंक्षेपाद्धा
✻ आवली/अंस. अथवा आवली/स.

असंक्षेपाद्धा = अ+संक्षेप+अद्धा
= नहीं+थोड़ा+काल

आयुकर्म की उत्कृष्ट आबाधा

- **कर्मभूमिया मनुष्य अथवा तिर्यंच** → $\frac{\text{१ कोटि पूर्व}}{\text{३}}$
- **देव नारकी** → ✻ ६ माह
- **भोगभूमिया जीव** → ✻ ६ माह अथवा ९ माह

आवलियं आबाहा उदीरणमासिज्ज सत्तकम्माणं।
परभवियआउगस्स य उदीरणा णत्थि णियमेण।।१५९।।

अर्थ – उदीरणा की अपेक्षा से सात कर्मों की आबाधा एक आवली मात्र है और परभव की आयु जो बाँध ली है उसकी उदीरणा नियम से नहीं होती।।१५९।।

उदीरणा की अपेक्षा आबाधा

- **ज्ञानावरणादि ७ कर्म** → **१ आवली** (अचलावली)
- **आयु**
  - **भुज्यमान** ✻ जिस आयु को जीव भोग रहा है → उदीरणा संभव हैं
  - **बध्यमान** ✻ आगामी उत्तर भव की आयु → उदीरणा नहीं होती

उदीरणा में रचना

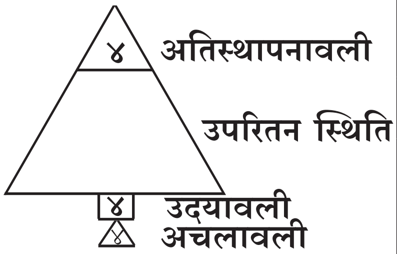

४ = आवली

अतिस्थापनावली	द्रव्य निक्षेपण करते जिस आवली मात्र निषेक में निक्षेपण नहीं किया जाता है
उपरितन स्थिति	उदयावली से ऊपर की स्थिति
उदयावली	उदय प्राप्त आवली काल (जहाँ कर्म परमाणुओं के समुदाय में से कुछ परमाणुओं का अपकर्षण करके दिया जाता है)
अचलावली	एक आवली काल जिसमें कर्म उदय या उदीरणा रूप नहीं होते, जैसे बंधे वैसे ही रहते हैं

आबाहूणियकम्मट्ठिदी णिसेगो दु सत्तकम्माणं।
आउस्स णिसेगो पुण सगट्ठिदी होदि णियमेण।।१६०।।

अर्थ – अपनी-अपनी कर्मों की स्थिति में आबाधा का काल घटाने से जो काल शेष रहे, उतने समय प्रमाण सात कर्मों के निषेक जानना और आयुकर्म के निषेक अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण हैं – ऐसा नियम से समझना।।१६०।।

निषेक

प्रतिसमय खिरने वाले कर्म परमाणुओं का समूह

आयु को छोड़कर शेष ७ कर्म → कर्म स्थिति-आबाधा काल

आयु कर्म → आयु कर्म की स्थिति (क्योंकि आयु कर्म की आबाधा पूर्व भव में ही हो गई)

आबाहं वोलाविय पढमणिसेगम्मि देय बहुगं तु।
तत्तो विसेसहीणं बिदियस्सादिमणिसेओत्ति।।१६१।।
बिदिये बिदियणिसेगे हाणी पुव्विल्लहाणिअद्धं तु।
एवं गुणहाणिं पडि हाणी अद्धद्धयं होदि।।१६२।।

अर्थ – आबाधा काल को छोड़कर जो अनंतर समय है वहाँ प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक में (अन्य निषेकों से) बहुत अधिक द्रव्य देना। दूसरे निषेक से लेकर द्वितीय गुणहानि के प्रथम निषेकपर्यंत विशेष (चय) हीन कर्म परमाणु देना चाहिये।।१६१।।

अर्थ – द्वितीय गुणहानि के दूसरे निषेक में प्रथम गुणहानि के चय प्रमाण से आधा चय घटाना चाहिये। (इतने ही चय तीसरी गुणहानि के पहले निषेक तक घटाना चाहिये)। इसी प्रकार गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा अनुक्रम जानना।।१६२।।

अंक संदृष्टि द्वारा कर्म निषेक रचना का वर्णन

एकसमय में बंधनेवाले कुल कर्मपरमाणु	= ६३००
आबाधा छोड़कर कुल स्थिति	= ४८ समय
एक गुणहानि आयाम (गच्छ)	= ८ समय
नाना गुणहानि (कुल गुणहानि)	= ६
दो गुणहानि	= ८ × २ = १६ समय
अन्योन्याभ्यस्त राशि	= $२^{\text{नाना गुणहानि}}$ = $२^{६}$ = ६४
अंतिम गुणहानि में द्रव्य का प्रमाण	= $\frac{\text{कुल कर्म परमाणु}}{\text{अन्योन्याभ्यस्त राशि-१}}$ = $\frac{६३००}{६४-१}$ = १००

प्रत्येक गुणहानि का द्रव्य

अंतिम गुणहानि के द्रव्य से दोगुणा-२ द्रव्य प्रथम गुणहानि तक करना						
द्रव्य	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००
गुणहानि	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पंचम	षष्ठम (अंतिम)

प्रत्येक गुणहानि की रचना का विधान

कुल द्रव्य	= ३२००
मध्यम धन	$= \frac{३२००}{\text{गुणहानि आयाम}} = \frac{३२००}{८} = ४००$
एक कम गच्छ	= ८-१ = ७
एक कम गच्छ का आधा	$= \frac{७}{२}$
निषेक भागहार	= दो गुणहानि = २ × ८ = १६
प्रथम गुणहानि का चय	$= \frac{\text{मध्यम धन}}{\text{निषेक भागहार -एक कम गच्छ का आधा}} = \frac{४००}{१६-\frac{७}{२}} = \frac{४००}{\frac{२५}{२}} = \frac{८००}{२५} = ३२$

प्रथम गुणहानि के निषेकों का द्रव्य

प्रथम निषेक	= चय × दो गुणहानि	= ३२ × १६	= ५१२
द्वितीय निषेक	= प्रथम निषेक-चय	= ५१२-३२	= ४८०
तृतीय निषेक	= द्वितीय निषेक-चय	= ४८०-३२	= ४४८
चतुर्थ से अंतिम निषेक तक एक-एक चय घटाने पर प्राप्त होते हैं			
अष्टम (अंतिम)निषेक	= सप्तम निषेक-चय	= ३२०-३२	= २८८

द्वितीयादि गुणहानि के निषेकों का द्रव्य

द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक	= प्रथम गुणहानि का अंतिम निषेक- प्रथम गुणहानि का चय	= २८८-३२ = २५६
द्वितीय गुणहानि का चय	= प्रथम गुणहानि का चय / २ = ३२ / २ = १६	
द्वितीय निषेक	= द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक- द्वितीय गुणहानि का चय	= २५६-१६ = २४०
तृतीय निषेक		= २४०-१६ = २२४
✻ इसी प्रकार चतुर्थ आदि निषेकों की रचना है		
✻ द्वितीय गुणहानि की तरह तृतीयादि अंतिम गुणहानि पर्यंत प्रथमादि निषेक एवं चयादि निकालने का विधान समान है		
✻ इस प्रकार अंतिम गुणहानि तक सर्वधन,निषेकों का द्रव्य और चय का प्रमाण आधा-आधा जानना		
✻ इसी प्रकार सर्व कर्मों में यथायोग्य कथन जानना		

अंक संदृष्टि द्वारा निषेक रचना का यंत्र

समय	प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	पंचम गुणहानि	षष्ठम गुणहानि
अष्टम	२८८	१४४	७२	३६	१८	९
सप्तम	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
षष्ठम	३५२	१७६	८८	४४	२२	११
पंचम	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
चतुर्थ	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
तृतीय	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
द्वितीय	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
प्रथम	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
८ समय	**३२००**	**१६००**	**८००**	**४००**	**२००**	**१००**

अनुभाग बंध

सुहपयडीण विसोही तिव्वो असुहाण संकिलेसेण।
विवरीदेण जहण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं।।१६३।।
बादालं तु पसत्था विसोहिगुणमुक्कडस्स तिव्वाओ।
बासीदि अप्पसत्था मिच्छुक्कडसंकिलिट्ठस्स।।१६४।।

अर्थ – शुभ प्रकृतियों का अनुभागबंध विशुद्ध परिणामों से तीव्र(उत्कृष्ट) होता है। अशुभ प्रकृतियों का अनुभागबंध संक्लेश परिणामों से तीव्र होता है। विपरीत परिणामों से जघन्य अनुभागबंध होता है। इस प्रकार सब प्रकृतियों का अनुभागबंध जानना।।१६३।।

अर्थ – ४२ प्रशस्त (पुण्य) प्रकृतियाँ हैं उनका तीव्र अनुभागबंध विशुद्धतारूप गुण की उत्कृष्टता वाले जीव के होता है। ८२ अप्रशस्त (पाप) प्रकृतियाँ उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम वाले मिथ्यादृष्टि जीव के तीव्र अनुभाग सहित बंधती हैं।।१६४।।

कर्म प्रकृतियों का किन परिणामों से किसको अनुभाग बंध होता है

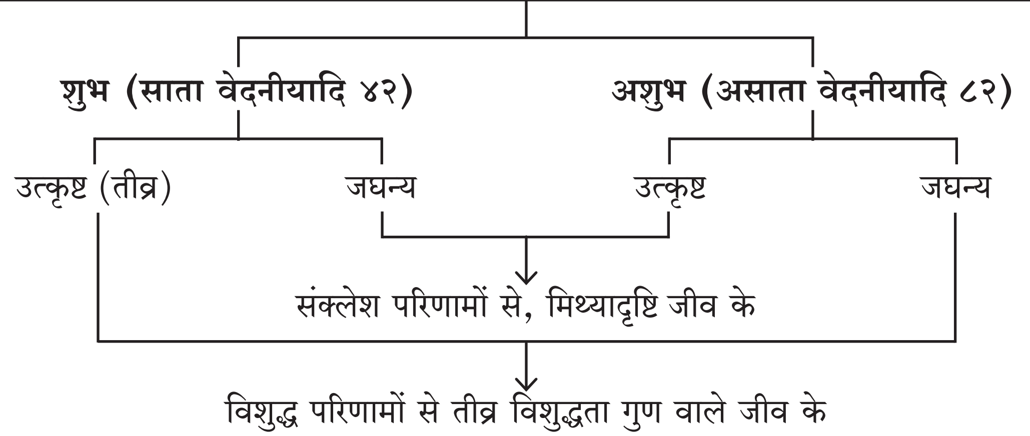

अभेद-भेद विवक्षा से प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतियाँ

अभेद विवक्षा से बंधयोग्य प्रकृतियाँ	**= १२०**
शुभ (प्रशस्त) प्रकृतियाँ	= ४२
अशुभ (अप्रशस्त) प्रकृतियाँ	= ८२
भेद विवक्षा से बंधयोग्य प्रकृतियाँ	**= १२४**
वर्णादि चतुष्क को प्रशस्त एवं अप्रशस्त दोनों में गिना है, इसलिए यहाँ बंधयोग्य १२४ प्रकृतियाँ बताई हैं	

आदाओ उज्जोओ मणुवतिरिक्खाउगं पसत्थासु।
मिच्छस्स होंति तिव्वा सम्माइट्ठिस्स सेसाओ।।१६५।।
मणुऔरालदुवज्जं विसुद्धसुरणिरयअविरदे तिव्वा।
देवाउ अप्पमत्ते खवगे अवसेसबत्तीसा।।१६६।।
उवघादहीणतीसे अपुव्वकरणस्स उच्चजससादे।
संमेलिदे हवंति हु खवगस्सऽवसेसबत्तीसा।।१६७।।
मिच्छस्संतिमणवयं णरतिरियाऊणि वामणरतिरिये।
एइंदियआदावं थावरणामं च सुरमिच्छे।।१६८।।
उज्जोवो तमतमगे सुरणारयमिच्छगे असंपत्तं।
तिरियदुगं सेसा पुण चदुगदिमिच्छे किलिट्ठे य।।१६९।।

तीव्र(उत्कृष्ट) अनुभागबंध :-

अर्थ - उन ४२ प्रशस्त प्रकृतियों में से आतप, उद्योत, मनुष्यायु और तिर्यंचायु - इन चार का बंध विशुद्ध मिथ्यादृष्टि के होता है। शेष ३८ प्रकृतियों का विशुद्ध सम्यग्दृष्टि के होता है।।१६५।।

अर्थ - सम्यग्दृष्टि की ३८ प्रकृतियों में से मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक और वज्रऋषभनाराचसंहनन - इन पाँचों का बंध विशुद्ध देव और नारकी असंयत सम्यग्दृष्टि करते है। देवायु का अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती करते है। शेष ३२ प्रकृतियों का बंध क्षपकश्रेणी वाले जीव के होता है।।१६६।।

अर्थ - अपूर्वकरण के छठे भाग की ३० व्युच्छिन्न प्रकृतियों में एक उपघात प्रकृति को छोड़कर शेष २९ प्रकृतियाँ और उच्च गोत्र, यशःकीर्ति, सातावेदनीय - ये सब मिलकर क्षपकश्रेणी वाले के पूर्व गाथा में कही ३२ प्रकृतियाँ जानना।।१६७।।

अर्थ - मिथ्यात्व गुणस्थान की व्युच्छिन्न प्रकृतियों में से अंत की सूक्ष्मादि ९ प्रकृतियों का और मनुष्यायु, तिर्यंचायु का बंध मिथ्यादृष्टि मनुष्य वा तिर्यंच करते हैं। एकेन्द्रिय आतप और स्थावर का बंध मिथ्यादृष्टि देव करते हैं।।१६८।।

अर्थ - सातवें तमस्तमक नामा नरक में उद्योत का, मिथ्यादृष्टि देव व नारकी असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, तिर्यंचद्विक का बाँधते हैं। शेष ६८ प्रकृतियों को चारों गति के संक्लेश परिणाम वाले मिथ्यादृष्टि जीव बाँधते हैं।।१६९।।

४२ प्रशस्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागबंध के स्वामी

उत्तर प्रकृतियाँ	कुल	स्वामी
आतप,उद्योत,मनुष्यायु,तिर्यंचायु	४	* विशुद्ध मिथ्यादृष्टि
अवशेष प्रकृतियाँ	३८	* विशुद्ध सम्यग्दृष्टि

मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक, वज्रऋषभनाराच संहनन	५	अनंतानुबंधी की विसंयोजना में स्थित अनिवृत्तिकरण के अंतिम समयवर्ती विशुद्ध देव-नारकी असंयत सम्यग्दृष्टि
देवायु	१	अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती
शेष ३२ अपूर्वकरण के छठे भाग में व्युच्छिन्न होने वाली ३० प्रकृतियों में उपघात को छोड़कर शेष २९, उच्च गोत्र, यशःकीर्ति,साता वेदनीय	३२ = २९ + ३	क्षपक श्रेणी वाले (जहाँ-जहाँ इन प्रशस्त प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है,वहाँ-वहाँ इसका तीव्र अनुभाग बंधता है
मनुष्यायु, तिर्यंचायु		विशुद्ध मनुष्य और तिर्यंच
आतप		विशुद्ध परिणााम का धारी देव अपनी आयु के छह महीने अवशेष रहने पर
उद्योत		सातवें नरक में उपशम सम्यक्त्व के सम्मुख हुआ विशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीव

८२ अप्रशस्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागबंध के स्वामी

उत्तर प्रकृतियाँ	कुल	स्वामी
समस्त अप्रशस्त प्रकृतियाँ	८२	**मिथ्यादृष्टि**
सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक, नरकायु, नरकद्विक	९	संक्लेश परिणाम युक्त मनुष्य और तिर्यंच
एकेन्द्रिय, स्थावर	२	उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम का धारी देव अपनी आयु के छह महीने अवशेष रहने पर
असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, तिर्यंचद्विक	३	देव और नारकी
अवशेष ६८ प्रकृतियाँ –	६८	चारों गतियों के संक्लेश परिणाम के धारक
ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ९, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, १६ कषाय, अरति, शोक, भय,	५६	उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त

जुगुप्सा, नपुंसकवेद, हुंडक संस्थान, अप्रशस्तवर्ण चतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिरादि ३, दुर्भगादि ३, नीच गोत्र, ५ अंतराय		
स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मध्य के ४ संस्थान, ४ संहनन	१२	तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त

वण्णचउक्कमसत्थं उवघादो खवगघादि पणवीसं।
तीसाणमवरबंधो सगसगवोच्छेदठाणम्हि।।१७०।।
अणथीणतियं मिच्छं मिच्छे अयदे हु बिदियकोधादी।
देसे तदियकसाया संजमगुणपच्छिदे सोलं।।१७१।।
आहारमप्पमत्ते पमत्तसुद्धे य अरदिसोगाणं।
णरतिरिये सुहुमतियं वियलं वेगुव्वछक्काओ।।१७२।।
सुरणिरये उज्जोवोरालदुगं तमतमम्हि तिरियदुगं।
णीचं च तिगदिमज्झिमपरिणामे थावरेयक्खं।।१७३।।
सोहम्मोत्ति य तावं तित्थयरं अविरदे मणुस्सम्हि।
चदुगदिवामकिलिट्ठे पण्णरस दुवे विसोहीये।।१७४।।
परघाददुगं तेजदु तसवण्णचउक्क णिमिणपंचिंदी।
अगुरुलहुं च किलिट्ठे इत्थिणउंसं विसोहीये।।१७५।।
सम्मो वा मिच्छो वा अट्ठ अपरियत्तमज्झिमो य जदि।
परियत्तमाणमज्झिममिच्छाइट्ठी दु तेवीसं।।१७६।।
थिरसुहजससाददुगं उभये मिच्छेव उच्चसंठाणं।
संहदिगमणं णरसुरसुभगादेज्जाण जुम्मं च।।१७७।।

जघन्य अनुभागबंध :-

अर्थ - अशुभ वर्णादि चार, उपघात, क्षय होने वाली घातिया कर्मों की २५ (अर्थात् ज्ञानावरण ५, अंतराय ५, दर्शनावरण ४, निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, संज्वलन ४) - इन सब ३० प्रकृतियों का अपनी-अपनी बंध-व्युच्छित्ति के स्थान पर जघन्य अनुभागबंध होता है।।१७०।।

अर्थ - अनंतानुबंधी कषाय , स्त्यानगृद्धादिक ३ और मिथ्यात्व - ये आठ मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में, दूसरी अप्रत्याख्यान कषाय असंयत गुणस्थान में, तीसरी प्रत्याख्यान कषाय देशसंयत गुणस्थान में - इन १६ प्रकृतियों को इन गुणस्थानों में जो संयमगुण के धारने को सम्मुख हुआ है ऐसा विशुद्ध परिणाम वाला जीव बाँधता है।।१७१।।

अर्थ – आहारकद्विक प्रमत्त गुणस्थान के सम्मुख हुए संक्लेशपरिणाम वाले अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती के; अरति, शोक अप्रमत्त गुणस्थान के सम्मुख हुए विशुद्ध प्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव के बंधती हैं। सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक, वैक्रियिक षट्क और ४ आयु – ये सोलह प्रकृतियाँ मनुष्य अथवा तिर्यंच के बंधती हैं।।१७२।।

अर्थ – देव और नारकी के उद्योत, औदारिकद्विक, सातवें तमस्तमक नरक में तिर्यंचद्विक, नीचगोत्र और नारकी के बिना तीन गति वाले तीव्र विशुद्धि और संक्लेश से रहित मध्यमपरिणामी जीवों के स्थावर, एकेन्द्रिय बंधती हैं।।१७३।।

अर्थ – भवनत्रिक से लेकर सौधर्मद्विक तक के देवों के आतप, नरक जाने को सम्मुख हुए अविरत गुणस्थानवर्ती मनुष्य के तीर्थंकर प्रकृति, चारों गति के संक्लेश परिणामी मिथ्यादृष्टि जीवों के १५ प्रकृतियाँ और चारों गति के विशुद्ध परिणामी जीवों के दो प्रकृतियाँ बंधती हैं।।१७४।।

अर्थ – परघात, उच्छ्वास, तैजसद्विक, त्रस चतुष्क, शुभ वर्णादि चतुष्क, निर्माण, पंचेंद्री और अगुरुलघु – ये १५ संक्लेशपरिणामी जीव के तथा स्त्रीवेद, नपुंसकवेद – ये दो विशुद्धपरिणामी जीव के बंधती हैं।।१७५।।

अर्थ – आगे की गाथा में जो ३१ प्रकृति कहेंगे, उनमें से पहली आठ प्रकृतियों को अपरिवर्तमान मध्यमपरिणाम वाला सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि जीव बाँधता है। शेष २३ प्रकृतियों को परिवर्तमान मध्यमपरिणामी मिथ्यादृष्टि जीव ही बाँधता है।।१७६।।

अर्थ – स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति, सातावेदनीय – इन चारों का जोड़ा सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि इन दोनों के बंधती है। उच्च गोत्र, ६ संस्थान, ६ संहनन, विहायोगति का जोड़ा, तथा मनुष्यगति-स्वर-सुभग-आदेय – इन चारों का जोड़ा, सब मिलकर २३ प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि के ही होता है।।१७७।।

समस्त कर्म प्रकृतियों के जघन्य अनुभागबंध के स्वामी

<table>
<tr><th>उत्तर प्रकृतियाँ</th><th>कुल</th><th colspan="2">स्वामी</th></tr>
<tr><td>अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, क्षपकश्रेणी में क्षय होने वाली घातियाकर्म की २५ (५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, निद्रा, प्रचला, हास्यादि ४, पुरुषवेद, ४ संज्वलन कषाय, ५ अंतराय)</td><td>३०</td><td colspan="2">जहाँ-जहाँ इन प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति होती है, वहाँ-वहाँ के जीव</td></tr>
<tr><td>अनंतानुबंधी कषाय ४, मिथ्यात्व, स्त्यानगृद्धित्रिक</td><td>८</td><td>मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती</td><td rowspan="3">संयम गुण धारण करने के सम्मुख ऐसे सर्वविशुद्ध जीव</td></tr>
<tr><td>अप्रत्याख्यानावरण कषाय</td><td>४</td><td>असंयत गुणस्थानवर्ती</td></tr>
<tr><td>प्रत्याख्यानारण कषाय</td><td>४</td><td>देशसंयत गुणस्थानवर्ती</td></tr>
</table>

आहारकद्विक (प्रशस्त प्रकृति)	२	प्रमत्त गुणस्थान के सम्मुख हुए संक्लेशी अप्रमत्तविरत गुणस्थानवर्ती जीव
अरति, शोक (अप्रशस्त प्रकृति)	२	अप्रमत्त गुणस्थान के सम्मुख हुए विशुद्ध प्रमत्तविरत गुणस्थानवर्ती जीव
सूक्ष्मत्रिक,विकलत्रिक,वैक्रियिक षट्क,४ आयु	१६	मनुष्य और तिर्यंच
उद्योत, औदारिकद्विक	३	संक्लेश परिणामी देव और नारकी
तिर्यंचद्विक, नीच गोत्र	३	सातवें नरक में विशुद्ध जीव
स्थावर, एकेन्द्रिय	२	नारकी को छोड़कर शेष ३ गति वाले मध्यम परिणामी जीव
आतप	१	संक्लेश परिणामी भवनत्रिक और सौधर्मद्विक देव
तीर्थंकर प्रकृति	१	नरक जाने के सम्मुख असंयत गुणस्थानवर्ती मनुष्य
परघात, उच्छ्वास, त्रसचतुष्क, तैजसद्विक, प्रशस्त वर्णचतुष्क, निर्माण,पंचेन्द्रिय, अगुरुलघु (प्रशस्त प्रकृतियाँ)	१५	चारों गतियों के संक्लेशी जीव
स्त्रीवेद, नपुंसकवेद (अप्रशस्त प्रकृतियाँ)	२	चारों गतियों के विशुद्ध जीव
स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यश:कीर्ति-अयश:कीर्ति, साता-असाता	८	अपरिवर्तमान मध्यम परिणामी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव
उच्च गोत्र, ६ संस्थान, ६ संहनन, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, मनुष्यद्विक, सुस्वर-दुस्वर, सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय	२३	परिवर्तमान मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टि जीव

अपरिवर्तमान मध्यम परिणाम	परिवर्तमान मध्यम परिणाम
* ऐसे मध्यम संक्लेश और विशुद्धरूप परिणाम जो प्रतिसमय केवल वर्धमान (बढ़ते ही जायें) और हीयमान (घटते ही जायें) * यहाँ परिणाम पलटकर उल्टा नहीं आता है	* जिस मध्यम परिणाम में स्थित होकर और परिणाामांतर को प्राप्त होकर पुनः उसी परिणाम को प्राप्त होना शक्य है * जहाँ परिणाम पलटकर उल्टा आना शक्य है

घादीणं अजहण्णोऽणुक्कस्सो वेयणीयणामाणं।
अजहण्णमणुक्कस्सो गोदे चदुधा दुधा सेसा।।१७८।।

अर्थ – चारों घातिया कर्मों का अजघन्य अनुभागबंध, वेदनीय और नामकर्म का अनुत्कृष्ट अनुभागबंध, और गोत्रकर्म का अजघन्य तथा अनुकृष्ट अनुभागबंध – इन सबका सादि, अनादि, ध्रुव,अध्रुव के भेद से चार प्रकार का बंध हैं और शेष के सादि और अध्रुव दो ही प्रकार हैं।।१७८।।

मूल कर्म में उत्कृष्टादि अनुभागबंध के सादि आदि भेद

कर्म	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट	जघन्य	अजघन्य
४ घातिया	२	२	२	४
वेदनीय, नाम	२	४	२	२
आयु	२	२	२	२
गोत्र	२	४	२	४
	४ = अनादि, सादि, ध्रुव, अध्रुव			
	२ = सादि, अध्रुव			

सत्थाणं धुवियाणमणुक्कस्समसत्थगाण धुवियाणं।
अजहण्णं च य चदुधा सेसा सेसाणयं च दुधा।।१७९।।

अर्थ – ध्रुव बंधी ८ प्रशस्त प्रकृतियों के अनुकृष्ट अनुभागबंध के, ध्रुव बंधी ३९ अप्रशस्त प्रकृतियों के अजघन्य अनुभागबंध के सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव चार प्रकार का हैं। ध्रुव बंधी प्रकृतियों के जघन्यादि तीन भेद तथा ७३ अध्रुव प्रकृतियों के जघन्यादि चारों भेद – इन सबके सादि और अध्रुव ये दो ही प्रकार हैं।।१७९।।

उत्तर प्रकृतियों में उत्कृष्टादि अनुभागबंध के सादि आदि भेद

उत्तर प्रकृतियाँ	कुल	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट	जघन्य	अजघन्य
समस्त प्रशस्त ध्रुव बंधी :– तेजसद्विक,अगुरुलघु,निर्माण,वर्णचतुष्क	८	२	४	२	२
समस्त अप्रशस्त ध्रुव बंधी :– ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, ५ अंतराय, उपघात	३९	२	२	२	४
समस्त अध्रुव बंधी	७३	२	२	२	२

सत्ती य लदादारूअट्ठीसेलोवमाहु घादीणं।
दारूअणंतिमभागोत्ति देसघादी तदो सव्वं।।१८०।।

अर्थ – घातिया कर्मों की फल देने की शक्ति (स्पर्द्धक) लता, दारू, अस्थि और शैल की उपमा वाले चार प्रकार की होती हैं। लता से दारू भाग के अनंतवें भाग तक शक्तिरूप स्पर्द्धक देशघाति हैं और शेष बहुभाग से लेकर शैलभाग तक के स्पर्द्धक सर्वघाति हैं।।१८०।।

पहले समझे :–

देशघाति-सर्वघाति स्पर्द्धक

देशघाति स्पर्द्धक → उदय होते हुए आत्मा के गुण का अंश प्रकट होता है

सर्वघाति स्पर्द्धक → उदय होते हुए आत्मा के गुण का अंश भी प्रकट नहीं होता है

उदाहरण :–

अवधिज्ञानावरण

देशघाति स्पर्द्धक → का उदय होने पर → अवधिज्ञान पाया जाता हैं

सर्वघाति स्पर्द्धक → का उदय होने पर → अवधिज्ञान का अंश भी नहीं पाया जाता

देशघाति प्रकृति

देशघाति स्पर्द्धक — सर्वघाति स्पर्द्धक

सर्वघाति प्रकृति

→ सर्वघाति स्पर्द्धक

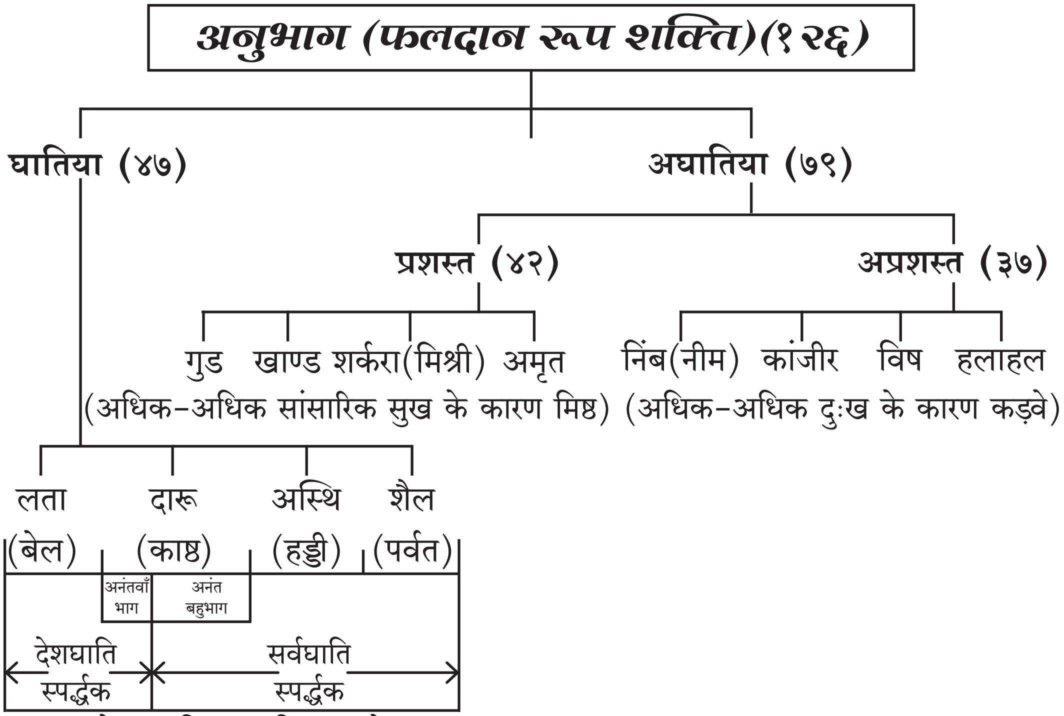

(उत्तरोतर अधिक-अधिक कठोर)
वैसे ही स्पर्द्धक की अपने फल देने की
शक्तिरूप अनुभाग अधिक-अधिक है

देसोत्ति हवे सम्मं तत्तो दारूअणंतिमे मिस्सं।
सेसा अणंतभागा अट्ठिसिलाफड्ढया मिच्छे।।१८१।।
आवरणदेसघादंतरायसंजलणपुरिससत्तरसं।
चदुविधभावपरिणदा तिविधा भावा हु सेसाणं।।१८२।।
अवसेसा पयडीओ अघादिया घादियाण पडिभागा।
ता एव पुण्णपावा सेसा पावा मुणेयव्वा।।१८३।।

अर्थ - मिथ्यात्व प्रकृति के लता भाग से दारू भाग के अनंतवें भाग तक देशघाति स्पर्द्धक हैं, वे सब सम्यक्त्व प्रकृतिरूप हैं। दारूभाग के अनंत बहुभाग के अनंतवें भागप्रमाण जुदी जाति के ही सर्वघाति स्पर्द्धक मिश्र प्रकृति के जानना। शेष अनंत बहुभाग तथा अस्थिभाग, शैलभागरूप स्पर्द्धक मिथ्यात्व प्रकृति के होते हैं।।१८१।।

अर्थ - आवरणों में देशघाति की ७ प्रकृतियाँ (४ ज्ञानावरण, ३ दर्शनावरण), अंतराय ५, संज्वलन ४ और पुरुषवेद - ये १७ प्रकृतियाँ शैल आदि चारों तरह के भावरूप परिणमन करती हैं और शेष सब प्रकृतियों के शैल आदि तीन भावरूप परिणमन होते हैं,(केवल लतारूप परिणमन नहीं होता)।।१८२।।

अर्थ – शेष अघातिया कर्मों की प्रकृतियाँ घातिया कर्मों की तरह प्रतिभागसहित जाननी अर्थात् तीन भावरूप परिणमती हैं और वे ही पुण्यरूप तथा पापरूप होती हैं। तथा घातिया कर्मों की सब प्रकृतियाँ पापरूप ही हैं।।१८३।।

कर्मों मे पुण्यरूप-पापरूप अनुभाग

- **घातिया अनुभाग**
  - सिर्फ पापरूप
- **अघातिया अनुभाग**
  - पुण्यरूप
  - पापरूप

गुडखंडसक्करामियसरिसा सत्था हु णिंबकंजीरा।
विसहालाहलसरिसाऽसत्था हु अघादिपडिभागा।।१८४।।

अर्थ – अघातिया कर्मों में प्रशस्त प्रकृतियों के शक्तिभेद गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत के समान जानने। अप्रशस्त प्रकृतियों के निंब, कांजीर, विष, हलाहल के समान शक्तिभेद (स्पर्द्धक) जानना।।१८४।।

कर्मों में अनुभाग के भाव के प्रकार

कर्म	स्पर्द्धक	४	३	२	१
मिथ्यात्व	सर्वघाति	×	शैल, अस्थि, दारू का अनंत बहुभाग का बहुभाग	अस्थि, दारू का अनंत बहुभाग का बहुभाग	दारू का अनंत बहुभाग का बहुभाग
सम्यक्‌मिथ्यात्व (मिश्र)	जुदी जाति के सर्वघाति	×	×	×	दारू का बहुभाग का अनंतवाँ भाग
सम्यक्त्व प्रकृति	देशघाति	×	×	दारू का अनंतवाँ भाग, लता	लता
देशघाति १७ प्रकृतियाँ (४ ज्ञानावरण, ३ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अंतराय, पुरुषवेद)		शैल, अस्थि, दारू, लता	अस्थि, दारू, लता	दारू, लता	लता

सर्वघाति १९ प्रकृतियाँ (केवल ज्ञानावरण, केवल दर्शनावरण, ५ निद्रा, संज्वलन बिना १२ कषाय	×	शैल, अस्थि, दारू का अनंत बहुभाग	अस्थि, दारू का अनंत बहुभाग	दारू का अनंत बहुभाग
पुरुषवेद को छोड़कर ८ नोकषाय	शैल, अस्थि, दारू, लता	अस्थि, दारू, लता	दारू, लता	×
अघातिया कर्म की ४२ प्रशस्त प्रकृतियाँ	अमृत,शर्करा, खाण्ड, गुड़	शर्करा, खाण्ड, गुड़	खाण्ड, गुड़	×
अघातिया कर्म की ३७ अप्रशस्त प्रकृतियाँ	हलाहल,विष, कांजीर, निंब	विष, कांजीर, निंब	कांजीर, निंब	×

प्रदेश बंध

(कर्मरूप पुद्‌गलों का आत्मा के प्रदेशों के साथ संबंध होना)

एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहिं कम्मणो जोग्गं।
बंधदि सगहेदूहिं य अणादियं सादियं उभयं।।१८५।।
एयसरीरोगाहियमेयक्खेत्तं अणेयखेत्तं तु।
अवसेसलोयखेत्तं खेत्तणुसारिट्ठियं रूवी।।१८६।।

अर्थ – एकक्षेत्र में अवगाहरूप रहनेवाले जो कर्मरूप परिणमने योग्य अनादि, सादि और उभयरूप पुद्‌गलद्रव्य सर्व प्रदेशों द्वारा (मिथ्यात्वादिक) के निमित्त से बांधता है।।१८५।।

अर्थ – एक शरीर की अवगाहना द्वारा रोका हुआ जो आकाश उसे एक क्षेत्र कहते हैं। अव-शेष लोक को अनेकक्षेत्र कहते हैं। उस-उस क्षेत्र के अनुसार रहनेवाला रूपी जो पुद्‌गलद्रव्य उसका परिमाण त्रैराशिक से जानना।।१८६।।

एकक्षेत्र-अनेक क्षेत्र

एकक्षेत्र	= सूक्ष्म निगोदिया जीव की जघन्य अवगाहना (* प्रदेशों की अपेक्षा अनेक क्षेत्र, * विवक्षा से एकक्षेत्र) बहुत जीव इस अवगाहना के धारक है, इसलिए मुख्यता से एकक्षेत्र कहा है	= $\frac{\text{घनांगुल}}{\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}}$
अनेक क्षेत्र	= सम्पूर्ण लोक – एक क्षेत्र	= लोक – $\frac{\text{घनांगुल}}{\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}}$

क्षेत्र में पुद्गल द्रव्य का परिमाण

एकक्षेत्र का द्रव्य	$= \frac{\text{समस्त पुद्गल द्रव्य}}{\text{लोक}} \times \frac{\text{घनांगुल}}{\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}}$
अनेक क्षेत्र का द्रव्य	$= \frac{\text{समस्त पुद्गल द्रव्य}}{\text{लोक}} \times \left(\text{लोक} - \frac{\text{घनांगुल}}{\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}}\right)$

एयाणेयक्खेत्तट्ठियरूविअणंतिमं हवे जोग्गं।
अवसेसं तु अजोग्गं सादि अणादी हवे तत्थ।।१८७।।

अर्थ - एक तथा अनेक क्षेत्रों में ठहरा हुआ जो पुद्गलद्रव्य उसके अनंतवें भाग पुद्गल परमाणुओं का समूह कर्मरूप होने योग्य है और शेष (अनंत बहुभाग प्रमाण) द्रव्य कर्मरूप होने के अयोग्य है। सभी भेदों(चारों) में सादि द्रव्य व अनादि द्रव्य जानना।।१८७।।

पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा से भेद

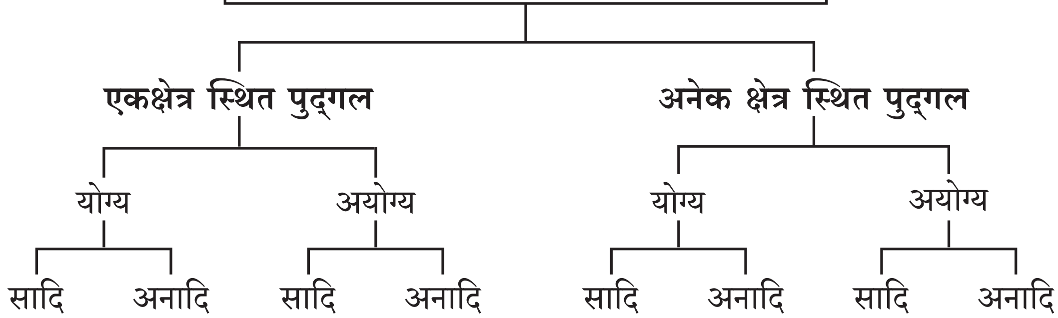

योग्य द्रव्य	कर्मरूप होने के योग्य
अयोग्य द्रव्य	कर्मरूप होने के अयोग्य
सादि द्रव्य	अतीत काल में जीव द्वारा जो ग्रहण किया गया हो
अनादि द्रव्य	अनादिकाल से लेकर जो कभी भी जीव के द्वारा ग्रहण न किया हो

योग्य और अयोग्य द्रव्य का परिमाण

योग्य द्रव्य	$\frac{\text{क्षेत्र स्थित द्रव्य}}{\text{अनंत}}$	एकक्षेत्र एवं अनेक क्षेत्र दोनों का योग्य-अयोग्य द्रव्य इस विधि से ही प्राप्त होगा
अयोग्य द्रव्य	$\frac{\text{क्षेत्र स्थित द्रव्य}}{\text{अनंत}} \times (\text{अनंत}-१)$	

जेट्ठे समयपबद्धे अतीदकाले हदेण सव्वेण।
जीवेण हदे सव्वं सादी होदित्ति णिद्दिट्ठं।।१८८।।

अर्थ – (उत्कृष्ट योगों के परिणमन से उत्पन्न) जो उत्कृष्ट समयप्रबद्ध प्रमाण को अतीत काल के समयों से गुणा करें। फिर जो प्रमाण आवे उसे सब जीवराशि से गुणा करने पर सब जीवों के सादि द्रव्य का प्रमाण होता है।।१८८।।

सादि और अनादि द्रव्य का परिमाण

सब जीवों का सादि द्रव्य	= उत्कृष्ट समयप्रबद्ध × समस्त जीव राशि
एक जीव का तीन काल का सादि द्रव्य	= उत्कृष्ट समयप्रबद्ध / १ × अतीत काल के समय *(= सं.आवली × सिद्ध राशि)*
सब जीवों का तीन काल का सादि द्रव्य	= उपर्युक्त × समस्त जीव राशि
अनादि द्रव्य	= पुद्‌गल द्रव्य – सादि द्रव्य

सगसगखेत्तगयस्स य अणंतिमं जोग्गदव्वगयसादी।
सेसं अजोग्गसंगयसादी होदित्ति णिद्दिट्ठं।।१८९।।

अर्थ – अपने-अपने एक तथा अनेक-क्षेत्र में रहनेवाले पुद्‌गल द्रव्य के अनंतवें भाग योग्य सादि द्रव्य है और शेष (अनंत बहुभाग) अयोग्य सादि द्रव्य है – ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।।१८९।।

योग्य और अयोग्य सादि द्रव्य का परिमाण

योग्य सादि द्रव्य	= सादि द्रव्य / अनंत	एकक्षेत्र एवं अनेक क्षेत्र दोनों का सादि योग्य-अयोग्य द्रव्य इस विधि से ही जानना
अयोग्य सादि द्रव्य	= सादि द्रव्य / अनंत × (अनंत-१)	

सगसगसादिविहीणे जोग्गाजोग्गे य होदि णियमेण।
जोग्गाजोग्गाणं पुण अणादिदव्वाण परिमाणं।।१९०।।

अर्थ – अपने-अपने क्षेत्र स्थित योग्य और अयोग्य द्रव्य में से सादि योग्य और सादि अयोग्य द्रव्य को कम करने से अपना-अपना अनादि योग्य और अनादि अयोग्य द्रव्य का परिमाण होता है।।१९०।।

योग्य और अयोग्य अनादि द्रव्य का परिमाण

योग्य अनादि द्रव्य	= कुल योग्य द्रव्य – योग्य सादि द्रव्य	एक-अनेक क्षेत्र का अनादि द्रव्य भी जानना
अयोग्य अनादि द्रव्य	= कुल अयोग्य द्रव्य – अयोग्य सादि द्रव्य	

एकक्षेत्र-अनेक क्षेत्र की पूर्ण तालिका

नाम	समस्त सामान्य प्रमाण	एकक्षेत्र संबंधी प्रमाण	अनेकक्षेत्र संबंधी प्रमाण
क्षेत्र	लोक	$\frac{\text{घनांगुल}}{\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}}$	$\text{लोक} - \frac{\text{घनांगुल}}{\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}}$
द्रव्य	सर्व पुद्गल	$\frac{\text{सर्व पुद्गल}}{\text{लोक}} \times \frac{\text{घनांगुल}}{\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}}$	$\frac{\text{सर्व पुद्गल}}{\text{लोक}} \times \left(\text{लोक} - \frac{\text{घनांगुल}}{\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}}\right)$
योग्य द्रव्य	$\frac{\text{सर्व पुद्गल}}{\text{अनंत}}$	$\frac{\frac{\text{सर्व पुद्गल}}{\text{लोक}} \times \frac{\text{घनांगुल}}{\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}}}{\text{अनंत}}$	$\frac{\frac{\text{सर्व पुद्गल}}{\text{लोक}} \times \left(\text{लोक} - \frac{\text{घनांगुल}}{\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}}\right)}{\text{अनंत}}$
अयोग्य द्रव्य	$\frac{\text{सर्व पुद्गल}}{\text{अनंत}} \times (\text{अनंत} - १)$	$\frac{\frac{\text{सर्व पुद्गल}}{\text{लोक}} \times \frac{\text{घनांगुल}}{\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}}}{\text{अनंत}} \times (\text{अनंत} - १)$	$\frac{\frac{\text{सर्व पुद्गल}}{\text{लोक}} \times \left(\text{लोक} - \frac{\text{घनांगुल}}{\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}}\right)}{\text{अनंत}} \times (\text{अनंत} - १)$
सादि द्रव्य	उ.समयप्रबद्ध × अतीत काल × सर्व जीव	$\frac{\text{सामान्य सादि द्रव्य}}{\text{लोक}} \times \frac{\text{घनांगुल}}{\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}}$	$\frac{\text{सामान्य सादि द्रव्य}}{\text{लोक}} \times \left(\text{लोक} - \frac{\text{घनांगुल}}{\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}}\right)$

एकक्षेत्र-अनेक क्षेत्र की पूर्ण तालिका

नाम	समस्त सामान्य प्रमाण	एकक्षेत्र संबंधी प्रमाण	अनेकक्षेत्र संबंधी प्रमाण
योग्य सादि द्रव्य	सादि द्रव्य / अनंत	एकक्षेत्र सादि द्रव्य / अनंत	अनेकक्षेत्र सादि द्रव्य / अनंत
अयोग्य सादि द्रव्य	सादि द्रव्य / अनंत × (अनंत–१)	एकक्षेत्र सादि द्रव्य / अनंत × (अनंत–१)	अनेकक्षेत्र सादि द्रव्य / अनंत × (अनंत–१)
अनादि द्रव्य	सर्व पुद्गल–सादि द्रव्य	एकक्षेत्र द्रव्य–एकक्षेत्र सादि द्रव्य	अनेकक्षेत्र द्रव्य–अनेकक्षेत्र सादि द्रव्य
योग्य अनादि द्रव्य	अनादि द्रव्य / अनंत	एकक्षेत्र अनादि द्रव्य / अनंत	अनेकक्षेत्र अनादि द्रव्य / अनंत
अयोग्य अनादि द्रव्य	अनादि द्रव्य / अनंत ×(अनंत–१)	एकक्षेत्र अनादि द्रव्य / अनंत ×(अनंत–१)	अनेकक्षेत्र अनादि द्रव्य / अनंत × (अनंत–१)

समयप्रबद्ध में किस प्रकार के परमाणुओं का ग्रहण

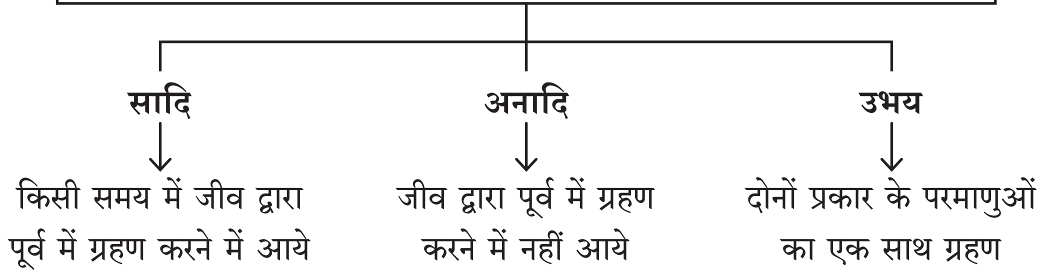

सयलरसरूवगंधेहिं परिणदं चरमचदुहिं फासेहिं।
सिद्धादोऽभव्वादोऽणंतिमभागं गुणं दव्वं।।१९१।।

अर्थ – वह समयप्रबद्ध सर्व – पाँच प्रकार के रस, पाँच प्रकार के वर्ण, दो प्रकार की गंध तथा शीतादि चार अंत के स्पर्श – इन से सहित परिणमता हुआ, सिद्धराशि के अनंतवें भाग अथवा अभव्य राशि से अनंतगुणा कर्मरूप पुद्‍गलद्रव्य जानना।।१९१।।

समयप्रबद्ध

स्वरुप	एक समय में बंधने वाले कर्म परमाणुओं का समूह
प्रमाण	सिद्धराशि के अनंतवे भाग अथवा अभव्यराशि से अनंत गुणा

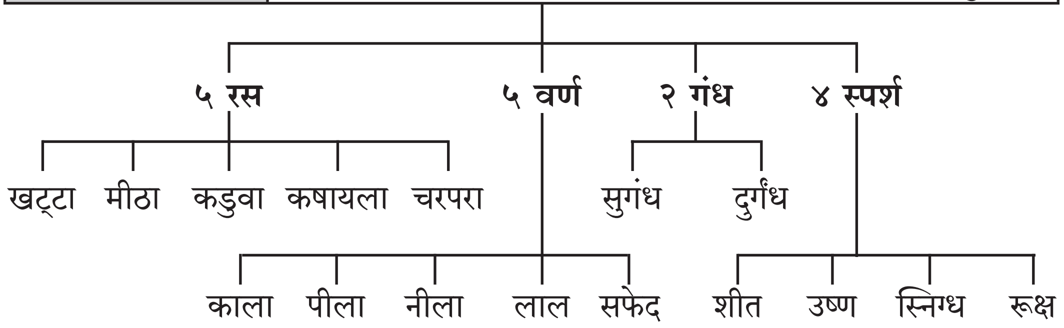

आउगभागो थोवो णामागोदे समो तदो अहियो।
घादितियेवि य तत्तो मोहे तत्तो तदो तदिये।।१९२।।
सुहदुक्खणिमित्तादो बहुणिज्जरगोत्ति वेयणीयस्स।
सव्वेहिंतो बहुगं दव्वं होदित्ति णिद्दिट्ठं।।१९३।।
सेसाणं पयडीणं ठिदिपडिभागेण होदि दव्वं तु।
आवलिअसंखभागो पडिभागो होदि णियमेण।।१९४।।
बहुभागे समभागो अट्ठण्हं होदि एक्कभागम्हि।
उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु।।१९५।।

अर्थ – सब मूल प्रकृतियों में आयुकर्म का हिस्सा थोड़ा है। नाम और गोत्र कर्म का हिस्सा आपस में समान है, तो भी आयुकर्म के भाग से अधिक है। अंतराय-दर्शनावरण-ज्ञानावरण इन तीन घातिया कर्मों का भाग आपस में समान है, तो भी नाम-गोत्र के भाग से अधिक है। इससे अधिक मोहनीय कर्म का भाग है तथा मोहनीय से भी अधिक वेदनीय कर्म का भाग है।।१९२।।

अर्थ – वेदनीय कर्म सुख-दुःख में निमित्त होता है, इसलिये इसकी निर्जरा भी बहुत होती है। इसीलिए सब कर्मों से अधिक द्रव्य इस वेदनीय कर्म का होता है; ऐसा परमागम में कहा है।।१९३।।

अर्थ – वेदनीय को छोड़कर शेष सब मूल प्रकृतियों के स्थिति प्रतिभाग से द्रव्य होता है। इनके विभाग करने में प्रतिभागहार नियम से आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण जानना।।१९४।।

अर्थ – बहुभाग का समान भाग करके आठ प्रकृतियों को देना और शेष एकभाग में पहले कहे हुए क्रम से (आवली के असंख्यातवें भाग का) भाग देते जाना। उसमें भी जो बहुत द्रव्य वाला हो उसको बहुभाग देना। ऐसा अंत तक प्रतिभाग करते जाना।।१९५।।

किस गुणस्थान में कौन से कर्म का बंध

गुणस्थान	मूल कर्म		
१	आठों	चारों आयु	जितने कर्मों का जहाँ बंध होता हैं, वहाँ समयप्रबद्ध में उतने ही कर्मों का बँटवारा जानना
२		नरकायु नहीं	
४		नरक-तिर्यंच आयु नहीं	
५-७		सिर्फ देवायु	
८-९	सात	आयु नहीं	
१०	छह	मोहनीय भी नहीं	
११-१३	एक	सिर्फ वेदनीय	

आगे की तालिकाओं में प्रयुक्त कुछ संदृष्टियाँ

	संदृष्टि		संदृष्टि
समयप्रबद्ध	सप्र.	**बहुभाग**	८/९
प्रतिभागहार = आवली/अंस.	९	**एकभाग**	१/९
सर्वत्र आगे की गाथाओं में इसी संदृष्टि से जानें			

मूल प्रकृतियों में समयप्रबद्ध का विभाजन, कारण तथा द्रव्य

मूल कर्म	विभाजन	कारण	द्रव्य		
			सम भाग	**देय भाग**	**कुल द्रव्य**
संदृष्टि से			सप्र. $\times \frac{८}{९}$	सप्र. $\times \frac{१}{९}$	
विभाजन			बहुभाग के समान भाग करें	एकभाग को बहुभाग–बहुभाग के क्रम से देना	दोनों का जोड़
वेदनीय	सबसे अधिक	*सुख-दुःख का कारण *इसलिये निर्जरा भी बहुत अधिक	सप्र. $\times \frac{८}{९} \times \frac{१}{८}$	सप्र. $\times \frac{१}{९} \times \frac{८}{९}$	
मोहनीय	वेदनीय से कम	स्थिति सर्व अधिक		सप्र. $\times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{८}{९}$	
ज्ञानावरण **दर्शनावरण** **अंतराय**	*मोहनीय से कम *तीनों समान	*स्थिति मोहनीय से कम *तीनों की समान		सप्र. $\times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{८}{९} \times \frac{१}{३}$	
नाम **गोत्र**	*ज्ञानावरणादि से कम *दोनों समान	दोनों की समान		सप्र. $\times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{८}{९} \times \frac{१}{२}$	
आयु	सबसे कम	सबसे कम स्थिति		सप्र. $\times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९}$	

बहुभाग-समभाग आदि को समझने के लिए दृष्टांत

मानें –	सर्व द्रव्य = ४०९६	बँटवारा = ४ जगह	प्रतिभाग = ८

	कुल	१	२	३	४
सम भाग (बहुभाग के समान भाग करें)	४०९६ ×७ ८ = ३५८४	३५८४ ४ = ८९६	३५८४ ४ = ८९६	३५८४ ४ = ८९६	३५८४ ४ = ८९६
देय भाग (एकभाग को बहुभाग-बहुभाग के क्रम से देना)	४०९६ ×१ ८ = ५१२	५१२×७ ८ = ४४८	५१२×१×७ ८ ८ = ५६	५१२×१×१×७ ८ ८ ८ = ७	५१२×१×१×१ ८ ८ ८ = १
कुल द्रव्य	दोनों का जोड़	**१३४४**	**९५२**	**९०३**	**८९७**
		——— अनुक्रम से हीन-हीन द्रव्य ———→			

उत्तरपयडीसु पुणो मोहावरणा हवंति हीणकमा।
अहियकमा पुण णामाविग्घा य ण भंजणं सेसे।।१९६।।

अर्थ – उत्तर प्रकृतियों में मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण के भेदों में क्रम से हीन-हीन द्रव्य है और नामकर्म, अंतराय कर्म के भेदों में क्रम से अधिक-अधिक है। शेष कर्मों में बँटवारा नहीं होता है।।१९६।।

उत्तर प्रकृतियों में बँटवारे का क्रम

कर्म	क्रम	उदाहरण
ज्ञानावरण,दर्शनावरण,मोहनीय	हीन क्रम	मतिज्ञानावरण से श्रुतज्ञानावरण का कम
नामकर्म, अंतराय	अधिक क्रम	दानांतराय से लाभांतराय का अधिक
वेदनीय, गोत्र, आयु	बँटवारा नहीं,क्योंकि १-१ ही प्रकृति एक काल में बंधती हैं	

सव्वावरणं दव्वं अणंतभागो दु मूलपयडीणं।
सेसा अणंतभागा देसावरणं हवे दव्वं।।१९७।।

अर्थ – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय – इन तीन मूल प्रकृतियों के अपने-अपने द्रव्य में यथायोग्य अनंत का भाग देने से एक भाग सर्वघाति का द्रव्य होता है और शेष अनंत बहुभाग प्रमाण द्रव्य देशघाति प्रकृतियों का है।।१९७।।

घातिया कर्मों में सर्वघाति-देशघाति द्रव्य का बँटवारा

द्रव्य	प्रमाण	भाग	किन प्रकृतियों में विभक्त
सर्वघाति	$\frac{\text{अपना द्रव्य}}{\text{अनंत}}$	एकभाग	दोनों - सर्वघाति एवं देशघाति में विभाजित
देशघाति	$\frac{\text{अपना द्रव्य}}{\text{अनंत}} \times (\text{अनंत}-१)$	बहुभाग	सिर्फ देशघाति प्रकृतियों में विभाजित
ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय में ही बँटवारा है,अंतराय का सर्व द्रव्य देशघाति ही है			

देसावरणण्णोण्णब्भत्थं तु अणंतसंखमेत्तं खु।
सव्वावरणधणट्ठं पडिभागो होदि घादीणं।।१९८।।

अर्थ - चार ज्ञानावरणादि देशघाति प्रकृतियों की अन्योन्याभ्यस्तराशि अनंत संख्या-प्रमाण है। वही राशि सर्वघाती प्रकृतियों के द्रव्य-प्रमाण को निकालने के लिये घातिया कर्मों का प्रतिभाग जानना।।१९८।।

मतिज्ञानावरणादि २५ देशघाति प्रकृतियों का गुणहानि क्रम से विभाजन

शैल का अंतिम गुणहानि का द्रव्य	$= \frac{\text{ज्ञानावरण का कुल द्रव्य}}{\text{अन्योन्याभ्यस्त राशि}-१}$	कुल सर्व घाति द्रव्य
	$= \text{सप्र.} \times \frac{८}{९} \times \frac{१}{८} \times \frac{१}{\text{अनंत}-१}$	
आगे की गुणहानि का द्रव्य	$= \text{कुल द्रव्य} \times \frac{२}{\text{अनंत}-१}$	
आगे-आगे गुणहानि का द्रव्य	= पीछे से दोगुणा-दोगुणा	
¦	¦	
अस्थि		
दारू का बहुभाग		
दारू के बहुभाग की प्रथम गुणहानि का द्रव्य	$= \text{शैल की अंतिम गुणहानि का द्रव्य} \times \frac{\text{यथायोग्य अनंत}^{*}}{२}$	

दारू के एकभाग की अंतिम गुणहानि का द्रव्य	= दारू के बहुभाग की प्रथम गुणहानि × २	कुल देश घाति द्रव्य
आगे-आगे गुणहानि का द्रव्य	= पीछे से दोगुणा-दोगुणा ¦	
¦	¦	
लता की प्रथम गुणहानि का द्रव्य	= शैल की अंतिम गुणहानि का द्रव्य × अनंत×अनंत** / २	
**** सर्वघाति संबंधी अन्योन्याभ्यस्त राशि = यथायोग्य अनंत***		
**** सर्व नाना गुणहानि से प्राप्त अन्योन्याभ्यस्त राशि = अनंत×अनंत***		

सव्वावरणं दव्वं विभंजणिज्ज्ञं तु उभयपयडीसु।
देसावरणं दव्वं देसावरणेसु णेविदरे।।१९९।।

अर्थ – सर्वघाती द्रव्य का सर्वघाती और देशघाति दोनों प्रकृतियों में विभाग करके देना। देशघाति द्रव्य का विभाग देशघाति में ही देना, सर्वघाति (केवलज्ञानावरणादि) प्रकृतियों में नहीं देना।।१९९।।

इस गाथा के विषय की तालिका पृष्ठ क्र. -(गाथा १९७)- पर देखें

बहुभागे समभागो बंधाणं होदि एक्कभागम्हि।
उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु।।२००।।

अर्थ – जिनका एक समय में बंध हो उन प्रकृतियों में अपने-अपने पिंड-द्रव्य के बहुभाग को तो बराबर बाँटकर अपनी-अपनी उत्तर प्रकृतियों में समान द्रव्य देना और शेष एक भाग में भी पूर्व कहे क्रम से ही भाग कर-करके बहुभाग बहुत द्रव्य वाले को देना।।२००।।

एक साथ बंध होनेवाली उत्तर प्रकृतियों में विभाग

समान भाग	(अपना-अपना पिंड द्रव्य)का बहुभाग आवली असं. ――――― बराबर भाग		समान भाग और शेष एक भाग में से अपना-अपना हिस्सा जोड़ने पर उस-उस प्रकृति का कुल द्रव्य जानना
शेष एक भाग	ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय	* क्रम से हीन-हीन * प्रथम प्रकृति से अंतिम प्रकृति तक घटता-२ देना	
	नामकर्म, अंतराय	* क्रम से अधिक-अधिक * अंतिम प्रकृति से प्रथम प्रकृति तक घटता-२ देना	

वेदनीय, आयु, गोत्र उत्तर प्रकृतियों में विभाग

* एक समय में एक ही बंधती है
* मूल प्रकृतिवत् इनका द्रव्य जानना

घादितियाणं सगसगसव्वावरणीयसव्वदव्वं तु।
उत्तकमेण य देयं विवरीयं णामविग्घाणं।।२०१।।

अर्थ - ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय - इन ३ घातिया कर्मों का क्रम से प्रथम प्रकृति से अंत की प्रकृति पर्यंत अपना-अपना सर्वघाती द्रव्य घटता-घटता देना। और नाम तथा अंतराय की प्रकृतियों का द्रव्य विपरीत देना।।२०१।।

ज्ञानावरण कर्म की रचना

ज्ञानावरण कर्म का कुल द्रव्य	= समयप्रबद्ध का समान भाग + देय भाग (गा. १९५)
	= सप्र.× $\frac{८}{९}$ × $\frac{१}{८}$ + सप्र.× $\frac{१}{९}$ × $\frac{१}{९}$ × $\frac{१}{९}$ × $\frac{८}{९}$ × $\frac{१}{३}$
	= सर्वघाति द्रव्य + देशघाति द्रव्य
मानें:-	= $\frac{\text{कुल द्रव्य}}{\text{अनंत}}$ → A + $\frac{\text{कुल द्रव्य}}{\text{अनंत}}$ ×(अनंत-१) → B

ज्ञानावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियों की रचना

ज्ञानावरण का सर्वघाति द्रव्य = A

	मति	श्रुत	अवधि	मन:पर्यय	केवल
सम भाग बहुभाग के ५ समान भाग	A×$\frac{८}{९}$×$\frac{१}{५}$				
देय भाग शेष एकभाग के बहुभाग-२	A×$\frac{१}{९}$×$\frac{८}{९}$	A×$\frac{१}{९}$×$\frac{१}{९}$×$\frac{८}{९}$	A×$\frac{१}{९}$×$\frac{१}{९}$×$\frac{१}{९}$×$\frac{८}{९}$	A×$\frac{१}{९}$×$\frac{१}{९}$×$\frac{१}{९}$×$\frac{१}{९}$×$\frac{८}{९}$	A×$\frac{१}{९}$×$\frac{१}{९}$×$\frac{१}{९}$×$\frac{१}{९}$×$\frac{१}{९}$
कुल द्रव्य	दोनों का जोड़				
	——— अनुक्रम से हीन-हीन द्रव्य ———→				

ज्ञानावरण का देशघाति द्रव्य = B

	मति	श्रुत	अवधि	मन:पर्यय	केवल
सम भाग	$B\times\frac{८}{९}\times\frac{१}{४}$				सर्वघाति होने से देशघाति स्पर्द्धक है ही नहीं
देय भाग	$B\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	$B\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	$B\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	$B\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}$	
कुल द्रव्य	दोनों का जोड़				
	——— अनुक्रम से हीन-हीन द्रव्य ———→				

ज्ञानावरण की प्रत्येक उत्तर प्रकृतियों का सर्व द्रव्य

= अपना-अपना सर्वघाति द्रव्य + अपना-अपना देशघाति द्रव्य

दर्शनावरण कर्म की रचना

दर्शनावरण कर्म का कुल द्रव्य *मानें:-*	= ज्ञानावरणवत्
	= सर्वघाति द्रव्य + देशघाति द्रव्य ↓ C ↓ D

दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियों की रचना

दर्शनावरण का सर्वघाति द्रव्य = C

	स्त्यानगृद्धि	निद्रा-निद्रा	प्रचला-प्रचला	निद्रा	प्रचला
सम भाग	$C\times\frac{८}{९}\times\frac{१}{९}$				
देय भाग	$C\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	$C\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	C×३बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	C×४बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	C×५बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$
कुल	दोनों का जोड़				
	——— अनुक्रम से हीन-हीन द्रव्य ———→				

	चक्षुदर्शनावरण	अचक्षुदर्शनावरण	अवधिदर्शनावरण	केवलदर्शनावरण
सम भाग	$C\times\frac{८}{९}\times\frac{१}{९}$			
देय भाग	$C\times$ ६बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	$C\times$ ७बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	$C\times$ ८बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	$C\times$ ९बार $\frac{१}{९}$
कुल द्रव्य	दोनों का जोड़			
	——— अनुक्रम से हीन-हीन द्रव्य ——→			

दर्शनावरण का देशघाति द्रव्य = D

	चक्षुदर्शनावरण	अचक्षुदर्शनावरण	अवधिदर्शनावरण	केवलदर्शनावरण और ५ निद्राऐं
सम भाग	$D\times\frac{८}{९}\times\frac{१}{३}$			
देय भाग	$D\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	$D\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	$D\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}$	सर्वघाति होने से देशघाति स्पर्द्धक है ही नहीं
कुल द्रव्य	दोनों का जोड़			
	——— अनुक्रम से हीन-हीन द्रव्य ——→			

दर्शनावरण की प्रत्येक उत्तर प्रकृतियों का सर्व द्रव्य

चक्षु, अचक्षु, अवधि-दर्शनावरण	= अपना-२ सर्वघाति द्रव्य + देशघाति द्रव्य
केवलदर्शनावरण और ५ निद्राएँ	= अपना-अपना सिर्फ सर्वघाति द्रव्य

अंतराय कर्म की रचना

अंतरायकर्म का कुल द्रव्य = ज्ञानावरणवत् = सर्व द्रव्य देशघाति द्रव्य हैं = ***मानें*** → E

	वीर्यांतराय	उपभोगांतराय	भोगांतराय	लाभांतराय	दानांतराय
सम भाग	$E\times\frac{८}{९}\times\frac{१}{५}$				
देय भाग	$E\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	$E\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	$E\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	$E\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	$E\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}$
कुल	दोनों का जोड़				
	←——— अनुक्रम से अधिक-अधिक द्रव्य ———				

मोहे मिच्छत्तादीसत्तरसण्हं तु दिज्जदे हीणं।
संजलणाणं भागेव होदि पणणोकसायाणं।।२०२।।
संजलणभागबहुभागद्धं अकसायसंगयं दव्वं।
इगिभागसहियबहुभागद्धं संजलणपडिबद्धं।।२०३।।

अर्थ – मोहनीय कर्म में मिथ्यात्वादि सत्रह प्रकृतियों को क्रम से हीन-हीन द्रव्य देना और पाँच नोकषाय का भाग संज्वलन कषाय के भाग के समान जानना।।२०२।।

अर्थ – मोहनीय कर्म के देशघाति बहुभाग का आधा नोकषाय देशघाति द्रव्य जानना। और शेष एक भाग सहित आधा बहुभाग संज्वलन कषाय का देशघाति संबंधी द्रव्य होता है।।२०३।।

मोहनीय कर्म की रचना

मोहनीय कर्म का कुल द्रव्य	= समयप्रबद्ध का समान भाग + देय भाग (गा. १९५)
	= सप्र.× $\frac{८}{९}$ × $\frac{१}{८}$ **+** सप्र.× $\frac{१}{९}$ × $\frac{१}{९}$ × $\frac{८}{९}$
	= सर्वघाति द्रव्य **+** देशघाति द्रव्य
मानें:-	= $\frac{\text{कुल द्रव्य}}{\text{अनंत}}$ **+** $\frac{\text{कुल द्रव्य}}{\text{अनंत}}$ ×(अनंत-१) ↓ F ↓ G

मोहनीय कर्म में सर्वघाति-देशघाति द्रव्य का विभाजन

मिथ्यात्व १२ कषाय → सिर्फ सर्वघाति

संज्वलन → दोनों

नोकषाय → सिर्फ देशघाति

मोहनीय कर्म के देशघाति द्रव्य का विभाजन

संज्वलन	=देशघाति द्रव्य के बहुभाग का आधा + शेष एकभाग H	=G×$\frac{८}{९}$×$\frac{१}{२}$ + G×$\frac{१}{९}$
पाँच नोकषाय*	= देशघाति द्रव्य के बहुभाग का आधा I	=G×$\frac{८}{९}$×$\frac{१}{२}$

*** एक समय में ५ ही कषाय बंधती है – ३ वेद में से एक, हास्य-शोक में से एक, रति-अरति में से एक, भय, जुगुप्सा – इसलिए ९ में नहीं ५ में विभाग होता है***

मोहनीय का सर्वघाति द्रव्य = F

	मिथ्यात्व	अनंतानुबंधी				संज्वलन			
		लोभ	माया	क्रोध	मान	लोभ	माया	क्रोध	मान
सम भाग	$F\times\frac{८}{९}\times\frac{१}{१७}$								
देय भाग	$F\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	$F\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	F×३बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	F×४बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	F×५बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	F×६बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	F×७बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	F×८बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	F×९बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$
कुल	दोनों का जोड़								
	——— अनुक्रम से हीन-हीन द्रव्य ———→								

प्रत्याख्यानावरण				अप्रत्याख्यानावरण			
लोभ	माया	क्रोध	मान	लोभ	माया	क्रोध	मान
F×१०बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	F×११बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	F×१२बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	F×१३बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	F×१४बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	F×१५बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	F×१६बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	F×१७बार $\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$
दोनों का जोड़							
——— अनुक्रम से हीन-हीन द्रव्य ———→							

संज्वलन संबंधी देशघाति द्रव्य = H

	लोभ	माया	क्रोध	मान
सम भाग	$H \times \frac{८}{९} \times \frac{१}{४}$			
देय भाग	$H \times \frac{१}{९} \times \frac{८}{९}$	$H \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{८}{९}$	$H \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{८}{९}$	$H \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९}$
कुल द्रव्य	दोनों का जोड़			
	———— अनुक्रम से हीन-हीन द्रव्य ————→			

संज्वलन की प्रत्येक उत्तर प्रकृतियों का सर्व द्रव्य

= अपना-अपना सर्वघाति द्रव्य + अपना-अपना देशघाति द्रव्य

नोकषाय संबंधी देशघाति द्रव्य = I

	कोई एक वेद	रति या अरति	हास्य या शोक	भय	जुगुप्सा
सम भाग	$I \times \frac{८}{९} \times \frac{१}{५}$				
देय भाग	$I \times \frac{१}{९} \times \frac{८}{९}$	$I \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{८}{९}$	$I \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{८}{९}$	$I \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{८}{९}$	$I \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९}$
कुल	दोनों का जोड़				
	———— अनुक्रम से हीन-हीन द्रव्य ————→				

तण्णोकसायभागो सबंधपणणोकसायपयडीसु।
हीणकमो होदि तहा देसे देसावरणदव्वं।।२०४।।

अर्थ - वह नोकषाय के हिस्सा में आया हुआ द्रव्य एकसाथ बंधने वाली पाँच नोकषाय प्रकृतियों में क्रम से हीन-हीन देना। और इसी प्रकार देशघाती संज्वलन कषाय का देशघाती संबंधी जो द्रव्य है वह युगपत् जितनी प्रकृति बँधे उनको पहले कहे हीन क्रम से देना।।२०४।।

नोकषाय का युगपत् बंध कौन से गुणस्थान तक होगा

पाँच नोकषाय	गुणस्थान	विभाजन क्रम
पुरुषवेद, रति, हास्य, भय, जुगुप्सा	१ से ८	⟶ अनुक्रम से हीन-हीन द्रव्य जानना ⟶
पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा	१ से ६	
स्त्रीवेद, रति, हास्य, भय, जुगुप्सा	१-२	
स्त्रीवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा		
नंपुसकवेद, रति, हास्य, भय, जुगुप्सा	१	
नंपुसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा		
सिर्फ पुरुषवेद	९वें तक	नोकषाय संबंधी सर्व द्रव्य

संज्वलन चार के बंध का विभाजन

गुणस्थान	बंध	बँटवारा
१ से ९वें के क्रोध बंध भाग तक	चारों का	चार में
९वें के मान बंध भाग में	क्रोध का नहीं	तीन में
९वें के माया बंध भाग में	मान भी नहीं	दो में
९वें के लोभ बंध भाग में	सिर्फ लोभ	एक को सर्व द्रव्य

पुंबंधऽद्धा अंतोमुहुत्त इत्थिम्हि हस्सजुगले य।
अरदिदुगे संखगुणा णपुंसकऽद्धा विसेसहिया।।२०५।।

अर्थ - पुरुषवेद के निरंतर बंध होने का काल अंतर्मुहूर्त है (यह अंतर्मुहूर्त सबसे छोटा समझना)। स्त्रीवेद का उससे संख्यात गुणा, हास्य और रति का काल उससे भी संख्यात गुणा,अरति और शोक का उससे भी संख्यात गुणा; किंतु अंतर्मुहूर्त ही है और नपुंसकवेद का काल उससे भी कुछ अधिक जानना।।२०५।।

नोकषाय का निरंतर बंध काल

नोकषाय	काल	सहनानी	सहनानी का पिंड़रूप जोड़
पुरुषवेद	अंतर्मुहूर्त	२ × अंत.	४८ × अंत.
स्त्रीवेद	ऊपर से संख्यात गुणा	४ × अंत.	
रति-हास्य		१६ × अंत.	४८ × अंत.
अरति-शोक		३२ × अंत.	
नपुंसकवेद	ऊपर से कुछ अधिक	४२ × अंत.	

नोकषाय के द्रव्य का प्रमाण

नोकषाय	सहनानी	अपना–अपना द्रव्य का प्रमाण
पुरुषवेद	२ × अंत.	= $\frac{\text{नोकषाय का द्रव्य}}{५^*} \times \frac{१}{४८ \text{ अंत.}} \times २ \text{ अंत.}$
स्त्रीवेद	४ × अंत.	= $\frac{\text{नोकषाय का द्रव्य}}{५} \times \frac{१}{४८ \text{ अंत.}} \times ४ \text{ अंत.}$
नपुंसकवेद	४२ × अंत.	= $\frac{\text{नोकषाय का द्रव्य}}{५} \times \frac{१}{४८ \text{ अंत.}} \times ४२ \text{ अंत.}$
रति	१६ × अंत.	= $\frac{\text{नोकषाय का द्रव्य}}{५} \times \frac{१}{४८ \text{ अंत.}} \times १६ \text{ अंत.}$
अरति	३२ × अंत.	= $\frac{\text{नोकषाय का द्रव्य}}{५} \times \frac{१}{४८ \text{ अंत.}} \times ३२ \text{ अंत.}$
हास्य	१६ × अंत.	= $\frac{\text{नोकषाय का द्रव्य}}{५} \times \frac{१}{४८ \text{ अंत.}} \times १६ \text{ अंत.}$
शोक	३२ × अंत.	= $\frac{\text{नोकषाय का द्रव्य}}{५} \times \frac{१}{४८ \text{ अंत.}} \times ३२ \text{ अंत.}$

** नोकषाय के द्रव्य को स्थूल रूप से पाँच भागों (कोई एक वेद, रति या अरति, हास्य या शोक, भय, जुगुप्सा) में विभाजित करना*

पणविग्घे विवरीयं सबंधपिंडिदरणामठाणेवि।
पिंडं दव्वं च पुणो सबंधसगपिंडपयडीसु।।२०६।।

अर्थ – पाँच अंतराय में विपरीत(अर्थात् अंत से लेकर आदि तक क्रम जानना)। नामकर्म के स्थानों में जो एक ही काल में बंध को प्राप्त होने वाली गत्यादि पिंडरूप और अगुरुलघु आदि अपिंडरूप प्रकृतियाँ हैं उनमें भी विपरीत ही क्रम जानना।।२०६।।

नामकर्म की रचना

———— अनुक्रम से अधिक-अधिक द्रव्य ————→			
युगपद् बंध के स्थान	**बंध के स्वामी**	**भाग**	**बँटवारा**
२३ प्रकृतियाँ – तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्मण तीन शरीर, हुण्डक संस्थान, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण	मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंच	बहुभाग (सम भाग)	✻ नाम कर्म के कुल द्रव्य के बहुभाग के २१ हिस्से सभी प्रकृतियों को सामान दे ✻ २३ में तीन प्रकृतियाँ शरीर की है उन्हें एकभाग ही मिलेगा
		शेष भाग (देय भाग)	✻ नाम कर्म के शेष एक भाग को बहुभाग विधान से २१ प्रकृतियों में बाँटे ✻ सर्व प्रथम बहुभाग अंत की निर्माण प्रकृति को देना ✻ इसी क्रम से तिर्यंचगति तक जानना
		कुल	✻ सम भाग + अपना अपना देय भाग
२५ प्रकृतियाँ	यथायोग्य		उपर्युक्त प्रकार जाने
२६ प्रकृतियाँ			
२८ प्रकृतियाँ			
२९ प्रकृतियाँ			
३० प्रकृतियाँ			
३१ प्रकृतियाँ			
यशःकीर्ति	९ वें से १० वें गुणस्थान		नाम कर्म का सर्व द्रव्य
✻जहाँ शरीर जैसे पिंड प्रकृतियाँ हो, उनका बँटवारा पुनः समभाग-देयभाग से जानें			
✻जहाँ पिंड प्रकृतियों में एक का ही बंध हो उसे सर्व ही द्रव्य मिलेगा			

छण्हंपि अणुक्कस्सो पदेसबंधो दु चदुवियप्पो दु।
सेसतिये दुवियप्पो मोहाऊणं च दुवियप्पो।।२०७।।

अर्थ – ज्ञानावरणादि छह कर्मों का अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध सादि आदि के भेद से चार प्रकार का है, बाकी उत्कृष्टादि तीन बंध सादि अध्रुव के भेद से दो प्रकार के हैं। मोहनीय तथा आयुकर्म के उत्कृष्टादि चारों ही भेद सादि, अध्रुव दो प्रकार के हैं।।२०७।।

मूल कर्म में उत्कृष्टादि प्रदेशबंध के सादि आदि भेद

कर्म	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट	जघन्य	अजघन्य
ज्ञानावरणादि छह	२	४	२	२
मोहनीय, आयु	२	२	२	२
	४ = अनादि, सादि, ध्रुव, अध्रुव		२ = सादि, अध्रुव	
* दसवें गुणस्थान में मोहनीय और आयु के बिना छह कर्मों का बंध होता है। समयप्रबद्ध का कुल द्रव्य इन छहों कर्मों को मिलने से उनका उत्कृष्ट प्रदेश बंध दसवें गुणस्थान में होता है। जिन्होंने दसवें गुणस्थान को प्राप्त नहीं किया उनके इन छह का अनुत्कृष्ट प्रदेश बंध अनादि है। जो उपशम श्रेणी से गिर गये हैं उनके छह का अनुत्कृष्ट प्रदेश बंध सादि है तथा भव्य के अध्रुव एवं अभव्य के ध्रुव बंध होता है।				
* मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट प्रदेश बंध संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव के होता है जो पुनः-पुनः प्राप्त हो सकता है, अतः मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट प्रदेश बंध सादि व अध्रुवरूप होता है।				
* इन सातों कर्मों का जघन्य प्रदेश बंध सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त के प्रथम समय में होता है। सो वह पुनः-पुनः प्राप्त होता रहता है इसलिये इन सातों कर्मों का जघन्य व अजघन्य प्रदेश बंध सादि व अध्रुवरूप होता है।				
* आयुकर्म का प्रदेश बंध निरंतर नहीं होता, अतः आयु का उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य प्रदेश बंध सादि एवं अध्रुवरूप होता है।				

तीसण्हमणुक्कस्सो उत्तरपयडीसु चउविहो बंधो।
सेसतिये दुवियप्पो सेसचउक्केवि दुवियप्पो।।२०८।।
णाणंतरायदसयं दंसणछक्कं च मोहचोद्दसयं।
तीसण्हमणुक्कस्सो पदेसबंधो चदुवियप्पो।।२०९।।

अर्थ – उत्तर प्रकृतियों में तीस प्रकृतियों का अनुकृष्टबंध सादि आदि चार प्रकार का है। शेष उत्कृष्टादि तीन के सादि अध्रुव ये दो ही प्रकार हैं। शेष बची ९० प्रकृतियों का उत्कृष्टादि चारों तरह का बंध सादि और अध्रुव प्रकार का है।।२०८।।

अर्थ – ज्ञानावरण और अंतराय की १०, दर्शनावरण की ६, मोहनीय की अप्रत्याख्यानादि १४, सब मिलकर ३० प्रकृतियों का अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध चार प्रकार का है।।२०९।।

उत्तर प्रकृतियों में उत्कृष्टादि प्रदेशबंध के सादि आदि भेद

उत्तर प्रकृतियाँ	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट	अजघन्य	जघन्य
५ ज्ञानावरण, ३ बड़ी निद्राओं को छोडकर ६ दर्शनावरण, ५ अंतराय, अनंतानुबंधी चतुष्क छोड़कर १२ कषाय, भय, जुगुप्सा =**कुल ३०**	२	४	२	२
शेष प्रकृतियाँ = १२०-३० = ९०	२	२	२	२

उक्कडजोगो सण्णी पज्जत्तो पयडिबंधमप्पदरो।
कुणदि पदेसुक्कस्सं जहण्णये जाण विवरीयं।।२१०।।

अर्थ – जो जीव उत्कृष्ट योगों से सहित, संज्ञी, पर्याप्त और थोड़ी प्रकृतियों का बंध करने वाला होता है, वही जीव उत्कृष्ट प्रदेशबंध को करता है। तथा जघन्य प्रदेशबंध में इससे विपरीत जानना।।२१०।।

प्रदेशबंध की उत्कृष्ट सामग्री

उत्कृष्ट प्रदेशबंध	उत्कृष्ट – बहुत परमाणु बंधे	उत्कृष्ट योग से सहित, संज्ञी, पर्याप्त और थोड़ी प्रकृतियों का बंधक
जघन्य प्रदेशबंध	जघन्य – थोड़े परमाणु बंधे	जघन्य योग से सहित, असंज्ञी, अपर्याप्त और बहुत प्रकृतियों का बंधक

आउक्कस्स पदेसं छक्कं मोहस्स णव दु ठाणाणि।
सेसाण तणुकसाओ बंधदि उक्कस्सजोगेण।।२११।।

उत्कृष्ट प्रदेशबंध :–

अर्थ – आयुकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशबंध छः गुणस्थानों में रहने वाला करता है। मोहनीय का नवमें गुणस्थानवर्ती करता है। और शेष ज्ञानावरणादि छह कर्मों का सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती करता है। यहाँ सब जगह उत्कृष्ट योग द्वारा ही बंध जानना।।२११।।

मूल प्रकृतियों में उत्कृष्ट प्रदेशबंध के गुणस्थान

कर्म	गुणस्थान
आयु	७
मोहनीय	९
शेष ६ कर्म	१०

सत्तर सुहुमसरागे पंचऽणियट्टिम्हि देसगे तदियं।
अयदे बिदियकसायं होदि हु उक्कस्सदव्वं तु।।२१२।।
छण्णोकसायणिद्दापयलातित्थं च सम्मगो य जदी।
सम्मो वामो तेरं णरसुरआऊ असादं तु।।२१३।।
देवचउक्कं वज्जं समचउरं सत्थगमणसुभगतियं।
आहारमप्पमत्तो सेसपदेसुक्कडो मिच्छो।।२१४।।

अर्थ - १७ प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबंध सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में होता है। (पुरुषवेदादि) पाँच का नवमें गुणस्थान में, प्रत्याख्यान-४ का देशविरत गुणस्थान में, अप्रत्याख्यान-४ कषायों का चौथे असंयत गुणस्थान में उत्कृष्ट प्रदेशबंध होता है।।२१२।।

अर्थ - छः नोकषाय, निद्रा, प्रचला, और तीर्थंकर प्रकृति - इन नौ का उत्कृष्ट प्रदेशबंध सम्यग्दृष्टि करता है। तथा मनुष्यायु, देवायु, असाता वेदनीय, देवचतुष्क, वज्रऋषभनाराच संहनन, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभगत्रिक - इन तेरह प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबंध सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि दोनों ही करते हैं। और आहारकद्विक का उत्कृष्ट प्रदेशबंध अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती करता है। इन ५४ के बिना अवशेष ६६ प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबंध मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट योगों से करता है।।२१३-२१४।।

उत्तर प्रकृतियों में उत्कृष्ट प्रदेशबंध के गुणस्थान

उत्तर प्रकृतियाँ	कुल	गुणस्थान
५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अंतराय, यश:कीर्ति, उच्च गोत्र, सातावेदनीय	१७	१०
पुरुषवेद, ४ संज्वलन कषाय	५	९
४ प्रत्याख्यानावरण कषाय	४	५
४ अप्रत्याख्यानावरण कषाय	४	४
	३०	
३ वेद छोड़कर ६ नोकषाय, निद्रा, प्रचला, तीर्थंकर प्रकृति	९	सम्यग्दृष्टि
मनुष्यायु, देवायु, असातावेदनीय, देवचतुष्क(४), वज्रऋषभनाराच संहनन, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभगत्रिक	१३	सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों
आहारकद्विक	२	७
कुल	**५४**	
उपरोक्त ५४ छोड़कर शेष प्रकृतियाँ (१२०-५४)	**६६**	मिथ्यादृष्टि

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णये जोगे।
सत्तण्हं तु जहण्णं आउगबंधेवि आउस्स।।२१५।।
घोडणजोगोऽसण्णी णिरयदुसुरणिरयआउगजहण्णं।
अपमत्तो आहारं अयदो तित्थं च देवचऊ।।२१६।।
चरिमअपुण्णभवत्थो तिविग्गहे पढमविग्गहम्मि ठिओ।
सुहमणिगोदो बंधदि सेसाणं अवरबंधं तु।।२१७।।

जघन्य प्रदेशबंध :-

अर्थ – सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के अपने पर्याय के पहले समय में जघन्य योगों से आयु के सिवाय सात मूल प्रकृतियों का जघन्य प्रदेशबंध होता है। आयु का बंध होने पर उसी जीव के आयु का भी जघन्य प्रदेशबंध होता है।।२१५।।

अर्थ – घोटमान योगों का धारी असैनी जीव नरकद्विक, देवायु तथा नरकायु का जघन्य प्रदेशबंध करता हैं। और आहारकद्विक का अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती तथा चौथे असंयत गुणस्थानवर्ती तीर्थंकर प्रकृति और देव-चतुष्क इस तरह पाँच प्रकृतियों का जघन्य प्रदेशबंध करता है।।२१६।।

अर्थ – छह हजार बारह अपर्याप्त (क्षुद्र) भवों में से अंत के भव में स्थित और विग्रहगति के तीन मोड़ों में से पहली वक्रगति में ठहरा हुआ जो सूक्ष्मनिगोदिया जीव है वह पूर्वोक्त ११ से शेष रही १०९ प्रकृतियों का जघन्य प्रदेशबंध करता है।।२१७।।

मूल और उत्तर प्रकृतियों में जघन्य प्रदेशबंध स्वामी

मूल प्रकृति	कुल	स्वामी
आयु छोड़कर शेष सात		सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्तक पर्याय के पहले समय में जघन्य योग द्वारा
आयु		उसी जीव के आयु बंध के समय
उत्तर प्रकृतियाँ		
नरकगतिद्विक, देवायु, नरकायु	४	घोटमान योगस्थान का धारक असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव
आहारकद्विक	२	अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीव
तीर्थंकर प्रकृति, देवचतुष्क	५	पर्याय के प्रथम समय में जघन्य उपपाद योग का धारक असंयत सम्यग्दृष्टि जीव
	११	
उपरोक्त ११ को छोड़कर शेष सभी (१२०-११)	**१०९**	अंतिम क्षुद्र भव के पहले मोड़ में स्थित सूक्ष्मनिगोदिया जीव

एक जीव के एक काल संबंधी बंध-योग्य गुणस्थान अपेक्षा प्रकृतियाँ

गुणस्थान	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय	कुल
१	५	९	१	२२	१	२३-२५-२६-२८-२९-३०	१	५	६७-६९-७०-७२-७३-७४
२	५	९	१	२१	१	२८-२९-३०	१	५	७१-७२-७३
३	५	६	१	१७	०	२८-२९	१	५	६३-६४
४	५	६	१	१७	१	२८-२९-३०	१	५	६४-६५-६६
५	५	६	१	१३	१	२८-२९	१	५	६०-६१
६	५	६	१	९	१	२८-२९	१	५	५६-५७
७	५	६	१	९	१	२८-२९-३०-३१	१	५	५६-५७-५८-५९
८	५	६-४	१	९	०	२८-२९-३०-३१-१	१	५	५५-५६-५७-५८-२६
९	५	४	१	५-४-३-२-१	०	१	१	५	२२-२१-२०-१९-१८
१०	५	४	१	०	०	१	१	५	१७
११	०	०	१	०	०	०	०	०	१
१२	०	०	१	०	०	०	०	०	१
१३	०	०	१	०	०	०	०	०	१
१४	०	०	०	०	०	०	०	०	०
सर्व गुणस्थान	५	९-६-४	१	२२-२१-१७-१३-९-५-४-३-२-१	१	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१-१	१	५	कुल २५ स्थान

**प्रकृतियों का प्रमाण घटने या बढ़ने से स्थान भेद होता है,जैसे मिथ्यात्व गुणस्थान में ६७,६९ आदि*

**एक स्थान में प्रकृतियों के बदलने से भंग होते है, जैसे साता का असाता*

योगस्थान

जोगट्ठाणा तिविहा उववादेयंतवड्डिपरिणामा।
भेदा एक्केक्कंपि चोद्दसभेदा पुणो तिविहा।।२१८।।

अर्थ – उपपाद योगस्थान, एकांतानुवृद्धि योगस्थान, परिणाम योगस्थान – इस प्रकार योगस्थान तीन प्रकार के हैं। और एक-एक भेद के भी १४ जीवसमास की अपेक्षा चौदह-चौदह भेद हैं। तथा ये १४ भी सामान्य, जघन्य और उत्कृष्ट की अपेक्षा तीन-तीन प्रकार के हैं।।२१८।।

१४ जीव समासों की अपेक्षा योगस्थान

	उपपाद	एकांतानुवृद्धि	परिणाम
सामान्य	१४	१४	१४
सामान्य, जघन्य	२८	२८	२८
सामान्य, जघन्य एवं उत्कृष्ट	४२	४२	४२

उववादजोगठाणा भवादिसमयट्ठियस्स अवरवरा।
विग्गहइजुगइगमणे जीवसमासे मुणेयव्वा।।२१९।।
परिणामजोगठाणा सरीरपज्जत्तगादु चरिमोत्ति।
लद्धिअपज्जत्ताणं चरिमतिभागम्हि बोधव्वा।।२२०।।
सगपज्जत्तीपुण्णे उवरिं सव्वत्थ जोगमुक्कस्सं।
सव्वत्थ होदि अवरं लद्धिअपुण्णस्स जेट्ठंपि।।२२१।।
एयंतवड्डिठाणा उभयट्ठाणाणमंतरे होंति।
अवरवरट्ठाणाओ सगकालादिम्हि अंतम्हि।।२२२।।

अर्थ – पर्याय धारण करने के पहले समय में स्थित जीव के उपपाद योगस्थान होता हैं। वक्रगति से उत्पन्न के जघन्य (उपपाद योगस्थान) और ऋजुगति वाले के उत्कृष्ट (उपपाद योगस्थान) होता है। वे उपपाद योगस्थान चौदह जीवसमासों में जानना।।२१९।।

अर्थ – शरीरपर्याप्ति के पूर्ण होने के समय से लेकर आयु के अंत तक परिणामयोगस्थान हैं। लब्ध्यपर्याप्त जीव के अपनी आयु के अंत के त्रिभाग के प्रथम समय से लेकर अंत के समय तक जानना।।२२०।।

अर्थ – अपनी-अपनी शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने के समय से लेकर ऊपर आयु के अंत समय तक सम्पूर्ण समयों में परिणामयोगस्थान उत्कृष्ट भी होते हैं और जघन्य भी हो सकता है। और इसी तरह लब्ध्यपर्याप्तक के भी अपनी स्थिति के सब भेदों में दोनों परिणामयोगस्थान संभव हैं।।२२१।।

अर्थ – एकांतानुवृद्धि योगस्थान, उपपाद और परिणाम दोनों स्थानों के बीच में, अर्थात् पर्याय

धारण करने के दूसरे समय से लेकर एक समय कम शरीर पर्याप्ति के अंतर्मुहूर्त के अंतिम समय तक होते हैं। उनमें जघन्यस्थान तो अपने काल के पहले समय में और उत्कृष्ट स्थान अंतिम समय में होता है।।२२२।।

उपपादादि तीन योगों में पर्याप्त एवं अपर्याप्त जीव के जघन्य उत्कृष्ट स्थान

<table>
<tr><th>योगस्थान</th><th colspan="2">पर्याप्त/ निर्वृत्ति अपर्याप्त</th><th>अपर्याप्त(लब्धि अपर्याप्त)</th></tr>
<tr><td>उपपाद</td><td colspan="3">पर्याय धारण करने के प्रथम समय में
जघन्य → विग्रहगति वाले को
उत्कृष्ट → ऋजुगति वाले को</td></tr>
<tr><td rowspan="2">एकांतानुवृद्धि</td><td>जघन्य</td><td colspan="2">पर्याय धारण करने के द्वितीय समय में</td></tr>
<tr><td>उत्कृष्ट</td><td>शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के एक समय पहले</td><td>अंतिम त्रिभाग के एक समय पहले</td></tr>
<tr><td>परिणाम (घोटमान)*</td><td colspan="2">शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के समय से लेकर पर्याय के अंत तक
जघन्य उत्कृष्ट</td><td>आयु के अंतिम त्रिभाग(श्वासो./१८ × १/३) से लेकर मरण तक
जघन्य उत्कृष्ट</td></tr>
<tr><td colspan="4">* क्योंकि ये योगस्थान घटते भी है, बढ़ते भी है और वैसे भी रहते है</td></tr>
</table>

अविभागपडिच्छेदो वग्गो पुण वग्गणा य फड्डयगं।
गुणहाणीवि य जाणे ठाणं पडि होदि णियमेण।।२२३।।
पल्लासंखेज्जदिमा गुणहाणिसला हवंति इगिठाणे।
गुणहाणिफड्डयाओ असंखभागं तु सेढीये।।२२४।।
फड्डयगे एक्केक्के वग्गणसंखा हु तत्तियालावा।
एक्केक्कवग्गणाए असंखपदरा हु वग्गाओ।।२२५।।
एक्केक्के पुण वग्गे असंखलोगा हवंति अविभागा।
अविभागस्स पमाणं जहण्णउड्ढी पदेसाणं।।२२६।।

अर्थ - सर्व योगस्थान जगतश्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। उनमें एक-एक स्थान के प्रति अविभाग-प्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धक, गुणहानि-इतने भेद, नियम से होते है ऐसा जानना।।२२३।।

अर्थ - एक योगस्थान में गुणहानि की शलाका (संख्यायें) पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। एक गुणहानि में स्पर्द्धक जगतश्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।२२४।।

अर्थ - एक-एक स्पर्द्धक में वर्गणाओं की संख्या उतनी ही अर्थात् जगतश्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। और एक-एक वर्गणा में असंख्यात जगतप्रतर प्रमाण वर्ग हैं।।२२५।।

अर्थ - एक-एक वर्ग में असंख्यातलोक प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं। और अविभाग प्रतिच्छेद का प्रमाण प्रदेशों में जघन्य वृद्धि-स्वरूप जानना।।२२६।।

प्रत्येक योगस्थान में पाँच भेद

एक - एक	योगस्थान में	पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण	नानागुणहानियाँ हैं
	गुणहानि में	जगतश्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण	स्पर्द्धक हैं
	स्पर्द्धक में	जगतश्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण	वर्गणायें हैं
	वर्गणा में	असंख्यात जगतप्रतर प्रमाण	वर्ग है
	वर्ग में	असंख्यात लोकप्रमाण	अविभाग प्रतिच्छेद है

स्वरूप	भेद	प्रमाण
जिसका दूसरा भाग न हो सके, ऐसा (प्रदेशों में कर्म ग्रहण की) शक्ति का जो अंश	= अविभाग प्रतिच्छेद	= प्रदेशों की जघन्य वृद्धि रूप
अविभाग प्रतिच्छेदों का समूह	= वर्ग	= असंख्यात लोकप्रमाण अविभाग प्रतिच्छेद
वर्गों का समूह	= वर्गणा	= असंख्यात जगतप्रतर वर्ग
वर्गणाओं का समूह	= स्पर्द्धक	= $\frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}}$ वर्गणा
स्पर्द्धकों का समूह	= गुणहानि	= $\frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}}$ स्पर्द्धक
गुणहानियों का समूह	= स्थान(लोकप्रमाण जीव के सर्व प्रदेश)	= $\frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}}$ गुणहानि
	सर्व योगस्थान	**= $\frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}}$**

इगिठाणफड्डयाओ वग्गणसंखा पदेसगुणहाणी।
सेढिअसंखेज्जदिमा असंखलोगा हु अविभागा।।२२७।।

अर्थ – एक योगस्थान में सब स्पर्द्धक, सब वर्गणाओं की संख्या और गुणहानि-आयाम का प्रमाण सामान्यपने से जगतश्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र है। एक योगस्थान में अविभाग-प्रतिच्छेद असंख्यातलोक प्रमाण होते हैं।।२२७।।

योगस्थान में वर्गणादि का प्रमाण

<table>
<tr><th colspan="2"></th><th>प्रमाण</th><th></th></tr>
<tr><td rowspan="4">एक योगस्थान में –</td><td>सर्व (नाना) गुणहानि</td><td>$\frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}}$</td><td rowspan="4">उत्तरोत्तर असं. गुणा– असं. गुणा अधिक ↓</td></tr>
<tr><td>सर्व स्पर्द्धक</td><td>= नाना गुणहानि × एक गुणहानि के स्पर्द्धकों का प्रमाण
$= \frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}} \times \frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}} = \frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}}$</td></tr>
<tr><td>सर्व वर्गणा</td><td>= एक योगस्थान के स्पर्द्धक × एक स्पर्द्धक की वर्गणा का प्रमाण
$= \frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}} \times \frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}} = \frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}}$</td></tr>
<tr><td>सर्व अविभाग प्रतिच्छेद</td><td>= असंख्यातलोक
(कर्म परमाणुओं के प्रमाणवत् या जघन्यज्ञान के प्रमाणवत् अनंत नहीं)</td></tr>
<tr><td colspan="2">असं. प्रदेशों में गुणहानि आयाम</td><td>= एक गुणहानि में वर्गणा का प्रमाण $= \frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}}$</td><td></td></tr>
</table>

सव्वे जीवपदेसे दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा।
उवरिं उत्तरहीणं गुणहाणिं पडि तदद्धकमं।।२२८।।
फड्डयसंखाहि गुणं जहण्णवग्गं तु तत्थ तत्थादी।
बिदियादिवग्गणाणं वग्गा अविभागअहियकमा।।२२९।।

अर्थ – सब लोक प्रमाण (असंख्यात) जीव के प्रदेशों को डेढ़गुणहानि का भाग देने पर पहली गुणहानि की पहली वर्गणा होती है। इसके बाद एक-एक चय घटाने पर द्वितीयादि वर्गणाओं का प्रमाण होता है। और पूर्व गुणहानि से उत्तर गुणहानि का प्रमाण क्रम से आधा-आधा जानना।।२२८।।

अर्थ – जघन्य वर्ग को अपने-अपने स्पर्द्धक की संख्या से गुणा करने पर उस-उस गुणहानि की पहली वर्गणा का प्रमाण होता है। और दूसरी आदि वर्गणा क्रम से वर्ग में एक-एक अविभाग-प्रतिच्छेद बढ़ाने पर होती है।।२२९।।

योगस्थान में गुणहानि रचना का वर्णन

प्रदेशों (परमाणुओं की संख्या) की अपेक्षा अंकसंदृष्टि द्वारा वर्णन

जीव के सर्व प्रदेश	= ३१००
नाना गुणहानि	= ५
एक गुणहानि आयाम	= ८
अन्योन्याभ्यस्तराशि	$= २^{\text{नाना गुणहानि}} = २^{५} = ३२$
अंतिम गुणहानि में प्रदेशों का प्रमाण	$= \frac{\text{सर्व द्रव्य}}{\text{अन्योन्याभ्यस्त राशि}-१} = \frac{३१००}{३२-१} = १००$

प्रत्येक गुणहानि का द्रव्य

अंतिम गुणहानि के द्रव्य से दोगुणा-दोगुणा द्रव्य प्रथम गुणहानि तक करना					
द्रव्य	१६००	८००	४००	२००	१००
गुणहानि	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पंचम (अंतिम)

प्रत्येक गुणहानि की रचना का विधान

प्रथम गुणहानि	**प्रथम स्पर्द्धक**	**प्रथम वर्गणा का प्रमाण**	$= \frac{\text{सर्व द्रव्य}}{\text{कुछ अधिक डेढ़ गुणहानि}} = \frac{\text{सर्व द्रव्य}}{\text{कुछ अधिक डेढ़ गुणित ८}}$ $= \frac{३१००}{१२\frac{७}{६४}}$ = २५६ (जघन्य अविभाग प्रतिच्छेद रूप शक्ति के प्रदेश)
		विशेष(चय)	$= \frac{\text{प्रथम वर्गणा}}{\text{दो गुणहानि}} = \frac{२५६}{१६} = १६$
		द्वितीय वर्गणा	= प्रथम वर्गणा-चय = २५६-१६ = २४० (जघन्य से एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद रूप शक्ति के प्रदेश)
		तृतीयादि वर्गणा	इसी प्रकार एक-एक चय घटाने पर और एक एक अविभाग प्रतिच्छेद से अधिक शक्ति से युक्त
		कुल वर्गणा का प्रमाण	$= \frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}}$

प्रथम गुणहानि	**द्वितीय स्पर्द्धक**	**प्रथम वर्गणा**	प्रथम स्पर्द्धक के प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद से दोगुणे अविभाग प्रतिच्छेद रूप शक्ति से युक्त वर्ग
		द्वितीयादि वर्गणा	आगे-आगे एक-एक चय घटता और एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद से अधिक
	तृतीय स्पर्द्धक	**प्रथम वर्गणा**	प्रथम स्पर्द्धक के प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद से तीगुणे अविभाग प्रतिच्छेद रूप शक्ति से युक्त वर्ग
	चतुर्थादि स्पर्द्धक	**प्रथम वर्गणा**	प्रथम स्पर्द्धक के प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद से चौगुणे आदि जो विवक्षित स्पर्द्धक हो
			इसी अनुक्रम से वर्गणाओं और स्पर्द्धक का प्रमाण जानना
	अंतिम स्पर्द्धक	**अंतिम वर्गणा**	प्रथम वर्गणा में एक कम गुणहानि प्रमाण चय घटता और इतने ही अविभाग प्रतिच्छेद बढ़ता
द्वितीय गुणहानि	**प्रथम स्पर्द्धक प्रथम वर्गणा**	**का प्रमाण**	= प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा / २ = २५६ / २ = १२८
		के अवि.प्रति. का प्रमाण	प्रथम गुणहानि के जघन्य वर्ग के अविभाग प्रतिच्छेद × (एक गुणहानि के स्पर्द्धक + १)
	विशेष		= प्रथम गुणहानि का विशेष / २ = १६ / २ = ८
इसी प्रकार वर्गणा एवं विशेष का प्रमाण आधा-आधा अंतिम गुणहानि के अंतिम स्पर्द्धक की अंतिम वर्गणा तक जानना			
इस प्रकार पल्य / असं. गुणहानि हो जाये तब एक योगस्थान होता है			
यह सर्व कथन जघन्य योगस्थान का जानना			

प्रथमादि गुणहानि संबंधी ८-८ वर्गणाओं में वर्गों का प्रमाणरूप यंत्र

अष्टम	१४४	७२	३६	१८	९
सप्तम	१६०	८०	४०	२०	१०
षष्ठम	१७६	८८	४४	२२	११
पंचम	१९२	९६	४८	२४	१२
चतुर्थ	२०८	१०४	५२	२६	१३
तृतीय	२२४	११२	५६	२८	१४
द्वितीय	२४०	१२०	६०	३०	१५
प्रथम	२५६	१२८	६४	३२	१६

अंगुलअसंखभागप्पमाणमेत्तऽवरफड्डयावड्ढी।
अंतरछक्कं मुच्चा अवरट्ठाणादु उक्कस्सं।।२३०।।

अर्थ - छह अंतरस्थानों को छोड़कर, जघन्य योगस्थान से लेकर उत्कृष्ट योगस्थान पर्यंत सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्द्धकों की वृद्धि क्रम से जानना।।२३०।।

अंतर को छोड़कर सर्व योगस्थान की प्राप्ति का क्रम

सर्व योगस्थान	$\frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}}$
अंतर	६
जघन्य योगस्थान की प्रथम गुणहानि के जघन्य स्पर्द्धक के अविभागप्रतिच्छेद	माने $\longrightarrow$ J
तो उसके अनंतर (दूसरे) योगस्थान की प्रथम गुणहानि के जघन्य स्पर्द्धक के अविभागप्रतिच्छेद	$= J + \frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असं.}}$
तीसरे योगस्थान की प्रथम गुणहानि के जघन्य स्पर्द्धक के अविभागप्रतिच्छेद	$= J + \frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असं.}} + \frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असं.}}$
चौथे आदि से लेकर उत्कृष्ट योगस्थान के स्पर्द्धक के अविभागप्रतिच्छेद	इसी क्रम से $\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असं.}}$ अधिक-अधिक जाने

सरिसायामेणुवरिं सेढिअसंखेज्जभागठाणाणि।
चडिदेक्केक्कमपुव्वं फड्डयमिह जायदे चयदो।।२३१।।

अर्थ - समान आयाम के धारण करने वाले सर्वजघन्य योगस्थान के ऊपर चयप्रमाण अर्थात् जगतश्रेणी का असंख्यातवें भाग प्रमाण की उत्तरोत्तर क्रम से वृद्धि करते-करते एक अपूर्व स्पर्द्धक उत्पन्न होता है।।२३१।।

अपूर्व स्पर्द्धक

प्रथम अपूर्व स्पर्द्धक	जघन्य योगस्थान से $\frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}}$ स्थान जाने पर
दूसरा अपूर्व स्पर्द्धक	आगे $\frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}}$ स्थान जाने पर
तीसरा आदि अपूर्व स्पर्द्धक	$\frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}}$ स्थान आगे-आगे जाने पर

ऐसे ↕ जगतश्रेणी/असं. अपूर्व स्पर्द्धक होने पर	
जघन्य योगस्थान से दोगुणे अविभागप्रतिच्छेद रूप योगस्थान होता है	
ऐसे ↕ जगतश्रेणी/असं. अपूर्व स्पर्द्धक होने पर	
जघन्य योगस्थान से दोगुणे के भी दोगुणे अविभागप्रतिच्छेद रूप योगस्थान होता है	
↕ इसी प्रकार से दोगुणे-दोगुणे अविभागप्रतिच्छेद करते हुए (पल्य के अर्धच्छेद/असं. × १/२) होने पर	
सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव के **सर्वोत्कृष्ट योगस्थान** होता है	
उत्कृष्ट योगस्थान के अविभागप्रतिच्छेद	= जघन्य योगस्थान के अविभागप्रतिच्छेद × पल्य के अर्धच्छेद/असं.

एदेसिं ठाणाणं जीवसमासाण अवरवरविसयं।
चउरासीदिपदेहिं अप्पाबहुगं परूवेमो।।२३२।।

अर्थ - ये जो योगस्थान कहे हैं उनमें चौदह जीवसमासों के जघन्य और उत्कृष्ट की अपेक्षा तथा (उपपादादिक तीन प्रकार के योगों की अपेक्षा) चौरासी स्थानों में अब अल्पबहुत्व का कथन करते हैं।।२३२।।

१४ जीवसमास के ८४ योगस्थान

- **उपपाद(२८)**
  - जघन्य(१४)
  - उत्कृष्ट(१४)
- **एकांतानुवृद्धि(२८)**
  - जघन्य(१४)
  - उत्कृष्ट(१४)
- **परिणाम(२८)**
  - जघन्य(१४)
  - उत्कृष्ट(१४)

सुहुमगलद्धिजहण्णं तण्णिव्वत्तीजहण्णयं तत्तो।
लद्धिअपुण्णुक्कस्सं बादरलद्धिस्स अवरमदो।।२३३।।
णिव्वत्तिसुहुमजेट्ठं बादरणिव्वत्तियस्स अवरं तु।
बादरलद्धिस्स वरं बीइंदियलद्धिगजहण्णं।।२३४।।
बादरणिव्वत्तिवरं णिव्वत्तिबिइंदियस्स अवरमदो।
एवं बितिबितितिचतिच चउविमणो होदि चउविमणो।।२३५।।
तह य असण्णीसण्णी असण्णिसण्णिस्स सण्णिउववादं।
सुहुमेइंदियलद्धिग अवरं एयंतवड्ढिस्स।।२३६।।

सण्णिस्सुववादवरं णिव्वत्तिगदस्स सुहुमजीवस्स।
एयंतवड्ढिअवरं लद्धिदरे थूलथूले य।।२३७।।
तह सुहुमसुहुमजेट्ठं तो बादरबादरे वरं होदि।
अंतरमवरं लद्धिगसुहुमिदरवरंपि परिणामे।।२३८।।
अंतरमुवरीवि पुणो तत्पुण्णाणं च उवरि अंतरियं।
एयंतवड्ढिठाणा तसपणलद्धिस्स अवरवरा।।२३९।।
लद्धीणिव्वत्तीणं परिणामेयंतवड्ढिठाणाओ।
परिणामट्ठाणाओ अंतरअंतरिय उवरुवरिं।।२४०।।
एदेसिं ठाणाओ पल्लासंखेज्जभागगुणिदकमा।
हेट्ठिमगुणहाणिसला अण्णोण्णब्भत्थमेत्तं तु।।२४१।।

अर्थ - १) सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्त जीव का जघन्य उपपाद योगस्थान सबसे थोड़ा है, २) उससे अधिक सूक्ष्म निगोदिया निर्वृत्ति अपर्याप्त जीव का है। ३) उससे अधिक सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट है, ४) उससे अधिक बादर लब्धि अपर्याप्त का जानना।।२३३।।

अर्थ - ५) उससे अधिक सूक्ष्म निर्वृत्ति अपर्याप्त का उत्कृष्ट है, ६) उससे अधिक बादर निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य है। ७) उससे अधिक बादर लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट है, ८) उससे अधिक अधिक द्वीन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का जघन्य है।।२३४।।

अर्थ - ९) उससे बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का उत्कृष्ट है, १०) उससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य अधिक जानना। इसी प्रकार ११) द्वीन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट, १२) त्रीन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का जघन्य, १३) द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का उत्कृष्ट, १४) त्रीन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य, १५) त्रीन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट, १६) चतुरिन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का जघन्य, १७) त्रीन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का उत्कृष्ट, १८) चतुरिन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य, १९) चतुरिन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट, २०) असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का जघन्य, २१) चतुरिन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का उत्कृष्ट और २२) असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य क्रम से अधिक-अधिक जानना।।२३५।।

अर्थ - २३) उससे असंज्ञी लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट, २४) उससे संज्ञी लब्धि अपर्याप्त का जघन्य, २५) उससे असंज्ञी निर्वृत्ति अपर्याप्त का उत्कृष्ट, २६) उससे संज्ञी निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य, २७) उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान अधिक है। और २८) उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का जघन्य एकांतानुवृद्धि योगस्थान अधिक जानना।।२३६।।

अर्थ - २९) उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान अधिक है, ३०) उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य एकांतानुवृद्धि योगस्थान अधिक है, ३१) उससे बादर एकेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का और ३२) बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य अधिक-अधिक है।।२३७।।

अर्थ – ३३) उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त और ३४) सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त के उत्कृष्ट अधिक हैं। ३५) उससे बादर एकेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त और ३६) बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त के उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धि योगस्थान अधिक हैं। उसके बाद अंतर है। इन स्थानों को उलंघकर ३७) सूक्ष्म एकेन्द्रिय और ३८) बादर एकेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त के जघन्य और ३९) सूक्ष्म एकेन्द्रिय और ४०) बादर एकेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त के उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान अधिक जानने।।२३८।।

अर्थ – इसके ऊपर दूसरा अंतर है। अंतर के पश्चात् ४१) से ४४) सूक्ष्म एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तों के जघन्य और उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान हैं। फिर तीसरा अंतर है। अंतर के पश्चात् ४५) से ५४) पाँच त्रसों के लब्धि अपर्याप्त के जघन्य और उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धि योगस्थान हैं।।२३९।।

अर्थ – इसके आगे चौथा अंतर है। इसके बाद लब्धि अपर्याप्त और निर्वृत्ति अपर्याप्त पाँच त्रसजीवों के ५५) से ६४) परिणाम योगस्थान, ६५) से ७४) एकांतानुवृद्धि योगस्थान और ७५) से ८४) परिणाम योगस्थान तथा इनके ऊपर बीच-बीच में अंतर सहित स्थान हैं। ये तीनों स्थान उत्कृष्ट और जघन्यपने को लिये हुए हैं। (इस तरह योगों के ८४ स्थान कहे हैं)।।२४०।।

अर्थ – ये ८४ स्थान क्रम से पल्य के असंख्यातवें भाग गुणे हैं। (और जघन्य तथा उत्कृष्ट योगस्थानों के बीच की जो) अधस्तन गुणहानि शलाकाएँ हैं (वे असंख्यात से हीन पल्य की वर्गशलाका प्रमाण है)। उसीको अन्योन्याभ्यस्तराशि (की गुणकार शलाका) कहते हैं।।२४१।।

८४ योगस्थान में उपपादि तीन कौन-से है

योग	स्थान
उपपाद योग	१ से २७, २९
एकांतानुवृद्धि योग	२८, ३० से ३६, ४५ से ५४, ६५ से ७४
परिणाम योग	३७ से ४४, ५५ से ६४, ७५ से ८४

१४ जीवसमास की सहनानी

सूक्ष्म	बादर	द्वीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	असंज्ञी	संज्ञी
एकेन्द्रिय					पंचेन्द्रिय	
0	0)}	00	000	0000	00000	000000
जघन्य = ज				उत्कृष्ट = उ		

योग स्तंभ रचना

→

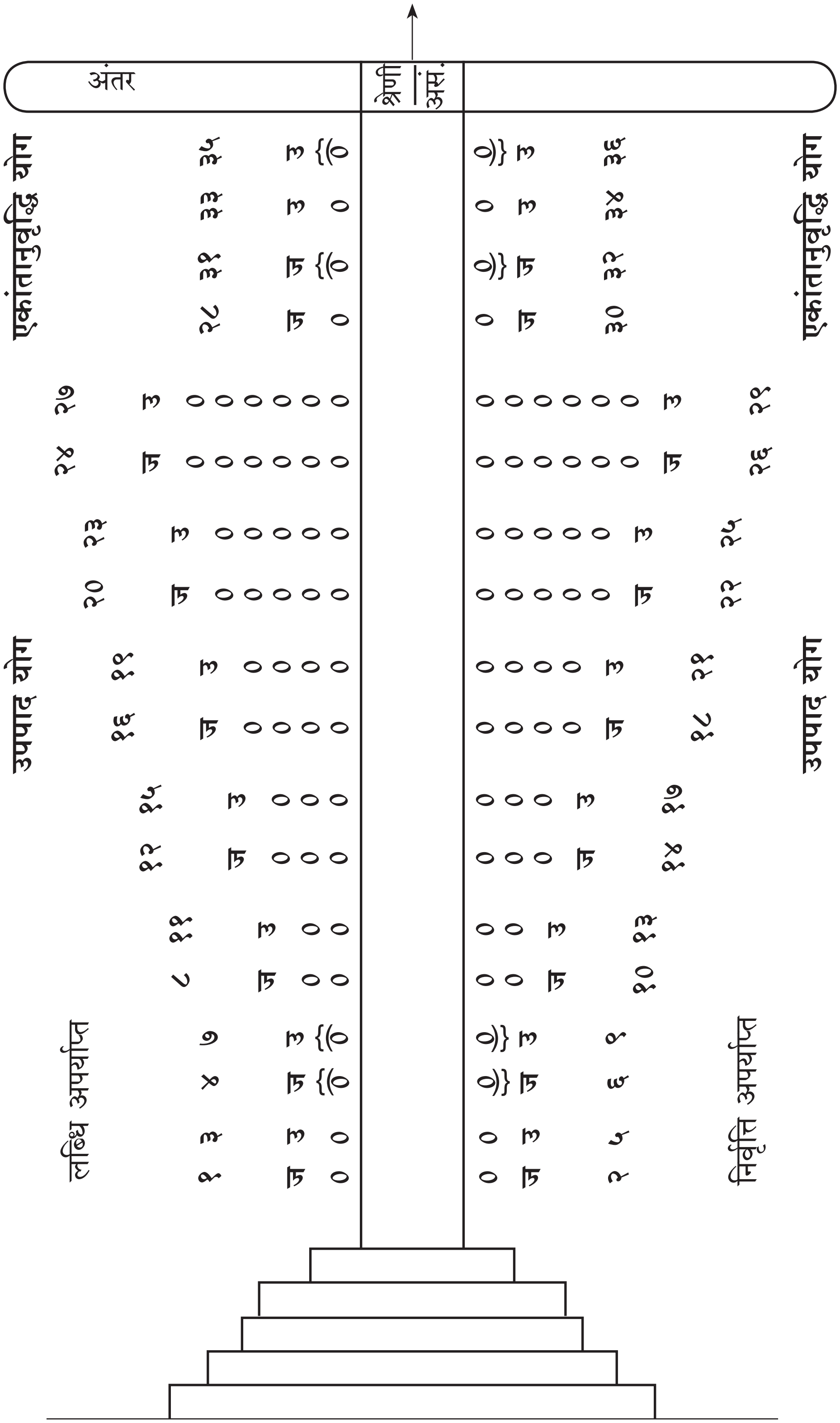
अंतर
श्रेणी
असं.
एकांतानुवृद्धि योग
उपपाद योग
लब्धि अपर्याप्त
निर्वृत्ति अपर्याप्त

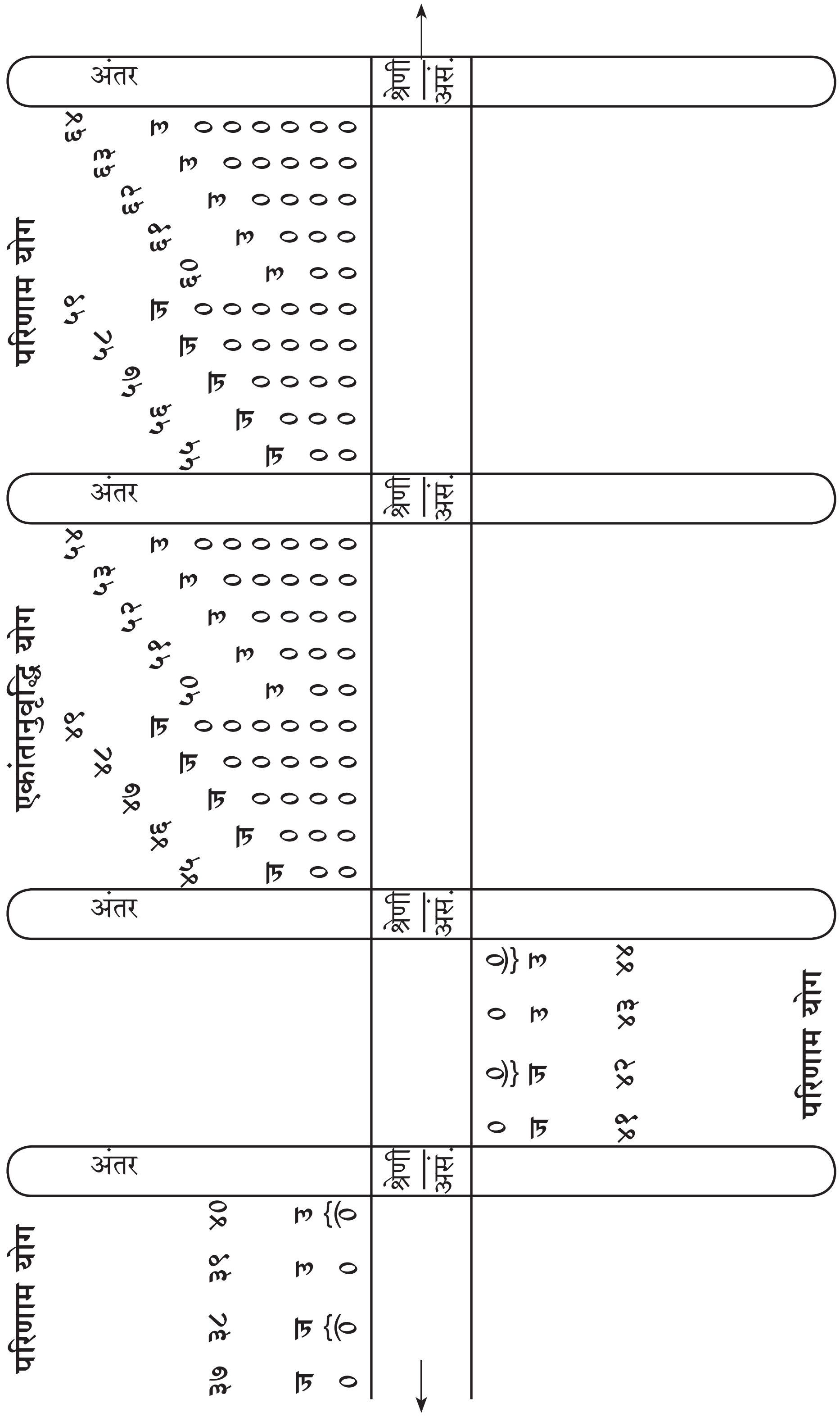
परिणाम योग
एकांतानुवृद्धि योग
परिणाम योग
परिणाम योग
अंतर
श्रेणी / असं.
३७ ३८ ३९ ४०
४१ ४२ ४३ ४४
४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४
५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४
ज
उ

योग स्तंभ रचना

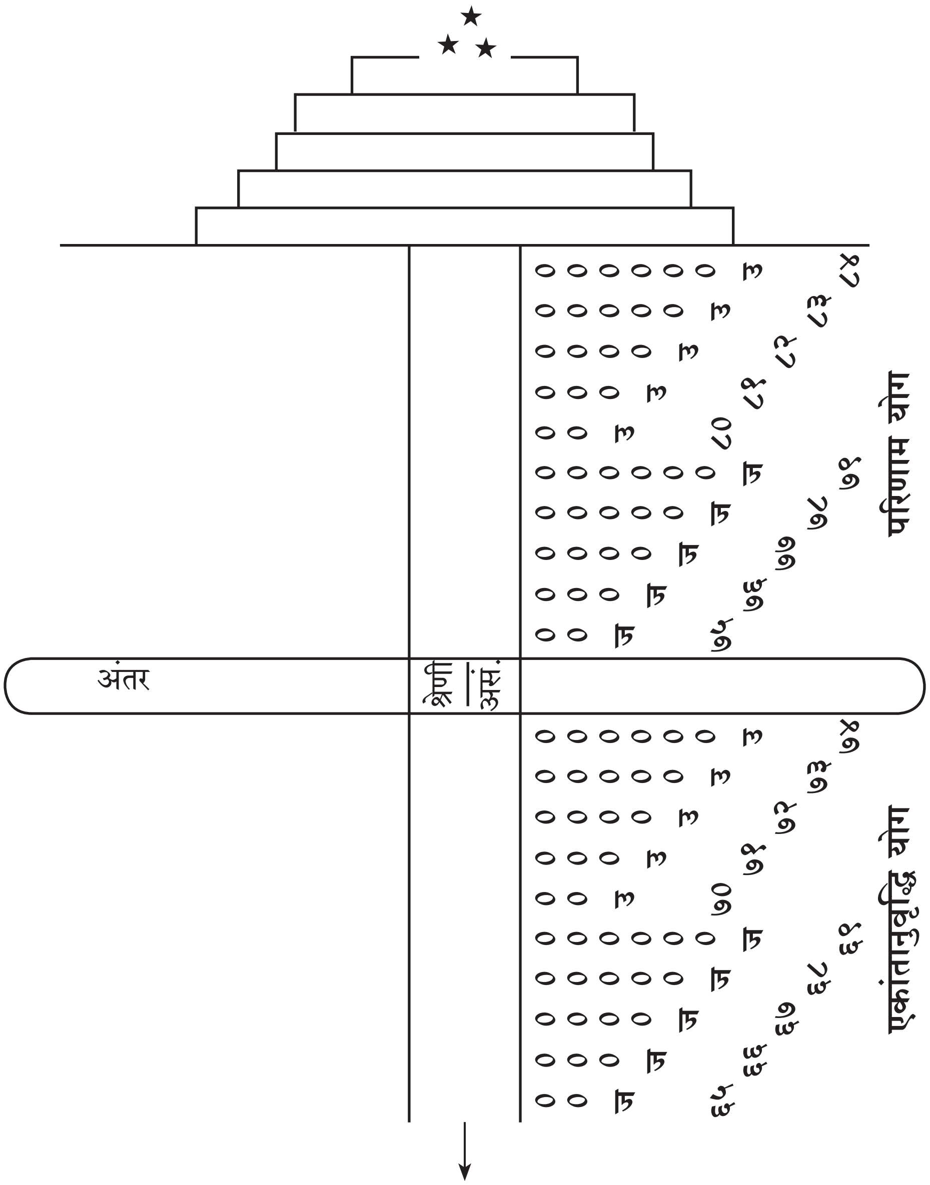

अवरुक्कस्सेण हवे उववादेयंतवड्ढिठाणाणं।
एक्कसमयं हवे पुण इदरेसिं जाव अट्ठोत्ति।।२४२।।

अर्थ – उपपाद योगस्थान और एकांतानुवृद्धि योगस्थानों के प्रवर्तने का काल जघन्य और उत्कृष्ट एक समय ही है। और इन दोनों से भिन्न जो परिणाम योगस्थान हैं उसके किसी एक भेद के निरंतर प्रवर्तने का काल दो समय से लेकर आठ समय तक है।।२४२।।

योगस्थान का निरंतर प्रवर्तन काल

योगस्थान	निरंतर प्रवर्तन काल		कारण
	जघन्य	उत्कृष्ट	
उपपाद	एक समय		जन्म के प्रथम समय में ही होता है
एकांतानुवृद्धि			प्रति समय वृद्धिरूप अन्य-अन्य ही होता है
परिणाम	दो समय	आठ समय	

अट्ठसमयस्स थोवा उभयदिसासुवि असंखसंगुणिदा।
चउसमयोत्ति तहेव य उवरिं तिदुसमयजोग्गाओ।।२४३।।

अर्थ – आठ समय निरंतर प्रवर्तने वाले योगस्थान सबसे थोड़े हैं। और सात को आदि लेकर चार समय तक प्रवर्तने वाले ऊपर-नीचे के दोनों जगह के स्थान असंख्यातगुणे हैं। किंतु तीन समय और दो समय तक प्रवर्तने वाले योगस्थान ऊपर ही की तरफ रहते हैं। और उनका प्रमाण भी क्रम से असंख्यातगुणा है। (इन समयों की रचना करने पर जौ का आकार बन जाता है)।।२४३।।

काल अपेक्षा योग यवमध्य रचना

रचना	यव अनाजवत्
	जैसे – यव बीच में मोटा, ऊपर नीचे पतला होता है वैसे – बीच में आठ समय वाले, ऊपर नीचे कम समय वाले

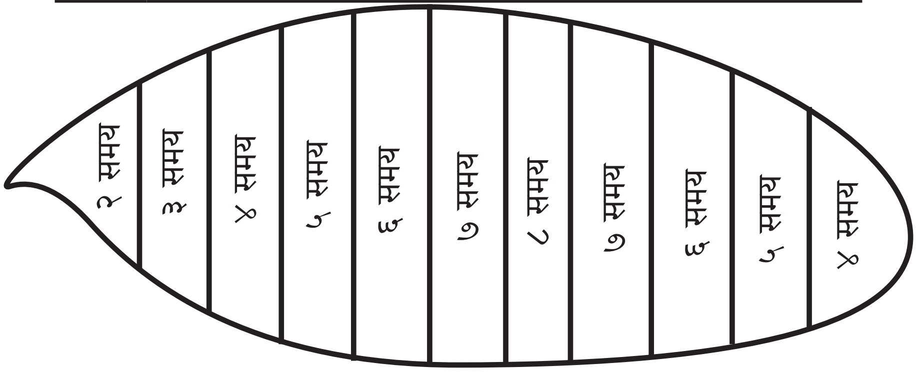

निरंतर प्रवर्तने वाले स्थानों का प्रमाण →

	कुल परिणाम योगस्थान	प्रतिभागहार = $\frac{\text{पल्य}}{\text{अंस.}}$	बहुभाग	एकभाग
संदृष्टि	K	९	$\frac{८}{९}$	$\frac{१}{९}$

समय	कौन से स्थान	प्रमाण	स्थान का प्रमाण	K का
२	↑ उनसे पहले के स्थान	↑ असंख्यात गुणा	$K\times\frac{८}{९}$	बहुभाग
३			$K\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}$	शेष एकभाग का बहुभाग
४			$K\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}\times\frac{१}{२}$	उपर्युक्त में से शेष एकभाग का बहुभाग का आधा
५			$K\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}\times\frac{१}{२}$	उपर्युक्त में से शेष एकभाग का बहुभाग का आधा
६			$K\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}\times\frac{१}{२}$	उपर्युक्त में से शेष एकभाग का बहुभाग का आधा
७			$K\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}\times\frac{१}{२}$	उपर्युक्त में से शेष एकभाग का बहुभाग का आधा
८	त्रस जीव संबंधी मध्यवर्ती परिणाम योगस्थान	सबसे थोड़े	$K\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}$	उपर्युक्त में से शेष एकभाग
७	उनसे बाद के स्थान ↓	असंख्यात गुणा ↓	$K\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}\times\frac{१}{२}$	ऊपर के स्थानवत्
६			$K\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}\times\frac{१}{२}$	
५			$K\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}\times\frac{१}{२}$	
४			$K\times\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\times\frac{८}{९}\times\frac{१}{२}$	

मज्झे जीवा बहुगा उभयत्थ विसेसहीणकमजुत्ता।
हेट्ठिमगुणहाणिसलादुवरि सलागा विसेसऽहिया।।२४४।।
दव्वतियं हेट्ठवरिमदलवारा दुगुणमुभयमण्णोण्णं।
जीवजवे चोद्दससयबावीसं होदि बत्तीसं।।२४५।।
चत्तारि तिण्णि कमसो पण अड अट्ठं तदो य बत्तीसं।।
किंचूणतिगुणहाणिविभजिदे दव्वे दु जवमज्झं।।२४६।।जुम्मं।।

अर्थ - पर्याप्त त्रसजीवों के प्रमाणरूप(जौ की रचना के) मध्यभाग में जीव बहुत हैं। ऊपर और नीचे दोनों तरफ क्रम से यथायोग्य प्रमाण से हीन-हीन होते हैं। तथा नीचे की गुणहानि शलाका से ऊपर की गुणहानि शलाका का प्रमाण कुछ अधिक है।।२४४।।

अर्थ - (कल्पना कीजिये कि) द्रव्यादि तीन का अर्थात् यव के आकार जीवों की संख्या (द्रव्य) का, योगस्थान (स्थिति) का तथा गुणहानि आयाम का प्रमाण क्रम से १४२२, ३२ तथा ४ है। और नीचे तथा ऊपर की नाना गुणहानि का प्रमाण क्रम से ३ तथा ५ है। सब मिलकर द्विगुण अर्थात् दोनों गुणहानि का प्रमाण ८ हुआ। तथा नीचे और ऊपर की दोनों अन्योन्याभ्यस्त राशियों का प्रमाण क्रम से ८ तथा ३२ होता है। यहाँ पर कुछ कम तिगुनी गुणहानि (१२-) का (७११/६४) भाग द्रव्य(१४२२) में देने से जीव-यवाकार के मध्य की जीवसंख्या १२८ निकलती है ऐसा जानना।।२४५-२४६।।

योगस्थानों में त्रस जीवों के प्रमाणरूप जीव यवमध्य रचना

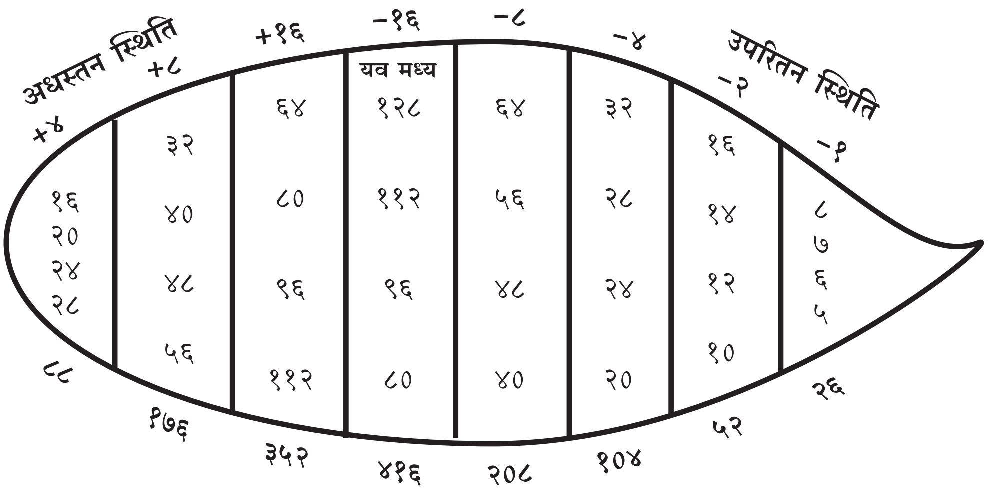

नोट - अंक संदृष्टि की अपेक्षा योगस्थानों में कुल जीवों की संख्या १४२२ है। इसमें से ६१६ तो यवमध्यगुणहानि के नीचे हैं और ३९० जीव यवमध्यगुणहानि के ऊपर हैं और ४१ मध्यगुणहानि में हैं।

अंक संदृष्टि द्वारा द्रव्यादि का प्रमाण

द्रव्य	= त्रस पर्याप्त जीवों का प्रमाण = १४२२
स्थिति	= त्रस पर्याप्त जीवों संबंधी परिणाम योगस्थान = ३२
एक गुणहानि आयाम	= स्थानों का प्रमाण = ४
सर्व गुणहानि	= ८
नीचे की नाना गुणहानि	= ३
ऊपर की नाना गुणहानि	= ५
अन्योन्याभ्यस्त राशि – नीचे की	= $२^{\text{नाना गुणहानि}}$ = $२^{३}$ = ८
– ऊपर की	= $२^{\text{नाना गुणहानि}}$ = $२^{५}$ = ३२
मध्य में जीवों का प्रमाण (ऊपर की गुणहानि का प्रथम निषेक)	= $\frac{\text{सर्व द्रव्य}}{\text{कुछ कम तीन गुणा गुणहानि}}$ = $\frac{१४२२}{(३×४)-\frac{५७}{६४}}$ =१२८
ऊपर की प्रथम गुणहानि में चय का प्रमाण	= $\frac{\text{प्रथम निषेक}}{\text{दो गुणा गुणहानि आयाम}}$ = $\frac{१२८}{२×४}$ = १६
आगे-आगे निषेक का प्रमाण	= पूर्व पूर्व निषेक-चय
अंतिम निषेक	= प्रथम निषेक-(गुणहानि आयाम-१)×चय
सर्व निषेकों का प्रमाण, प्रत्येक गुणहानि के चय का और गुणहानि का सर्व धन यव रचना में देखें	
नीचे की गुणहानि का प्रथम निषेक	= ऊपर की गुणहानि का प्रथम निषेक-चय = १२८-१६ = ११२
नीचे की प्रथम गुणहानि में चय का प्रमाण	= १६
आगे की गुणहानि में निषेक और चय का प्रमाण	= आधा-आधा जानना (यव रचना देखें)

प्रत्येक निषेक	*= योगस्थान*
निषेक का प्रमाण	*= उस-उस योगस्थान में जीवों का प्रमाण*

पुण्णतसजोगठाणं छेदाऽसंखस्सऽसंखबहुभागे।
दलमिगिभागं च दलं दव्वदुगं उभयदलवारा।।२४७।।
णाणागुणहाणिसला छेदासंखेज्जभागमेत्ताओ।
गुणहाणीणद्धाणं सव्वत्थवि होदि सरिसं तु।।२४८।।
अण्णोण्णगुणिदरासी पल्लासंखेज्जभागमेत्तं तु।
हेट्ठिमरासीदो पुण उवरिल्लमसंखसंगुणिदं।।२४९।।

अर्थ – द्रव्य और स्थिति का प्रमाण क्रम से पर्याप्त त्रस जीवराशि का प्रमाण तथा पर्याप्त त्रस संबंधी परिणाम योगस्थानों का प्रमाण जानना। और पल्य के अर्द्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण नानागुणहानियों में असंख्यात का भाग देने से असंख्यात बहुभाग का जो प्रमाण हो उसका आधा तो नीचे की गुणहानि का और बाकी का आधा तथा अवशिष्ट असंख्यातवां एक भाग मिलकर ऊपर की नानागुणहानि का प्रमाण होता है। इस तरह दोनों नानागुणहानियों का प्रमाण समझना।।२४७।।

अर्थ – ऊपर-नीचे की सब गुणहानियों के मिलाने पर नानागुणहानियों की संख्या पल्य के अर्द्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग मात्र है। पूर्वोक्त स्थिति के प्रमाण में नानागुणहानि का भाग देने से एक गुणहानि के आयाम का प्रमाण होता है। सो गुणहानि के आयाम का प्रमाण सब जगह – ऊपर या नीचे की गुणहानि में समान है।।२४८।।

अर्थ – अन्योन्याभ्यस्त राशि पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण है। परंतु उसमें नीचे की गुणहानि की अन्योन्याभ्यस्त राशि से ऊपर की गुणहानि की अन्योन्याभ्यस्त राशि असंख्यातगुणी है।।२४९।।

यथार्थ में द्रव्यादि का प्रमाण

द्रव्य	= पर्याप्त त्रस जीवों का प्रमाण = $\frac{\text{जगतप्रतर}}{\text{प्रतरांगुल/सं.}}$
स्थिति	= द्वीन्द्रिय पर्याप्त के जघन्य परिणाम योगस्थान से लेकर संज्ञी पर्याप्त के उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान = $\frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}}$
सर्व नाना गुणहानि	= $\frac{\text{पल्य के अर्द्धच्छेद}}{\text{असं.}}$ = (माने = L)
ऊपर की नाना गुणहानि	= सर्व गुणहानि का बहुभाग का आधा + शेष एकभाग = $\frac{L}{\text{असं.}}$ (असं.-१) × $\frac{१}{२}$ + $\frac{L}{\text{असं.}}$
नीचे की नाना गुणहानि	= सर्व गुणहानि का बहुभाग का आधा = $\frac{L}{\text{असं.}}$ (असं.-१) × $\frac{१}{२}$

गुणहानि आयाम	= $\frac{\text{स्थिति}}{\text{सर्व नाना गुणहानि}}$
दो गुणहानि	= गुणहानि आयाम × २
अन्योन्याभ्यस्त राशि (सामान्यपने)	= $\frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}}$
ऊपर की अन्योन्याभ्यस्त राशि (सामान्यपने)	= नीचे की अन्योन्याभ्यस्त राशि से असंख्यात गुणा

इगिठाणफड्डयाओ समयपबद्धं च जोगवड्ढी य।
समयपबद्धचयट्ठं एदे हु पमाणफलइच्छा।।२५०।।

अर्थ – द्वीन्द्रिय पर्याप्त का पहला जघन्य परिणाम योगस्थान का स्पर्द्धक, समयप्रबद्ध और योगों की वृद्धि – ये तीनों समयप्रबद्ध के बढ़ने का प्रमाण लाने के लिये क्रम से त्रैराशिक संबंधी प्रमाणराशि, फलराशि और इच्छाराशि हैं – ऐसा समझना।।२५०।।

प्रत्येक योगस्थान में कितना कितना प्रदेश बंध

योगस्थान	प्रदेशों का प्रमाण
द्वीन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य परिणाम स्थान	जघन्य समयप्रबद्ध
अंनतर स्थान (लब्ध राशि)	= $\frac{\text{फलराशि × इच्छाराशि}}{\text{प्रमाणराशि}}$ = $\frac{\text{जघन्य सप्र. × स्पर्द्धक वृद्धि}}{\text{ज. योगस्थान के स्पर्द्धक}}$ = $\frac{\text{ज. सप्र. × }\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{अंस.}}}{\frac{\text{श्रेणी}}{\text{अंस.}}}$
⋮	
ज. योगस्थान से दोगुणा स्थान	ज. सप्र. से दोगुणा
⋮	
ज. योगस्थान से चौगुणा स्थान	ज. सप्र. से चौगुणा
⋮	
संज्ञी पर्याप्त उत्कृष्ट योगस्थान = ज. योगस्थान × $\frac{\text{पल्य के अर्द्धच्छेद}}{\text{असं.}}$	ज. सप्र. × $\frac{\text{पल्य के अर्द्धच्छेद}}{\text{असं.}}$

बीइंदियपज्जत्तजहण्णट्ठाणादु सण्णिपुण्णस्स।
उक्कस्सट्ठाणोत्ति ये जोगट्ठाणा कमे उड्ढा।।२५१।।
सेढियसंखेज्जदिमा तस्स जहण्णस्स फड्डया होंति।
अंगुलअसंखभागा ठाणं पडि फड्डया उड्ढा।।२५२।।
धुववड्ढीवड्ढंतो दुगुणं दुगुणं कमेण जायंते।
चरिमे पल्लच्छेदाऽसंखेज्जदिमो गुणो होदि।।२५३।।

अर्थ – द्वीन्द्रिय पर्याप्त के जघन्य परिणाम योगस्थान से लेकर संज्ञी पर्याप्त के उत्कृष्ट पीरणाम योगस्थान तक परिणाम योगस्थान क्रम से एक-एक स्थान में समान वृद्धि प्रमाण से बढ़ते हुए जानने चाहिए।।२५१।।

अर्थ – द्वीन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य परिणाम योगस्थान जगतश्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य स्पर्द्धकों के समूह रूप है। और इसके बाद हर एक स्थान के प्रति सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्द्धक बढ़ते हैं।।२५२।।

अर्थ – इस तरह स्थान-स्थान प्रति ध्रुववृद्धि अर्थात् एक-सी वृद्धि से बढ़ता-बढ़ता हुआ जघन्य योगस्थान क्रम-क्रम से दोगुणा होता जाता है। और अंत में संज्ञीपर्याप्त जीव के उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान में गुणाकार का प्रमाण पल्य के अर्द्धच्छेद के असंख्यातवें भागप्रमाण हो जाता है।।२५३।।

प्रत्येक योगस्थान में वृद्धि का प्रमाण

ज. योगस्थान	द्वीन्द्रिय पर्याप्त का ज. परिणाम योगस्थान	जगतश्रेणी स्पर्द्धक का समूह अंस.
उ. योगस्थान	संज्ञी पर्याप्त उ. परिणाम योगस्थान	ज. योगस्थान × पल्य के अर्द्धच्छेद असं.
वृद्धि	प्रत्येक स्थान में समान वृद्धि	ज. स्पर्द्धक × सूच्यंगुल अंस. (पूर्व-पूर्व स्थान में इतनी वृद्धि करने पर आगे-आगे का स्थान प्राप्त होता है)

आदी अन्ते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा।
सेढिअसंखेज्जदिमा जोगट्ठाणा णिरंतरगा।।२५४।।
अन्तरगा तदसंखेज्जदिमा सेढीअसंखभागा हु।
सांतरणिरंतराणिवि सव्वाणिवि जोगठाणाणि।।२५५।।
सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णओ जोगो।
पज्जत्तसण्णिपंचिंदियस्स उक्कस्सओ होदि।।२५६।।

अर्थ – आदि (जघन्य स्थान) को अंत (उत्कृष्ट स्थान) में से घटाने पर बाकी जो प्रमाण हो उसको वृद्धि से भाजित कर तथा एक स्थान और मिला के जो प्रमाण हो उतने सब अंतर रहित योगस्थान जानने। सो ये स्थान जगतश्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।२५४।।

अर्थ – अंतर वाले योगस्थान उन निरंतर योगस्थानों के असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं। ये भी जगतश्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। और सांतर तथा निरंतर मिश्ररूप योगस्थान अंतरगत योगस्थानों के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं, तो भी वे जगतश्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है। इसतरह सब योगस्थान मिलकर भी श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही कहे हैं।।२५५।।

अर्थ – इन सब योगस्थानों में सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्त के अंतिम क्षुद्रभव के पहले समय में जघन्य उपपाद योगस्थान होता है। वह तो आदि जानना। और सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव के उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान होता है। वह अंतस्थान है, ऐसा जानना।।२५६।।

कुल योगस्थान भेद

<table>
<tr><td>निरंतर योगस्थान</td><td>(उ.स्थान–ज.स्थान) / वृद्धि का प्रमाण +१</td><td>= जगतश्रेणी / अंस.</td><td rowspan="4">असंख्यात के भेद बहुत है, इसलिये यथायोग्य भाग जानना</td></tr>
<tr><td>अंतरगत योगस्थान</td><td>निरंतर स्थान / अंस.</td><td>= जगतश्रेणी / अंस.</td></tr>
<tr><td>सांतर–निरंतर (मिश्र)</td><td>अंतरगत स्थान / अंस.</td><td>= जगतश्रेणी / अंस.</td></tr>
<tr><td>सर्व योगस्थान</td><td>तीनों का जोड़</td><td>= जगतश्रेणी / अंस.</td></tr>
<tr><td>जघन्य योगस्थान</td><td colspan="3">सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्त के अंतिम क्षुद्रभव के पहले समय में जघन्य उपपाद योगस्थान</td></tr>
<tr><td>उत्कृष्ट योगस्थान</td><td colspan="3">संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान</td></tr>
</table>

जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति।
अपरिणदुच्छिण्णेसु य बंधट्ठिदिकारणं णत्थि।।२५७।।

अर्थ – प्रकृति और प्रदेशबंध योगों के निमित्त से होते हैं। स्थिति और अनुभागबंध कषाय के निमित्त से होते हैं। जिसके जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त कालप्रमाण कषायस्थान अपरिणत अर्थात् उदयरूप नहीं होते ऐसे उपशांतकषाय तथा कषायरहित क्षीणकषाय और सयोगकेवली के तत्काल बंध है, उनके स्थितिबंध का कारण नहीं है। च शब्द से अयोगकेवली के चारों बंध के कारणभूत योग और कषाय नहीं हैं।।२५७।।

४ प्रकार के बंध के कारण

बंध	कारण
प्रकृति, प्रदेश	योग
स्थिति, अनुभाग	कषाय

गुणस्थानों में बंध के कारण

गुणस्थान	बंध के कारण	बंध
१-१०	कषाय एवं योग	चारों प्रकार का
११-१३	मात्र योग	तात्कालिक
१४	कोई नहीं	बंध नहीं

सेढिअसंखेज्जदिमा जोगट्ठाणाणि होंति सव्वाणि।
तेहिं असंखेज्जगुणो पयडीणं संगहो सव्वो।।२५८।।
तेहिं असंखेज्जगुणा ठिदिअवसेसा हवंति पयडीणं।
ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा तत्तो असंखगुणा।।२५९।।
अणुभागाणं बंधज्झवसाणमसंखलोगगुणिदमदो।
एत्तो अणंतगुणिदा कम्मपदेसा मुणेयव्वा।।२६०।।

अर्थ - (निरंतर, सांतर एवं निरंतर-सांतर) सब मिलकर कुल योगस्थान जगतश्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। और उनसे असंख्यात लोक गुणा सब (मतिज्ञानावरणादि) प्रकृतियों का समुदाय है।।२५८।।

अर्थ - उन प्रकृति-संग्रहों से प्रकृतियों की स्थिति के भेद असंख्यात गुणे हैं। उन स्थिति के भेदों से स्थिति-बंधाध्यवसायस्थान असंख्यात गुणे हैं।।।२५९।।

अर्थ - इन स्थिति-बंधाध्यवसाय स्थानों से असंख्यात लोक गुणे अनुभाग-बंधाध्यवसाय स्थान हैं। इनसे अनंतगुणे कर्मों के परमाणु जानने।।२६०।।

योगस्थानादि का अल्पबहुत्व

सर्व यागस्थान	असं. लोक → गुणा	**सर्व प्रकृति संग्रह**	असं. → गुणा	**स्थिति के भेद**	असं. → गुणा	**स्थिति- बंधाध्यवसाय स्थान**

असं. लोक → गुणा	**अनुभाग- बंधाध्यवसाय स्थान**	अनंत → गुणा	**कर्म प्रदेश**

सर्व प्रकृतियों के उत्तरोतर भेद

* ज्ञानावरण		भेद	
मतिज्ञानावरण		* पर्याय समास ज्ञान के असं. लोक × असं. लोक प्रमाण भेद है, * इसलिए आवरण करने वाले कर्म के भी उतने ही भेद है	असं. लोक
श्रुतज्ञानावरण		मतिज्ञान पूर्वक होता है, इसलिए उतने ही के भेद है	असं. लोक
अवधि ज्ञाना–वरण	देशावधि	$(\text{लोक} - \frac{\text{घनांगुल}}{\text{अस.}}) \times \frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{अस.}} + १$ इतने ज्ञान के भेद है, इतने ही आवरण है	असं. लोक
	परमावधि	अग्निकायिक जीव × अग्निकायिक जीवों के शरीर की अवगाहना इतने ज्ञान के भेद है, इतने ही आवरण है	असं. लोक
	सर्वावधि	१	१
मनःपर्यय ज्ञाना–वरण		२० कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण समय(१ कल्प काल) × असं. इतने ज्ञान के भेद है, इतने ही आवरण है	असं. कल्प काल
केवल ज्ञानावरण		१	१
*** नाम कर्म**			
आनुपूर्वी		ये प्रकरण बड़ी टीका में से **अवश्य** जानें	
*** शेष प्रकृतियों के उत्तरोतर भेद**		उपदेश यहाँ नहीं है	

स्थिति के कुल भेद

१ प्रकृति के स्थिति भेद	= (उत्कृष्ट स्थिति–जघन्य स्थिति) + १	= संख्यात पल्य
सर्व प्रकृति के स्थिति भेद	= संख्यात पल्य × सर्व प्रकृति संग्रह	= असं. लोक

शेष विवरण

स्थिति–बंधाध्यवसाय स्थान	गुणहानि रचना रूप	बड़ी टीका में से **अवश्य** जानें
अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान	गुणहानि रचना रूप	
प्रदेश बंध – १ समय में बंध योग्य समयप्रबद्ध	गुणहानि रचना रूप	
– सत्ता में स्थित डेढ़ गुणहानि द्रव्य	त्रिकोण यंत्र रचना	

उदय प्रकरण

आहारं तु पमत्ते तित्थं केवलिणि मिस्सयं मिस्से।
सम्मं वेदगसम्मे मिच्छदुगयदेव आणुदओ।।२६१।।
णिरयं सासणसम्मो ण गच्छदित्ति य ण तस्स णिरयाणू।
मिच्छादिसु सेसुदओ सगसगचरिमोत्ति णायव्वो।।२६२।।

अर्थ – आहारकद्विक का उदय प्रमत्त गुणस्थान में ही है। तीर्थंकर प्रकृति का उदय सयोगी तथा अयोगी केवली के ही है, मिश्र मोहनीय का उदय सम्यक्त्वमिथ्यात्व गुणस्थान में ही है, सम्यक्त्व मोहनीय का उदय क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि के चार गुणस्थानों में ही है और आनुपूर्वी कर्म का उदय मिथ्यात्व, सासादन और असंयत में ही है। अन्यत्र उनके उदय का अभाव है।।२६१।।

अर्थ – सासादन सम्यग्दृष्टि नरकगति को नहीं जाता है, इस कारण उसके नरकगत्यानुपूर्वी कर्म का उदय नहीं है। और शेष सब प्रकृतियों का उदय मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में अपने-अपने उदयस्थान के अंतसमय तक जानना।।२६२।।

प्रकृतियों के उदय का नियम

प्रकृतियाँ	उदय के गुणस्थान
आहारकद्विक	६
तीर्थंकर प्रकृति	१३, १४
मिश्र (सम्यक्मिथ्यात्व)	३
सम्यक्त्व प्रकृति	४ से ७ (क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि)
३ आनुपूर्वी	१, २, ४
नरकानुपूर्वी	१, ४
शेष प्रकृतियाँ	अपने अपने उदय स्थान के अंत तक

उदय व्युच्छित्ति, उदय, अनुदय का स्वरूप

उदय व्युच्छित्ति	* विवक्षित प्रकृति का उस गुणस्थान के अंत समय तक उदय जानना * उसके ऊपर के गुणस्थान में उदय न जानना
उदय	* विवक्षित प्रकृति का विवक्षित गुणस्थान में उदय जानना * अपने अनुभाग रूप स्वभाव की जो प्रकटता * अपना कार्य करके कर्मपने को छोड़े

आगे-आगे के गुणस्थान में उदय योग्य प्रकृतियाँ =	* पहले-पहले के गुणस्थान में जितना उदय - पहले की उदय व्युच्छित्ति - विवक्षित गुणस्थान में उदय योग्य नहीं + विवक्षित गुणस्थान में उदय योग्य विशेष प्रकृति जो पूर्व में उदय योग्य नहीं
अनुदय प्रकृतियाँ =	* कुल उदय योग्य प्रकृतियाँ (१२२) - विवक्षित गुणस्थान की उदय योग्य प्रकृतियाँ

दस चउरिगि सत्तरसं अट्ठ य तह पंच चेव चउरो य।
छच्छक्कएक्कदुगदुग चोद्दस उगुतीस तेरसुदयविधि।।२६३।।

अर्थ - (अभेदविवक्षा से उदय प्रकृति १२२ है) उसमें मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थानों में प्रकृतियों की उदयविधि अर्थात् उदय व्युच्छित्ति (कहे हुए गुणस्थान से ऊपर उदय न होना) क्रम से १०, ४, १, १७, ८, ५, ४, ६, ६, १, २, १६(२+१४), २९, और १३ है।।२६३।।

गुणस्थानों में उदय, अनुदय, व्युच्छित्ति प्रकृतियों की संख्या (यतिवृषभाचार्य के अनुसार)

गुणस्थान	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
व्युच्छित्ति	१०	४	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	२९	१३
उदय	११७	१०६	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१३
अनुदय	५	१६	२२	१८	३५	४१	४६	५०	५६	६२	६३	६५	८०	१०९

उदय एवं उदीरणा में अंतर

गुणस्थान	उदय व्युच्छित्ति	उदीरणा व्युच्छित्ति	विवरण
६	५	५ + ३ = ८	५ = छठे गुणस्थान की उदय व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ ३ = साता-असाता वेदनीय, मनुष्यायु
१३	२९	२९+१३-३ = ३९	२९=१३वें गुणस्थान की उदय व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ १३=१४वें गुणस्थान की उदय व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ ३=छठे गुणस्थान की उदीरणा व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ
१४	१३	०	-

पण णव इगि सत्तरसं अड पंच च चउर छक्क छच्चेव।
इगिदुग सोलस तीसं बारस उदये अजोगंता।।२६४।।
मिच्छे मिच्छादावं सुहुमतियं सासणे अणेइंदी।
थावरवियलं मिस्से मिस्सं च य उदयवोच्छिण्णा।।२६५।।
अयदे बिदियकसाया वेगुव्वियछक्क णिरयदेवाऊ।
मणुयतिरियाणुपुव्वी दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं।।२६६।।
देसे तदियकसाया तिरिया उज्जोवणीचतिरियगदी।
छट्ठे अहारदुगं थीणतियं उदयवोच्छिण्णा।।२६७।।
अपमत्ते सम्मत्तं अंतिमतियसंहदी यऽपुव्वम्हि।
छच्चेव णोकसाया अणियट्टीभागभागेसु।।२६८।।
वेदतिय कोहमाणं मायासंजलणमेव सुहुमंते।
सुहुमो लोहो संते वज्जंणारायणारायं।।२६९।।
खीणकसायदुचरिमे णिद्दा पयला य उदयवोच्छिण्णा।
णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि चरिमम्हि।।२७०।।
तदियेक्कवज्जणिमिणं थिरसुहसरगदिउरालतेजदुगं।
संठाणं वण्णागुरुचउक्क पत्तेय जोगिम्हि।।२७१।।
तदियेक्कं मणुवगदी पंचिंदियसुभगतसतिगादेज्जं।
जसतित्थं मणुवाऊ उच्चं च अजोगिचरिमम्हि।।२७२।।

अर्थ – सब प्रकृतियों के उदय की व्युच्छित्ति क्रम से १४ गुणस्थानों में ५, ९, १, १७, ८, ५, ४, ६, ६, १, २, १६, ३० और १२ – अयोगकेवली तक है।।२६४।।

अर्थ – मिथ्यात्व में मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्मत्रिक – इन पाँच प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है। सासादन में अन अर्थात् अनंतानुबंधी की चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय ये नौ की, मिश्रगुणस्थान में एक सम्यग्मिथ्यात्व की ही उदय व्युच्छित्ति होती है।।२६५।।

अर्थ – असंयत में दूसरी अप्रत्याख्यानावरण कषाय की चार, वैक्रियिक षट्, नरक-देव आयु, मनुष्य-तिर्यंच आनुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय और अयश:कीर्ति – इस प्रकार १७ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।।२६६।।

अर्थ – पाँचवें देशसंयत में तीसरी प्रत्याख्यानावरण कषाय की चार, तिर्यंचायु, उद्योत, नीच-गोत्र, तिर्यंचगति – इन आठ प्रकृतियों की, छठे गुणस्थान में आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा – ये पाँच प्रकृतियाँ उदय से व्युच्छिन्न होती हैं। (व्युच्छिन्ना शब्द मध्य दीपक समान है, इसलिए अन्यत्र भी व्युच्छित्ति का कथन जानना)।।२६७।।

अर्थ – अप्रमत्त गुणस्थान में सम्यक्त्व प्रकृति, अंत के अर्धनाराच आदि तीन संहनन –इन

चार प्रकृतियों की, अपूर्वकरण में हास्य आदि ६ नोकषाय की, अनिवृत्तिकरण के सवेद भाग और अवेद भाग इन दोनों में से - सवेद भाग में तो तीन वेद तथा अवेद भागों में अनुक्रम से संज्वलन क्रोध, मान और माया की - ऐसे छः प्रकृतियों की (बादर लोभ की भी यहीं पर), सूक्ष्म संज्वलन लोभ की सूक्ष्मसांपराय के अंत समय में तथा उपशांतमोह में वज्रनाराच और नाराच संहनन की उदय व्युच्छित्ति होती हैं।।२६८-२६९।।

अर्थ - क्षीणकषाय के उपांत्य समय में निद्रा और प्रचला की उदय व्युच्छित्ति होती हैं तथा अंत के समय में ५ ज्ञानावरण, ५ अंतराय और ४ दर्शनावरण की - इन १४ प्रकृतियों की उदय से व्युच्छित्ति होती हैं। (दोनों मिलकर २+१४ = १६)।।२७०।।

अर्थ - सयोगकेवली में तीसरे (वेदनीयकर्म) के दो भेदों में से कोई एक, और वज्रवृषभनाराच संहनन, निर्माण, स्थिर-शुभ-स्वर-विहायोगति-औदारिक और तैजस इन सबका जोड़ा, समचतुरस्र आदि छह संस्थान, वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, और प्रत्येक शरीर-सब मिलकर ३० प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती हैं।।२७१।।

अर्थ - अयोगकेवली के अंतसमय में तीसरे (वेदनीयकर्म) की कोई एक प्रकृति, मनुष्यगति, पंचेंद्रिय जाति, सुभग, त्रसत्रिक(त्रस, बादर, पर्याप्त), आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर प्रकृति, मनुष्यायु, और उच्चगोत्र - ये १२ प्रकृतियाँ उदय से व्युच्छिन्न होती हैं।।२७२।।

उदय के दो पक्ष

	यतिवृषभ आचार्य	**भूतबलि आचार्य**
एकेन्द्रिय,स्थावर,विकलत्रय - ५ की :-		
व्युच्छित्ति	मिथ्यात्व में	सासादन में
उदय	सासादन में उदय नहीं	सासादन में उदय
दोनों कथन आचार्यों ने किये हैं, इसलिए दोनों का कथन दिया है		

गुणस्थानों में उदय व्युच्छिति
(भूतबलि आचार्य के अनुसार)

गुणस्थान	प्रकृति संख्या	मूल कर्म	उत्तर कर्म	
१	५	मोहनीय - १	✻ मिथ्यात्व	
		नाम - ४	✻ सूक्ष्म,साधारण,अपर्याप्त(सूक्ष्मत्रिक),आतप	
२	९	मोहनीय - ४	✻ अनंतानुबंधी ४	
		नाम - ५	✻ एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय	
३	१	मोहनीय - १	✻ सम्यग्मिथ्यात्व	
४	१७	मोहनीय - ४	✻ अप्रत्याख्यानावरण ४	
		आयु - २	✻ नरकायु, देवायु	
		नाम - ११	✻ वैक्रियिक षट्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय,अयश:कीर्ति	
५	८	मोहनीय - ४	✻ प्रत्याख्यानावरण ४	
		आयु - १	✻ तिर्यंचायु	
		नाम - २	✻ तिर्यंचगति, उद्योत	
		गोत्र - १	✻ नीचगोत्र	
६	५	दर्शनावरण-३	✻ स्त्यानगृद्धित्रिक	
		नाम - २	✻ आहारकद्विक	
७	४	मोहनीय - १	✻ सम्यक्त्व प्रकृति	
		नाम - ३	✻ अंतिम ३ संहनन - अर्द्धनाराच, कीलक, असंप्राप्तासृपाटिका	
८	६	मोहनीय - ६	✻ हास्य आदि ६ नोकषाय	
९	६	मोहनीय - ६	**सवेद भाग**	✻ तीन वेद
			अवेद भाग	✻ संज्वलन क्रोध
				✻ संज्वलन मान
				✻ संज्वलन माया
१०	१	मोहनीय - १	✻ सूक्ष्म संज्वलन लोभ	
११	२	नाम - २	✻ वज्रनाराच-नाराच संहनन	

१२	२	दर्शनावरण-२	**उपांत्य समय**	❊ निद्रा, प्रचला
	१४	ज्ञानावरण-५	**अंत समय**	❊ मति ज्ञानावरणादि ५
		दर्शनावरण-४		❊ चक्षुदर्शनावरणादि ४
		अंतराय - ५		❊ दानांतरायादि ५
१३	३०	वेदनीय - १	❊ दो भेदों में से कोई एक	
		नाम - २९	❊ औदारिकद्विक, तैजसद्विक, वज्रवृषभनाराच संहनन, छह संस्थान, निर्माण, वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ,सुस्वर-दुस्वर,विहायोगति दोनों	
१४	१२	वेदनीय - १	❊ दो भेदों में से कोई एक	
		आयु - १	❊ मनुष्यायु	
		नाम - ९	❊ मनुष्यगति, पंचेंद्रिय जाति,त्रस,बादर,पर्याप्त सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर प्रकृति	
		गोत्र - १	❊ उच्चगोत्र	

साता-असाता व्युच्छिति

	१३ गुणस्थान		१४ गुणस्थान	
	वेदनीय	**कुल**	**वेदनीय**	**कुल**
एक जीव अपेक्षा	१	३०	१	१२
नाना जीव अपेक्षा	०	२९	२	१३

णट्ठा य रायदोसा इंदियणाणं च केवलिम्हि जदो।
तेण दु सादासादजसुहदुक्खं णत्थि इंदियजं।।२७३।।
समयट्ठिदिगो बंधो सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स।
तेण असादस्सुदओ सादसरूवेण परिणमदि।।२७४।।
एदेण कारणेण दु सादस्सेव दु णिरंतरो उदओ।
तेणासादणिमित्ता परीसहा जिणवरे णत्थि।।२७५।।

अर्थ - केवली भगवान के राग तथा द्वेष नष्ट हो गये है। और इन्द्रियज्ञान भी नष्ट हो गया है। इस कारण केवली के साता तथा असाताजन्य इन्द्रियविषयक सुख-दुःख लेशमात्र भी नहीं होते।।२७३।।

अर्थ – केवली भगवान के एक सातावेदनीय का ही बंध एक समय की स्थिति वाला ही होता है, इस कारण वह उदयस्वरूप ही है। और इसी कारण असाता का उदय भी सातास्वरूप से ही परिणमता है।।२७४।।

अर्थ – इस कारण से केवली के हमेशा सातावेदनीय का ही उदय रहता है। इसी कारण असाता के निमित्त से होने वाली क्षुधा आदि ११ परीषह हैं, वे जिनवरदेव के कार्यरूप नहीं होती हैं।।२७५।।

केवली भगवान के साता-असाता का उदय

मोहनीय	के क्षय से	राग-द्वेष	नष्ट हो गये
ज्ञानावरण		इन्द्रिय जनित मति श्रुत ज्ञान	
※ इसलिए साता-असाता जनित इन्द्रिय सुख-दुःख लेशमात्र भी नहीं			
※ मोहनीय का अभाव होने से वेदनीय का उदय होने पर भी अपना कार्य करने को सामर्थ नहीं			
साता-असाता का बंध और उदय			
साता का बंध	※ एक समय की स्थिति वाला होने से उदय रूप ही		
असाता का उदय	※ सातारूप हो कर परिणमता		
	※ केवली के विशुद्धि विशेष ※ इसलिए असाता की अनुभाग शक्ति अनंतगुणी हीन हुयी ※ इसकारण असाता का अप्रकट सूक्ष्म उदय		
	※ सातावेदनीय के बंध का अनुभाग अनंतगुणा		
	※ स्थिति न होने से उदयरूप ही		
परीषह का संभव			
परीषह का अभाव	※ निरंतर साता का उदय ※ असाता से उत्पन्न परिषह नहीं ※ असाता का उदय होने से **उपचार से** केवली के ११ परीषह कही है		

सत्तरसेक्कारखचदुसहियसयं सगिगिसीदि छदुसदरी।
छावट्ठि सट्ठि णवसगवण्णास दुदालबारुदया।।२७६।।
पंचेक्कारसबावीसट्ठारसपंचतीस इगिछादालं।
पण्णं छप्पण्णं बितिपणसट्ठि असीदि दुगुणपणवण्णं।।२७७।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थानों में क्रम से ११७, १११, १००, १०४, ८७, ८१, ७६, ७२, ६६, ६०, ५९, ५७, ४२, १२ प्रकृतियों का उदय होता है।।२७६।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में क्रम से ५, ११, २२, १८, ३५, ४१, ४६, ५०, ५६, ६२, ६३, ६५, ८०, ११० प्रकृतियाँ अनुदयरूप हैं।।२७७।।

गुणस्थानों में उदय, अनुदय, व्युच्छित्ति प्रकृतियों की संख्या (भूतबलि आचार्य के अनुसार)

गुण-स्थान	उदय		उदय/अनुदय विवरण	अनुदय (पूर्व गुणस्थान का अनुदय + पूर्व गुण-स्थान की व्युच्छित्ति)		व्युचि छत्ति
१	१२२-५ =	११७	५=तीर्थंकर,आहारकद्विक सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व		५	५
२	११७-५-१ =	१११	१=नरकगत्यानुपूर्वी	५+५+१ =	११	९
३	१११-९-३+१=	१००	३=आनुपूर्वी, १=मिश्र	११+९+३-१=	२२	१
४	१००-१+५ =	१०४	५=४ आनुपूर्वी,सम्यक्त्व	२२+१-५ =	१८	१७
५	१०४-१७ =	८७		१८+१७ =	३५	८
६	८७-८+२ =	८१	२=आहारकद्विक	३५+८-२ =	४१	५
७	८१-५ =	७६		४१+५ =	४६	४
८	७६-४ =	७२		४६+४ =	५०	६
९	७२-६ =	६६		५०+६ =	५६	६
१०	६६-६ =	६०		५६+६ =	६२	१
११	६०-१ =	५९		६२+१ =	६३	२
१२	५९-२ =	५७		६३+२ =	६५	१६
१३	५७-१६+१ =	४२	१=तीर्थंकर प्रकृति	६५+१६-१ =	८०	३०
१४	४२-३० =	१२		८०+३० =	११०	१२

उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो।
मोत्तूण तिण्णिठाणं पमत्त जोगी अजोगी य।।२७८।।
तीसं बारस उदयुच्छेदं केवलिणमेकदं किच्चा।
सादमसादं च तहिं मणुवाउगमवणिदं किच्चा।।२७९।।
अवणिदतिप्पयडीणं पमत्तविरदे उदीरणा होदि।
णत्थित्ति अजोगिजिणे उदीरणा उदयपयडीणं।।२८०।।

अर्थ - प्रमत्त, सयोगी तथा अयोगी इन तीन गुणस्थानों को छोड़कर उदय और उदीरणा में स्वामीपने की अपेक्षा कुछ विशेषता नहीं है।।२७८।।

अर्थ – सयोगी और अयोगी केवली में व्युच्छित्ति ३० और १२ है – उनको एकत्रित करके १ साता, २ असाता और ३ मनुष्यायु घटाना।।२७९।।

अर्थ – घटाई हुई साता आदि तीन प्रकृतियों की उदीरणा प्रमत्तविरत तक ही होती है। शेष ३९ प्रकृतियों की उदीरणा सयोगकेवली के होती है। तथा वहाँ ही उदीरणा की व्युच्छित्ति भी होती है और अयोगकेवली के उदीरणा नहीं होती है।।२८०।।

उदय एवं उदीरणा में अंतर

यतिवृषभाचार्य के पक्ष अनुसार ही
गाथा २६३ पृष्ठ क्र.   की तालिका देखें
* साता-असाता वेदनीय, मनुष्यायु की उदीरणा छठे गुणस्थान से ऊपर नहीं होती है * क्योंकि इनकी उदीरणा संक्लेश परिणामों से होती है

पण णव इगि सत्तरसं अट्ठट्ठ य चदुर छक्क छच्चेव।
इगि दुग सोलुगदालं उदीरणा होंति जोगंता।।२८१।।
सत्तरसेक्कारखचदुसहियसयं सगिगिसीदि तियसदरी।
णवतिण्णिसट्ठि सगछक्कवण्ण चउवण्णमुगुदालं।।२८२।।
पंचेक्कारसबावीसट्ठारस पंचतीस इगिणवदालं।
तेवण्णेक्कुणसट्ठी पणछक्कडसट्ठि तेसीदी।।२८३।।जुम्मं।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली पर्यंत क्रम से ५, ९, १, १७, ८, ८, ४, ६, ६, १, २, १६, ३९ प्रकृतियों की उदीरणा व्युच्छित्ति होती है।।२८१।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि आदि तेरह गुणस्थानों में क्रम से ११७, १११, १००, १०४, ८७, ८१, ७३, ६९, ६३, ५७, ५६, ५४, ३९ प्रकृतियाँ उदीरणारूप हैं। और ५, ११, २२, १८, ३५, ४१, ४९, ५३, ५९, ६५, ६६, ६८, ८३ अनुदीरणा रूप प्रकृतियाँ है।।२८२-२८३।।

गुणस्थानों में उदीरणा, व्युच्छित्ति, अनुदीरणा

गुणस्थान	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
व्युच्छित्ति	५	९	१	१७	८	८	४	६	६	१	२	१६	३९	–
उदीरणा	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७३	६९	६३	५७	५६	५४	३९	–
अनुदीरणा	५	११	२२	१८	३५	४१	४९	५३	५९	६५	६६	६८	८३	–

गदियादिसु जोग्गाणं पयडिप्पहुदीणमोघसिद्धाणं।
सामित्तं णेदव्वं कमसो उदयं समासेज्ज।।२८४।।

गदिआणुआउउदओ सपदे भूपुण्णबादरे ताओ।
उच्चुदओ णरदेवे थीणतिगुदओ णरे तिरिये।।२८५।।
संखाउगणरतिरिए इंदियपज्जत्तगादु थीणतियं।
जोग्गमुदेदुं वज्जिय आहारविगुव्वणुट्ठवगे।।२८६।।
अयदापुण्णे ण हि थी संढोवि य घम्मणारयं मुच्चा।
थीसंढयदे कमसो णाणुचऊ चरिमतिण्णाणू।।२८७।।
इगिविगलथावरचऊ तिरिए अपुण्णो णरेवि संघडणं।
ओरालदु णरतिरिए वेगुव्वदु देवणेरयिए।।२८८।।
तेउतिगूणतिरिक्खेसुज्जोवो बादरेसु पुण्णेसु।
सेसाणं पयडीणं ओघं वा होदि उदओ दु।।२८९।।

अर्थ – प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश गुणस्थानों में सिद्ध किये जा चुके हैं। अब उनका स्वामीपना गत्यादि मार्गणाओं में क्रम से उदय की अपेक्षा से प्राप्त करना।।२८४।।

अर्थ – किसी भी विवक्षित भव के पहले समय में ही उस विवक्षित भव के योग्य गति, आनुपूर्वी और आयु का उदय होता है। और सपदे कहने से एक जीव के एक ही गति, आनुपूर्वी तथा आयु का उदय युगपत् हुआ करता है। आतप नामकर्म का उदय बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक के ही होता है। उच्चगोत्र का उदय मनुष्य और देवों के ही होता है, और स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा प्रकृतियों का उदय मनुष्य और तिर्यंचों के ही होता है।।२८५।।

अर्थ – संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिया मनुष्य और तिर्यंचों के ही इन्द्रिय पर्याप्ति के पूर्ण होने के बाद स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा उदय योग्य है। परंतु आहारक अथवा वैक्रियिक ऋद्धिधारक मनुष्य के ये तीन उदय योग्य नहीं है।।२८६।।

अर्थ – निर्वृत्ति अपर्याप्त असंयत गुणस्थान में स्त्रीवेद का उदय नहीं है। क्योंकि असंयत सम्यग्दृष्टि मरण करके स्त्री नहीं होता। इसी प्रकार पहले धर्मा नरक के सिवाय शेष ६ नरक एवं अन्य तीन गतियों की चतुर्थ गुणस्थानवर्ती निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्था में नपुंसक वेद का भी उदय नहीं होता। इसी कारण से स्त्रीवेदी वाले असंयत के चारों आनुपूर्वी तथा नपुंसक वेदी असंयत के नरक के बिना अंत की तीन आनुपूर्वी प्रकृतियों का उदय नहीं होता।।२८७।।

अर्थ – एकेन्द्रिय, विकलत्रय और स्थावर आदि चार प्रकृतियों का उदय तिर्यंच के ही होने योग्य है परंतु अपर्याप्त प्रकृति मनुष्य के भी उदय होने योग्य है। छह संहनन और औदारिकद्विक, मनुष्य तथा तिर्यंच के ही उदय होने योग्य है। वैक्रियिकद्विक देव और नारकियों के ही उदय होने योग्य हैं।।२८८।।

अर्थ – तेजःकायिक, वायुकायिक और साधारण वनस्पतिकायिक इन तीनों को छोड़कर अन्य बादर पर्याप्त तिर्यंचों के उद्योत प्रकृति का उदय होता है। और शेष प्रकृतियों का उदय गुणस्थान के क्रम से जानना।।२८९।।

उदय संबंधी नियम

प्रकृति	जीव
विवक्षित आयु,गति,आनुपूर्वी का उदय	विवक्षित भव के पहले समय में युगपत् होता है

प्रकृति	जिन जीवों के ही संभव है
आतप	बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक
उद्योत	बादर पर्याप्त तिर्यंच (अग्नि, वायु एवं साधारण वनस्पति को छोड़कर)
एकेन्द्रियादि ४ जाति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण	तिर्यंच
अपर्याप्त,६ संहनन,औदारिकद्विक	तिर्यंच एवं मनुष्य
वैक्रियिकद्विक	देव एवं नारकी
उच्च गोत्र	किसी मनुष्य एवं सर्व देव
स्त्यानगृद्धित्रिक	* कर्मभूमिया मनुष्य एवं तिर्यंच के * इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण होने के पश्चात् * परंतु आहारक-वैक्रियिक ऋद्धिधारक मनुष्यों को छोड़कर

प्रकृति	जिन जीवों के संभव नहीं हैं
स्त्रीवेद	निर्वृत्ति अपर्याप्त चौथे गुणस्थानवर्ती
नपुंसकवेद	धर्मा नरक छोड़कर निर्वृत्ति अपर्याप्त चौथे गुणस्थानवर्ती
४ आनुपूर्वी	स्त्रीवेदी चौथे गुणस्थानवर्ती
नरकगत्यानुपूर्वी छोड़कर ३ आनुपूर्वी	नपुंसकवेदी चौथे गुणस्थानवर्ती

प्रकृति	किन जीवों के उदय योग्य
परघात, उच्छ्वास	पर्याप्त
विहायोगति, स्वर	पर्याप्त त्रस
अंगोपांग, सृपाटिका संहनन	त्रस
शेष ५ संहनन	पंचेन्द्रिय

किन जीवों के कौन-सा संस्थान उदय योग्य है?	संस्थान
नारकी, सर्व एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त	हुण्डक
देव, भोगभूमिया मनुष्य एवं तिर्यंच	समचतुस्र
कर्मभूमिया पर्याप्त - मनुष्य एवं पंचेन्द्रिय तिर्यंच	६ संस्थान

मार्गणाओं में उदय, अनुदय, व्युच्छित्ति

थीणतिथीपुरिसूणा घादी णिरयाउणीचवेयणियं।
णामे सगवचिठाणं णिरयाणू णारयेसुदया।।२९०।।
वेगुव्वतेजथिरसुहदुग दुग्गदिहुंडणिमिणपंचिंदी।
णिरयगदि दुब्भगागुरुतसवण्णचऊ य वचिठाणं।।२९१।।

अर्थ – स्त्यानगृद्धि आदि तीन, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन पाँच के सिवाय घातिया कर्मों की ४२ प्रकृतियाँ, नरकायु, नीच गोत्र और साता-असाता वेदनीय तथा नामकर्म में से नारकियों के भाषा पर्याप्ति के स्थान में होने वाली २९ प्रकृतियाँ और नरकानुपूर्वी – ये सब ७६ प्रकृतियाँ नरकगति में उदय होने योग्य हैं।।२९०।।

अर्थ – वैक्रियिक-तैजस-स्थिर-शुभ इनका जोड़ा, अप्रशस्तविहायोगति, हुण्डकसंस्थान, निर्माण, पंचेंद्री, नरकगति, तथा दुर्भग-अगुरुलघु-त्रस-वर्ण इनके चतुष्क – ये सब उनतीस प्रकृतियाँ नारकी जीवों के वचन पर्याप्ति के स्थान पर उदयरूप हैं।।२९१।।

गति मार्गणा

नरकगति मार्गणा

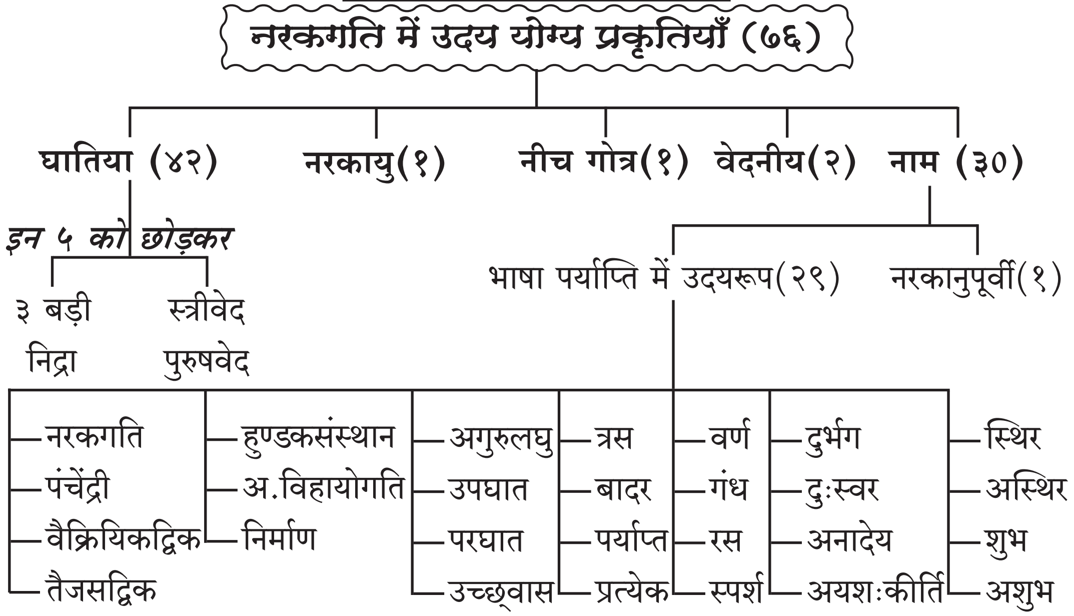

मिच्छमणंतं मिस्सं मिच्छादितिए कमा छिदी अयदे।
बिदियकसाया दुब्भगणादेज्जदुगाउणिरयचऊ।।२९२।।

अर्थ – प्रथम नरक के मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानों में क्रम से मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी चार, और सम्यग्मिथ्यात्व ये उदय से व्युच्छिन्न होते हैं। असंयत में दूसरी अप्रत्याख्यानावरण कषाय

की ४, दुर्भग, अनादेय-अयश:कीर्ति ये दो, नरकायु, नरकद्विक, वैक्रियिकद्विक ये चार-सब मिलकर १२ प्रकृतियों की उदय से व्युच्छित्ति होती है।।२९२।।

प्रथम नरक

कुल उदय योग्य प्रकृतियाँ = ७६

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय/अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	७४	२	२=सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति	१	मिथ्यात्व
२	७२	२+१+१=४	१= नरकानुपूर्वी	४	अनंतानुबंधी ४
३	६९	४+४-१=७	-१=सम्यग्मिथ्यात्व	१	सम्यग्मिथ्यात्व
४	७०	७+१-२=६	-२=सम्यक्त्व प्रकृति, नरकानुपूर्वी	१२	अप्रत्याख्यानावरण ४, नरकायु, नरकद्विक, वैक्रियिकद्विक, दुर्भग, अनादेय, अयश:कीर्ति

बिदियादिसु छसु पुढविसु एवं णवरि य असंजदट्ठाणे।
णत्थि णिरयाणुपुव्वी तिस्से मिच्छेव वोच्छदो।।२९३।।

अर्थ - दूसरे आदि छह नरक की पृथ्वियों में प्रथम नरक की तरह ही उदयादि है। विशेषता इतनी है कि असंयत गुणस्थान में नरकगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं है। इस कारण मिथ्यात्व गुणस्थान में ही नरकगत्यानुपूर्वी की भी उदय व्युच्छित्ति हो जाती है।।२९३।।

द्वितीयादि नरक

कुल उदय योग्य प्रकृतियाँ = ७६

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय/अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	७४	२	२=सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति	२	मिथ्यात्व, **नरकानुपूर्वी**
२	७२	२+२=४		४	अनंतानुबंधी ४
३	६९	४+४-१=७	१=सम्यग्मिथ्यात्व	१	सम्यग्मिथ्यात्व
४	६९	७+१-१=७	१=सम्यक्त्व प्रकृति	११	अप्रत्याख्यानावरण ४, नरकायु, नरकगति, वैक्रियिकद्विक, दुर्भग, अनादेय, अयश:कीर्ति

तिरिये ओघो सुरणरणिरयाऊउच्च मणुदुहारदुगं।
वेगुव्वछक्कतित्थं णत्थि हु एमेव सामण्णे।।२९४।।

अर्थ – तिर्यंचगति में ओघवत् ही जानना। परंतु उनमें से देवायु, मनुष्यायु, नरकायु, उच्चगोत्र, मनुष्यद्विक, आहारकद्विक, वैक्रियिक षट्क तथा तीर्थंकर प्रकृति–ये सब १५ प्रकृति उदय होने के योग्य नहीं हैं। सामान्य तिर्यंचों में भी ऐसा ही जानना।।२९४।।

तिर्यंचगति मार्गणा

तिर्यंचगति में उदय अयोग्य प्रकृतियाँ (१५)

आयु -३ | उच्च गोत्र | मनुष्यद्विक | आहारकद्विक | वैक्रियिक षट्क | तीर्थंकर प्रकृति

सामान्य तिर्यंच

उदय योग्य प्रकृतियाँ १०७ = १२२-१५

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय/अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०५	२	२=मिश्र, सम्यक्त्व	५	ओघवत्
२	१००	५+२=७		९	
३	९१	७+९+१-१=१६	१=तिर्यंचानुपूर्वी -१=मिश्र	१	
४	९२	१६+१-२=१५	-२=सम्यक्त्व, तिर्यंचानुपूर्वी	८	अप्रत्याख्यानावरण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयश:कीर्ति
५	८४	१५+८=२३		८	ओघवत्

थावरदुगसाहारणताविगिविगलूण ताणि पंचक्खे।
इत्थिअपज्जत्तूणा ते पुण्णे उदयपयडीओ।।२९५।।

अर्थ – (उक्त सामान्यतिर्यंच की १०७ प्रकृतियों में से) स्थावर, सूक्ष्म–ये २, साधारण, आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय – इन ८ प्रकृतियों को घटाने पर शेष ९९ प्रकृतियाँ पंचेन्द्रिय तिर्यंच के उदय योग्य हैं। (और इन ९९ प्रकृतियों में से भी) स्त्रीवेद तथा अपर्याप्त ये दो कम करने से शेष ९७ प्रकृतियाँ पर्याप्त तिर्यंच के उदय योग्य कही गई हैं।।२९५।।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच

उदय योग्य ९९ = १०७-८(एकेन्द्रियादि ४ जाति,सूक्ष्म,साधारण,स्थावर,आतप)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय/अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	९७	२	सामान्य तिर्यंचवत्	२	मिथ्यात्व, अपर्याप्त
२	९५	२+२=४		४	अनंतानुबंधी ४
३	९१	४+४+१-१=८		१	सामान्य तिर्यंचवत्
४	९२	८+१-२=७		८	
५	८४	७+८=१५		८	

पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच

उदय योग्य ९७ = ९९-२(स्त्रीवेद, अपर्याप्त)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय/अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	९५	२	सामान्य तिर्यंचवत्	१	मिथ्यात्व
२	९४	२+१=३		४	अनंतानुबंधी ४
३	९०	३+४+१-१=७		१	सामान्य तिर्यंचवत्
४	९१	७+१-२=६		८	
५	८३	६+८=१४		८	

पुंसंढूणित्थिजुदा जोणिणिये अविरदे ण तिरियाणू।
पुण्णिदरे थी थीणति परघाददु पुण्णउज्जोवं।।२९६।।
सुरगदिदु जसादेज्जं आदीसंठाणसंहदीपणगं।
सुभगं सम्मं मिस्सं हीणा तेऽपुण्णसंढजुदा।।२९७।।जुम्मं।।

अर्थ – योनिमत् अर्थात् तिर्यंचिनी के उपर्युक्त ९७ प्रकृतियों में से पुरुषवेद और नपुंसकवेद को घटाकर तथा स्त्रीवेद मिलाने से ९६ प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं। उसमें भी अविरत में तिर्यंचगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं हैं। और लब्ध्यपर्याप्तक पंचेंद्री तिर्यंच के उन ९६ प्रकृतियों में स्त्रीवेद, स्त्यानगृद्धि आदि ३, परघाातादि दो, पर्याप्त, उद्योत, दो स्वर, दो विहायोगति, यश:कीर्ति, आदेय, आदि के पाँच संस्थान, आदि के पाँच संहनन, सुभग, सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व ये २७ कम करके तथा अपर्याप्त और नपुंसक वेद ये दो प्रकृतियाँ मिलाने से कुल ७१ प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं।।२९६-२९७।।

योनीमति तिर्यंच (तिर्यंचनी)

उदय योग्य ९६ = ९७+१-२(१=स्त्रीवेद)(-२=पुरुषवेद,नपुंसकवेद)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय/अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	९४	२	२=मिश्र, सम्यक्त्व	१	मिथ्यात्व
२	९३	२+१=३		५	अनंतानुबंधी ४,तिर्यंचानुपूर्वी
३	८९	३+५-१=७	-१=मिश्र	१	मिश्र
४	८९	७+१-१=७	-१=सम्यक्त्व	७	पूर्ववत् ८-तिर्यंचानुपूर्वी
५	८२	७+७=१४		८	सामान्य तिर्यंचवत्

लब्धि अपर्याप्त तिर्यंच

उदय योग्य ७१ = ९६-२७+२(२=अपर्याप्त, नपुंसक वेद)

उदय अयोग्य प्रकृतियाँ (२७)

- घातिया (६)
  - स्त्यानगृद्धित्रिक
  - मिश्र
  - सम्यक्त्व
  - स्त्रीवेद
- नाम (२१)
  - आदि ५ संस्थान
  - आदि ५ संहनन
  - २ स्वर
  - २ विहायोगति
  - परघात
  - उच्छ्वास
  - उद्योत
  - सुभग
  - आदेय
  - यशःकीर्ति
  - पर्याप्त

गुणस्थान	उदय	अनुदय	विवरण
१	७१	०	लब्धि अपर्याप्त तिर्यंच में एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है

मणुवे ओघो थावरतिरियादावदुगएयवियलिंदि।
साहरणिदराउतियं वेगुव्वियछक्क परिहीणो।।२९८।।
मिच्छमपुण्णं छेदो अणमिस्सं मिच्छगादितिसु अयदे।
बिदियकसायणराणू दुब्भगऽणादेज्जअज्जसयं।।२९९।।
देसे तदियकसाया णीचं एमेव मणुससामण्णे।
पज्जत्तेवि य इत्थीवेदाऽपज्जत्तिपरिहीणो।।३००।।

अर्थ – मनुष्यों में से सामान्य मनुष्य के ओघवत् उदय योग्य १२२ प्रकृतियों में से स्थावर-तिर्यंचगति-आतप इन तीनों का युगल, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, साधारण, मनुष्यायु से अन्य तीन आयु, और वैक्रियिक षट्क कम करने से शेष उदय-योग्य १०२ प्रकृतियाँ हैं।।२९८।।

अर्थ – मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानों में से क्रम से पहले में मिथ्यात्व और अपर्याप्त, दूसरे में अनंतानुबंधी चार, तीसरे में मिश्र, असंयत में दूसरी अप्रत्याख्यानावरण कषाय की ४, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्ति – इन ८ प्रकृतियों की उदय से व्युच्छित्ति होती है।।२९९।।

अर्थ – देशसंयत में तीसरी प्रत्याख्यानावरण कषाय और नीचगोत्र की उदय व्युच्छित्ति होती है। ऊपर प्रमत्त आदि में गुणस्थानवत् उदय व्युच्छित्ति जानना। पर्याप्त मनुष्य में सामान्य मनुष्य की १०२ प्रकृतियों में से स्त्रीवेद और अपर्याप्त प्रकृतियाँ कम करने से १०० प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं।।३००।।

मनुष्यगति मार्गणा

मनुष्यगति में उदय अयोग्य प्रकृतियाँ (२०)

- ३ आयु
- नाम (१७)
  - एकेन्द्रियादि ४ जाति
  - वैक्रियिक षट्क
  - तिर्यंचद्विक, आतप, उद्योत
  - स्थावर, सूक्ष्म, साधारण

सामान्य मनुष्य

उदय योग्य प्रकृतियाँ १०२ = १२२-२०

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय/अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	९७	५	ओघवत्	२	मिथ्यात्व, अपर्याप्त
२	९५	५+२=७		४	अनंतानुबंधी ४
३	९१	७+४+१-१=११	१=मनुष्यानुपूर्वी, -१=मिश्र	१	मिश्र
४	९२	११+१-२=१०	-२=सम्यक्त्व, मनुष्यानुपूर्वी	८	अप्रत्याख्यानावरण ४, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयश:कीर्ति
५	८४	१०+८=१८		५	प्रत्याख्यानावरण ४, नीचगोत्र

६	८१	१८+५-२=२१	-२=आहारकद्विक	५	ओघवत्
७	७६	२६		४	
८	७२	३०		६	ओघवत्
९	६६	३६		६	
१०	६०	४२		१	
११	५९	४३		२	
१२	५७	४५		१६	
१३	४२	४५+१६-१=६०	१= तीर्थंकर प्रकृति	३०	
१४	१२	९०		१२	

पर्याप्त मनुष्य

उदय योग्य १०० = १०२-२(अपर्याप्त, स्त्रीवेद)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय/अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	९५	५	ओघवत्	१	मिथ्यात्व
२	९४	५+१=६		४	सामान्य मनुष्यवत्
३	९०	६+४+१-१=१०	१=मनुष्यानुपूर्वी -१=मिश्र	१	
४	९१	१०+१-२=९	-२=सम्यक्त्व, मनुष्यानुपूर्वी	८	
५	८३	९+८=१७		५	
६	८०	१७+५-२=२०	-२=आहारकद्विक	५	
७	७५	२५		४	
८	७१	२९		६	
९	६५	३५		५	ओघवत् स्त्रीवेद बिना
१०	६०	४०		१	ओघवत्
११	५९	४१		२	
१२	५७	४३		१६	
१३	४२	४३+१६-१=५८	-१=तीर्थंकर प्रकृति	३०	
१४	१२	८८		१२	

मणुसिणिएत्थीसहिदा तित्थयराहारपुरिससंढूणा।
पुण्णिदरेव अपुण्णे सगाणुगदिआउगं णेयं।।३०१।।

अर्थ - उक्त १०० प्रकृतियों में स्त्री-वेद प्रकृति मिलाने और तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक, पुरुषवेद, नपुंसकवेद - ये ५ प्रकृतियाँ कम करने से ९६ प्रकृतियाँ मनुष्यिणी के उदय-योग्य हैं। लब्धि-अपर्याप्त मनुष्य के तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त की तरह ७१ प्रकृतियाँ उदय-योग्य है, परंतु आनुपूर्वी, गति और आयु - ये तीन प्रकृतियाँ तिर्यंच की छोड़कर मनुष्य-संबंधी ही जानना।।३०१।।

मनुष्यनी

उदय योग्य ९६=१००+१-५(१=स्त्रीवेद)(-५=तीर्थंकर,आहारकद्विक,पुरुष-नपुंसक वेद)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय/अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	९४	२	ओघवत्	१	मिथ्यात्व
२	९३	२+१=३		५	अनंतानुबंधी ४,मनुष्यानुपूर्वी
३	८९	३+५-१=७	-१=मिश्र	१	मिश्र
४	८९	७+१-१=७	-१=सम्यक्त्व	७	अप्रत्याख्यानावरण ४, दुर्भग, अनादेय, अयश:कीर्ति
५	८२	७+७=१४		५	प्रत्याख्यानावरण ४, नीचगोत्र
६	७७	१९		३	स्त्यानगृद्धित्रिक
७	७४	२२		४	ओघवत्
८	७०	२६		६	
९	६४	३२		४	स्त्रीवेद, संज्वलन ३
१०	६०	३६		१	ओघवत्
११	५९	३७		२	
१२	५७	३९		१६	
१३	४१	५५		३०	
१४	११	८५		११	ओघवत् तीर्थंकर बिना

लब्धि अपर्याप्त मनुष्य

उदय योग्य लब्धिअपर्याप्त तिर्यंचवत् ७१

=७१+३-३(३=मनुष्यायु,मनुष्यद्विक)(-३=तिर्यंचायु,तिर्यंचद्विक)

* गुणस्थान एकमात्र मिथ्यात्व ही

मणुसोघं वा भोगे दुब्भगचउणीचसंढथीणतियं।
दुग्गदितित्थमपुण्णं संहदिसंठाणचरिमपणं।।३०२।।
हारदुहीणा एवं तिरिये मणुदुच्चगोदमणुवाउं।
अवणिय पक्खिव णीचं तिरियदुतिरियाउ उज्जोवं।।३०३।।जुम्मं।।

अर्थ – भोगभूमिया मनुष्यों में सामान्य मनुष्य की १०२ प्रकृतियों में से दुर्भग आदि ४, नीचगोत्र, नपुंसकवेद, स्त्यानगृद्धि-३, अप्रशस्त विहायोगति, तीर्थंकर प्रकृति, अपर्याप्त, अंत के पाँच संहनन, अंत के पाँच संस्थान आहारकद्विक – इन २४ प्रकृतियों को घटाने पर शेष ७८ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं। इसी तरह भोगभूमिया तिर्यंच में भोगभूमिया मनुष्यों की तरह ७८ प्रकृतियों में से मनुष्यद्विक, उच्चगोत्र, मनुष्यायु – इन चार प्रकृतियों को घटाकर तथा नीच गोत्र, तिर्यंचद्विक, तिर्यंचायु, उद्योत – इन पाँच को मिलाने से ७९ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं।।३०२-३०३।।

भोगभूमिया मनुष्य

भोगभूमिया मनुष्य में अतिरिक्त उदय अयोग्य प्रकृतियाँ (२४)

- **घातिया (४)**
  - स्त्यानगृद्धित्रिक
  - नपुंसकवेद
- **नीचगोत्र (१)**
- **नाम (१९)**
  - अंतिम ५ संस्थान
  - अंतिम ५ संहनन
  - तीर्थंकर
  - आहारकद्विक
  - दुर्भग
  - दुःस्वर
  - अनादेय
  - अयशःकीर्ति
  - अप्रशस्त विहायोगति
  - अपर्याप्त

उदय योग्य प्रकृतियाँ ७८ = १०२-२४

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय/अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	७६	२	मिश्र, सम्यक्त्व	१	मिथ्यात्व
२	७५	२+१=३		४	अनंतानुबंधी ४
३	७१	३+४+१-१=७	१=मनुष्यानुपूर्वी, -१=मिश्र	१	मिश्र
४	७२	७+१-२=६	-२=सम्यक्त्व, मनुष्यानुपूर्वी	५	अप्रत्याख्यानावरण ४, मनुष्यायु

भोगभूमिया तिर्यंच

उदय योग्य भोगभूमिया मनुष्यवत् = ७९ = ७८+५-४

(५=तिर्यंचायु, तिर्यंचद्विक, नीचगोत्र,उद्योत)(-४=मनुष्यायु,मनुष्यद्विक,उच्चगोत्र)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय/अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	७७	२	मिश्र, सम्यक्त्व	१	भोगभूमिया मनुष्यवत्
२	७६	२+१=३		४	
३	७२	३+४+१-१=७	१=तिर्यंचानुपूर्वी, -१=मिश्र	१	
४	७३	७+१-२=६	-२=सम्यक्त्व, तिर्यंचानुपूर्वी	५	अप्रत्याख्यानावरण ४, तिर्यंचायु

भोगं व सुरे णरचउणराउवज्जूण सुरचउसुराउं।
खिव देवे णेवित्थी इत्थिम्मि ण पुरिसवेदो य।।३०४।।

अर्थ - सामान्यपने से देवों में भोगभूमिया मनुष्यों की तरह ७८ प्रकृतियों में मनुष्यगति आदि चार, मनुष्यायु, वज्रवृषभनाराच संहनन - इन ६ प्रकृतियों को घटाकर और देवगति आदि चार, देवायु - इन पाँच को मिलाने से ७७ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं। परंतु देवों में स्त्रीवेद का उदय और देवांगनाओं में पुरुषवेद का उदय नहीं होता, इस कारण केवल देव तथा देवांगनाओं में ७६ प्रकृतियाँ ही उदय-योग्य है।।३०४।।

देवगति मार्गणा

सामान्य देव

उदय योग्य भोगभूमिया मनुष्यवत् = ७७ = ७८+५-६

(५=देवायु,देवद्विक,वैक्रियकद्विक)(-६=मनुष्यायु,मनुष्यद्विक,औदारिकद्विक,वज्रवृषभनाराचसंहनन)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय/अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	७५	२	मिश्र, सम्यक्त्व	१	भोगभूमिया मनुष्यवत्
२	७४	२+१=३		४	
३	७०	३+४+१-१=७	१=देवानुपूर्वी,-१=मिश्र	१	
४	७१	७+१-२=६	-२=सम्यक्त्व, देवानुपूर्वी	९	अप्रत्याख्यानावरण ४, देवायु, देवद्विक, वैक्रियकद्विक

सौधर्मादि उपरिम ग्रैवेयक तक देव

उदय योग्य ७६=७७-१(स्त्रीवेद)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय/अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	७४	२	सामान्य देववत्	१	सामान्य देववत्
२	७३	२+१=३		४	
३	६९	३+४+१-१=७		१	
४	७०	७+१-२=६		९	

अविरदठाणं एक्कं अणुद्दिसादिसु सुरोघमेव हवे।
भवणतिकप्पित्थीणं असंजदे णत्थि देवाणू।।३०५।।

अर्थ – नव अनुदिशादि १४ विमानों में एक असंयत गुणस्थान ही है। इस कारण देवों के असंयत की तरह उदय-योग्य ७० प्रकृतियाँ जानना। भवनत्रिक देवी तथा कल्पवासिनी देवियों के सामान्य देवों की तरह ७७ प्रकृतियों में स्त्रीवेद सहित, पुरुषवेद रहित ७६ ही प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं। परंतु असंयत गुणस्थान में भवनत्रिक तथा कल्पवासिनी देवियों के देवगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं है।।३०५।।

नौ अनुदिश, पाँच अनुत्तर

एक असंयत गुणस्थान ही है

उदय योग्य ७०=देवों में असंयत में उदयरूप

सर्व देवांगना

उदय योग्य ७६= सामान्य देवों के उदय योग्य ७७-१(पुरुषवेद)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय/अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	७४	२	मिश्र, सम्यक्त्व	१	मिथ्यात्व
२	७३	२+१=३		५	अनंतानुबंधी ४, देवानुपूर्वी
३	६९	३+५-१=७	-१=मिश्र	१	मिश्र
४	६९	७+१-१=७	-१=सम्यक्त्व	८	अप्रत्याख्यानावरण४, देवायु, देवगति, वैक्रियकद्विक

भवनत्रिक देव

उदय योग्य ७६= देवांगनावत् ७६+१-१(१=पुरुष-वेद)(-१= स्त्रीवेद)

तिरियअपुण्णं वेगे परघादचउक्कपुण्णसाहरणं।
एइन्दियजसथीणतिथावरजुगलं च मिलिदव्वं।।३०६।।
रिणमंगोवंगतसं संहदिपंचक्खमेवमिह वियले।
अवणिय थावरजुगलं साहरणेयक्खमादावं।।३०७।।
खिव तसदुग्गदिदुस्सरमंगोवंगं सजादिसेवट्टं।
ओघं सयले साहरणिगिविगलादावथावरदुगूणं।।३०८।।

अर्थ - एकेन्द्रिय मार्गणा में तिर्यंच लब्धि अपर्याप्त की ७१ प्रकृतियों में परघातादि चार, पर्याप्त, साधारण, एकेन्द्रिय जाति, यशःकीर्त्ति, स्त्यानगृद्धित्रिक, स्थावर और सूक्ष्म - ये सब १३ प्रकृतियाँ मिलाकर और अंगोपांग, त्रस, सृपाटिका संहनन, पंचेन्द्रिय - इन ४ को घटाकर जो ८० प्रकृतियाँ रहती हैं उनका उदय है। इसी प्रकार विकलत्रय के एकेन्द्रियवत् ८० में स्थावर-सूक्ष्म, साधारण, एकेन्द्रिय, आतप - इन ५ को घटाकर तथा त्रस, अप्रशस्तविहायोगति, दुःस्वर, अंगोपांग, अपनी-अपनी जाति, सृपाटिका संहनन - ये ६ मिलाने से उदय-योग्य ८१ प्रकृतियाँ हैं। सकलेन्द्रीय में ओघवत् १२२ में से साधारण, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, आतप, स्थावर और सूक्ष्म - ये ८ प्रकृतियाँ कम करने पर शेष ११४ प्रकृतियाँ उदय-योग्य है।।३०६-३०८।।

इन्द्रिय मार्गणा

एकेन्द्रिय और विकलत्रय में सासादन निर्वृत्त अपर्याप्त दशा में ही होता है

एकेन्द्रिय

उदय योग्य ८०=पंचेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त तिर्यंचवत् ७१+१३-४

+१३=
- स्त्यानगृद्धित्रिक
- एकेन्द्रिय
- परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत
- सूक्ष्म, साधारण, स्थावर, पर्याप्त
- यश:कीर्ति

(-४=पंचेन्द्रिय,त्रस,औदारिक अंगोपांग,सृपाटिका संहनन)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	८०	०	५+६=११	५=मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त
				६=स्त्यानगृद्धित्रिक, परघात, उच्छ्वास, उद्योत ***(सासादन में उदय अयोग्य इसलिए व्युच्छित्ति)***
२	६९	११	६	अनंतानुबंधी ४, एकेन्द्रिय, स्थावर

विकलेन्द्रिय

उदय योग्य ८१ = एकेन्द्रियवत् ८०-५+६

(-५ = एकेन्द्रिय, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप)
(६ = अपनी-अपनी जाति, त्रस, अ.विहायो., दुःस्वर, औ. अंगोपांग, सृपाटिका संहनन)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	८१	0	२+८=१०	२ = मिथ्यात्व, अपर्याप्त
				८ = स्त्यानगृद्धित्रिक, परघात, उच्छ्वास, अ.विहायोगति, दुःस्वर, उद्योत
२	७१	१०	५	अनंतानुबंधी ४, अपनी-अपनी जाति

पंचेन्द्रिय

उदय योग्य ११४=ओघवत् १२२-८

(-८=एकेन्द्रियादि ४ जाति, सूक्ष्म, स्थावर, साधारण, आतप)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०९	५		२	मिथ्यात्व,अपर्याप्त
२	१०६	५+२+१=८	१=नरकानुपूर्वी	४	अनंतानुबंधी ४
३ से १४	ओघवत्	मूल उदय अयोग्य ८ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्		ओघवत्	

एयं वा पणकाये ण हि साहारणमिणं च आदावं।
दुसु तद्दुगमुज्जोवं कमेण चरिमम्हि आदावं।।३०९।।

अर्थ - पृथ्वीकायादि पाँच में एकेन्द्रियवत् ८० प्रकृतियों में से पृथ्वीकायिक में साधारण प्रकृति के घटाने पर उदय-योग्य ७९ प्रकृतियाँ और जलकायिक में साधारण तथा आतप प्रकृति के घटाने पर उदय-योग्य ७८ प्रकृतियाँ है। अग्निकायिक-वायुकायिक इन दोनों में साधारण, आतप और उद्योत - ये ३ प्रकृतियाँ घटाने से ७७ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं। तथा अंत के वनस्पतिकायिक में केवल आतप प्रकृति घटाने पर ७९ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं।।३०९।।

काय मार्गणा

पाँच स्थावर में उदय योग्य

काय	एकेन्द्रिय में उदय योग्य	घटने वाली प्रकृतियाँ		प्रत्येक के उदय योग्य
पृथ्वीकायिक	८०	–१	साधारण	७९
जलकायिक		–२	आतप, साधारण	७८
अग्निकायिक		–३	आतप, साधारण, उद्योत	७७
वायुकायिक				
वनस्पतिकायिक		–१	आतप	७९

पृथ्वीकायिक

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	७९	०	१०	साधारण छोड़कर एकेन्द्रियवत्
२	६९	१०	६	एकेन्द्रियवत्

जलकायिक

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	७८	०	९	आतप, साधारण छोड़कर एकेन्द्रियवत्
२	६९	९	६	एकेन्द्रियवत्

अग्निकायिक-वायुकायिक

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति
१	७७	०	०

सासादन जीव मरकर अग्नि–वायु में उत्पन्न नहीं होता है,अत: गुणस्थान सिर्फ मिथ्यात्व है

वनस्पतिकायिक

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	७९	०	१०	आतप छोड़कर एकेन्द्रियवत्
२	६९	१०	६	एकेन्द्रियवत्

ओघं तसे ण थावरदुगसाहरणेयतावमथ ओघं।
मणवयणसत्तगे ण हि ताविगिविगलं च थावराणुचओ।।३१०।।

अर्थ - त्रसकायिक में ओघवत् १२२ में से स्थावर-सूक्ष्म, साधारण, एकेन्द्रिय और आतप - ये पाँच प्रकृतियाँ नहीं है, अत: ११७ प्रकृतियाँ उदय होने योग्य हैं। ४ मनोयोग और ३ वचनयोग -७ योगों में आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावरादि ४, आनुपूर्वी ४ - ये १३ प्रकृतियाँ नहीं है, अत: १०९ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं।।३१०।।

त्रसकायिक

उदय योग्य ११७=ओघवत् १२२-५(एकेन्द्रिय, सूक्ष्म, स्थावर, साधारण, आतप)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	११२	५	ओघवत्	२	मिथ्यात्व,अपर्याप्त
२	१०९	८		७	अनंतानुबंधी ४,विकलत्रय
३ से १४	ओघ-वत्	मूल उदय अयोग्य ५ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्		ओघवत्	

योग मार्गणा

एक काल में दो योग की प्रवृत्ति कभी नहीं होती है

४ मनोयोग और सत्य, असत्य, उभय वचनयोग

उदय योग्य १०९=१२२-१३(एकेन्द्रिय,विकलत्रय,स्थावर,सूक्ष्मत्रिक,आतप, ४ आनुपूर्वी

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०४	५		१	मिथ्यात्व
२	१०३	६		४	अनंतानुबंधी ४
३	१००	१०-१=९	-१=मिश्र	१	मिश्र
४	१००	१०-१=९	-१=सम्यक्त्व	१३	४ आनुपूर्वी छोड़कर ओघवत्
५ से १२	ओघ-वत्	मूल उदय-अयोग्य १३ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्		ओघवत्	
१३	४२	६८-१=६७	-१=तीर्थंकर प्रकृति	४२	३०+१२ *(अयोगकेवली में योग का अभाव है)*

अणुभयवचि वियलजुदा ओघमुराले ण हारदेवाऊ।
वेगुव्वछक्कणरतिरियाणु अपज्जत्तणिरयाऊ।।३११।।

अर्थ – अनुभय वचनयोग में १०९ प्रकृतियों में विकलत्रय मिलाकर ११२ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं। औदारिक काययोग में १२२ में से आहारकद्विक, देवायु, वैक्रियिकषट्क, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, अपर्याप्त, नरकायु – ये १३ न होने से १०९ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं।।३११।।

अनुभय वचनयोग

उदय योग्य ११२=पूर्वोक्त वचनयोग की १०९+३(विकलत्रय)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०७	५		१	मिथ्यात्व
२	१०६	६		७	अनंतानुबंधी ४,विकलत्रय
३ से १३	पूर्वोक्त वचनयोगवत्	पूर्वोक्त वचनयोग से ३ अधिक		पूर्वोक्त वचनयोगवत्	

औदारिक काययोग

उदय योग्य १०९=१२२-१३

-१३=वैक्रियिक षट्क,नरकायु,देवायु,मनुष्यानुपूर्वी,तिर्यंचानुपूर्वी,आहारकद्विक,अपर्याप्त

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०६	३		४	मिथ्यात्व, सूक्ष्म, साधारण, आतप
२	१०२	७		९	ओघवत्
३	९४	१६-१=१५	-१=मिश्र	१	
४	९४	१६-१=१५	-१=सम्यक्त्व	७	अप्रत्याख्यानावरण ४, दुर्भग,अनादेय,अयशःकीर्ति
५	८७	२२		८	ओघवत्
६	७९	३०		३	स्त्यानगृद्धित्रिक
७ से १२	ओघ-वत्	मूल उदय अयोग्य १३ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्		ओघवत्	
१३				मनोयोगवत्	

तम्मिस्सेऽपुण्णजुदा ण मिस्सथीणतियसरविहायदुगं।
परघादचओ अयदे णादेज्जदुदुब्भगं ण संढिच्छी।।३१२।।
साणे तेसिं छेदो वामे चत्तारि चोद्दसा साणे।
चउदालं वोछेदो अयदे जोगिम्हि छत्तीसं।।३१३।।जुम्मं।।

अर्थ – औदारिक मिश्र काययोग में औदारिक काययोग की १०९ में अपर्याप्त मिलती है और मिश्र, स्त्यानगृद्धित्रिक, दो स्वर, दो विहायोगति, परघातादि ४ – ये १२ प्रकृतियाँ नहीं है; इसलिए ९८ उदय-योग्य हैं। असंयत में अनादेय-अयशःकीर्ति, दुर्भग, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद – इनका उदय नहीं है; इस कारण इन प्रकृतियों की व्युच्छित्ति सासादन गुणस्थान में ही है। इनके मिथ्यात्व में ४,सासादन में १४,असंयत ४४ तथा सयोगकेवली के ३६ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।।३१२-३१३।।

औदारिक मिश्र काययोग

उदय योग्य ९८=१०९-१२+१(अपर्याप्त)

-१२=मिश्र,स्त्यानगृद्धित्रिक,स्वरद्विक,विहायोगतिद्विक,परघात,उच्छ्वास,आतप,उद्योत

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	९६	२	सम्यक्त्व, तीर्थंकर	४	मिथ्यात्व, सूक्ष्मत्रिक
२	९२	६		९+५= १४	९=ओघवत् ५= दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, नपुंसक-स्त्रीवेद ***(असंयत में उदय-अयोग्य इसलिये व्युच्छित्ति)***
४	७९	२०-१ =१९	-१= सम्यक्त्व	४+४०= ४४	अप्रत्याख्यानावरण ४ ४० = ५ से १२ गुणस्थान तक की व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ (७+०+४+६+४+१+२+१६)
१३	३६	६३-१ =६२	-१= तीर्थंकर प्रकृति	३६	३०+१२-६(विहायोगतिद्विक, स्वरद्विक, परघात, उच्छ्वास)

देवोघं वेगुव्वे ण सुराणू पक्खिवेज्ज णिरयाऊ।
णिरयगदिहुंडसंढं दुग्गदि दुब्भगचओ णीचं।।३१४।।

अर्थ – वैक्रियिक काययोग में देवगतिवत् ७७ प्रकृतियों में देवानुपूर्वी के घटाने और नरकायु, नरकगति, हुण्डक संस्थान, नपुंसकवेद, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भगादि चार, नीच गोत्र – ये १० मिलाने से ८६ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं।।३१४।।

वैक्रियिक काययोग

उदय योग्य **८६=देवगतिवत् ७७+१०-१(देवानुपूर्वी)**

(१० = नरकायु, नरकगति, हुंडक संस्थान, अ.विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, नपुंसकवेद, नीचगोत्र)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	८४	२	मिश्र,सम्यक्त्व	१	मिथ्यात्व
२	८३	३		४	अनंतानुबंधी ४
३	८०	७-१=६	-१=मिश्र	१	मिश्र
४	८०	७-१=६	-१=सम्यक्त्व	१३	४ आनुपूर्वी छोड़कर ओघवत्

वेगुव्वं वा मिस्से ण मिस्स परघादसरविहायदुगं।
साणे ण हुंडसंढं दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं।।३१५।।
णिरयगदिआउणीचं ते खित्तयदेऽवणिज्ज थीवेदं।
छट्ठगुणं वाहारे ण थीणतियसंढथीवेदं।।३१६।।जुम्मं।।
दुग्गदिदुस्सरसंहदि ओरालदु चरिमपंचसंठाणं।
ते तम्मिस्से सुस्सर परघाददुसत्थगदि हीणा।।३१७।।

अर्थ – वैक्रियिक मिश्र काययोग में वैक्रियिक की ८६ प्रकृतियों से मिश्र, परघात-स्वर-विहायोगति इनका जोड़ा – ये ७ प्रकृतियाँ उदय-योग्य नहीं हैं, इस कारण ७९ प्रकृतियाँ उदय-योग्य है। उनमें भी सासादन गुणस्थान में हुण्डक संस्थान, नपुंसकवेद, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, नरकगति, नरकायु, नीचगोत्र – इनका उदय नहीं है तथा सासादन में स्त्रीवेद की व्युच्छित्ति है। आहारक काययोग में छठे गुणस्थान की उदय-योग्य ८१ प्रकृतियों में से स्त्यानगृद्धित्रिक, नपुंसक वेद, स्त्री वेद, अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वर, संहनन ६, औदारिकद्विक, अंत के ५ संस्थान – इन २० प्रकृतियों का उदय नहीं है। और आहारकमिश्र काययोग में इन ६१ में से सुस्वर, परघात दो, प्रशस्त विहायोगति – इन ४ को घटाने से उदय-योग्य ५७ प्रकृतियाँ हैं।।३१७।।

वैक्रियिक मिश्र काययोग

उदय योग्य ७९ = वैक्रियिक काययोगवत् ८६-७

(-७ = मिश्र, परघात, उच्छ्वास, स्वरद्विक, विहायोगतिद्विक)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	७८	१	सम्यक्त्व	१	मिथ्यात्व
२	६९	२+८ =१०	नरकायु, नरकगति, हुंडक संस्थान, दुर्भग,अनादेय,अयशः कीर्ति,नपुंसकवेद, नीचगोत्र	५	अनंतानुबंधी ४, स्त्रीवेद
४	७३	६	मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४, स्त्रीवेद	१३	वैक्रियिक काययोगवत्

आहारक काययोग

उदय योग्य ६१ = प्रमत्तविरतवत् ८१-२०

- स्त्रीवेद, नपुंसकवेद
- स्त्यानगृद्धित्रिक
- औदारिकद्विक
- ६ संहनन, अंतिम ५ संस्थान
- दुःस्वर, अ.विहायोगति

आहारक मिश्र काययोग

उदय योग्य ५७ = ६१-४(परघात, उच्छ्वास, सुस्वर, प्रशस्त विहायोगति)

*** आहारक और आहारक मिश्र - दोनों में गुणस्थान एक प्रमत्तविरत ही**

ओघं कम्मे सरगदिपत्तेयाहारुरालदुग मिस्सं।
उवघादपणविगुव्वदुथीणतिसंठाणसंहदी णत्थि।।३१८।।
साणे थीवेदछिदी णिरयदुणिरयाउगं ण तिदयसयं।
इगिवण्णं पणवीसं मिच्छादिसु चउसु वोच्छेदो।।३१९।।

अर्थ - कार्मण काययोग में ओघवत् १२२ में से स्वर-विहायोगति-प्रत्येक-आहारक-औदारिक इन ५ युगल, मिश्र, उपघातादि ५, वैक्रियिकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक, संस्थान ६, संहनन ६ - ये ३३ नहीं होने से उदय-योग्य ८९ प्रकृतियाँ हैं। उसमें भी सासादन गुणस्थान में स्त्रीवेद की व्युच्छित्ति होती है। और नरकद्विक, नरकायु इन ३ का उदय नहीं होता। मिथ्यात्वादि ४ गुणस्थानों में क्रम से ३, १०, ५१, २५ - इतनी प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।।३१८-३१९।।

कार्मण काययोग

उदय योग्य ८९ = १२२-३३

- मिश्र, स्त्यान-गृद्धित्रिक
- औदारिकद्विक, वैक्रियिकद्विक, आहारकद्विक
- ६ संस्थान, ६ संहनन
- स्वर दो, विहायोगति दो
- उपघात, परघात, उच्छ्वास
- आतप, उद्योत
- प्रत्येक, साधारण

** कार्मण काययोग संसारी जीवों को सिर्फ विग्रहगति में*
** और सयोग केवली को केवली समुद्घात के काल में होता है*

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	८७	२	सम्यक्त्व, तीर्थंकर	३	मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त
२	८१	५+३ =८	३=नरकायु, नरकद्विक	१०	९=ओघवत् + १=स्त्रीवेद
४	७५	१८-४ =१४	-४=नरकायु, नरकद्विक, सम्यक्त्व	१५+३६ = ५१	१५=वैक्रियकद्विक बिना ओघवत् ३६ = ५ से १२ गुणस्थान तक की व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ (७+०+१+६+५+१+०+१६)
१३	२५	६५-१ =६४	-१= तीर्थंकर प्रकृति	२५	३०+१२-१७(औदारिकद्विक, ६ संस्थान,वज्रवृषभनाराच संहनन, विहायोगतिद्विक, स्वरद्विक, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रत्येक

मूलोघं पुंवेदे थावरचउणिरयजुगलतित्थयरं।
इगिविगलं थीसंढं तावं णिरयाउगं णत्थि।।३२०।।

अर्थ - पुरुष-वेद में ओघवत् १२२ में से स्थावरादि ४, नरकद्विक, तीर्थंकर प्रकृति, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, आतप, नरकायु - ये १५ नहीं होने से उदय-योग्य १०७ प्रकृतियाँ हैं।।३२०।।

वेद मार्गणा

पुरुष वेद

उदय योग्य १०७ = १२२-१५

- स्त्रीवेद
- नपुंसकवेद
- नरकायु
- नरकद्विक
- एकेन्द्रिय
- विकलत्रय
- सूक्ष्म
- साधारण
- अपर्याप्त
- स्थावर
- आतप
- तीर्थंकर प्रकृति

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय/अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०३	४	तीर्थंकर बिना ओघवत्	१	मिथ्यात्व
२	१०२	५	ओघवत्	४	अनंतानुबंधी ४
३	९६	९+३-१=११		१	मिश्र
४	९९	१२-४=८		१४	नरकायु, नरकद्विक बिना ओघवत्
५	८५	२२		८	ओघवत्
६	७९	३०-२=२८		५	
७	७४	३३		४	
८	७०	३७		६	
९ का सवेद भाग	६४	४३		४+६० =६४	४=पुरुषवेद,संज्वलन ३ ६० = १० से १४ गुणस्थान तक की व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ (१+२+१६+३०+११)

इत्थीवेदेवि तहा हारदुपुरिसूणमित्थिसंजुत्तं।
ओघं संढे ण हि सुरहारदुथीपुंसुराउतित्थयरं।।३२१।।

अर्थ - स्त्री वेद में भी उसी प्रकार १०७ प्रकृतियों में आहारकद्विक, पुरुषवेद कम करके तथा स्त्रीवेद मिला के १०५ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं। नपुंसक वेद में ओघवत् १२२ में से देवद्विक, आहारकद्विक, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, देवायु और तीर्थंकर प्रकृति - ये ८ नहीं होने से ११४ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं।।३२१।।

स्त्री वेद

उदय योग्य १०५=पुरुषवेदवत् १०७-३+१(-३=आहारकद्विक,पुरुषवेद)(१=स्त्रीवेद)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०३	२	मिश्र,सम्यक्त्व	१	मिथ्यात्व
२	१०२	३		७	अनंतानुबंधी ४, ३ आनुपूर्वी
३	९६	१०-१=९	-१=मिश्र	१	मिश्र
४	९६	१०-१=९	-१=सम्यक्त्व	११	अप्रत्याख्यानावरण ४, देवायु, देवगति, वैक्रियकद्विक, दुर्भग, अनादेय, अयश:कीर्ति
५	८५	२०		८	ओघवत्
६	७७	२८	*संक्लेशी है, इसलिए आहारकद्विक नहीं*	३	स्त्यानगृद्धित्रिक
७	७४	३१		४	ओघवत्
८	७०	३५		६	
९	६४	४१		६४	पुरुषवेदवत्-पुरुषवेद+स्त्रीवेद

नपुंसक वेद

उदय योग्य ११४=१२२-८(देवायु,देवद्विक,आहारकद्विक,स्त्रीवेद,पुरुषवेद,तीर्थंकर)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	११२	२	मिश्र,सम्यक्त्व	५	ओघवत्
२	१०६	७+१=८	१=नरकानुपूर्वी	११	९ ओघवत्+मनुष्य,तिर्यंचानुपूर्वी
३	९६	१९-१=१८	-१=मिश्र	१	मिश्र
४	९७	१९-२=१७	-२=सम्यक्त्व, नरकानुपूर्वी	१२	अप्रत्याख्यानावरण ४, नरकायु, नरकद्विक, वैक्रियकद्विक, दुर्भग, अनादेय, अयश:कीर्ति
५	८५	२९		८	ओघवत्
६	७७	३७		३	स्त्रीवेदवत्
७	७४	४०		४	ओघवत्
८	७०	४४		६	

९	६४	५०		६४	पुरुषवेदवत्-पुरुषवेद+नपुंसकवेद

तित्थयरमाणमायालोहचउक्कूणमोघमिह कोहे।
अणरहिदे णिगिविगलं तावऽणकोहाणुथावरचउक्कं।।३२२।।

अर्थ - क्रोध कषाय में ओघवत् १२२ में से तीर्थंकर प्रकृति, मान-माया-लोभ-चतुष्क संबंधी १२ कषाय - इन १३ के बिना १०९ प्रकृतियाँ उदय-योग्य है। अनंतानुबंधी रहित क्रोध में एकेन्द्रिय, विकलत्रय, आतप, अनंतानुबंधी क्रोध, आनुपूर्वी ४, स्थावरादि ४ - ये १४ नहीं होने से मिथ्यात्व गुणस्थान संबंधी १०५ प्रकृतियों में से ९१ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं।।३२२।।

कषाय मार्गणा

क्रोध कषाय

उदय योग्य १०९=१२२-१३(तीर्थंकर,अनंतानुबंधी आदि ४ क्रोध बिना १२ कषाय)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०५	४	तीर्थंकर बिना	५	ओघवत्
२	९९	९+१=१०	ओघवत्	६	अनंतानुबंधी क्रोध, एकेन्द्रिय,स्थावर,विकलत्रय
३	९१	१६+३-१=१८		१	मिश्र
४	९५	१९-५=१४		१४	अप्रत्याख्यानावरण मान, माया,लोभ छोड़कर
५	८१	२८		५	प्रत्याख्यानावरण मान, माया,लोभ छोड़कर
६	७८	३१		५	ओघवत्
७	७३	३६		४	
८	६९	४०		६	
९	६३	४६		४+५९= ६३	४ =३ वेद,संज्वलन क्रोध ५९=१० से १४ गुणस्थान तक की व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ (०+२+१६+३०+११)

अनंतानुबंधी रहित क्रोध

अनंतानुबंधी का विसंयोजन करके मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त हुए जीव के एक आवली काल तक अनंतानुबंधी का उदय नहीं पाया जाता उसकी अपेक्षा

मिथ्यात्व गुणस्थान में उदय योग्य ९१= पूर्वोक्त क्रोधकषायवत् १०५-१४

१४=अनंतानुबंधी क्रोध,४ जाति,स्थावर,आतप,सूक्ष्म,साधारण,अपर्याप्त,४ आनुपूर्वी

एवं माणादितिए मदिसुदअण्णाणगे दु सगुणोघं।
वेभंगेवि ण ताविगिविगलिंदी थावराणुचऊ।।३२३।।

अर्थ - इसी प्रकार मानादि तीन कषायों में भी अपने से अन्य १२ कषाय तथा तीर्थंकर प्रकृति - इन १३ के न होने से १०९ सब जगह उदय-योग्य है। ज्ञान मार्गणा में कुमति और कुश्रुतज्ञान में ओघवत् १२२ में से सम्यक्त्व, मिश्र, तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक - इन ५ के सिवाय ११७ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं। विभंगज्ञान में भी इन ११७ में से आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावरादि ४,आनुपूर्वी ४ - ये १३ न होने से १०४ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं।।३२३।।

मान, माया कषाय

उदय योग्य १०९=क्रोधवत् १०९-४ क्रोध+४ मान या ४ माया

उदय, अनुदय, व्युच्छित्ति कथन भी क्रोधवत्

लोभ कषाय

उदय योग्य १०९=क्रोधवत् १०९-४ क्रोध+४ लोभ

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१ से ८	← क्रोधवत् →			
९	६३	४६	३	३ वेद
१०	६०	४९	१+५९=६०	संज्वलन लोभ + ११ से १४ गुणस्थान तक की व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ (२+१६+३०+११)

ज्ञान मार्गणा

कुमति, कुश्रुत ज्ञान

उदय योग्य ११७=१२२-५(मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थंकर प्रकृति)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	११७	०	६	मिथ्यात्व, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, आतप, नारकानुपूर्वी
२	१११	६	९	ओघवत्

विभंग ज्ञान

उदय योग्य १०४=पूर्वोक्त कुमति कुश्रुतवत् ११७-१३

१३ = एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, आतप, ४ आनुपूर्वी

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०४	०	१	मिथ्यात्व
२	१०३	१	४	अनंतानुबंधी ४

सण्णाणपंचयादी दंसणमग्गणपदोत्ति सगुणोघं।
मणपज्जवपरिहारे णवरि ण संढित्थि हारदुगं।।३२४।।

अर्थ – पाँच सम्यग्ज्ञान से लेकर दर्शन मार्गणा तक की रचना अपनी-अपनी गुणस्थान रचनावत् है। विशेष इतना है कि मनःपर्ययज्ञान और परिहारविशुद्धि में नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और आहारकद्विक ये ४ उदय-योग्य नहीं हैं।।३२४।।

मति, श्रुत, अवधि ज्ञान

उदय योग्य १०६=१२२-१६(प्रथम ३ गुणस्थान की व्युच्छिन्न १५(५+९+१)+तीर्थंकर)
या १०६=१०४+२=चौथे गुणस्थान की ओघवत् १०४+ आहारकद्विक

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति
४ से १२	ओघवत्	मूल उदय अयोग्य १६ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्	ओघवत्

मन:पर्यय ज्ञान

उदय योग्य ७७=छठे गुणस्थानवत् ८१-४(स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, आहारकद्विक)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
६	७७	०	३	स्त्यानगृद्धित्रिक
७	७४	३	४	ओघवत्
८	७०	७	६	
९	६४	१३	४	पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया
१०	६०	१७	१	ओघवत्
११	५९	१८	२	
१२	५७	२०	१६	

केवलज्ञान

उदय योग्य ४२ = तेरहवें गुणस्थानवत्

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१३	४२	०	३०	ओघवत्
१४	१२	३०	१२	

संयम मार्गणा

सामायिक, छेदोपस्थापना संयम

उदय योग्य ८१=छठे गुणस्थानवत्

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति
६ से ९	ओघवत्	मूल उदय अयोग्य ४१ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्	ओघवत्

परिहारविशुद्धि संयम

उदय योग्य ७७ = मनःपर्ययज्ञानवत्

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
६	७७	०	३	स्त्यानगृद्धित्रिक
७	७४	३	४	ओघवत्

सूक्ष्मसांपराय संयम

उदय योग्य ६० = दसवें गुणस्थानवत्

यथाख्यात संयम

उदय योग्य ६० = सूक्ष्मसांपरायवत् ६०-संज्वलन लोभ+तीर्थंकर प्रकृति

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष		व्युच्छित्ति
११	ओघवत्	१	तीर्थंकर प्रकृति	मूल उदय-अयोग्य ६२ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्	ओघवत्
१२		३			
१३		१९-१=१८	-१=तीर्थंकर		
१४		४८			

देशसंयम

उदय योग्य ८७ = पाँचवें गुणस्थानवत्

असंयम

उदय योग्य ११९=१२२-३(आहारकद्विक, तीर्थंकर प्रकृति)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति
१	११७	२	मिश्र, सम्यक्त्व	५
२ से ४	ओघवत्	मूल उदय अयोग्य ३ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्		ओघवत्

चक्खुम्मि ण साहारणताविगिबितिजाइ थावरं सुहुमं।
किण्हदुगे सगुणोघं मिच्छे णिरयाणुवोच्छेदो।।३२५।।
साणे सुराउसुरगदिदेवतिरिक्खाणुवोछिदी एवं।
काओदे अयदगुणे णिरयतिरिक्खाणुवोछेदो।।३२६।।

अर्थ - दर्शनमार्गणा के चक्षुदर्शन में १२२ में से साधारण, आतप, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय जाति, स्थावर, सूक्ष्म, तीर्थंकर प्रकृति - इन ८ के न होने से ११४ उदय-योग्य हैं। लेश्या मार्गणा में कृष्ण, नील इन दो में अपने-अपने गुणस्थानवत् तीर्थंकरादि ३ प्रकृतियों के सिवाय ११९ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं। मिथ्यात्व में नरकानुपूर्वी की भी व्युच्छित्ति है। सासादन गुणस्थान में देवायु, देवगति, देवानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी - इन चार की व्युच्छित्ति है। इसी प्रकार ११९ प्रकृतियाँ कापोत लेश्या में भी हैं, परंतु असंयत में नरकानुपूर्वी और तिर्यंचानुपूर्वी की व्युच्छित्ति है।।३२५-३२६।।

दर्शन मार्गणा

चक्षु दर्शन

उदय योग्य ११४=१२२-८(एकेन्द्रिय,द्वीन्द्रिय,त्रीन्द्रिय,सूक्ष्म,साधारण,आतप,स्थावर,तीर्थंकर)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	११०	४	तीर्थंकर बिना	२	मिथ्यात्व,अपर्याप्त
२	१०७	६+१=७	१= नरकानुपूर्वी	५	अनंतानुबंधी ४,चतुरिन्द्रिय
३ से १२	ओघ-वत्	मूल उदय-अयोग्य ८ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्		ओघवत्	

अचक्षु दर्शन

उदय योग्य १२१=१२२-१(तीर्थंकर प्रकृति)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति
१ से १२	ओघवत्	मूल उदय अयोग्य १ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्	ओघवत्

अवधिदर्शन

उदय योग्य १०६=अवधिज्ञानवत् | उदय,अनुदय,व्युच्छित्ति अवधिज्ञानरचनावत्

केवलदर्शन

उदय योग्य ४२=केवलज्ञानवत् | उदय,अनुदय,व्युच्छित्ति केवलज्ञानरचनावत्

लेश्या मार्गणा

कृष्ण-नील लेश्या

उदय योग्य ११९=१२२-३(तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	११७	२	२=मिश्र,सम्यक्त्व	६	५ ओघवत्+नरकानुपूर्वी
२	१११	८		१३	९ ओघवत्+तिर्यंचानुपूर्वी, देवायु*, देवद्विक*

३	९८	२१-१+१ =२१	-१=मिश्र, १=मनुष्यानुपूर्वी	१	मिश्र
४	९९	२२-२=२०	-२=सम्यक्त्व, मनुष्यानुपूर्वी	१२	अप्रत्याख्यानावरण ४,नरकायु, नरकगति, वैक्रियिकद्विक, दुर्भग, अनादेय, अयश:कीर्ति, मनुष्यानुपूर्वी

※ भवनत्रिक के अपर्याप्त काल में ३ अशुभ लेश्या ही है,अशुभ लेश्या का धारक असंयत भवनत्रिक में नहीं उत्पन्न होता है, इसलिए देवायु,देवद्विक की व्युच्छित्ति सासादन में ही होती है

कापोत लेश्या

उदय योग्य ११९=कृष्ण-नील लेश्यावत्

गुणस्थान	उदय	अनुदय	विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	११७	२	कृष्णलेश्यावत्	५	ओघवत्
२	१११	७+१=८	१= नरकानुपूर्वी	१२	कृष्णलेश्यावत्-१(तिर्यंचानुपूर्वी)
३	९८	२०-१+२ =२१	-१=मिश्र, २=तिर्यंच,मनुष्यानुपूर्वी	१	मिश्र
४	१०१	२२-४=१८	-४=३ आनुपूर्वी, सम्यक्त्व	१४	कृष्णलेश्यावत् + २(तिर्यंच,नरकाानुपूर्वी)

तेउतिये सगुणोघं णादाविगिविगलथावरचउक्कं।
णिरयदुतदाउतिरियाणुगं णराणू ण मिच्छदुगे।।३२७।।

अर्थ - तेजो लेश्यादि तीन शुभलेश्याओं में अपने-अपने ओघवत् १२२ में से आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावरादि ४, नरकद्विक, नरकायु, तिर्यंचानुपूर्वी - ये १३ प्रकृतियाँ उदय-योग्य नहीं हैं। उसमें भी मिथ्यादृष्टि आदि दो गुणस्थानों में मनुष्यानुपूर्वी का भी उदय नहीं है।।३२७।।

पीत-पद्म लेश्या

उदय योग्य १०८=१२२-१४

नरकायु,नरकद्विक,एकेन्द्रिय,विकलत्रय,सूक्ष्म,साधारण,अपर्याप्त,स्थावर,आतप,तिर्यंचानुपूर्वी,तीर्थंकर

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०३	५	मिश्र,सम्यक्त्व, आहारकद्विक,मनुष्यानुपूर्वी	१	मिथ्यात्व
२	१०२	६		४	अनंतानुबंधी ४
३	९८	१०-१+१ =१०	-१=मिश्र, १=देवानुपूर्वी	१	मिश्र
४	१००	११-३=८	-३=मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वी,सम्यक्त्व	१३	नरकायु,नरकद्विक, तिर्यंचानुपूर्वी बिना
५ से ७	ओघवत्	मूल उदय अयोग्य १४ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्		ओघवत्	

शुक्ल लेश्या

उदय योग्य १०९=पीत-पद्म लेश्यावत्+१(तीर्थंकर प्रकृति)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१ से ७	पीत-पद्मवत्	पीत-पद्मवत्+तीर्थंकर	पीत-पद्मवत्	
८ से १२	ओघवत्	मूल उदय अयोग्य १३ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्	ओघवत्	
१३			३०+१२ =४२	*योग का अभाव होने से लेश्या यहीं तक*

भव्विदरुवसमवेदगखइये सगुणोघमुवसमे खयिये।
ण हि सम्ममुवसमे पुण णादितियाणू य हारदुगं।।३२८।।

अर्थ - भव्य, अभव्य, उपशम सम्यक्त्व, वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व मार्गणाओं में अपने-अपने गुणस्थान के कथनवत् हैं। विशेष यह है कि उपशम सम्यक्त्व तथा क्षायिक सम्यक्त्व में सम्यक्त्व प्रकृति उदय-योग्य नही हैं। तथा उपशम सम्यक्त्व में आदि की नरकादि ३ आनुपूर्वी और आहारकद्विक - ये प्रकृतियाँ उदय-योग्य नहीं हैं।।३२८।।

भव्य मार्गणा

भव्य सर्व कथन ओघवत्

अभव्य **उदय योग्य** ११७=मिथ्यात्व गुणस्थानवत्

सम्यक्त्व मार्गणा

उपशम सम्यक्त्व

उदय योग्य १००=चौथे गुणस्थानवत् १०४-४(सम्यक्त्व,देवानुपूर्वी छोड़कर ३ आनुपूर्वी)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
४	१००	०	१४	३ आनुपूर्वी बिना ओघवत्
५	८६	१४	८	ओघवत्
६	७८	२२	३	आहारकद्विक बिना ओघवत्
७	७५	२५	३	सम्यक्त्व बिना ओघवत्
८ से ११	ओघवत्	मूल उदय अयोग्य २२ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्	ओघवत्	

क्षयोपशम सम्यक्त्व

उदय योग्य १०६=१२२-१६(प्रथम ३ गुणस्थान की व्युच्छिन्न १५(५+९+१)+तीर्थंकर)

या १०६=१०४+२=चौथे गुणस्थान की ओघवत् १०४+आहारकद्विक

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष		व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
४	ओघवत्	२	आहारकद्विक	मूल उदय अयोग्य १६ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्	१७	ओघवत्
५		१९			८	
६		२७-२ =२५	-२= आहारकद्विक		५	
७		३०			७६	७से१४ तक की व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ(४+६+६+१+ २+१६+३०+११)

खाइयसम्मो देसो णर एव जदो तहिं ण तिरियाऊ।
उज्जोवं तिरियगदी तेसिं अयदम्हि वोच्छेदो।।३२९।।

अर्थ - देशसंयत में रहने वाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही होता है, इसलिये उसके तिर्यंचायु, उद्योत और तिर्यंचगति - इन ३ का उदय नहीं है। इसीलिये इन तीनों की उदय व्युच्छित्ति असंयत में ही हो जाती है।।३२९।।

क्षायिक सम्यक्त्व

उदय योग्य १०६=१२२-१६(प्रथम ३ गुणस्थान की व्युच्छिन्न १५(५+९+१)+सम्यक्त्व

या १०६=१०६+१-१=क्षयोपशम सम्यक्त्ववत् १०६+तीर्थंकर-सम्यक्त्व

पाँचवे गुणस्थानवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही होता है, तिर्यंच नहीं

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
४	१०३	३	२०	ओघवत् १७+३(तिर्यंचायु, तिर्यंचगति,उद्योत)
५	८३	२३	५	प्रत्याख्यानावरण ४,नीच गोत्र
६	८०	२८-२=२६	५	ओघवत्
७	७५	३१	३	सम्यक्त्व बिना ओघवत्
८ से १४	ओघवत्	मूल उदय अयोग्य १६ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्	ओघवत्	

सेसाणं सगुणोघं सण्णिस्सवि णत्थि तावसाहरणं।
थावरसुहुमिगिविगलं असण्णिणोवि य ण मणुदुच्चं।।३३०।।
वेगुव्वछ पणसंहदिसंठाण सुगमण सुभगआउतियं।
आहारे सगुणोघं णवरि ण सव्वाणुपुव्वीओ।।३३१।।जुम्मं।।

अर्थ - शेष मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र - इन तीनों में अपने-अपने गुणस्थानवत् उदयादि है। संज्ञी मार्गणा में संज्ञी के भी ओघवत् १२२ में से आतप, साधारण, स्थावर, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय, विकलत्रय तथा तीर्थंकर प्रकृति - ये ९ उदय-योग्य नहीं हैं। असंज्ञी के मनुष्यद्विक, उच्च गोत्र, वैक्रियिकषट्क, आदि ५ संहनन, आदि ५ संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभगादि ३, नरकादि ३ आयु - ये २६ नहीं हैं, इसलिये मिथ्यादृष्टि की ११७ में से २६ घटाने पर ९१ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं। आहार मार्गणा में आहारक में ओघवत् उदयादि है, विशेष यह की ४ आनुपूर्वी का उदय नहीं होता, इसलिये उदय-योग्य ११८ प्रकृतियाँ हैं।।३३०-३३१।।

मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र

अपने-अपने गुणस्थानवत् रचना

श्रद्धा	गुणस्थान	उदय योग्य
मिथ्या रुचि	मिथ्यात्व	११७
सासादन रुचि	सासादन	१११
मिश्र रुचि	मिश्र	१००

संज्ञी मार्गणा

संज्ञी

उदय योग्य

११३ = पंचेन्द्रियवत् ११४-१(तीर्थंकर प्रकृति), या
११३=१२२-९(एकेन्द्रिय,विकलत्रय,सूक्ष्म,साधारण,स्थावर,आतप,तीर्थंकर)

सयोगी-अयोगी मनरहित है, इसलिये उन्हें संज्ञी नहीं कहते, तथा तिर्यंच को छोड़कर अन्यत्र असंज्ञी नहीं होते, इसलिये उन्हें असंज्ञी भी नहीं कहते

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	१०९	४	तीर्थंकर प्रकृति बिना पंचेन्द्रियवत्	२	मिथ्यात्व,अपर्याप्त
२	१०६	६+१ = ७		४	अनंतानुबंधी ४
३ से ११	ओघवत्	मूल उदय अयोग्य ९ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्		ओघवत्	
१२	५७	५६		५७	१६+३०+११

असंज्ञी

उदय योग्य ९१=मिथ्यात्व गुणस्थानवत् ११७-२६

- नरकायु, मनुष्यायु, देवायु
- उच्चगोत्र
- मनुष्यद्विक, वैक्रियिकषट्क
- आदि ५ संस्थान, आदि ५ संहनन
- सुभग, आदेय
- सुस्वर, प्रशस्त विहायोगति

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	९१	०	५+८=१३	५=ओघवत्
				८=स्त्यानगृद्धित्रिक, परघात, उच्छ्वास, दुःस्वर, अप्रशस्त विहायोगति, उद्योत ***(सासादन में उदय अयोग्य इसलिए व्युच्छित्ति)***
२	७८	१३	९	ओघवत्

आहारक मार्गणा

आहारक

उदय योग्य ११८=१२२-४(आनुपूर्वी)

गुणस्थान	उदय	अनुदय	अनुदय विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	११३	५	ओघवत्	५	ओघवत्
२	१०८	१०		९	
३	१००	१९-१=१८	-१=मिश्र	१	
४	१००	१९-१=१८	-१=सम्यक्त्व	१३	
५ से १२	ओघ-वत्	मूल उदय अयोग्य ४ प्रकृतियों को घटाकर शेष ओघवत्		ओघवत्	
१३	४२	७७-१=७६	-१=तीर्थंकर	४२	३०+१२

कम्मे व अणाहारे पयडीणं उदयमेवमादेसे।
कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण।।३३२।।

अर्थ - अनाहारक में कार्मण काययोगवत् ८९ प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं। इस प्रकार आदेश अर्थात् मार्गणा स्थान में उदय है। वह **बल** अर्थात् बलभद्र और **माधव** अर्थात् नारायण इनके द्वारा **अर्चित** अर्थात् पूजित ऐसे **नेमिचन्द्र** अर्थात् नेमिनाथ तीर्थंकर प्रकृति वे ही हुए चंद्रमा उन्होंने कहा है। अथवा **बल** अर्थात् बलदेव अपना भाई और **माधव** अर्थात् माधवचंद्र त्रैविद्यदेव - इनसे **अर्चित** अर्थात् पूजित ऐसे नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने कहा है - सो जानना।।३३२।।

अनाहारक

उदय योग्य ८९=कार्माण काययोगवत्

गुणस्थान	उदय	अनुदय	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
१	कार्माण काययोगवत्	कार्माण काययोगवत्	३	कार्माण काययोगवत्
२			१०	
४			५१	
१३			१३	कोई १ वेदनीय,निर्माण,स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ,तेजसद्विक,वर्णादि ४,अगुरुलघु
१४	१२	७७	१२	ओघवत्

सत्त्व प्रकरण

तित्थाहारा जुगवं सव्वं तित्थं ण मिच्छगादितिए।
तस्सत्तकम्मियाणं तग्गुणठाणं ण संभवदि।।३३३।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र इन तीनों गुणस्थानों में क्रम से पहले में तीर्थंकर प्रकृति और आहारकद्विक एक जीव को एक काल में सत्त्व में नहीं होते है। दूसरे में तीनों ही किसी काल में नहीं होते और मिश्र में तीर्थंकर प्रकृति नहीं होती। क्योंकि इन सत्त्व प्रकृतियों वाले जीवों के वे मिथ्यात्वादि गुणस्थान ही संभव नहीं है।।३३३।।

सत्ता नियम - तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक

गुणस्थान	प्रकृति	संभावित सत्त्व
१	तीर्थंकर,आहारकद्विक	एक साथ एक जीव को दोनों का नहीं
		अनुक्रम से या नाना जीवों की अपेक्षा दोनों का संभव
२	तीर्थंकर,आहारकद्विक	कभी नहीं
३	तीर्थंकर	कभी नहीं

मिथ्यात्व में क्रम से तीर्थंकर प्रकृति,आहारकद्विक की सत्ता

१	किसी जीव ने ऊपर के गुणस्थान में आहारकद्विक का बंध किया
२	मिथ्यात्व गुणस्थान में आकर
३	आहारकद्विक की उद्वेलना करके
४	पश्चात् नरकायु का बंध किया
५	असंयत् गुणस्थानवर्ती होकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया
६	दूसरी या तीसरी पृथ्वी जाने के काल में मिथ्यादृष्टी हुआ
७	इस प्रकार अनुक्रम से आहारकद्विक और तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व एक जीव के हुआ

चत्तारिवि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं।
अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तं।।३३४।।
णिरयतिरिक्खसुराउगसत्ते ण हि देससयलवदखवगा।
अयदचउक्कं तु अणं अणियट्टीकरणचरिमम्हि।।३३५।।
जुगवं संजोगित्ता पुणोवि अणियट्टिकरणबहुभागं।
वोलिय कमसो मिच्छं मिस्सं सम्मं खवेदि कमे।।३३६।।जुम्मं।।

अर्थ - चारों ही गतियों में किसी भी आयु के बंध होने पर सम्यक्त्व होता है, परंतु देवायु के बंध के सिवाय अन्य तीन आयु के बंध वाला अणुव्रत तथा महाव्रत नहीं धारण कर सकता है।।३३४।।

अर्थ - नरक, तिर्यंच तथा देवायु के सत्त्व होने पर क्रम से देशव्रत, सर्वव्रत (महाव्रत) और क्षपक श्रेणी नहीं होती। और असंयतादि चार गुणस्थान वाले उन सातों में से पहले अनंतानुबंधी ४ का अनिवृत्तिकरणरूप परिणामों के अंतर्मुहूर्त काल के अंत समय में एक ही साथ विसंयोजन अर्थात् अनंतानुबंधी की चौकड़ी को अप्रत्याख्यानादि २१ कषायरूप परिणमन करा देता है। तथा विश्राम के पश्चात् (दूसरे) अनिवृत्तिकरण काल के बहुभाग को छोड़ के शेष संख्यातवें एक भाग में पहले समय से लेकर क्रम से मिथ्यात्व, मिश्र तथा सम्यक्त्व प्रकृति का क्षय करते हैं। इस प्रकार ७ प्रकृतियों का क्रम से क्षय कर क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है।।३३५-३३६।।

सत्ता नियम - आयु

भुज्यमान आयु
✻ विद्यमान जिस आयु को भोगता है

बध्यमान आयु
✻ आगामी जिस आयु का बंध किया है

आयु	क्या हो सकता है	क्या नहीं हो सकता है
बध्यमान आयु -		
नरक, तिर्यंच, मनुष्य	सम्यक्त्व	अणुव्रत, महाव्रत, क्षपक श्रेणी*
देव	सम्यक्त्व, अणुव्रत, महाव्रत	क्षपक श्रेणी
भुज्यमान आयु -		
नरक, देव	सम्यक्त्व	अणुव्रत, महाव्रत
तिर्यंच	सम्यक्त्व, अणुव्रत	महाव्रत
मनुष्य	सब	-

****व्रत परिणाम के कारणभूत विशुद्ध रूप कषायों के स्थान का उदय नहीं पाया जाता***

आयु की सत्ता किस गुणस्थान तक

आयु	गुणस्थान
नरक	४
तिर्यंच	५
देव	११(उपशम श्रेणी अपेक्षा)
मनुष्य	१४

अनंतानुबंधी ४-दर्शन मोहनीय ३ की सत्ता का नाश - क्रम

१	असंयतादि ४ गुणस्थानों में से किसी १ गुणस्थान में
२	तीन करणरूप परिणामों द्वारा
३	अनंतानुबंधी ४ को युगपत् एक ही बार विसंयोजन करके,अर्थात् २१ कषायरूप परिणमा करके
४	कम से कम अंतर्मूहूर्त काल तक विश्राम करके
५	पश्चात् ३ करणरूप परिणामों द्वारा
६	पहिले मिथ्यात्व का
७	पश्चात् मिश्र का
८	अंत में सम्यक्त्व प्रकृति का क्षय करके
९	**क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है**

सोलट्ठेक्किगिछक्कं चदुसेक्कं बादरो अदो एक्कं।
खीणे सोलसऽजोगे बायत्तरि तेरुवत्तंते।।३३७।।
णिरयतिरिक्खदु वियलंथीणतिगुज्जोवतावएइंदी।
साहरणसुहुमथावर सोलं मज्झिमकसायट्ठं।।३३८।।
संढित्थि छक्कसाया पुरिसो कोहो य माण मायं च।
थूले सुहुमे लोहो उदयं वा होदि खीणम्हि।।३३९।।जुम्मं।।
देहादीफस्संता थिरसुहसरसुरविहायदुग दुभगं।
णिमिणाजसऽणादेज्जं पत्तेयापुण्ण अगुरुचऊ।।३४०।।
अणुदयतदियं णीचमजोगिदुचरिमम्मि सत्तवोच्छिण्णा।
उदयगबार णराणू तेरस चरिमम्हि वोच्छिण्णा।।३४१।।जुम्मं।।
णभतिगिणभइगि दोहो दस दससोलट्ठगादिहीणेसु।
सत्ता हवंति एवं असहायपरक्कमुद्दिट्ठं।।३४२।।

अर्थ - बादर अर्थात् अनिवृत्तिकरण के ९ भागों में से पाँच भागों में क्रम से १६, ८, १, १, ६ प्रकृतियाँ तथा चार भागों में १-१ प्रकृति की सत्ता से व्युच्छित्ति होती है। सूक्ष्मसांपराय में १, क्षीणकषाय में १६, अयोगकेवली के द्विचरम समय में ७२ तथा अंतिम समय में १३ प्रकृतियों के सत्त्व की व्युच्छित्ति होती है।।३३७।।

अर्थ - अनिवृत्तिकरण के पहले भाग में नरकद्विक, तिर्यंचद्विक, विकलत्रय, स्त्यानगृद्धित्रिक, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर - ये १६ सत्त्व व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ हैं। दूसरे भाग में मध्य की ८ कषाय अप्रत्याख्यानावरण ४ तथा प्रत्याख्यानावरण ४ की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

तीसरे भाग में नपुंसकवेद, चौथे भाग में स्त्रीवेद, पाँचवें में हास्यादि ६ नोकषाय और छठे, सातवें, आठवें, नवमें भाग में क्रम से पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, तथा माया की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है (इस प्रकार नवमें गुणस्थान में ३६ प्रकृतियाँ व्युच्छिन्न होती हैं)। सूक्ष्मसांपराय में संज्वलन लोभ की तथा क्षीणकषाय गुणस्थान में उदय की तरह (ज्ञानावरण-५, दर्शनावरण-४, अंतराय-५ और निद्रा, प्रचला इस प्रकार १६ के) सत्त्व की व्युच्छित्ति होती है।।३३८-३३९।।

अर्थ - ५ शरीर से लेकर ८ स्पर्श तक ५०, स्थिर-शुभ-स्वर-देवगति-विहायोगति इनका जोड़ा, दुर्भग, निर्माण, अयशःकीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु-४, तीसरे वेदनीय कर्म की अनुदयरूप एक प्रकृति और नीचगोत्र - ये ७२ प्रकृतियाँ अयोगकेवली के उपान्त्य समय में सत्त्व से व्युच्छिन्न होती हैं। जिनका उदय अयोगकेवली गुणस्थान में है ऐसी उदयगत १२ प्रकृतियाँ और मनुष्यानुपूर्वी - ये १३ की अयोगकेवली के अंत समय में सत्त्व से व्युच्छित्ति होती हैं।।३४०-३४१।।

अर्थ - मिथ्यादृष्टि आदि अपूर्वकरण गुणस्थान तक क्रम से ०, ३, १, ०, १, २, २, १० प्रकृतियों का असत्त्व है। अनिवृत्तिकरण के पहले भाग में १०, दूसरे में १६, तीसरे आदि भाग में ८ आदि प्रकृतियों का असत्त्व है। और इन असत्त्व प्रकृतियों को सब सत्त्व प्रकृतियों में घटाने से अवशेष प्रकृतियाँ अपने-अपने गुणस्थानों में सत्त्व प्रकृतियाँ हैं। ऐसा सहायता रहित पराक्रम के धारण करने वाले श्रीमहावीर स्वामी ने कहा है।।३४२।।

गुणस्थानों में सत्त्व

<table>
<tr><th>गुणस्थान</th><th>सत्त्व</th><th>असत्त्व</th><th>असत्त्व विशेष</th><th>सत्त्व</th><th colspan="2">असत्त्व</th></tr>
<tr><td>१</td><td>१४८</td><td>०</td><td></td><td></td><td colspan="2"></td></tr>
<tr><td>२</td><td>१४५</td><td>३</td><td>तीर्थंकर,आहारकद्विक</td><td></td><td colspan="2"></td></tr>
<tr><td>३</td><td>१४७</td><td>१</td><td>तीर्थंकर</td><td></td><td colspan="2"></td></tr>
<tr><td></td><td colspan="3">औपशमिक-क्षयोपशमिक सम्यग्दृष्टि</td><td colspan="3">क्षायिक सम्यग्दृष्टि अपेक्षा</td></tr>
<tr><td>४</td><td>१४८</td><td>०</td><td></td><td>१४१</td><td rowspan="4">७ का असत्त्व =३ दर्शनमोह, ४ अनंतानुबंधी</td><td></td></tr>
<tr><td>५</td><td>१४७</td><td>१</td><td>नरकायु</td><td>१३९</td><td rowspan="3">नरकायु, तिर्यंचायु का असत्त्व</td></tr>
<tr><td>६</td><td>१४६</td><td>२</td><td>नरकायु, तिर्यंचायु</td><td>१३९</td></tr>
<tr><td>७</td><td>१४६</td><td>२</td><td>नरकायु, तिर्यंचायु</td><td>१३९</td></tr>
</table>

क्षपकश्रेणी रचना अपूर्वकरणादि गुणस्थानों में

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व विशेष	व्युच्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
८	१३८	१०	७ + ३ आयु	०	

९				३६	
९ का १ भाग	१३८	१०		१६	स्त्यानगृद्धित्रिक,नरकद्विक, तिर्यंचद्विक,एकेंद्रिय,विकलत्रिक, सूक्ष्म,साधारण,स्थावर,आतप,उद्योत
२ भाग	१२२	२६		८	अप्रत्याख्यानावरण ४,प्रत्याख्या. ४
३ भाग	११४	३४		१	नपुंसकवेद
४ भाग	११३	३५		१	स्त्रीवेद
५ भाग	११२	३६		६	६ नोकषाय (३ वेद छोड़कर)
६ भाग	१०६	४२		१	पुरुषवेद
७ भाग	१०५	४३		१	संज्वलन क्रोध
८ भाग	१०४	४४		१	संज्वलन मान
९ भाग	१०३	४५		१	संज्वलन माया
१०	१०२	४६		१	संज्वलन लोभ
१२	१०१	४७		१६	५ज्ञानावरण,६दर्शनावरण,५अंतराय
१३	८५	६३		०	-
१४द्विचरम	८५	६३		७२	आगे देखें
१४ चरम	१३	१३५		१३	

१४वें गुणस्थान के द्विचरम समय में व्युच्छिन्न ७२ प्रकृतियाँ

- १ वेदनीय
- नीचगोत्र
- देवद्विक
- ५ शरीर
- ५ बंधन
- ५ संघात
- ६ संस्थान
- ६ संहनन
- ३ अंगोपांग
- ५ वर्ण
- २ गंध
- ५ रस
- ८ स्पर्श
- अगुरुलघु
- उपघात
- परघात
- उच्छ्वास
- निर्माण
- स्थिर-अस्थिर
- शुभ-अशुभ
- सुस्वर-दु:स्वर
- दो विहायोगति
- दुर्भग
- अनादेय
- अयश:कीर्ति
- प्रत्येक
- अपर्याप्त

१४वें गुणस्थान के चरम समय में व्युच्छिन्न १३ प्रकृतियाँ

- १ वेदनीय
- मनुष्यायु
- उच्चगोत्र
- मनुष्यगति
- मनुष्यानुपूर्वी
- पंचेन्द्रिय
- त्रस
- बादर
- पर्याप्त
- सुभग
- आदेय
- यश:कीर्ति
- तीर्थंकर

खवणं वा उवसमणे णवरि य संजलणपुरिसमज्झम्हि।
मज्झिमदोहो कोहादीया कमसोवसंता हु।।३४३।।

अर्थ – उपशम के विधान में भी क्षपणा विधान की तरह क्रम जानना। विशेष इतना है कि संज्वलन कषाय और पुरुषवेद के मध्य में मध्यम अप्रत्याख्यानावरण तथा प्रत्याख्यानावरण कषाय संबंधी जो २-२ क्रोधादि हैं, वह संज्वलन क्रोधादि के साथ क्रम से उपशमित होती है।।३४३।।

उपशम श्रेणी ८ से ११ गुणस्थान, में सत्त्व-असत्त्व

सम्यक्त्व	आयु	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व विशेष
द्वितीयोपशम	बद्धायुष्क	८ से ११	१४६	२	नरकायु, तिर्यंचायु
क्षायिक	अबद्धायुष्क	८ से ११	१३८	१०	४ अनंतानुबंधी, ३ दर्शन मोह, भुज्यमानआयु बिना अन्य ३ आयु

उपशम श्रेणी में उपशम विधान

उपशम मात्र मोहनीय कर्म का ही होता है

नवक बंध	= तत्काल नवीन बंध
	नवीन बंध के पश्चात् १ आवली काल तक उस कर्म प्रकृति का अन्यथा परिणमन नहीं होता है
	इसलिए आगे के भाग में उस नवक बंध का उपशम होता है

२१ प्रकृतियों के उपशमित होने का अनुक्रम

नपुंसकवेद	→	स्त्रीवेद	→	हास्यादिक ६ नोकषाय	→	पुरुषवेद	→
पुरुषवेद नवक बंध, अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण क्रोध	→	संज्वलन क्रोध	→	संज्वलन क्रोध नवक बंध, अप्रत्य.-प्रत्य. मान	→	संज्वलन मान	→
संज्वलन मान नवक बंध, अप्रत्य.-प्रत्य. माया	→	संज्वलन माया	→	संज्वलन माया नवक बंध, अप्रत्य.-प्रत्य. लोभ	→	बादर संज्वलन लोभ	

णिरयादिसु पयडिट्ठिदिअणुभागपदेसभेदभिण्णस्स।
सत्तस्स य सामित्तं णेदव्वमिदो जहाजोग्गं।।३४४।।

अर्थ –यहाँ से आगे नरकगति आदि मार्गणाओं में भी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश – इन चारों प्रकार के भेदों वाले कर्मों का जो सत्त्व वह यथायोग्य जानना।।३४४।।

मार्गणााओं में सत्त्व, असत्त्व, व्युच्छित्ति

तिरिए ण तित्थसत्तं णिरयादिसु तिय चउक्क चउ तिण्ण।
आऊणि होंति सत्ता सेसं ओघादु जाणेज्जो।।३४५।।

अर्थ – तिर्यंचगति में तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नहीं होती। नरक, तिर्यंच, मनुष्य तथा देवगति में क्रम से ३,४,४,३ आयु कर्मों की सत्ता रहने योग्य है। शेष प्रकृतियों की सत्ता ओघवत् जानना।।३४५।।

चारों गतियों में आयु सत्त्व

गति	सत्त्व	असत्त्व
नरक	३ आयु	देवायु
तिर्यंच	४ आयु	
मनुष्य		
देव	३ आयु	नरकायु

तीर्थंकर प्रकृति सत्त्व नियम

तिर्यंचगति में तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं होता है

ओघं वा णेरइये ण सुराऊ तित्थमत्थि तदियोत्ति।
छट्ठित्ति मणुस्साऊ तिरिए ओघं ण तित्थयरं।।३४६।।

अर्थ – नरकगति में ओघवत् सत्ता है, परंतु देवायु का सत्त्व नहीं है। तीसरे नरक तक ही तीर्थंकर प्रकृति का, तथा छठे नरक तक ही मनुष्यायु का सत्त्व है। तिर्यंच में तीर्थंकर बिना ओघवत् है।।३४६।।

गति मार्गणा

नरकगति मार्गणा

	सत्त्व योग्य	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व विशेष
प्रथम ३ नरक	१४७ =१४८–१ (देवायु)	१	१४७	०	
		२	१४४	३	तीर्थंकर प्रकृति,आहारकद्विक
		३	१४६	१	तीर्थंकर प्रकृति
		४	१४७	०	
चौथे से छठे नरक तक	१४६ =१४७–१ (तीर्थंकर प्रकृति)	१	१४६	०	
		२	१४४	२	आहारकद्विक
		३	१४६	०	
		४	१४६	०	

सातवां नरक	१४५ =१४६−१ (मनुष्यायु)	१	१४५	0	
		२	१४३	२	आहारकद्विक
		३	१४५	0	
		४	१४५	0	

एवं पंचतिरिक्खे पुण्णिदरे णत्थि णिरयदेवाऊ।
ओघं मणुसतियेसुवि अपुण्णगे पुण अपुण्णेव।।३४७।।

अर्थ − ऐसे ही पाँच प्रकार के तिर्यंचों में भी सत्त्व है। परंतु लब्धि अपर्याप्त तिर्यंच में नरकायु और देवायु का सत्त्व नहीं है। मनुष्य के तीन भेदों में भी ओघवत् सत्त्व है। लब्धि अपर्याप्त मनुष्य में लब्धि अपर्याप्त तिर्यंचवत् हैं।।३४७।।

तिर्यंचगति मार्गणा

	सत्त्व योग्य	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व विशेष	व्यु−च्छित्ति	व्युच्छित्ति विवरण
सामान्य, पंचेन्द्रिय, योनिमत्, पंचेन्द्रिय पर्याप्त	१४७ =१४८−१ (तीर्थंकर प्रकृति)	१	१४७	0		0	
		२	१४५	२	आहारकद्विक	0	
		३	१४७	0		0	
		४	१४७	0		२	मनुष्यायु,नरकायु
		५	१४५	२		१	तिर्यंचायु
लब्धि अपर्याप्त	**सत्त्व योग्य:− १४५=१४७−२(नरकायु,देवायु)** एकमात्र मिथ्यात्व गुणस्थान						

मनुष्यगति मार्गणा

	सत्त्व योग्य	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व विशेष
सामान्य व पर्याप्त	सर्व रचना ओघवत्				
	विशेष:−	५वां	१४६	२	नरकायु, तिर्यंचायु
योनिमत्	१४८	१−११	सामान्य मनुष्यवत्		
		८−१४ क्षपक श्रेणी	ओघवत् से १(तीर्थंकर प्रकृति) कम	ओघवत्	
लब्धि अपर्याप्त	लब्धि अपर्याप्त तिर्यंचवत् १४५(तीर्थंकर प्रकृति, नरकायु, देवायु नहीं)				

ओघं देवे ण हि णिरयाऊ सारोत्ति होदि तिरियाऊ।
भवणतियकप्पवासियइत्थीसु ण तित्थयरसत्तं।।३४८।।

अर्थ – देवगति में नरकायु बिना ओघवत् है। बारहवें सहस्रार स्वर्ग तक ही तिर्यंचायु की सत्ता है। भवनत्रिक देवों में तथा कल्पवासिनी स्त्रीयों में तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं है।।३४८।।

देवगति मार्गणा

	सत्त्व योग्य	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व विशेष
१ से १२ स्वर्ग	१४७ =१४८–१ (नरकायु)	१	१४६	१	तीर्थंकर प्रकृति
		२	१४४	३	तीर्थंकर प्रकृति,आहारकद्विक
		३	१४६	१	तीर्थंकर प्रकृति
		४	१४७	०	
१३ से १६ स्वर्ग, ९ ग्रैवेयक	१४६ =१४७–१ (तिर्यंचायु)	१	१४५	१	तीर्थंकर प्रकृति
		२	१४३	३	तीर्थंकर प्रकृति,आहारकद्विक
		३	१४५	१	तीर्थंकर प्रकृति
		४	१४६	०	
९ अनुदिश, ५ अनुत्तर		एकमात्र असंयत गुणस्थान			
भवनत्रिक, कल्पवासिनी स्त्री	१४६ =१४७–१ (तीर्थंकर)	१	१४६	०	
		२	१४४	२	आहारकद्विक
		३–४	१४६	०	

ओघं पंचक्खतसे सेसिंदियकायगे अपुण्णं वा।
तेउदुगे ण णराऊ सव्वत्थुव्वेल्लणावि हवे।।३४९।।

अर्थ – पंचेन्द्रिय और त्रसकाय में ओघवत् है। और शेष एकेन्द्रिय आदि चतुरिन्द्रिय तक में तथा पृथ्वी आदि स्थावर काय में लब्धि अपर्याप्तवत् है। तेजःकाय और वायुकाय में मनुष्यायु का सत्त्व नहीं है। तथा सब जगह अर्थात् इन्द्रिय और काय मार्गणा में प्रकृतियों की उद्वेलना भी होती है।।३४९।।

इन्द्रिय और काय मार्गणा

	सत्त्व योग्य	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व विशेष
एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय, पृथ्वी,जल,वनस्पति	१४५=१४८–३(देवायु, नरकायु,तीर्थंकर)	१	१४५	०	
		२	१४३	२	आहारकद्विक
अग्नि, वायु	१४४=१४५–१(मनुष्यायु)	एकमात्र मिथ्यात्व गुणस्थान			
पंचेन्द्रिय और त्रस	सर्व रचना ओघवत्				

हारदु सम्मं मिस्सं सुरदुग णारयचउक्कमणुकमसो।
उच्चागोदं मणुदुगमुव्वेल्लिज्जंति जीवेहिं।।३५०।।
चदुगदिमिच्छे चउरो इगिविगले छप्पि तिण्णि तेउदुगे।
सिय अत्थि णत्थि सत्तं सपदे उप्पण्णठाणेवि।।३५१।।

अर्थ - आहारकद्विक, सम्यक्त्व, मिश्र, देवद्विक, नारक-चतुष्क, उच्च गोत्र और मनुष्यद्विक - इन १३ प्रकृतियों की क्रम से जीवों के द्वारा उद्वेलना की जाती है।।३५०।।

अर्थ - चारों गति वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के ४, एकेन्द्रिय तथा विकलत्रय में ६, तेजःकाय-वायुकाय में ३ उद्वेलन के योग्य हैं। अपने स्थान में और उत्पन्न स्थान में भी ये किसी तरह सत्त्वरूप हैं और किसी तरह सत्त्वरूप नहीं भी हैं।।३५१।।

उद्वेलना

↓

जिन प्रकृतियों का बंध किया था
पश्चात् उनका उद्वेलन भागहार से अपकर्षण करके
अन्य प्रकृति को प्राप्त कराकर नाश करना

उद्वेलना - प्रकृति और स्वामी

प्रकृति	संख्या	स्वामी
आहारकद्विक, सम्यक्त्व, मिश्र	४	चारों गति वाले मिथ्यादृष्टि जीव
देवद्विक, नरकचतुष्क(नरकद्विक,वैक्रियकद्विक)	६	एकेन्द्रिय, विकलत्रय
उच्चगोत्र, मनुष्यद्विक	३	अग्निकायिक, वायुकायिक
	१३	

उद्वेलना अपेक्षा सत्त्वस्थान

<table>
<tr><td>उत्पन्न स्थान सत्त्व</td><td>पूर्व पर्याय में</td><td rowspan="2">उद्वेलन से या बिना उद्वेलन से..</td><td>..जो सत्त्व है, उसके साथ उत्तर पर्याय में उत्पन्न होते समय का सत्त्व</td></tr>
<tr><td>स्वस्थान सत्त्व</td><td>विवक्षित पर्याय में</td><td>..होने वाला सत्त्व</td></tr>
</table>

उद्वेलना के सत्त्व

जीव	स्थान	उद्वेलना बिना सत्त्व	उद्वेलना होने पर सत्त्व						
			आहारकद्विक	सम्यक्त्व	मिश्र	देवद्विक	नरकचतुष्क	उच्चगोत्र	मनुष्यद्विक
संक्लेश परिणामी चतुर्गति मिथ्यादृष्टि जीव	उत्पन्न	१४५(तीर्थंकर प्रकृति. नरकायु,देवायु बिना)	१४३	१४२	१४१				
	स्वस्थान								
एकेन्द्रिय, विकलत्रय पृथ्वी,जल,वनस्पति	उत्पन्न	१४५	१४३	१४२	१४१			१३३	१३१
	स्वस्थान					१३९	१३५		
अग्निकायिक, वायुकायिक	उत्पन्न	१४४(मनुष्यायु भी नहीं)	१४२	१४१	१४०	१३८	१३४		
	स्वस्थान							१३३	१३१

पुण्णेकारसजोगे साहारयमिस्सगेवि सगुणोघं।
वेगुव्वियमिस्सेवि य णवरि ण माणुसतिरिक्खाऊ।।३५२।।
ओरालमिस्सजोगे ओघं सुरणिरयआउगं णत्थि।
तम्मिस्सवामगे ण हि तित्थं कम्मेवि सगुणोघं।।३५३।।

अर्थ - मनोयोगादि ११ पूर्ण योगों में और आहारकमिश्र योग में अपने-अपने गुणस्थानोंवत् सत्त्व है। इसी प्रकार वैक्रियिक मिश्र योग में भी ओघवत् सत्त्व है। विशेष यह है कि यहाँ पर मनुष्यायु और तिर्यंचायु की सत्ता नहीं हैं।।३५२।।

अर्थ - औदारिकमिश्र योग में देवायु तथा नरकायु के बिना ओघवत् सत्त्व है। औदारिकमिश्र मिथ्यादृष्टि के तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं है। कार्मण काय योग में भी ओघवत् सत्त्व है।।३५३।।

योग मार्गणा

	सत्त्व योग्य	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व विशेष
२ मनो,२ वचन,	१४८	१ से १२	ओघवत्		
२ मनो,२ वचन, औदारिक		१ से १३			
आहारक, आहारकमिश्र	१४६=१४८-२ (नरकायु,तिर्यंचायु)	सिर्फ प्रमत्तसंयत			
वैक्रियक	१४८	१ से ४	ओघवत्		
वैक्रियक मिश्र	१४६=१४८-२ (तिर्यंचायु,मनुष्यायु)	१ व ४	१४६	०	
		२	१४२	४	ओघवत्,नरकायु
औदारिक मिश्र	१४६=१४८-२ (देवायु,नरकायु)	१	१४५	१	तीर्थंकर प्रकृति
		२	१४३	३	ओघवत्
		४	१४६	०	
		१३	८५	६१	ओघ में २ कम
कार्माण	१४८	१ व ४	१४८	०	
		२	१४४	४	ओघवत्,नरकायु
		१३	८५	६३	ओघवत्

वेदादाहारोत्ति य सगुणोघं णवरि संढथीखवगे।
किण्हदुगसुहतिलेस्सियवामेवि ण तित्थयरसत्तं।।३५४।।

अर्थ - वेद मार्गणा से लेकर आहार मार्गणा तक अपने-अपने गुणस्थानवत् सामान्य सत्त्व जानना। विशेषता यह है कि नपुंसकवेद और स्त्रीवेद क्षपकश्रेणी वाले के तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नहीं है। इसी प्रकार कृष्णलेश्या तथा नीललेश्या वाले और पीतादि तीन शुभलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि के तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं है।।३५४।।

वेद मार्गणा

	सत्त्व योग्य	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
पुरुष	१४८	१ से ९ (सवेद भाग तक)	ओघवत्	
स्त्री, नपुंसक	१४८	१ से ९ (सवेद भाग तक)	ओघवत्	
		८ से ऊपर (क्षपक श्रेणी में)	ओघवत् से १(तीर्थंकर*)कम	ओघवत्

*उसी भव से मोक्ष जानेवाले तीर्थंकर के जीव को स्त्री,नपुंसक वेद का उदय नहीं होता है

कषाय मार्गणा

	सत्त्व योग्य	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
क्रोध,मान,माया	१४८	१ से ९(स्व कषाय तक)	ओघवत्	
लोभ	१४८	१ से १०		

ज्ञान मार्गणा

	सत्त्व योग्य	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
कुमति,कुश्रुत,विभंग	१४८	१ व २	ओघवत्	
मति,श्रुत,अवधि		४ से १२		
मन:पर्यय	१४६=१४८-२ (नरकायु,तिर्यंचायु)	६ से १२	ओघवत्	ओघवत् से २ कम
केवल	८५	१३	८५	0
		१४ द्विचरम समय	८५	0
		१४ चरम समय	१३	७२

संयम मार्गणा

	सत्त्व योग्य	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
असंयत	१४८	१ से ४	ओघवत्	
देशसंयत	१४७(नरकायु बिना)	५	१४७	0
सामायिक,छेदोपस्थापना	१४६(नरकायु, तिर्यंचायु बिना)	६ से ९	ओघवत्	ओघवत् से २ कम
परिहारविशुद्धि		६-७		
सूक्ष्मसापराय(क्षपक)	१०२	१०		
यथाख्यात	१४६	११	१४६ या १३८	
		१२ से १४	ओघवत्	

दर्शन मार्गणा

	सत्त्व योग्य	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
चक्षु,अचक्षु	१४८	१ से १२	ओघवत्	
अवधि		४ से १२		
केवल	केवलज्ञानवत्			

लेश्या मार्गणा

	सत्त्व योग्य	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
कृष्ण,नील	१४८	१	१४७	१(तीर्थंकर प्रकृति)
		२ से ४	ओघवत्	
कापोत	१४८	१ से ४		
पीत–पद्म	१४८	१	१४७	१(तीर्थंकर प्रकृति)
		२ से ७	ओघवत्	
शुक्ल	१४८	१	१४७	१(तीर्थंकर प्रकृति)
		२ से १३	ओघवत्	

अभव्वसिद्धे णत्थि हु सत्तं तित्थयरसम्ममिस्साणं।
आहारचउक्कस्सवि असण्णिजीवे ण तित्थयरं।।३५५।।

अर्थ – अभव्य मार्गणा में तीर्थंकर प्रकृति, सम्यक्त्व, मिश्र तथा आहारक चतुष्क का (अर्थात् आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, आहारक बंधन, आहारक संघात)–ये ७ का सत्त्व नहीं है। असंज्ञी जीव के तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं है।।३५५।।

भव्य मार्गणा

	सत्त्व योग्य	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
भव्य	१४८	१ से १४	ओघवत्	
अभव्य	१४१=१४८–७(तीर्थंकर,आहारकचतुष्क,सम्यक्त्व,मिश्र)	१		

सम्यक्त्व मार्गणा

	सत्त्व योग्य	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	व्युच्छित्ति
मिथ्या रुचि	१४८	१	ओघवत्		
सासादन	१४५	२			

मिश्र	१४७	३	ओघवत्		
उपशम	१४८	४ से ११			
क्षयोपशम	१४८	४ से ७			
क्षायिक	१४१=१४८-७	४	१४१	0	२(नरकायु,तिर्यंचायु*)
	(३ दर्शनमोह,	५ से ७	१३९	२(आयु)	
	४ अनंतानुबंधी)	८ से १४	ओघवत्		
	** क्षायिक सम्यक्त्वी तिर्यंच देशसंयत नहीं होता है*				

संज्ञी मार्गणा

	सत्त्व योग्य	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
संज्ञी	१४८	१ से १२	ओघवत्	
असंज्ञी	१४७=१४८-१	१	१४७	0
	(तीर्थंकर प्रकृति)	२	१४५	२(आहारकद्विक)

कम्मेवाणाहारे पयडीणं सत्तमेवमादेसे।

कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण।।३५६।।

अर्थ - अनाहारक मार्गणा में कार्मण काययोगवत् सत्त्व प्रकृतियों की रचना है। इस प्रकार मार्गणा स्थानों में यह प्रकृतियों का बलदेव और वासुदेव से पूजित **श्रीनेमिचन्द्र तीर्थंकरदेव** ने अथवा बलदेव भ्राता तथा माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव से पूजित नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने कहा है।।३५६।।

आहारक मार्गणा

	सत्त्व योग्य	गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
आहारक	१४८	१ से १३	ओघवत्	
अनाहारक	१४८	१,२,४,१३	कार्माण काययोगवत्	
		१४	अयोगकेवलीवत्	

सो मे तिहुवणमहियो सिद्धो बुद्धो णिरंजणो णिच्चो।

दिसदु वरणाणलाहं बुहजणपरिपत्थणं परमसुद्धं।।३५७।।

अर्थ - वे **श्रीनेमिचन्द्र स्वामी** तीन भुवन द्वारा पूजित हैं, सिद्ध हैं, बुद्ध हैं, निरंजन हैं, उनकी बुद्ध ज्ञानी जन प्रार्थना करते हैं, याचना करते हैं की परमशुद्ध हो ऐसा वर दो अर्थात उत्कृष्ट ज्ञान-लाभ मुझको दो, प्राप्त कराओ।।३५७।।

अधिकार ३ - सत्त्वस्थान भंग अधिकार

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
मंगलाचरणपूर्वक कथन प्रतिज्ञा	३५८	१	२१४
स्थान, भंग विधान	३५९	१	२१४
आयु बंधाबंध की अपेक्षा रहित गुणस्थानों में सत्त्व-असत्त्व	३६०-३६१	२	२१५
आयु बंधाबंध की अपेक्षा सहित गुणस्थानों में सत्त्वस्थान व भंग	३६२-३९४	३३	२१६
सत्त्वस्थानाधिकार पढ़ने-सुनने-भाने का फल	३९५	१	२३२
आचार्य स्मरण व चक्रवर्तीपने की समानता	३९६-३९७	२	२३२
कुल गाथाएँ	**३५८-३९७**	४०	

णमिऊण वड्ढमाणं कणयणिहं देवरायपरिपुज्जं।
पयडीण सत्तठाणं ओघे भंगे समं वोच्छं।।३५८।।
आउगबंधाबंधणभेदमकाऊण वण्णणं पढमं।
भेदेण य भंगसमं परूवणं होदि बिदियम्हि।।३५९।।

अर्थ - सुवर्ण के समान वर्ण वाले, देवों के राजा जो इन्द्र उनके द्वारा पूज्य ऐसे श्री वर्धमान तीर्थंकर देव को नमस्कार करके गुणस्थानों में प्रकृतियों के भंग सहित सत्त्वस्थान को कहता हूँ।।३५८।।

अर्थ - प्रकृतियों के सत्त्वस्थान और भंगों का वर्णन दो तरह से हैं। आयु के बंध और अबंध के भेद की अपेक्षा नहीं करके पहला वर्णन, तथा आयु बंध के भेद सहित अर्थात् उसकी अपेक्षा रख के दूसरा वर्णन है।।३५९।।

मंगलाचरण

नमस्कार

↓ किसे?

वर्धमान तीर्थंकर का

↓

कैसे हैं वर्धमान भगवान

- ❊ सुवर्ण समान वर्ण संयुक्त
- ❊ देवों के राजा इन्द्र द्वारा पूज्य

प्रतिज्ञा

↓

ओघ में प्रकृतियों के सत्त्व कहने की

स्थान	भंग
१ काल में १ जीव में संख्या भेद द्वारा प्रकृतियों का समूह	स्थान में प्रकृतियों का पलटना
जैसे:-प्रथम गुण-स्थान में १४८, १४५ की सत्ता	जैसे:-१४५ में किसी को मनुष्यायु की सत्ता, किसी को देवायु की सत्ता

↓

वर्णन के प्रकार

आयु का बंधाबंध अपेक्षा

- सहित
- रहित

सव्वं तिगेग सव्वं चेगं छसु दोण्णि चउसु छद्दस य दुगे।
छस्सगदालं दोसु तिसट्ठी परिहीण पडि सत्तं जाणे।।३६०।।
सासणमिस्से देसे संजददुग सामगेसु णत्थी य।
तित्थाहारं तित्थं णिरयाऊ णिरयतिरियआउअणं।।३६१।।

अर्थ – मिथ्यात्वादि में क्रम से पहले में सब १४८ का, दूसरे में ३ कम का, तीसरे में १ कम का, चौथे में सबका, पाँचवें में १ कम का, प्रमत्तादि छह में २ कम का, उसमें भी उपशम श्रेणी की अपेक्षा अपूर्वकरणादि ४ में ६ कम का, क्षपकश्रेणी की अपेक्षा अपूर्वकरणादि २ में १० कम का, सूक्ष्मसांपराय, क्षीणकषाय – इन २ में क्रम से ४६ और ४७ कम का, सयोगकेवली, अयोगकेवली में ६३ कम का सत्त्व जानना। और 'च' शब्द से अयोगकेवली के अंत समय में १३५ बिना १३ प्रकृतियों का सत्त्व रहता है।।३६०।।

अर्थ - सासादन गुणस्थान में, मिश्र में, देशसंयत में, प्रमत्तसंयतादि २ में, उपशमश्रेणी वाले गुणस्थानों में, क्रम से तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक; तीर्थंकर प्रकृति; नरकायु; नरक-तिर्यंचायु; नरकायु, तिर्यंचायु, अनंतानुबंधी ४ - ये ६ का सत्त्व नहीं हैं। च शब्द से क्षपकश्रेणी में 'दश य दुगे' इस गाथा के अनुसार हीन प्रकृतियाँ जानना।।३६१।।

आयु बंध-अबंध अपेक्षा रहित सामान्य सत्त्व

गुणस्थान		सत्त्व	असत्त्व	असत्त्व विवरण
१		१४८	०	
२		१४५	३	तीर्थंकर प्रकृति,आहारकद्विक
३		१४७	१	तीर्थंकर प्रकृति
४		१४८	०	
५		१४७	१	नरकायु
६-७		१४६	२	नरकायु, तिर्यंचायु
उपशम श्रेणी ८ से ११	द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि	१४६	२	नरकायु, तिर्यंचायु
	अनंतानुबंधी की विसंयोजना सहित	१४२	६	नरकायु,तिर्यंचायु, अनंतानुबंधी ४
	क्षायिक सम्यग्दृष्टि	१३९	९	पूर्वोक्त ६ + ३ दर्शन मोहनीय
८-९ श्रेणी क्षपक		१३८	१०	पूर्वोक्त ९ + देवायु
१० श्रेणी क्षपक		१०२	४६	
१२ श्रेणी क्षपक		१०१	४७	
१३		८५	६३	
१४ द्विचरम		८५	६३	
१४ चरम		१३	१३५	

बिगुणणव चारि अट्ठं मिच्छतिये अयदचउसु चालीसं।
तिय उवसमगे संते चउवीसा होंति पत्तेयं।।३६२।।
चउछक्कदि चउअट्ठं चउछक्क य होंति सत्तठाणाणि।
आउगबंधाबंधे अजोगिअंते तदो भंगा।।३६३।।
पण्णास बार छक्कदि वीससयं अट्ठदाल दुसु दालं।
अडवीसा बासट्ठी अडचउवीसा य अट्ठ चउ अट्ठ।।३६४।।

अर्थ – मिथ्यात्वादि ३ में क्रम से दो गुणित नौ अर्थात् १८, ४ और ८ सत्त्वस्थान हैं। तथा असंयतादि ४ में ४०-४० स्थान हैं। अपूर्वकरणादि ३ उपशम श्रेणी में तथा उपशांत कषाय में प्रत्येक के २४-२४ स्थान हैं। और क्षपक श्रेणी की अपेक्षा अपूर्वकरण आदि अयोगी पर्यंत क्रम से ४, छह का वर्ग अर्थात् ३६, ४, ८, ४, ६ सत्त्वस्थान हैं। इस प्रकार आयु के बंध व अबंध की अपेक्षा से अयोगी पर्यंत गुणस्थानों में सत्त्वस्थान हैं।।३६२-३६३।।

अर्थ – मिथ्यात्वादि ७ में तथा उपशमादि दोनों मिली हुई श्रेणियों में तथा उपशांत कषायादि में अठारह आदि स्थानों के क्रम से ५०, १२, ३६, १२०, ४८, ४०, ४०, २८, ६२, २८, २४, ८, ४, ८ भंग है।।३६४।।

आयु बंध-अबंध अपेक्षा सहित सत्त्वस्थान व भंग

गुणस्थान	१	२	३	४	५	६	७	८		९		१०		११	१२	१३	१४
								उपशामक	क्षपक	उप.	क्षपक	उप.	क्षपक				
स्थान								२४	४	२४	३६	२४	४				
संख्या	१८	४	८	४०	४०	४०	४०		२८		६०		२८	२४	८	४	६
भंग								२४	४	२४	३८	२४	४				
संख्या	५०	१२	३६	१२०	४८	४०	४०		२८		६२		२८	२४	८	४	८

दुतिछस्सत्तट्ठणवेक्करसं सत्तरसमूणवीसमिगिवीसं।
हीणा सव्वे सत्ता मिच्छे बद्धाउगिदरमेगूणं।।३६५।।
तिरियाउगदेवाउगमणदराउगदुगं तहा तित्थं।
देवतिरियाउसहिया हारचउक्कं तु छच्चेदे।।३६६।।
आउदुगहारतित्थं सम्मं मिस्सं च तह य देवदुगं।
णारयछक्कं च तहा णराउउच्चं च मणुवदुगं।।३६७।।जुम्मं।।
उव्वेल्लिददेवदुगे बिदियपदे चारि भंगया एवं।
सपदे पढमो बिदियं सो चेव णरेसु उप्पण्णो।।३६८।।
वेगुव्वअट्ठरहिदे पंचिंदियतिरियजादिसुववण्णे।
सुरछब्बंधे तदियो णरेसु तब्बंधणे तुरियो।।३६९।।जुम्मं।।
णारकछक्कुव्वेल्ले आउगबंधुज्झिदे दुभंगा हु।
इगिविगलेसिगिभंगो तम्मि णरे बिदियमुप्पण्णे।।३७०।।
बिदिये तुरिये पणगे छट्ठे पंचेव सेसगे एक्कं।
बिगचउपणछस्सत्तयठाणे चत्तारि अट्ठगे दोण्णि।।३७१।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि बद्धायु वाले के सब सत्त्व प्रकृतियों में से २, ३, ६, ७, ८, ९, ११, १७, १९, २१ प्रकृतियाँ कम करने से १० सत्त्वस्थान हुए। तथा अबद्धायु वाले के ८ स्थान तक इनमें से १-१ कम करना, और २ स्थान पहले की ही तरह हैं। सब मिलकर २० स्थान होते हैं। २ स्थान समान होने से १८ स्थान ही मिथ्यादृष्टि के हैं।।३६५।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि के स्थानों की कम की गई प्रकृतियाँ क्रम से तिर्यंचायु, देवायु; भुज्यमान-बध्यमान आयु से रहित कोई भी २ आयु और तीर्थंकर प्रकृति ये ३; देवायु, तिर्यंचायु और आहारक चतुष्क – ये ६; कोई भी २ आयु; आहारकचतुष्क; तीर्थंकर प्रकृति ये ७; इन ७ में सम्यक्त्व प्रकृति भी जोड़ने से ८, मिश्र प्रकृति भी जोड़ने से ९, देवद्विक जोड़ने से ११, नरकगति आदि ६ (नरकद्विक, वैक्रियिक शरीर, अंगोपांग, उसी का बंधन तथा संघात) मिलाने से १७; और मनुष्यायु, उच्चगोत्र ये २ जोड़ने से १९; तथा मनुष्यद्विक और भी मिलाने से २१ प्रकृतियाँ होती है।।३६६-३६७।।

अर्थ -(बद्धायु के सातवें स्थान के बाद अबद्धायु का १३६ प्रकृतिरूप सातवां स्थान है।) वहाँ जिसके देवद्विक की उद्वेलना हुई है उसके ४ भंग है। अपने स्थान में (अर्थात् एकेन्द्रिय वा विकलत्रय जीव के अपनी ही पर्याय में) पहला भंग है। तथा वही जीव मरण करके मनुष्य में उत्पन्न हुआ उस जगह दूसरा भंग है। जिसके वैक्रियिक शरीरादि ८ की उद्वेलना हुई ऐसा वही एकेन्द्रिय वा विकलत्रय जीव मरण करके पंचेंद्री तिर्यंच जाति में उत्पन्न हुआ, और वहाँ देवगति आदि ६ प्रकृतियों का बंध करने पर भी आहारक चतुष्क आदि १२ के बिना तीसरा भंग है। वही जीव मरण करके मनुष्य में उत्पन्न हुआ उस जगह चौथा भंग है। इस प्रकार ४ भंग हैं।।३६८-३६९।।

अर्थ – नरकगति आदि ६ प्रकृतियों के उद्वेलना पर आठवें अबद्धायु स्थान में आयुबंध के बदलने से २ भंग होते हैं। एकेन्द्रिय वा विकलत्रय के अपनी ही पर्याय में पहला भंग तथा वही जीव मरणकर मनुष्य में उत्पन्न हुआ वहाँ आयु के बदलने से दूसरा भंग है।।३७०।।

अर्थ – बद्धायु के दूसरे, चौथे, पाँचवें, छठे स्थान में ५-५ ही भंग होते हैं। और शेष (पहले, तीसरे, सातवें, आठवें, नवमें, दसवें) स्थान में १-१ ही भंग है। तथा अबद्धायु के दूसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें स्थान में ४-४ भंग, और आठवें स्थान में २ भंग हैं। और शेष (पहले, तीसरे) स्थान में १-१ भंग है। (इस प्रकार मिथ्यादृष्टि में १८ सत्त्वस्थानों के ५० भंग जानना)।।३७१।।

आयु	बद्धायु	जिसके आगामी आयु का बंध	हुआ हो
	अबद्धायु		न हुआ हो

मिथ्यात्त्व में सत्त्वस्थान व भंग (बद्धायु)

कुल सत्त्वस्थान = १० **कुल भंग स्थान = २६**

सत्त्वस्थान	असत्त्व	असत्त्व विवरण	भंग	भंग विवरण
१४६	२	देवायु, तिर्यंचायु	१*	भुज्यमान – मनुष्यायु, बध्यमान – नरकायु
१४५	३	कोई भी २ आयु, तीर्थंकर प्रकृति	५	निम्न तालिका अनुसार
१४२	६	देवायु,तिर्यंचायु, आहारक चतुष्क	१*	भुज्यमान – मनुष्यायु, बध्यमान – नरकायु
१४१	७	कोई भी २ आयु, तीर्थंकर प्रकृति, आहारक चतुष्क	५	निम्न तालिका अनुसार
१४०	८	उपरोक्त ७ + सम्यक्त्व	५	
१३९	९	उपरोक्त ८ + मिश्र	५	
१३७	११	उपरोक्त ९ + देवद्विक	१**	भुज्यमान – तिर्यंचायु, बध्यमान – मनुष्यायु
१३१	१७	उपरोक्त ११ + नरक षट्क	१**	
१२९	१९	उपरोक्त १७ + मनुष्यायु,उच्चगोत्र	१	भुज्यमान – तिर्यंचायु, बध्यमान – तिर्यंचायु
१२७	२१	उपरोक्त १९ + मनुष्यद्विक	१	

** दूसरे व तीसरे नरक जाने के सन्मुख*

***भुज्यमान–बध्यमान तिर्यंचायु का भंग पुनरुक्त होने से यहाँ नहीं लिया (अबद्धायु देखें)*

अपुनरुक्त आयु भंग विवरण

भुज्यमान	बध्यमान	अपुनरुक्त	पुनरुक्त	समान भंग
मनुष्यायु	नरकायु	१		
मनुष्यायु	तिर्यंचायु	२		
मनुष्यायु	देवायु	३		
मनुष्यायु	मनुष्यायु		√	
तिर्यंचायु	नरकायु	४		
तिर्यंचायु	देवायु	५		
तिर्यंचायु	तिर्यंचायु		√	

तिर्यंचायु	मनुष्यायु			√
नरकायु	तिर्यंचायु			√
नरकायु	मनुष्यायु			√
देवायु	तिर्यंचायु			√
देवायु	मनुष्यायु			√

मिथ्यात्व में सत्त्वस्थान व भंग (अबद्धायु)

कुल सत्त्वस्थान = ८ कुल भंग स्थान = २४

सत्त्वस्थान	असत्त्व	असत्त्व विवरण	भंग	भंग विवरण
१४५	३	नरकायु बिना ३ आयु	१*	भुज्यमान – नरकायु
१४४	४	कोई भी ३ आयु, तीर्थंकर प्रकृति	४	भुज्यमान ४ आयु
१४१	७	नरकायु बिना ३ आयु,आहारक चतुष्क	१*	भुज्यमान – नरकायु
१४०	८	कोई भी ३ आयु, आहारक चतुष्क, तीर्थंकर प्रकृति	४	भुज्यमान ४ आयु
१३९	९	उपरोक्त ८ + सम्यक्त्व	४	
१३८	१०	उपरोक्त ९ + मिश्र	४	
१३६	१२	उपरोक्त १० + देवद्विक	२	भुज्यमान – तिर्यंचायु, भुज्यमान – मनुष्यायु
		उपरोक्त १० + नरकद्विक	२**	
१३०	१८	उपरोक्त १२ + नरक षट्क	२	
१२९	१९	उपरोक्त १८ + उच्चगोत्र		पुनरुक्त स्थान भुज्यमान – तिर्यंचायु
१२७	२१	उपरोक्त १९ + मनुष्यद्विक		
** दूसरे व तीसरे नरक को प्राप्त*				
***वैक्रियक अष्टक की उद्वेलना होकर पंचेन्द्रिय में उत्पन्न होकर देवद्विक और वैक्रियक ४ का बंध हुआ, पर नरकद्विक का नहीं, इसलिये १३६ का सत्त्व*				

सत्ततिगं आसाणे मिस्से तिगसत्तसत्तएयारा।
परिहीण सव्वसत्तं बद्धस्सियरस्य एगूणं।।३७२।।
तित्थाहारचउक्कं अण्णदराउगदुगं च सत्तेदे।
हारचउक्कं वज्जिय तिण्णि य केइं समुद्दिट्ठं।।३७३।।

तित्थण्णदराउदुगं तिण्णिवि अणसहिय तह य सत्तं च।
हारचउक्के सहिया ते चेव य होंति एयारा।।३७४।।
साणे पण इंगि भंगा बद्धस्सियरस्स चारि दो चेव।
मिस्से पणपण भंगा बद्धस्सियरस्स चउ चऊ णेया।।३७५।।

अर्थ - सासादन में सर्व सत्त्व में से ७ हीन और ३ हीन ऐसे सत्त्वस्थान हैं। और मिश्र में ३ हीन, ७ हीन, ७ हीन, ११ हीन - ऐसे ४ स्थान बद्धायु की अपेक्षा हैं। और अबद्धायु की अपेक्षा उनमें से १-१ बध्यमान आयु से हीन स्थान है।।३७२।।

अर्थ - तीर्थंकर प्रकृति, आहारक चतुष्क, भुज्यमान-बध्यमान आयु के बिना कोई २ आयु- ये ७ प्रकृतियाँ हीन है। तथा इनमें से आहारक चतुष्क से रहित ३ ही प्रकृतियाँ हीन हैं - ऐसा कई आचार्य कहते हैं।।३७३।।

अर्थ - तीर्थंकर प्रकति, भुज्यमान और बध्यमान आयु के बिना कोई २ आयु - ये ३; तथा ये तीनों और अनंतानुबंधी ४ - ये ७, अथवा वे तीनों तथा आहारक चतुष्क - ये ७, और ये सब मिलकर ११ प्रकृतियाँ हीन हैं।।३७४।।

अर्थ - सासादन में बद्धायु स्थानों के ५ और १, तथा अबद्धायु स्थानों के ४ और २ भंग हैं। मिश्र में बद्धायु स्थान के ५-५ भंग और अबद्धायु स्थान के ४-४ भंग हैं।।३७५।।

सासादन में सत्त्वस्थान व भंग (बद्धायु)

कुल सत्त्वस्थान = २ **कुल भंग स्थान = ६**

सत्त्वस्थान	असत्त्व	असत्त्व विवरण	भंग	भंग विवरण
१४१	७	कोई २ आयु, तीर्थंकर प्रकृति, आहारक चतुष्क	५	आयु भंग की तालिका अनुसार
१४५	३	नरकायु, तिर्यंचायु, तीर्थंकर प्रकृति	१	भुज्यमान - मनुष्यायु, बध्यमान - देवायु*
**देवायु का बंध करके, उपशम सम्यग्दृष्टि मनुष्य आहारक चतुष्क का बंध करके मरते समय सासादन को प्राप्त हुआ*				

सासादन में आहारक चतुष्क सत्त्व

- कई आचार्य सत्त्व कहते हैं, उस अपेक्षा १४५ का भी स्थान
- कई आचार्य सत्त्व का अभाव कहते हैं, उस अपेक्षा १४१ का एक ही स्थान

सासादन में सत्त्वस्थान व भंग (अबद्धायु)

कुल सत्त्वस्थान = २ | कुल भंग स्थान = ६

सत्त्वस्थान	असत्त्व	असत्त्व विवरण	भंग	भंग विवरण
१४०	८	कोई भी ३ आयु, तीर्थंकर प्रकृति, आहारक चतुष्क	४	भुज्यमान ४ आयु
१४४	४	३ आयु, तीर्थंकर प्रकृति	२	भुज्यमान-मनुष्यायु, भुज्यमान-देवायु

मिश्र में सत्त्वस्थान व भंग (बद्धायु)

कुल सत्त्वस्थान = ४ | कुल भंग स्थान = २०

सत्त्वस्थान	असत्त्व	असत्त्व विवरण	भंग	भंग विवरण
१४५	३	कोई २ आयु, तीर्थंकर प्रकृति	५	आयु भंग की तालिका अनुसार
१४१	७	उपरोक्त ३ + आहारक चतुष्क	५	
१४१	७	कोई २ आयु, तीर्थंकर प्रकृति, अनंतानुबंधीचतुष्क	५	
१३७	११	उपरोक्त ७ + आहारक चतुष्क	५	

मिश्र में सत्त्वस्थान व भंग (अबद्धायु)

कुल सत्त्वस्थान = ४ | कुल भंग स्थान = १६

सत्त्वस्थान	असत्त्व	असत्त्व विवरण	भंग	भंग विवरण
१४४	४	कोई भी ३ आयु, तीर्थंकर प्रकृति	४	भुज्यमान ४ आयु
१४०	८	उपरोक्त ४ + आहारक चतुष्क	४	
१४०	८	कोई भी ३ आयु, तीर्थंकर प्रकृति, अनंतानुबंधीचतुष्क	४	
१३६	१२	उपरोक्त ८ + आहारक चतुष्क	४	

मिश्र में अनंतानुबंधी का सत्त्व कैसे नहीं?

१	असंयतादि ४ गुणस्थानों में कहीं पर ३ करण द्वारा अनंतानुबंधी का विसंयोजन किया
२	पश्चात् दर्शन मोहनीय की क्षपणा के सन्मुख तो न हुआ
३	और संक्लेश परिणाम करके मिश्रमोहनीय के उदय से मिश्र गुणस्थानवर्ती हुआ
४	उसके अनंतानुबंधी का सत्त्व नहीं पाया जाता
५	नवीन बंध से सत्त्व होता है, वहाँ नवीन बंध का तो सासादन में ही व्युच्छेद हुआ

दुग छक्क सत्त अट्ठं णवरहियं तह य चउपडिं किच्चा।
णभमिगि चउ पण हीणं बद्धस्सियरस्स एगूणं।।३७६।।
तित्थाहारे सहियं तित्थूणं अह य हारचउहीणं।
तित्थाहारचउक्केणूणं इति चउपडिट्ठाणं।।३७७।।
अण्णदरआउसहिया तिरियाऊ ते च तह य अणसहिया।
मिच्छं मिस्सं सम्मं कमेण खविदे हवे ठाणा।।३७८।।
आदिमपंचट्ठाणे दुगदुगभंगा हवंति बद्धस्स।
इयरस्सवि णादव्वा तिगतिगइगि तिण्णितिण्णेव।।३७९।।
बिदियस्सवि पणठाणे पण पण तिग तिण्ण चारि बद्धस्स।
इयरस्स होंति णेया चउचउइगिचारि चत्तारि।।३८०।।
आदिल्लदससु सरिसा भंगेण य तिदियदसयठाणाणि।
बिदियस्स चउत्थस्स य दसठाणाणि य समा होंति।।३८१।।

अर्थ – २, ६, ७, ८, ९ प्रकृतियों से रहित स्थान बराबर लिखना, और इनकी नीचे-नीचे ४ पंक्ति करनी। उन ४ पंक्तियों में क्रम से शून्य, १, ४, और ५ हर एक कोठे में से घटाना। इस प्रकार बद्धायु के २० सत्त्वस्थान हुए। और इन्हीं २० स्थानों में १-१ स्थान की प्रकृतियों में १-१ और भी कम करने से अबद्धायु के भी २० स्थान हुए।।३७६।।

अर्थ – तीर्थंकर प्रकृति-आहारक चतुष्क सहित; तीर्थंकर प्रकृति रहित; आहारक चतुष्क रहित; तीर्थंकर-आहारक चतुष्क रहित। इस प्रकार ४ पंक्तिरूप स्थान हैं।।३७७।।

अर्थ – तिर्यंचायु से भिन्न कोई एक आयु और तिर्यंचायु ये २ प्रकृति के साथ अनंतानुबंधी ४ – इस प्रकार ६, मिथ्यात्व सहित ७, मिश्र सहित ८, सम्यक्त्व प्रकृति सहित ९ – इन प्रकृतियों को क्रम से कम करने पर स्थान होते हैं।।३७८।।

अर्थ – पहली पंक्ति के बद्धायु संबंधी ५ स्थानों में २-२ भंग हैं। इससे दूसरे अबद्धायु के पाँच स्थानों में क्रम से ३, ३, १, ३, ३ भंग है।।३७९।।

अर्थ – दूसरी पंक्ति के भी बद्धायु के ५ स्थानों में क्रम से ५, ५, ३, ३, ४ भंग हैं। तथा दूसरे अबद्धायु के ५ स्थानों में क्रम से ४, ४, १, ४, ४ भंग हैं।।३८०।।

अर्थ – पहली पंक्ति के १० स्थानों के भंगों के समान तीसरी पंक्ति के १० स्थानों के भंग होते हैं, तथा दूसरी पंक्ति के १० स्थानों के भंगों के समान चौथी पंक्ति के १० स्थानों के भंग हैं।।३८१।।

असंयत में सत्त्वस्थान व भंग (बद्धायु)

कुल सत्त्वस्थान = २० **कुल भंग स्थान = ६०**

पंक्ति	घटाई प्रकृतियाँ ⟶	२ आयु	+अनंतानुबंधी४	+मिथ्यात्व	+मिश्र	+सम्यक्त्व	कुल
१	तीर्थंकर प्रकृति,	१४६	१४२	१४१	१४०	१३९	
	आहारक सहित	२	२	२	२	२	१०
२	तीर्थंकर प्रकृति रहित	१४५	१४१	१४०	१३९	१३८	
		५	५	३	३	४	२०
३	आहारक रहित	१४२	१३८	१३७	१३६	१३५	
		२	२	२	२	२	१०
४	तीर्थंकर प्रकृति,	१४१	१३७	१३६	१३५	१३४	
	आहारक रहित	५	५	३	३	४	२०

असंयत में सत्त्वस्थान व भंग (अबद्धायु)

कुल सत्त्वस्थान = २० **कुल भंग स्थान = ६०**

पंक्ति	घटाई प्रकृतियाँ ⟶	३ आयु	+अनंतानुबंधी४	+मिथ्यात्व	+मिश्र	+सम्यक्त्व	कुल
१	तीर्थंकर प्रकृति,	१४५	१४१	१४०	१३९	१३८	
	आहारक सहित	३	३	१	३	३	१३
२	तीर्थंकर प्रकृति रहित	१४४	१४०	१३९	१३८	१३७	
		४	४	१	४	४	१७
३	आहारक रहित	१४१	१३७	१३६	१३५	१३४	
		३	३	१	३	३	१३
४	तीर्थंकर प्रकृति,	१४०	१३६	१३५	१३४	१३३	
	आहारक रहित	४	४	१	४	४	१७

असंयत में भंगों का विवरण

	भंग	विवरण
बद्धायु	२	मनुष्यायु, देवायु; मनुष्यायु, नरकायु[१]
	५	मिथ्यात्ववत् आयु के ५ अपुनरुक्त भंग
	३	भुज्यमान – मनुष्यायु, बध्यमान – ३ आयु[२]
	४	उपरोक्त ३ + भुज्यमान – तिर्यंचायु, बध्यमान – देवायु[३]
अबद्धायु	३	भुज्यमान – मनुष्यायु, देवायु, नरकायु[१]
	१	भुज्यमान – मनुष्यायु[२]
	४	भुज्यमान – ४ आयु

१ तिर्यंच को तीर्थंकर प्रकृत्ति की सत्ता नहीं होती हैं
२ दर्शन मोहनीय का क्षय का प्रारंभ सिर्फ मनुष्य ही करता है
३ पूर्व में तिर्यंचायु का बंधकर सम्यक्त्व को प्राप्तकर भोगभूमिया तिर्यंचों में उत्पन्न हो देवायु का बंध किया हो

देसतियेसुवि एवं भंगा एक्केक्क देसगस्स पुणो।
पडिरासि बिदियतुरियस्सादीबिदियम्मि दो भंगा।।३८२।।

अर्थ – देशसंयतादि ३ गुणस्थानों में भी असंयतवत् ४०-४० सत्त्वस्थान है, और सब स्थानों में १-१ भंग है। परंतु देशसंयत में दूसरी २ पंक्ति तथा चौथी २(बद्धायु-अबद्धायुरूप) पंक्तियों के पहले और दूसरे स्थान में २-२ भंग है।।३८२।।

देशसंयत में सत्त्वस्थान व भंग (बद्धायु-अबद्धायु)

कुल सत्त्वस्थान = असंयतवत् ४० कुल भंग स्थान = ४८

पंक्ति	घटाई प्रकृतियाँ ⟶		२ आयु	+अनंतानुबंधी४	+मिथ्यात्व	+मिश्र	+सम्यक्त्व	कुल
१	तीर्थंकर प्रकृति, आहारक सहित	बद्धायु	१४६	१४२	१४१	१४०	१३९	
			१	१	१	१	१	५
		अबद्धायु	१४५	१४१	१४०	१३९	१३८	
			१	१	१	१	१	५
२	तीर्थंकर प्रकृति रहित	बद्धायु	१४५	१४१	१४०	१३९	१३८	
			२	२	१	१	१	७
		अबद्धायु	१४४	१४०	१३९	१३८	१३७	
			२	२	१	१	१	७
३	आहारक रहित	बद्धायु	१४२	१३८	१३७	१३६	१३५	
			१	१	१	१	१	५
		अबद्धायु	१४१	१३७	१३६	१३५	१३४	
			१	१	१	१	१	५
४	तीर्थंकर प्रकृति, आहारक रहित	बद्धायु	१४१	१३७	१३६	१३५	१३४	
			२	२	१	१	१	७
		अबद्धायु	१४०	१३६	१३५	१३४	१३३	
			२	२	१	१	१	७

देशसंयत में भंगों का विवरण

	भंग	विवरण	
बद्धायु	१	भुज्यमान - मनुष्यायु, बध्यमान - देवायु	देशसंयत में ३ आयु के बंध वाले को अणुव्रत-महाव्रत नहीं होते हैं
अबद्धायु		भुज्यमान - मनुष्यायु	
बद्धायु	२	भुज्यमान-मनुष्यायु या तिर्यंचायु,बध्यमान-देवायु	
अबद्धायु		भुज्यमान - मनुष्यायु, तिर्यंचायु	

प्रमत्त-अप्रमत्त में सत्त्व व भंग (बद्धायु-अबद्धायु)

कुल सत्त्वस्थान = असंयतवत् ४०-४०

प्रत्येक का १ भंग, कुल भंग = ४०-४०

दुगछक्कतिण्णिवग्गेणूणापुव्वस्स चउपडिं किच्चा।
णभमिगिचउपणहीणं बद्धस्सियरस्स एगूणं।।३८३।।
णिरयतिरियाउ दोण्णिवि पढमकसायाणि दंसणतियाणि।
हीणा एदे णेया भंगे एक्केक्कगा होंति।।३८४।।
एवं तिसु उवसमगे खवगापुव्वम्मि दसहिं परिहीणं।
सव्वं चउपडि किच्चा णभमेक्कं चारि पण हीणं।।३८५।।

अर्थ - उपशमश्रेणी के अपूर्वकरण गुणस्थान में २, ६, ३ का वर्ग ९ प्रकृति कम जो ३ स्थान हैं, उनकी ४ पंक्तियाँ करके पंक्ति के क्रम से शून्य, १, ४, ५ हीन करे तो बद्धायु के स्थान होते हैं। और इतर अर्थात् अबद्धायु के स्थान उनमें से भी १-१ प्रकृति कम करने पर होते हैं।।३८३।।

अर्थ - नरकायु और तिर्यंचायु - ये २ और पहली (अनंतानुबंधी) ४ कषाय इस तरह ६ तथा ३ दर्शनमोहनीय ये सब मिलाकर ९, इस प्रकार इन प्रकृतियों से हीन ३ स्थान जानने। और इनके भंग १-१ ही होते हैं।।३८४।।

अर्थ - इस उपशमक अपूर्वकरण की तरह उपशमक अनिवृत्तिकरणादि ३ गुणस्थानों में सत्त्वस्थान और भंग २४-२४ है। तथा क्षपक अपूर्वकरण में १० प्रकृतियों रहित एक स्थान की ४ पंक्तियाँ करके क्रम से पहले की तरह शून्य, १, ४, ५, प्रकृतियाँ हीन करना चाहिये। इस तरह ४ स्थान और ४ भंग होते हैं।।३८५।।

उपशम श्रेणी ४ गुणस्थानों में सत्त्व व भंग

कुल सत्त्वस्थान = २४ **कुल भंग स्थान = २४**

पंक्ति	घटाई प्रकृतियाँ ⟶	बद्धायु अपेक्षा २ आयु अबद्धायु अपेक्षा ३ आयु		+ अनंतानुबंधी ४		+ दर्शनमोह त्रिक	
		बद्धायु	अबद्धायु	बद्धायु	अबद्धायु	बद्धायु	अबद्धायु
१	तीर्थंकर,आहारक सहित	१४६	१४५	१४२	१४१	१३९	१३८
२	तीर्थंकर रहित	१४५	१४४	१४१	१४०	१३८	१३७
३	आहारक रहित	१४२	१४१	१३८	१३७	१३५	१३४
४	तीर्थंकर,आहारक रहित	१४१	१४०	१३७	१३६	१३४	१३३
इन सभी स्थानों में १-१ ही भंग है, बद्धायु में भुज्यमान-मनुष्यायु, बध्यमान - देवायु; अबद्धायु में भुज्यमान-मनुष्यायु							

क्षपक श्रेणी अपूर्वकरण में सत्त्व व भंग

कुल सत्त्वस्थान = ४ **कुल भंग स्थान = ४**

पंक्ति	घटाई प्रकृतियाँ ⟶	१०= ३ आयु + अनंतानुबंधी ४ + दर्शनमोह त्रिक	
१	तीर्थंकर,आहारक सहित	१३८	इन सभी स्थानों में १-१ ही भंग है - भुज्यमान-मनुष्यायु
२	तीर्थंकर रहित	१३७	
३	आहारक रहित	१३४	
४	तीर्थंकर,आहारक रहित	१३३	

एदे सत्तट्ठाणा अणियट्टिस्सवि पुणोवि खविदेवि।
सोलस अट्ठेक्केक्कं छक्केक्कं एक्कमेक्क तहा।।३८६।।
भंगा एक्केक्का पुण णउंसयक्खविदचउसु ठाणेसु।
बिदियतुरियेसु दो दो भंगा तित्थयरहीणेसु।।३८७।।
थीपुरिसोदयचडिदे पुव्वं संढं खवेदि थी अत्थि।
संढस्सुदये पुव्वं थीखविदं संढमत्थित्ति।।३८८।।

अर्थ - ये जो क्षपक अपूर्वकरण में ४ स्थान कहे हैं, वे क्षपक अनिवृत्तिकरण में भी जानना। और इसी प्रकार १६, ८, १, १, ६, १, १, १ प्रकृति हीन करने से ८ स्थान अन्य भी होते हैं।।३८६।।

अर्थ - इन (३६) स्थानों में १-१ भंग है, परंतु जहाँ पर नपुंसक वेद का क्षय है ऐसे चारों स्थानों में तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता रहित दूसरी और चौथी पंक्ति के २ स्थानों में २-२ भंग हैं।।३८७।।

अर्थ - जो जीव स्त्रीवेद और पुरुषवेद के उदय सहित क्षपक श्रेणी चढ़ते हैं वे पहले नपुंसकवेद का क्षय करते हैं, स्त्रीवेद की तो सत्ता वहाँ पर मौजूद रहती है। और नपुंसकवेद के उदय सहित जो क्षपकश्रेणी चढ़ते हैं वे पहले स्त्रीवेद का क्षय करते है, उनके पूर्व कहे २ स्थानों में नपुंसक वेद की सत्ता रहती है। (इस प्रकार २ स्थानों के २-२ भंग है)।।३८८।।

क्षपक श्रेणी अनिवृत्तिकरण में सत्त्व व भंग

कुल सत्त्वस्थान = ३६ कुल भंग स्थान = ३८

पंक्ति	घटाई प्रकृतियाँ ⟶	१०	+१६	+८	+१	+१	+६	+१	+१	+१
१	तीर्थंकर,आहारक सहित	१३८	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३
२	तीर्थंकर रहित	१३७	१२१	११३	**११२***	१११	१०५	१०४	१०३	१०२
३	आहारक रहित	१३४	११८	११०	१०९	१०८	१०२	१०१	१००	९९
४	तीर्थंकर,आहारक रहित	१३३	११७	१०९	**१०८***	१०७	१०१	१००	९९	९८
* चिन्ह से चिन्हित स्थानों में २-२ भंग है, शेष सभी स्थानों में १-१ ही भंग है										

क्षपक अनिवृत्तिकरण में घटाई प्रकृतियाँ

	घटाई प्रकृतियों के नाम
१०	मनुष्यायु छोड़कर ३ आयु, अनंतानुबंधी चतुष्क, दर्शनमोहत्रिक
१६	स्त्यानगृद्धित्रिक, नरकद्विक, तिर्यंचद्विक, एकेंद्रिय, विकलत्रिक, सूक्ष्म, साधारण, स्थावर, आतप, उद्योत
८	अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४
१	नपुंसकवेद अथवा स्त्रीवेद
१	स्त्रीवेद अथवा नपुंसकवेद
६	६ नोकषाय - हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा
१	पुरुषवेद
१	संज्वलन क्रोध
१	संज्वलन मान

क्षपक अनिवृत्तिकरण में २ भंग का विवरण

स्त्री या पुरुष वेद उदय

↓

* नपुंसकवेद क्षय
* स्त्रीवेद सत्त्व

नपुंसकवेद उदय

↓

* स्त्रीवेद क्षय
* नपुंसकवेद सत्त्व

अणियट्टिचरिमठाणा चत्तारिवि एक्कहीण सुहुमस्स।
ते इगिदोण्णिविहीणं खीणस्सवि होंति ठाणाणि।।३८९।।
ते चोद्दसपरिहीणा जोगिस्स अजोगिचरिमगेवि पुणो।
बावत्तरिमडसट्ठिं दुसु दुसु हीणेसु दुगदुगा भंगा।।३९०।।

अर्थ – अनिवृत्तिकरण के अंत के जो ४ स्थान में से १ संज्वलन माया कषाय हीन करने पर सूक्ष्म सांपराय के ४ स्थान होते हैं। और सूक्ष्म सांपराय के चारों स्थानों में से १ संज्वलन लोभ घटाने पर क्षीण मोह के उपान्त्य समय में ४ स्थान होते हैं। तथा इन्हीं चारों स्थानों में निद्रा, प्रचला – ये २ हीन करने से अंत के समय में ४ स्थान होते हैं।।३८९।।

अर्थ – क्षीणकषाय के अंत के ४ स्थानों में १४ प्रकृतियाँ हीन करने से ८५ आदि ४ स्थान सयोग केवली के होते हैं। और अयोग केवली के अंत के २ समय शेष रहने तक वे ४ स्थान ही हैं। सयोग केवली के ४ स्थानों में से पहले और दूसरे स्थान में ७२ हीन करने तथा तीसरे चौथे स्थान में ६८ घटाने पर ४ स्थान होते हैं। यहाँ पर पुनरुक्तपना होने से २ स्थान ही समझना। और अंत के २ समयों में २-२ स्थान हैं वहाँ पर २-२ भंग हैं।।३९०।।

क्षपक सूक्ष्म सांपराय, क्षीण मोह, सयोग और अयोग केवली में सत्त्व व भंग

पंक्ति		क्षपक सूक्ष्म सांपराय	क्षीण मोह		सयोग केवली	अयोग केवली	
			द्विचरम समय	चरम समय		द्विचरम समय	चरम समय
	कुल सत्त्वस्थान	४	८		४	६	
	कुल भंग स्थान	४	८		४	८	
	घटाई प्रकृतियाँ ⟶	+१	+१	+२	+१४	+0	+७२/६८
	प्रकृतियों के नाम	संज्वलन माया	संज्वलन लोभ	निद्रा,प्रचला	५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अंतराय		७२= १४वें गुणस्थान के द्विचरम समय में व्युच्छिन्न ६८=उपरोक्त आहारक ४ बिना
१	तीर्थंकर,आहारक सहित	१०२	१०१	९९	८५	८५	१३*
२	तीर्थंकर रहित	१०१	१००	९८	८४	८४	१२+
३	आहारक रहित	९८	९७	९५	८१	८१	१३*
४	तीर्थंकर,आहारक रहित	९७	९६	९४	८०	८०	१२+
	* चिन्ह और + चिन्ह से चिन्हित स्थान समान होने से १-१ ही स्थान है और इन स्थानों में २-२ भंग है शेष सभी स्थानों में १-१ ही भंग है						

अयोग केवली में २ भंग का विवरण

साता का उदय व सत्त्व

असाता का उदय व सत्त्व

णत्थि अणं उवसमगे खवगापुव्वं खवित्तु अट्ठा य।
पच्छा सोलादीणं खवणं इदि केइं णिद्दिट्ठं।।३९१।।
अणियट्टिगुणट्ठाणे मायारहिदं च ठाणमिच्छंति।
ठाणा भंगपमाणा केई एवं परूवेंति।।३९२।।

अर्थ – श्री कनकनंदी सिद्धांतचक्रवर्ती के संप्रदाय (पक्ष) में ऐसा कहते है कि उपशम श्रेणी वाले ४ गुणस्थानों में अनंतानुबंधी ४ का सत्त्व नहीं है। अतः २४ स्थानों में से बद्धायु और अबद्धायु दोनों के ८ स्थान कम करने पर १६ स्थान ही हैं। और क्षपक अनिवृत्तिकरण में पहले मध्य की ८ कषायों का क्षय करके पीछे १६ आदि प्रकृतियों का क्षय कई आचार्य कहते हैं।।३९१।।

अर्थ – कोई आचार्य अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में माया कषाय रहित ४ स्थान हैं, ऐसा मानते हैं। इस प्रकार कई आचार्य स्थान और भंगो का प्रमाण प्ररुपण करते हैं।।३९२।।

उपशम श्रेणी के ४ गुणस्थान में श्री कनकनंदी सिद्धांतचक्रवर्ती का मत

१	उपशम श्रेणी में अनंतानुबंधी ४ का सत्त्व हैं ही नहीं
२	इसलिए बद्धायु और अबद्धायु दोनों के मिलकर ८ स्थान नहीं हैं
३	अतः कुल १६ स्थान व भंग है

क्षपक श्रेणी सबंधी सत्त्व - द्वितीय मत

अनिवृत्तिकरण में –
❊ पहले ८ कषाय का क्षय होता है, पश्चात् १६ आदि का
अनिवृत्तिकरण में –
❊ माया कषाय रहित भी ४ स्थान और है ❊ अतः कुल स्थान पूर्वोक्त ३६+४ = ४० स्थान व भंग है
प्रत्यक्ष केवली, श्रुतकेवली के अभाव से एक निश्चय होता नहीं, इसलिए यहाँ अनेक प्रकार से कथन किया है

अट्ठारह चउ अट्ठं मिच्छतिये उवरि चाल चउठाणे।
तिसु उवसमगे संते सोलस सोलस हवे ठाणा।।३९३।।
पण्णेकारं छक्कदि बीससयं अट्ठदाल दुसु तालं।
वीसडतिण्णं वीसं सोलट्ठ य चारि अट्ठेव।।३९४।।

अर्थ – मिथ्यात्वादि ३ में (पूर्वोक्त प्रकार) १८, ४, ८ स्थान हैं। ऊपर के असंयतादि ४ में ४०–

४० स्थान हैं। तथा उपशमश्रेणी के ३ में तथा उपशांत मोह – इन ४ में १६-१६ स्थान हैं।।३९३।।

अर्थ – मिथ्यात्वादि स्थानों के क्रम से ५०, ११ (सासादन में १२ भंग, उनमें से अबद्धायु स्थान में देव अपर्याप्त भेद दूर करने पर ११ भंग होते हैं। यहाँ जिसके देवायु का बंध हुआ हो, ऐसे द्वितियोपशम सम्यग्दृष्टि जीव का सासादन में मरण नहीं होता – ऐसा कई आचार्य कहते हैं, उनकी अपेक्षा ११ भंग है) ३६, १२०, ४८, ४०, ४० दोनों श्रेणियों के मिलकर २०, ५८, २०, १६, ८, ४, ८ भंग हैं।।३९४।।

दो मत अनुसार गुणस्थानों में कुल सत्त्व स्थान व भंग

गुणस्थान	१	२	३	४	५	६	७	८		९		१०		११	१२	१३	१४
								उपशामक	क्षपक	उप.	क्षपक	उप.	क्षपक				
प्रथम पक्ष																	
स्थान	१८	४	८	४०	४०	४०	४०	२४	४	२४	३६	२४	४	२४	८	४	६
भंग	५०	१२	३६	१२०	४८	४०	४०	२४	४	२४	३८	२४	४	२४	८	४	८
द्वितीय पक्ष																	
स्थान	१८	४	८	४०	४०	४०	४०	**१६**	४	**१६**	**४०**	**१६**	४	**१६**	८	४	६
भंग	५०	**११**	३६	१२०	४८	४०	४०	**१६**	४	**१६**	**४२**	१६	४	१६	८	४	८

सत्त्वस्थान पढ़ने-सुनने-भाने का फल

एवं सत्तट्ठाणं सवित्थरं वण्णियं मए सम्मं।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ णिव्वुदिं सोक्खं।।३९५।।

अर्थ – इस प्रकार सत्त्वस्थान का विस्तार सहित मैंने वर्णन किया है। **सम्यक्** प्रकार से जो इसे पढ़े, सुने और भाये वह मोक्ष सुख को प्राप्त होता है।।३९५।।

वरइंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयलसिद्धंतं।
सिरिकणयणंदिगुरुणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं।।३९६।।

अर्थ – आचार्यों में श्रेष्ठ ऐसे श्रीइन्द्रनंदि गुरु के पास समस्त सिद्धांत को सुनकर कनकनंदि सिद्धांतचक्रवर्ती गुरु ने इस सत्त्वस्थान को सम्यक् रीति से कहा है।।३९६।।

जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइचक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं।।३९७।।

अर्थ – जैसे चक्रवर्ती ने भरतक्षेत्र के छह खंडों को अपने चक्ररत्न से निर्विघ्न पूर्वक साधे हैं अर्थात् अपने वश में किये हैं, उसी प्रकार मैंने भी बुद्धिरूप चक्र से (१ जीवस्थान, २ क्षुद्रकबंध, ३ बंधस्वामी, ४ वेदनाखंड, ५ वर्गणाखंड और ६ महाबंध के भेद से) छहखंडरूप सिद्धांतशास्त्र सम्यक् रूप से साधा हैं।।३९७।।

अधिकार ४ - त्रिचूलिका अधिकार

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
मंगलाचरणपूर्वक कथन प्रतिज्ञा	३९८	१	२३३
प्रथम नवप्रश्न चूलिका	३९९-४०७	९	२३३
द्वितीय पंचभाागहार चूलिका	४०८-४३५	२८	२३९
तृतीय दशकरण चूलिका	४३६-४५०	१५	२५०
कुल गाथाएँ	**३९८-४५०**	**५३**	

असहायजिणवरिंदे असहायपराक्कमे महावीरे।
पणमिय सिरसा वोच्छं तिचूलियं सुणह एयमणा।।३९८।।

अर्थ - इन्द्रियादि की सहायता रहित है ज्ञानादि शक्तिरूप पराक्रम जिनका ऐसे महावीर गुरु और शेष वृषभादि जिनवरेन्द्र तीर्थंकर को मस्तक झुकाकर नमस्कार करके त्रिचूलिका अधिकार कहूँगा। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो।।३९८।।

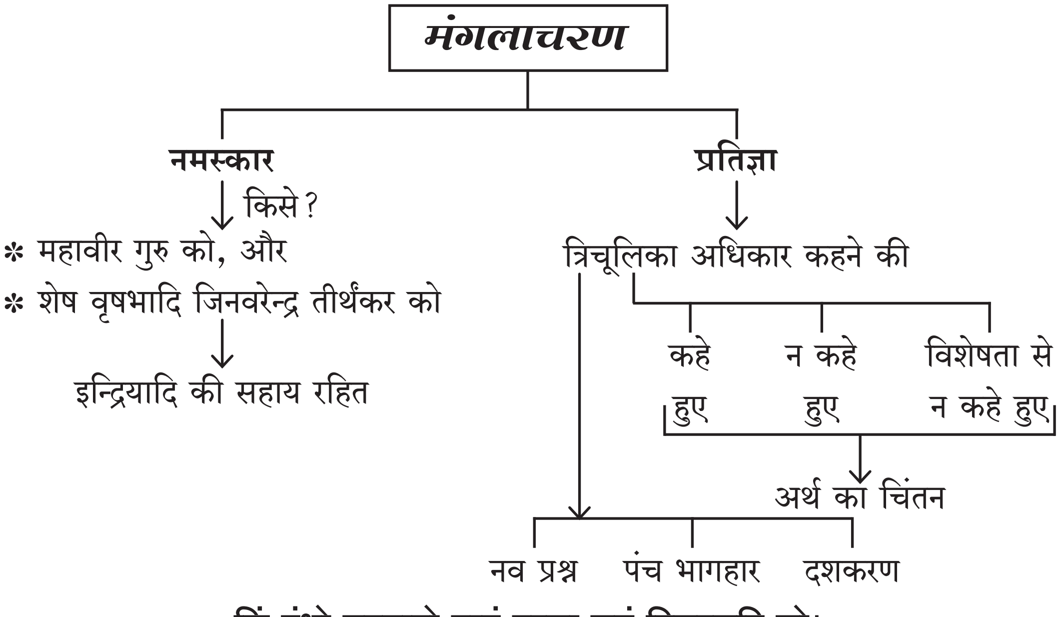

किं बंधो उदयादो पुव्वं पच्छा समं विणस्सदि सो।
सपरोभयोदयो वा णिरंतरो सांतरो उभयो।।३९९।।

अर्थ - बंध का अभाव(व्युच्छित्ति), उदय व्युच्छित्ति के पहले, पश्चात्, साथ में किन (प्रकृतियों) का होता हैं? किनका बंध अपने, पर के, दोनों के उदय में होता हैं? किनका बंध निरंतर, सांतर, उभय रूप होता है ?।।३९९।।

नवप्रश्न चूलिका

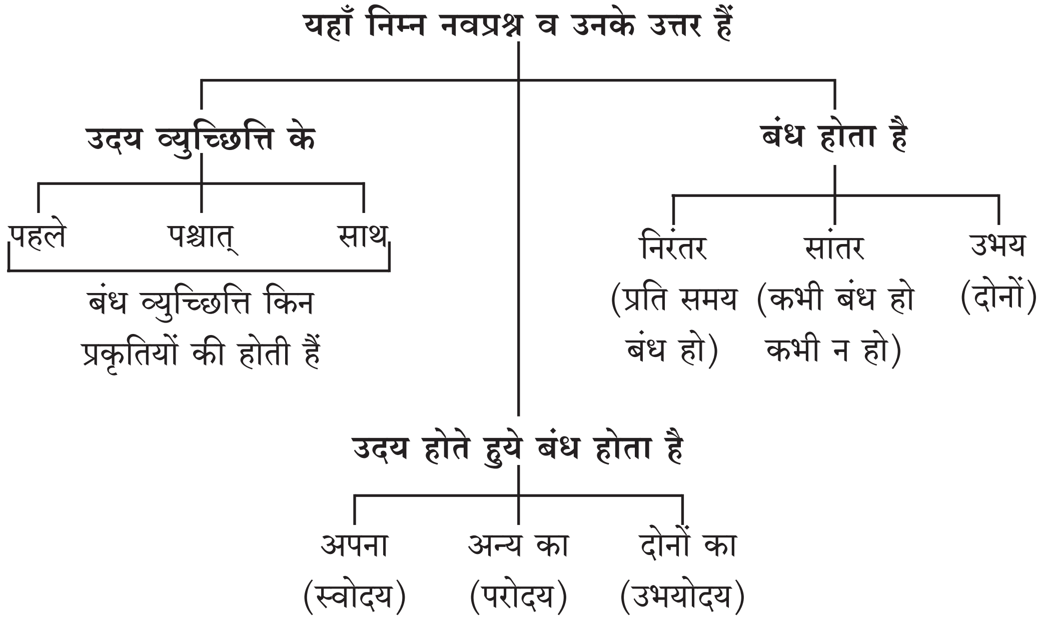

देवचउक्काहारदुगज्जसदेवाउगाण सो पच्छा।
मिच्छत्तादावाणं णराणुथावरचउक्काणं।।४००।।
पण्णरकसायभयदुगहस्सदुचउजाइपुरिसवेदाणं।
सममेक्कत्तीसाणं सेसिगिसीदाण पुव्वं तु।।४०१।।जुम्मं।।

अर्थ - देव चतुष्क, आहारकद्विक, अयशःकीर्ति और देवायु - इन ८ प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति उदय व्युच्छित्ति के पश्चात् होती है। और मिथ्यात्व, आतप, मनुष्यानुपूर्वी, स्थावरादि ४, संज्वलन लोभ के बिना १५ कषाय, भयद्विक, हास्यद्विक, एकेन्द्रिय ४ जाति और पुरुषवेद - इन ३१ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति और बंध व्युच्छित्ति एक काल में होती है। तथा शेष ८१ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति के पहले बंध व्युच्छित्ति होती है।।४००-४०१।।

प्रथम ३ प्रश्न

बंध व्युच्छिति उदय व्युच्छिति के.....

पश्चात् (८)
- देवायु
- देवद्विक,वैक्रियिकद्विक
- आहारकद्विक
- अयशःकीर्ति

साथ (३१)
- मिथ्यात्व
- संज्वलन लोभ के बिना १५ कषाय
- भय,जुगुप्सा,हास्य,रति
- पुरुषवेद
- एकेन्द्रिय ४ जाति
- सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त
- स्थावर,आतप
- मनुष्यानुपूर्वी

पहले (८१)
- शेष ८१ प्रकृतियाँ

उदय व्युच्छिन्ति के पश्चात् बंध व्युच्छिन्ति - गुणस्थान

प्रकृति (८)	संख्या	उदय व्युच्छित्ति गुणस्थान	बंध व्युच्छित्ति गुणस्थान
देवायु	१	४	७
देवद्विक,वैक्रियिकद्विक	४	४	८ का छठा भाग
आहारकद्विक	२	६	
अयशःकीर्ति	१	४	६

उदय व्युच्छिन्ति के साथ बंध व्युच्छिन्ति - गुणस्थान

प्रकृति (३१)	संख्या	गुणस्थान
मिथ्यात्व,एकेन्द्रिय ४ जाति,सूक्ष्म,साधारण,अपर्याप्त,स्थावर,आतप	१०	१
अनंतानुबंधी ४	४	२
अप्रत्याख्यानावरण ४, मनुष्यगत्यानुपूर्वी	५	४
प्रत्याख्यानावरण ४	४	५
हास्य, रति, भय, जुगुप्सा	४	८
पुरुष वेद, संज्वलन क्रोध-मान-माया	४	९

उदय व्युच्छिन्ति के पहले बंध व्युच्छिन्ति - गुणस्थान

प्रकृति (८१)	संख्या	बंध व्यु.	उदय व्यु.
नरकायु, नरकद्विक	३	१	४
असंप्राप्तासृपाटिका संहनन	१		७

नपुंसक वेद	१	१	९
हुण्डक संस्थान	१		१३
तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय	३	२	४
तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, उद्योत, नीच गोत्र	४		५
स्त्यानगृद्धित्रिक	३		६
अर्द्धनाराच-कीलक संहनन	२		७
स्त्री वेद	१		९
वज्रनाराच-नाराच संहनन	२		११
न्यग्रोधादि बीच के ४ संस्थान,दु:स्वर,अ. विहायोगति	५		१३
मनुष्यायु,मनुष्यगति , औदारिकद्विक, वज्रऋषभनाराच	६	४	१४
अरति, शोक	२	६	८
अस्थिर, अशुभ	२		१३
असाता वेदनीय	१		१४
निद्रा, प्रचला	२	८	१२
तैजस-कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान,वर्णादि ४, अगुरुलघु ४, प्र. विहायोगति, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुस्वर, निर्माण	१७		१३
पंचेन्द्रियजाति,त्रसत्रिक, सुभग,आदेय, तीर्थंकर प्रकृति	७		१४
संज्वलन लोभ	१	९	१०
ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अंतराय ५	१४	१०	१२
यशःकीर्ति, उच्च गोत्र	२		१४
साता वेदनीय	१	१३	१४

सुरणिरयाऊ तित्थं वेगुव्वियछक्कहारमिदि जेसिं।
परउदयेण य बंधो मिच्छं सुहुमस्स घादीओ।।४०२।।
तेजदुगं वण्णचऊ थिरसुहजुगलगुरुणिमिणधुवउदया।
सोदयबंधा सेसा बासीदा उभयबंधाओ।।४०३।।जुम्मं।।

अर्थ - देवायु, नरकायु, तीर्थंकर प्रकृति, वैक्रियिक षट्क, आहरकद्विक - इन ११ प्रकृतियों का पर के उदय से बंध है। मिथ्यात्व प्रकृति, सूक्ष्मसांपराय में व्युच्छिन्न घातिया कर्मों की १४ तथा ध्रुवोदयी १२ (तैजसद्विक, वर्णादि ४, स्थिर और शुभ का युगल, अगुरुलघु, निर्माण) - ये सब मिलकर २७ प्रकृतियों का अपने उदय होने पर ही बंध होता है। तथा शेष रही ८२ उभयबंधी है।।४०२-४०३।।

दूसरे ३ प्रश्न

स्वोदय, परोदय, उभयोदय - बंधी प्रकृतियाँ

परोदय बंधी (११)	स्वोदय बंधी (२७)	उभयोदय बंधी (८२)
अपना उदय होते हुये बंध नहीं होता	अपना उदय होते हुये ही बंध होता	अपना उदय होने पर भी, न होने पर भी बंध होता है
— देवायु, नरकायु — देवद्विक, नरकद्विक — वैक्रियिकद्विक — आहारकद्विक, तीर्थंकर	* मिथ्यात्व * १४=५ ज्ञानावरण,४ दर्शनावरण,५ अंतराय * **१२ ध्रुवोदयी** तैजस, कार्मण; वर्णादि ४; स्थिर-अस्थिर शुभ-अशुभ; अगुरुलघु, निर्माण	शेष ८२ प्रकृतियाँ

सत्तेताल धुवावि य तित्थाहाराउगा णिरंतरगा।
णिरयदुजाइचउक्कं संहदिसंठाणपणपणगं।।४०४।।
दुग्गमणादावदुगं थावरदसगं असादसंढित्थि।
अरदीसोगं चेदे सांतरगा होंति चोत्तीसा।।४०५।।जुम्मं।।
सुरणरतिरियोरालियवेगुव्वियदुगपसत्थगदिवज्जं।
परघाददुसमचउरं पंचिंदिय तसदसं सादं।।४०६।।
हस्सरदिपुरिसगोददु सप्पडिवक्खम्मि सांतरा होंति।
णट्ठे पुण पडिवक्खे णिरंतरा होंति बत्तीसा।।४०७।।जुम्मं।।

अर्थ - ज्ञानावरणादि पूर्वोक्त ४७ ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ, तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक, ४ आयु - ये ५४ प्रकृतियाँ निरंतर बंधी हैं। और नरकद्विक, एकेन्द्रिय ४ जाति, अंतिम ५ संहनन और ५ संस्थान, अप्रशस्त विहायोगति, आतप-उद्योत, स्थावरादि १०, असाता वेदनीय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, अरति, शोक - ये ३४ प्रकृतियाँ सांतर बंधी हैं।।४०४-४०५।।

अर्थ - देवगति-मनुष्यगति-तिर्यंचगति-औदारिकशरीर-वैक्रियिकशरीर - इन पाँचों का जोड़ा, प्रशस्त विहायोगति, वज्रवृषभनाराच, परघातद्विक, समचतुरस्र, पंचेन्द्रिय, त्रसादि १०, साता वेदनीय, हास्य, रति, पुरुषवेद, गोत्र २ - ये ३२ प्रकृतियाँ प्रतिपक्षी(विरोधी) के रहते हुए सांतर बंधी हैं। और विरोधी प्रकृतियों के नाश होने पर निरंतर बंधी हैं, अर्थात् उभयबंधी हैं।।४०६-४०७।।

तीसरे ३ प्रश्न

सांतर, निरंतर, उभय- बंधी प्रकृतियाँ

निरंतर बंधी(५४)
✻ बंध योग्य होने पर प्रति समय बंध

४७ ध्रुवबंधी	व्युच्छित्ति के पहले,प्रति समय बंध
तीर्थंकर, आहारद्विक	बंध प्रारंभ होने के पश्चात् जहाँ तक व्युच्छत्ति नहीं,स्व गुणस्थान में बंध
४ आयु	जिस काल में बंध होने योग्य,प्रति समय बंध

सांतर बंधी(३४)
✻किसी समय बंध होता, किसी समय नहीं होता

- असाता
- स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति,शोक
- नरकद्विक, एकेन्द्रिय ४ जाति
- अंतिम ५ संस्थान, अंतिम ५ संहनन
- स्थावर दशक, अ. विहायोगति
- आतप, उद्योत

उभय बंधी(३२)
प्रतिपक्षी होते हुये सांतर बंधी, प्रतिपक्षी जहाँ नहीं वहाँ निरंतर बंधी

- साता, गोत्र २, पुरुषवेद, हास्य,रति
- देवद्विक, मनुष्यद्विक, तिर्यंचद्विक
- औदारिकद्विक, वैक्रियिकद्विक
- वज्रवृषभनाराच, समचतुरस्र
- पंचेन्द्रिय, त्रस दशक, प्र. विहायोगति
- परघात, उच्छ्वास

सप्रतिपक्षी-निष्प्रतिपक्षी

सप्रतिपक्षी
↓
स्वजाति की अन्य प्रकृति का जब बंध पाया जाये
↓
वहाँ सांतर बंधी

निष्प्रतिपक्षी
↓
मात्र अपना ही बंध पाया जाये
↓
वहाँ निरंतर बंधी

उभयबंधी प्रकृतियों के सप्रतिपक्ष-निष्प्रतिपक्ष विवरण

प्रकृति	सप्रतिपक्ष कहाँ	निष्प्रतिपक्ष कहाँ
देवद्विक	असंयत तक	देशविरत से अपूर्वकरण तक, भोगभूमि में
मनुष्यद्विक		आनत स्वर्ग से ऊपर
तिर्यंचद्विक, नीच गोत्र		सातवें नरक में मिथ्यात्व-सासादन में, अग्निकायिक, वायुकायिक में
औदारिकद्विक		नरकगति, देवगति
वैक्रियिकद्विक		मनुष्यगति, तिर्यंचगति, असंयतादि में, भोगभूमि में
परघात, उच्छ्वास	मिथ्यात्व में (अपर्याप्त अपेक्षा)	सासादन से अपूर्वकरण के छठे भाग तक
पंचेन्द्रिय, त्रस चतुष्क	मिथ्यात्व में	
समचतुरस्र,प्र.विहायोगति सुभग, सुस्वर, आदेय	मिथ्यात्व, सासादन में	मिश्र से अपूर्वकरण के छठे भाग तक
वज्रवृषभनाराच		मिश्र, अविरत में
स्थिर, शुभ,	प्रमत्तसंयत तक	अप्रमत्त से अपूर्वकरण के छठे भाग तक
यशःकीर्ति		अप्रमत्त से सूक्ष्मसांपराय तक
साता वेदनीय		अप्रमत्त से सयोगकेवली तक
हास्य, रति		अप्रमत्त से अपूर्वकरण के अंत समय तक
पुरुषवेद	सासादन तक	मिश्र से अनिवृत्तिकरण के सवेद भाग तक
उच्च गोत्र		मिश्र से सूक्ष्मसांपराय तक, भोगभूमि में

नवप्रश्न चूलिका समाप्त

पंचभागहार चूलिका

मंगलाचरण

जत्थ वरणेमिचंदो महणेण विणा सुणिम्मलो जादो।
सो अभयणंदिणिम्मलसुओवही हरउ पावमलं।।४०८।।

अर्थ - जिसमें उत्कृष्ट नेमिचन्द्र, मथन बिना ही निर्मल हुआ, वह अभयनंदी का निर्मल शास्त्रसमुद्र है, वह जीवों के पापमल दूर करो।।४०८।।

उव्वेलणविज्झादो अधापवत्तो गुणो य सव्वो य।
संकमदि जेहिं कम्मं परिणामवसेण जीवाणं।।४०९।।

अर्थ – जिन भागहारों द्वारा शुभकर्म और अशुभकर्म, संसारी जीवों के अपने परिणामों के वश से संक्रमण करते है – अन्य प्रकृतिरूप परिणमते हैं वे भागहार ५ प्रकार के हैं – उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुणसंक्रमण और सर्वसंक्रमण।।४०९।।

संक्रमण

अन्य प्रकृतिरूप परिणमन

५ प्रकार के संक्रमण का स्वरूप

नाम	स्वरूप
उद्वेलन	अधःप्रवृत्तकरण आदि तीन करणरूप परिणामों के बिना ही जो प्रवृते
विध्यात	मंद विशुद्धता वाले जीव के स्थिति-अनुभाग घटानेरूप कांडक और गुणश्रेणी परिणाम के हो जाने के पश्चात् जो प्रवृते
अधःप्रवृत्त	बंधरूप हुई प्रकृतियों के, अपने बंध में पायी जाने वाली प्रकृतियों में, परमाणुओं का जो संक्रमण होना
गुण	जहाँ प्रतिसमय श्रेणी अर्थात् पंक्तिरूप असंख्यात-असंख्यातगुणा परमाणु अन्य प्रकृतिरूप होकर परिणमते हैं
सर्व	अंतिम कांडक की अंतिम फालि अर्थात् सर्व प्रदेशों में से आखिर में जो अन्य प्रकृतिरूप न हुए हो, ऐसे सब परमाणुओं का अन्य प्रकृतिरूप होना

भागहार

जिसके द्वारा शुभाशुभ कर्म जीव के परिणामों के वश से संक्रमण करते हैं

उद्वेलन | विध्यात | अधःप्रवृत्त | गुणसंक्रमण | सर्वसंक्रमण

भागहार का स्वरूप

विवक्षित संक्रमित परमाणुओं का प्रमाण	= संक्रमित प्रकृति के परमाणु / भागहार
उद्वेलनरूप से संक्रमित परमाणुओं का प्रमाण	= उद्वेलन प्रकृति के परमाणु / उद्वेलन भागहार
भागहार का प्रमाण गाथा ४३० से ४३५ पृष्ठ क्र. – से जानें	

बंधे संकामिज्जदि णोबंधे णत्थि मूलपयडीणं।
दंसणचरित्तमोहे आउचउक्के ण संकमणं।।४१०।।

अर्थ – जिस प्रकृति का बंध हो, उसमें अन्य प्रकृति संक्रमित होती है। जिसका बंध नहीं उसमें संक्रमण नहीं होता। मूल प्रकृतियों का परस्पर संक्रमण नहीं होता। दर्शन मोह और चारित्र मोह में परस्पर संक्रमण नहीं है। ४ आयु का परस्पर संक्रमण नहीं होता है।।४१०।।

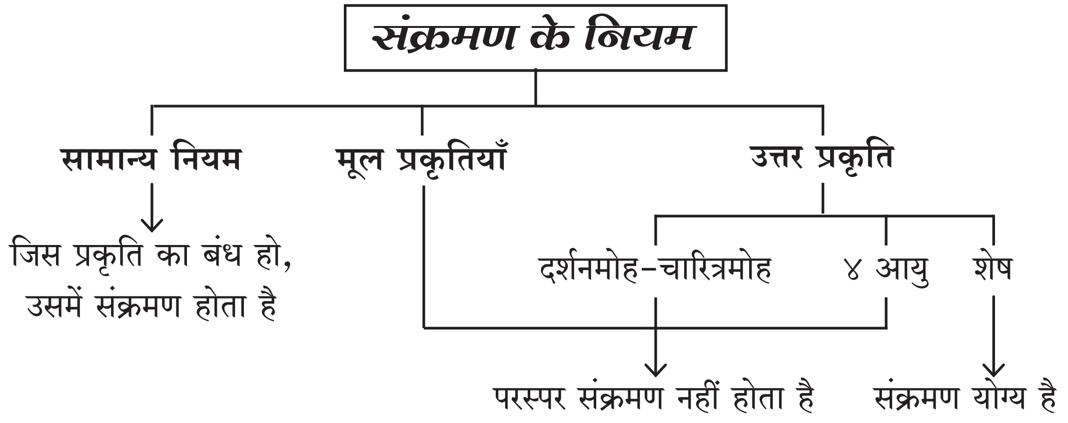

सम्मं मिच्छं मिस्सं सगुणट्ठाणम्मि णेव संकमदि।
सासणमिस्से णियमा दंसणतियसंकमो णत्थि।।४११।।

अर्थ – सम्यक्त्व प्रकृति, मिथ्यात्व, मिश्र अपने-अपने गुणस्थानों में संक्रमण नहीं करती। सासादन तथा मिश्र में नियम से दर्शनमोहनीय त्रिक का संक्रमण नहीं है।।४११।।

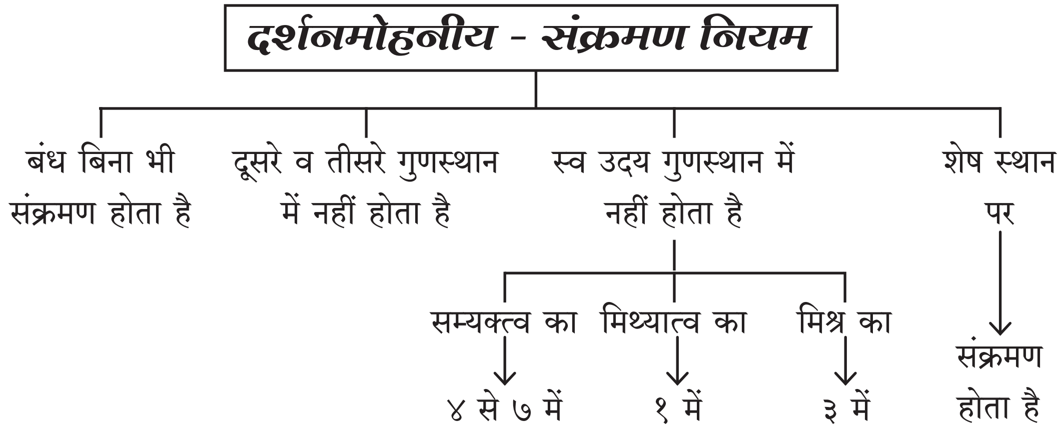

मिच्छे सम्मिस्साणं अधापवत्तो मुहुत्तअंतोत्ति।
उव्वेलणं तु तत्तो दुचरिमकंडोत्ति णियमेण।।४१२।।

अर्थ – मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होने पर सम्यक्त्व प्रकृति और मिश्र का अंतर्मुहूर्त तक अधःप्रवृत्त संक्रमण होता है। और उद्वेलन संक्रमण द्विचरम कांडक तक नियम से होता है।।४१२।।

मिथ्यात्व गुणस्थान में दर्शनमोहनीय का संक्रमण

मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति का संक्रमण

कौन सा संक्रमण	अध:प्रवृत्त	उद्वेलन	गुण	सर्व
कहाँ पर	प्रथम अंतर्मुहूर्त तक	द्विचरम कांडक तक	चरम कांडक	अंतिम फाली
किस रूप	फाली रूप	कांडक रूप	कांडक रूप	फाली रूप

फाली-कांडक का स्वरूप

फाली	एक समय →	में संक्रमण हो
कांडक	अनेक समय समुदाय →	में संक्रमण हो

उव्वेलणपयडीणं गुणं तु चरिमम्हि कंडये णियमा।
चरिमे फालिम्मि पुणो सव्वं च य होदि संकमणं।।४१३।।

अर्थ – उद्वेलन प्रकृतियों का अंतिम कांडक में नियम से गुणसंक्रमण होता है और अंतिम फालि में सर्वसंक्रमण होता है।।४१३।।

उद्वेलन प्रकृतियाँ संक्रमण विधि

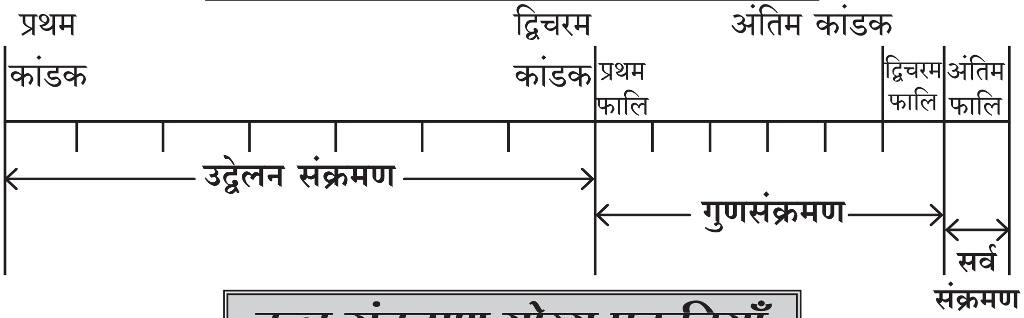

कुल संक्रमण योग्य प्रकृतियाँ

१२२ = १२०+२ = बंध योग्य प्रकृतियाँ + सम्यक्त्व + मिश्र

तिरियदुजाइचउक्कं आदावुज्जोवथावरं सुहुमं।
साहारणं च एदे तिरियेयारं मुणेयव्वा।।४१४।।

अर्थ – तिर्यंचद्विक, एकेन्द्रियादि ४ जाति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण – ये तिर्यक् ११ प्रकृतियों का उदय तिर्यंचों में ही होता है। इसलिए इनका तिर्यक् एकादश ऐसा नाम जानना।।४१४।।

तिर्यक् एकादश (११)

- तिर्यंचद्विक
- एकेन्द्रियादि ४ जाति
- सूक्ष्म
- साधारण
- स्थावर
- आतप
- उद्योत

आहारदुगं सम्मं मिस्सं देवदुगणारयचउक्कं।
उच्चं मणुदुगमेदे तेरस उव्वेल्लणा पयडी।।४१५।।

अर्थ – आहारकद्विक, सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्र, देवद्विक, नरक चतुष्क, उच्चगोत्र, और मनुष्यद्विक – ये १३ उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं।।४१५।।

उद्वेलना की १३ प्रकृतियाँ

- आहारकद्विक
- सम्यकत्व
  - मिश्र
- देवद्विक
- नरकद्विक
  - वैक्रियकद्विक
- उच्चगोत्र
  - मनुष्यद्विक

बंधे अधापवत्तो विज्झादं सत्तमोत्ति हु अबंधे।
एत्तो गुणो अबंधे पयडीणं अप्पसत्थाणं।।४१६।।

अर्थ – प्रकृतियों के बंध होने पर अपनी-अपनी बंध व्युच्छित्ति पर्यंत अध:प्रवृत्तसंक्रमण होता है। बंध की व्युच्छित्ति होने पर असंयत से लेकर अप्रमत्त पर्यंत विध्यात संक्रमण होता है। अप्रमत्त से आगे उपशांत कषाय पर्यंत बंध रहित अप्रशस्त प्रकृतियों का गुणसंक्रमण होता है।।४१६।।

कौन-सा संक्रमण कब हैं ?

संक्रमण	कब होता हैं
अध:प्रवृत्त	बंध होते हुये, अपनी बंध व्युच्छित्ति तक
विध्यात	४ से ७ गुणस्थान तक, बंध व्युच्छित्ति होने पर
गुण	* ८ से ११ गुणस्थान तक, बंध रहित अप्रशस्त प्रकृतियों का * प्रथमोपशम सम्यकत्व के ग्रहण के प्रथम समय से अंतर्मूहुर्त तक * मिथ्यात्व के क्षय काल में अंतिम कांडक के द्विचरम फाली तक
सर्व	क्षय की अंतिम फाली में
उद्वेलन	उद्वेलन काल में

तिरियेयारुव्वेल्लणपयडी संजलणलोहसम्ममिस्सूणा।
मोहा थीणतिगं च य बावण्णे सव्वसंकमणं।।४१७।।

अर्थ – पूर्वकथित तिर्यक् एकादश (११), उद्वेलन प्रकृतियाँ (१३), संज्वलन लोभ-सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्र – इन ३ के बिना मोहनीय की २५, और स्त्यानगृद्धित्रिक – इन ५२ प्रकृतियों में सर्वसंक्रमण होता है।।४१७।।

सर्व संक्रमण की ५२ प्रकृतियाँ

- तिर्यक् एकादश (११)
- उद्वेलना प्रकृतियाँ (१३)
- मोहनीय की २५
  - दर्शनमोहनीय की मिथ्यात्व
  - चारित्र मोहनीय की संज्वलन लोभ बिना २४
- स्त्यानगृद्धित्रिक

उगुदालतीससत्तयवीसे एक्केक्कबारतिचउक्के।
इगिचदुदुगतिगतिगचदुपणदुगदुगतिण्णि संकमणा।।४१८।।

अर्थ – ३९ प्रकृतियों में, ३० में, ७ में, २० में, १ में, १ में, १२ में, ४ में, ४ में, ४ में, क्रम से १, ४, २, २, ३, ३, ४, ५, २, २, और ३ संक्रमण होते हैं।।४१८।।

कितनी प्रकृतियों में कितने संक्रमण संभव

प्रकृतियों की संख्या	३९	३०	७	२०	१	१	१२	४	४	४	कुल=१२२
संक्रमणों की संख्या	१	४	२	३	३	४	५	२	२	३	

सुहुमस्स बंधघादी सादं संजलणलोहपंचिंदी।
तेजदुसमवण्णचऊ अगुरुगपरघादउस्सासं।।४१९।।
सत्थगदी तसदसयं णिमिणुगुदाले अधापवत्तो दु।
थीणतिबारकसाया संढित्थी अरइ सोगो य।।४२०।।
तिरियेयारं तीसे उव्वेलणहीणचारि संकमणा।
णिद्दा पयला असुहं वण्णचउक्कं च उवघादे।।४२१।।
सत्तण्हं गुणसंकममधापवत्तो य दुक्खमसुहगदी।
संहदि संठाणदसं णीचापुण्णथिरछक्कं च।।४२२।।
वीसण्हं विज्झादं अधापवत्तो गुणो य मिच्छत्ते।
विज्झादगुणे सव्वं सम्मे विज्झादपरिहीणा।।४२३।।
सम्मविहीणुव्वेल्ले पंचेव य तत्थ होंति संकमणा।
संजलणतिये पुरिसे अधापवत्तो य सव्वो य।।४२४।।
ओरालदुगे वज्जे तित्थे विज्झादधापवत्तो य।
हस्सरदिभयजुगुच्छे अधापवत्तो गुणो सव्वो।।४२५।।

अर्थ – सूक्ष्म सांपराय में बंध व्युच्छिन्न होने वाली घातिया कर्मों की १४ प्रकृतियाँ, साता वेदनीय, संज्वलन लोभ, पंचेन्द्रिय, तैजसद्विक, समचतुरस्र, वर्णादि ४, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास,

प्रशस्त विहायोगति, त्रस दशक और निर्माण – इन ३९ प्रकृतियों में एक अधःप्रवृत्त संक्रमण है। स्त्यानगृद्धित्रिक, १२ कषाय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, अरति, शोक और तिर्यक् एकादश – इन ३० प्रकृतियों में उद्वेलनसंक्रमण के बिना ४ संक्रमण पाये जाते हैं। निद्रा, प्रचला, अशुभ वर्णादि ४ और उपघात – इन ७ प्रकृतियों के गुणसंक्रमण और अधःप्रवृत्त संक्रमण – ये २ संक्रमण पाये जाते हैं। असाता वेदनीय, अप्रशस्त विहायोगति, अंतिम ५ संहनन और अंतिम ५ संस्थान, नीचगोत्र, अपर्याप्त और अस्थिरादि ६ – ये २० प्रकृतियों के विध्यातसंक्रमण, अधःप्रवृत्तसंक्रमण और गुणसंक्रमण ये ३ संक्रमण पाये जाते हैं। मिथ्यात्व प्रकृति में विध्यात, गुण और सर्व संक्रमण – ये ३ संक्रमण हैं। तथा सम्यक्त्व प्रकृति में विध्यातसंक्रमण के बिना ४ संक्रमण पाये जाते हैं।।४१९-४२३।।

अर्थ – सम्यक्त्व प्रकृति के बिना १२ उद्वेलन प्रकृतियों में पाँचों ही संक्रमण होते हैं। और संज्वलन क्रोधादि ३ तथा पुरुषवेद – इन चारों में अधःप्रवृत्त और सर्व संक्रमण ये २ ही संक्रमण पाये जाते हैं।।४२४।।

अर्थ – औदारिकद्विक, वज्रवृषभनाराच, तीर्थंकर प्रकृति – इन चारों में विध्यातसंक्रमण और अधःप्रवृत्त ये २ संक्रमण हैं। तथा हास्य, रति, भय और जुगुप्सा – इन ४ प्रकृतियों में अधःप्रवृत्त, गुण और सर्व संक्रमण ये ३ संक्रमण पाये जाते हैं।।४२५।।

कर्म प्रकृतियों में संक्रमण

संख्या		प्रकृतियों का विवरण	उद्वेलन	विध्यात	अधःप्रवृत्त	गुण	सर्व
३९[१]	५	ज्ञानावरण			√		
	४	दर्शनावरण			√		
	५	अंतराय			√		
	१	साता वेदनीय			√		
	१	संज्वलन लोभ			√		
	१	पंचेन्द्रिय			√		
	२	तैजस-कार्माण शरीर			√		
	१	समचतुरस्र संस्थान			√		
	४	वर्णादि			√		
	१	अगुरुलघु			√		
	१	परघात			√		
	१	उच्छ्वास			√		
	१	प्रशस्त विहायोगति			√		
	१०	त्रस दशक			√		
	१	निर्माण			√		

संख्या		प्रकृतियों का विवरण	उद्वेलन	विध्यात	अध:प्रवृत्त	गुण	सर्व
३०	३	स्त्यानगृद्धित्रिक		√	√	√	√
	१२	संज्वलन बिना शेष १२ कषाय		√	√	√	√
	२	स्त्रीवेद, नपुंसकवेद		√	√	√	√
	२	अरति, शोक		√	√	√	√
	११	तिर्यक् एकादश		√	√	√	√
७	२	निद्रा, प्रचला			√	√	
	४	अशुभ वर्णादि			√	√	
	१	उपघात			√	√	
२०	१	असाता वेदनीय		√	√	√	
	१	अप्रशस्त विहायोगति		√	√	√	
	५	वज्रवृषभनाराच बिना ५ संहनन		√	√	√	
	५	समचतुरस्र बिना ५ संस्थान		√	√	√	
	१	नीचगोत्र		√	√	√	
	१	अपर्याप्त		√	√	√	
	६	अस्थिर, अशुभ, दुस्वर, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति,		√	√	√	
१		मिथ्यात्व		√		√	√
१		सम्यक्त्व प्रकृति	√		√	√	√
१२		सम्यक्त्व प्रकृति बिना उद्वेलन की १२ प्रकृतियाँ	√	√	√	√	√
४[२]		संज्वलन क्रोध,मान,माया, पुरुषवेद			√		√
४[३]		तीर्थंकर प्रकृति, औदारिकद्विक वज्रवृषभनाराच संहनन,		√	√		
४		हास्य, रति, भय, जुगुप्सा			√	√	√
कुल			१३	६७	१२१	७५	५२

१	*३९ प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति अप्रमत्त गुणस्थान के नीचे न होने से इनमें विध्यात संक्रमण नहीं है। तथा उद्वेलन संक्रमण, गुणसंक्रमण एवं सर्वसंक्रमणरूप प्रकृतियों में ये प्रकृतियाँ नहीं कही*
२	*४ प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति होने पर भी गुणसंक्रमण की प्राप्ति नहीं है*
३	*४ प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं, इसलिये इनमें गुणसंक्रमण नहीं है*

सम्मत्तूणुव्वेलणथीणतितीसं च दुक्खवीसं च।
वज्जोरालदुतित्थं मिच्छं विज्झादसत्तट्ठी।।४२६।।

अर्थ – सम्यक्त्व प्रकृति बिना उद्वेलन प्रकृतियाँ १२, स्त्यानगृद्धित्रिक आदि ३०, असाता वेदनीय आदि २०, वज्रवृषभनाराच, औदारिकद्विक, तीर्थंकर प्रकृति, मिथ्यात्व – ये ६७ प्रकृतियाँ विध्यातसंक्रमण वाली हैं।।४२६।।

विध्यात संक्रमण की ६७ प्रकृतियाँ

- स्त्यानगृद्धित्रिक आदि ३० प्रकृतियाँ
- असाता वेदनीय आदि २० प्रकृतियाँ
- सम्यक्त्व प्रकृति बिना १२ उद्वेलन प्रकृतियाँ
- मिथ्यात्व
- तीर्थंकर प्रकृति, औदारिकद्विक वज्रवृषभनाराच

मिच्छूणिगिवीससयं अधापवत्तस्स होंति पयडीओ।
सुहुमस्स बंधघादिप्पहुदी उगुदालुरालदुगतित्थं।।४२७।।
वज्जं पुंसंजलणति ऊणा गुणसंकमस्स पयडीओ।
पणहत्तरिसंखाओ पयडीणियमं विजाणाहि।।४२८।।जुम्मं।।

अर्थ – मिथ्यात्व के बिना १२१ प्रकृतियाँ अध:प्रवृत्तसंक्रमण की होती हैं। और सूक्ष्म सांपराय में बंध होने वाली घातिया कर्मों की १४ प्रकृतियों को आदि लेकर ३९ प्रकृतियाँ, औदारिकद्विक, तीर्थंकर प्रकृति, वज्रवृषभनाराच, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोधादि ३ – इन ४७ प्रकृतियों को कम करके शेष ७५ प्रकृतियाँ गुणसंक्रमण की हैं। इस प्रकार प्रकृतियों में संक्रमण का नियम जानना।।४२७-४२८।।

अध:प्रवृत्त संक्रमण की १२१ प्रकृतियाँ

१२१ = १२२-१ = कुल संक्रमण योग्य प्रकृतियाँ-मिथ्यात्व

गुण संक्रमण की ७५ प्रकृतियाँ

- विध्यात संक्रमण की ६७ में तीर्थंकर, औदारिकद्विक, वज्रवृषभनाराच छोड़कर शेष **६३** प्रकृतियाँ
- निद्रा, प्रचला, अशुभ वर्णादि, उपघात = **७**
- सम्यक्त्व प्रकृति = **१**
- हास्य, रति, भय, जुगुप्सा = **४**

ठिदिअणुभागाणं पुण बन्धो सुहुमोत्ति होदि णियमेण।
बन्धपदेसाणं पुण संकमणं सुहुमरागोत्ति।।४२९।।

अर्थ – स्थिति और अनुभाग का बंध नियम से सूक्ष्म सांपराय पर्यंत ही हैं। उसके ऊपर प्रदेश बंध है। संक्रमण भी सूक्ष्म राग तक ही है।।४२९।।

संक्रमण किस गुणस्थान तक संभव है

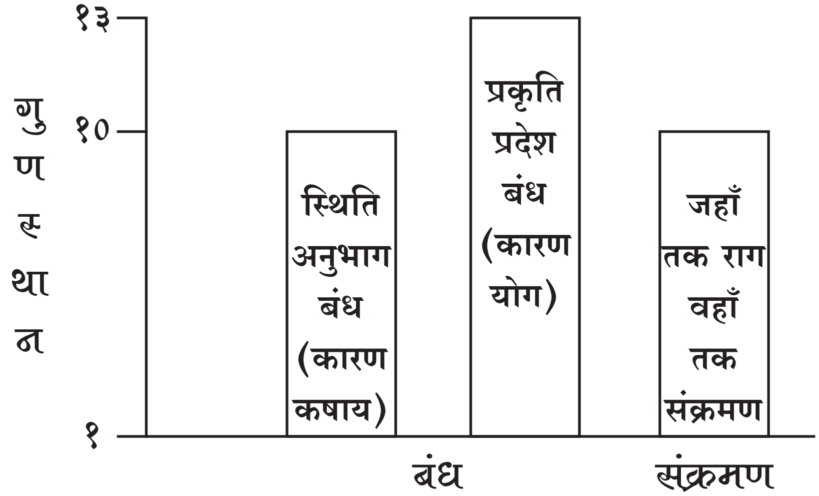

सव्वस्सेक्कं रूवं असंखभागो दु पल्लछेदाणं।
गुणसंकमो दु हारो ओकड्डुक्कट्टणं तत्तो।।४३०।।
हारं अधापवत्तं तत्तो जोगम्हि जो दु गुणगारो।
णाणागुणहाणिसला असंखगुणिदक्कमा होंति।।४३१।।
तत्तो पल्लसलायच्छेदहिया पल्लछेदणा होंति।
पल्लस्स पढममूलं गुणहाणीवि य असंखगुणिदकमा।।४३२।।
अण्णोण्णब्भत्थं पुण पल्लमसंखेज्जरूवगुणिदकमा।
संखेज्जरूवगुणिदं कम्मुक्कस्सट्ठिदी होदि।।४३३।।
अंगुलअसंखभागं विज्झादुव्वेल्लणं असंखगुणं।
अणुभागस्स य णाणागुणहाणिसला अणंताओ।।४३४।।
गुणहाणिअणंतगुणं तस्स दिवड्ढं णिसेयहारो य।
अहियकमाणण्णोण्णब्भत्थोरासी अणंतगुणो।।४३५।।कुलयं।।

अर्थ – १)सर्वसंक्रमण भागहार सबसे अल्प है, उसका प्रमाण १ रूप है। २)इससे असंख्यातगुणा-पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण गुणसंक्रमण भागहार है। ३)इससे असंख्यातगुणे अपकर्षण और उत्कर्षण भागहार है, तो भी ये दोनों जुदे-जुदे पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है।।४३०।।

अर्थ – ४)इससे अधःप्रवृत्तसंक्रमण भागहार असंख्यातगुणा है। ५)इससे असंख्यातगुणा योगों के कथन में जो गुणकार कहा वह है। ६)इससे कर्मों की स्थिति की नानागुणहानि शलाका का प्रमाण असंख्यातगुणा है।।४३१।।

अर्थ – ७)इससे पल्य के अर्धच्छेदों का प्रमाण अधिक है। यह अधिकता पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों के प्रमाण है। ८)इससे पल्य का प्रथम वर्गमूल असंख्यात गुणा है। ९)इससे कर्मों की स्थिति की जो एक गुणहानि उसके समयों का प्रमाण असंख्यात गुणा है।।४३२।।

अर्थ – १०)इससे असंख्यातगुणा कर्मों की स्थिति की अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण है। ११)इससे असंख्यातगुणा पल्य का प्रमाण है, क्योंकि उस अन्योन्याभ्यस्तराशि के प्रमाण को पल्य की वर्गशलाका से गुणा करने पर पल्य होता है। १२)इससे कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण संख्यातगुणा है।।४३३।।

अर्थ – १३)इससे विध्यातसंक्रमण भागहार असंख्यातगुणा है, वह सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। १४)इससे असंख्यातगुणा उद्वेलन संक्रमण भागहार है। १५)इससे कर्मों के अनुभाग की नानागुणहानि शलाका का प्रमाण अनंतगुणा है।।४३४।।

अर्थ – १६)इससे उस अनुभाग की एक गुणहानि के आयाम का प्रमाण अनंतगुणा है। १७) इससे उसी की डेढ़गुणहानि का प्रमाण अधिक है। १८)इससे निषेकहार का प्रमाण अधिक है। १९) इससे उस अनुभाग की अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण अनंतगुणा जानना।।४३५।।

५ भागहार एवं अन्य अल्पबहुत्व

नाम	**१.सर्वसंक्रमण भागहार**	असं. → गुणा	**२. गुणसंक्रमण भागहार**	असं. → गुणा	**३. उत्कर्षण भागहार अपकर्षण भागहार**	असं. → गुणा
प्रमाण	१		पल्य के अर्द्धच्छेद / असं.		पल्य के अर्द्धच्छेद / असं.	

४. अध:प्रवृत्त संक्रमण भागहार	असं. → गुणा	**५. जघन्य योगस्थान से उत्कृष्ट योगस्थान निकालने का गुणाकार**	असं. → गुणा	**६. कर्म स्थिति की नानागुणहानि**
पल्य के अर्द्धच्छेद / असं.		पल्य के अर्द्धच्छेद / असं.		पल्य के अर्धच्छेद– पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद

पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद प्रमाण अधिक ⟶	**७. पल्य के अर्धच्छेद**	असं. → गुणा	**८. पल्य का प्रथम वर्गमूल**	असं. → गुणा	**९. कर्म स्थिति का गुणहानि आयाम**	असं. → गुणा
	पल्य के अर्धच्छेद					

१०. कर्मस्थिति की अन्योन्याभ्यस्त राशि	असं. → गुणा	**११. पल्य**	सं. → गुणा	**१२. कर्म की उत्कृष्ट स्थिति**	असं. → गुणा	**१३. विध्यात संक्रमण भागहार**
				७० कोड़ाकोड़ी सा.		सूच्यंगुल / असं.

असं. → गुणा	**१४. उद्वेलन भागहार** सूच्यंगुल / असं.	अनंत → गुणा	**१५. कर्म अनुभाग की नाना गुणहानि शलाका**	अनंत → गुणा	**१६. कर्म अनुभाग का गुणहानि आयाम**

आधा → अधिक	**१७. अनुभाग की डेढ़ गुणहानि**	आधा → अधिक	**१८. अनुभाग की दो गुणहानि**	अनंत → गुणा	**१९. अनुभाग की अन्योन्याभ्यस्त राशि**

दशकरण चूलिका

मंगलाचरण

जस्स य पायपसायेणणंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो।
वीरिंदणंदिवच्छो णमामि तं अभयणंदिगुरुं।।४३६।।

अर्थ – जिस शास्त्र-शिक्षादायक गुरु के चरणों के प्रसाद से 'वीरेन्द्रनंदि' आचार्य का वत्स-शिष्य मैं संसार समुद्र को पार हुआ, उस 'अभयनंदि' श्रुतगुरु को नमस्कार करता हूँ।।४३६।।

बंधुक्कट्टण करणं संकममोकड्डुदीरणा सत्तं।
उदयुवसामणिधत्ती णिकाचणा होदि पडिपयडी।।४३७।।
कम्माणं संबंधो बंधो उक्कट्टणं हवे वड्ढी।
संकमणमणत्थगदी हाणी ओकट्टणं णाम।।४३८।।
अण्णत्थठियस्सुदये संथुहणमुदीरणा हु अत्थित्तं।
सत्तं सकालपत्तं उदओ होदित्ति णिद्दिट्ठो।।४३९।।
उदये संकममुदये चउसुवि दादुं कमेण णो सक्कं।
उवसंतं च णिधत्तिं णिकाचिदं होदि जं कम्मं।।४४०।।

अर्थ – १ बंध २ उत्कर्षण ३ संक्रमण ४ अपकर्षण ५ उदीरणा ६ सत्त्व ७ उदय ८ उपशम ९ निधत्ति १० निकाचना – ये दश करण (अवस्था) प्रत्येक प्रकृति के पाये जाते हैं।।४३७।।

अर्थ – कर्मों का आत्मा से संबंध होना बंध है। कर्मों की स्थिति तथा अनुभाग का बढ़ना उत्कर्षण है। बंधरूप प्रकृति का दूसरी प्रकृतिरूप परिणमन संक्रमण है। स्थिति तथा अनुभाग का कम होना अपकर्षण है।।४३८।।

अर्थ – उदयकाल के बाहिर स्थित कर्मद्रव्य को अपकर्षण के बल से उदयावली में मिलाना उदीरणा हैं। पुद्गल का कर्मरूप रहना वह सत्त्व है। कर्म का अपनी स्थिति को प्राप्त होना उदय है। ऐसा श्रीजिनेन्द्रदेव ने कहा है।।४३९।।

अर्थ – जो कर्म उदीरणा; संक्रमण व उदीरणा; चारों(उदीरणा, संक्रमण, उत्कर्षण और अपकर्षण) प्राप्त करने में समर्थ न हो वह क्रम से उपशांत, निधत्ति, निकाचित करण हैं।।४४०।।

दशकरण

बंध | उत्कर्षण | संक्रमण | अपकर्षण | उदीरणा | सत्त्व | उदय | उपशम | निधत्ति | निकाचना

बंध	उदय	सत्त्व	उदीरणा
पुद्‌गल द्रव्य का कर्मरूप होकर आत्म- प्रदेशों के साथ संश्लेष संबंध होना	कर्म स्थिति को प्राप्त होना	पुद्‌गलों का कर्मरूप से रहना	उदयावली के बाहर स्थित द्रव्य को अपकर्षण के वश से उदयावली में मिलाना

<table>
<tr><th>उत्कर्षण</th><th>अपकर्षण</th><th>संक्रमण</th></tr>
<tr><td colspan="2">स्थिति-अनुभाग की</td><td rowspan="2">अन्य प्रकृतिरूप परिणमन</td></tr>
<tr><td>वृद्धि</td><td>हानि</td></tr>
</table>

<table>
<tr><th>उपशांत(उपशम)</th><th>निधत्ति</th><th>निकाचित</th></tr>
<tr><td>उदीरणा</td><td>उदीरणा-संक्रमण</td><td>उदीरणा-संक्रमण-उत्कर्षण-अपकर्षण</td></tr>
<tr><td colspan="3">को समर्थ न हो</td></tr>
</table>

संकमणाकरणूणा णवकरणा होंति सव्वआऊणं।
सेसाणं दसकरणाअपुव्वकरणोत्ति दसकरणा।।४४१।।
आदिमसत्तेव तदो सुहुमकसाओत्ति संकमेण विणा।
छच्च सजोगत्ति तदो सत्तं उदयं अजोगित्ति।।४४२।।
णवरि विसेसं जाणे संकममवि होदि संतमोहम्मि।
मिच्छस्स य मिस्सस्स य सेसाणं णत्थि संकमणं।।४४३।।

अर्थ – सर्व आयु कर्मों के संक्रमणकरण के बिना ९ करण होते हैं। और शेष प्रकृतियों के १० करण होते हैं। (मिथ्यात्व से) अपूर्वकरण पर्यंत १० करण होते हैं।।४४१।।

अर्थ – आदि के ७ करण(उपशांत, निधत्ति, निकाचित बिना) (अपूर्वकरण के ऊपर) सूक्ष्मकषाय पर्यंत होते हैं। उससे आगे सयोग केवली तक संक्रमणकरण के बिना ६ ही करण होते हैं। उसके बाद अयोग केवली के सत्त्व और उदय-ये २ ही करण होते हैं।।४४२।।

अर्थ – विशेष यह हैं कि उपशांत मोह में मिथ्यात्व और मिश्र का संक्रमणकरण भी होता हैं (अर्थात् इनके कर्म परमाणु सम्यक्त्व प्रकृति रूप परिणमते है। शेष प्रकृतियों का संक्रमण नहीं होता।।४४३।।

किन कर्मों में कितने करण संभवित

४ आयु → ✼ संक्रमण करण बिना ९ करण

अवशेष सर्व प्रकृतियाँ → ✼ १० करण

कौन से गुणस्थान में कौन से करण संभवित

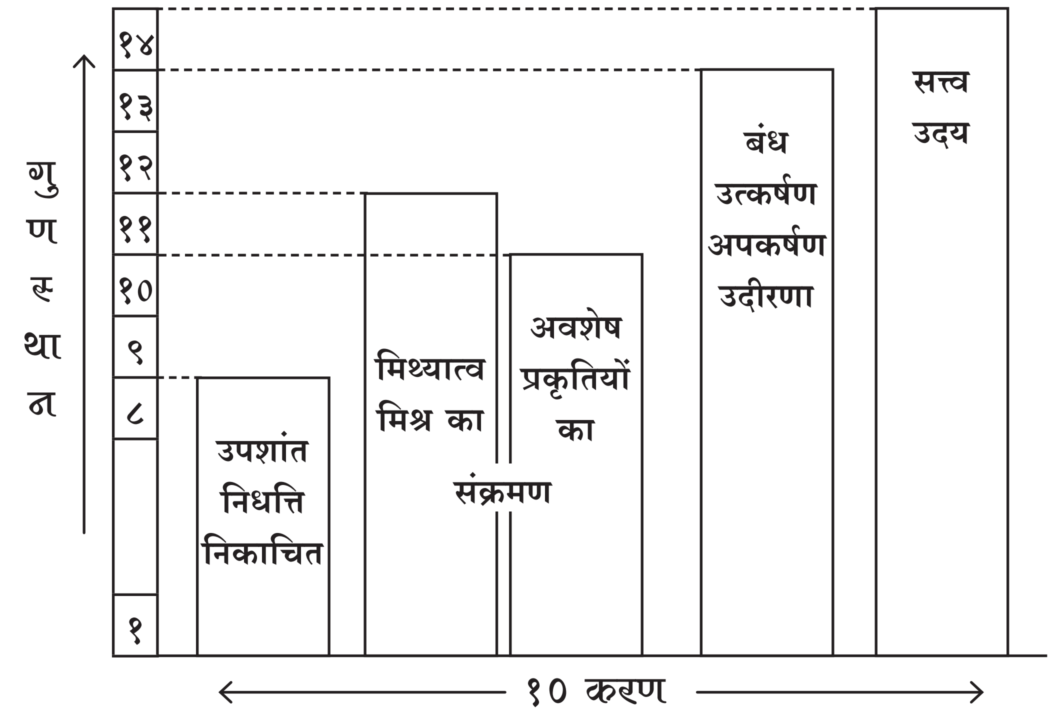

किस गुणस्थान में कौन से करण की व्युच्छित्ति

गुणस्थान	८	९	१०	११	१२	१३	१४
व्युच्छित्ति	उपशांत, निधत्ति, निकाचित	–	संक्रमण	मिथ्यात्व–मिश्र संक्रमण	–	बंध, उत्कर्षण, अपकर्षण, उदीरणा	सत्त्व, उदय

बंधुक्कट्टणकरणं सगसगबंधोत्ति होदि णियमेण।
संकमणं करणं पुण सगसगजादीण बंधोत्ति।।४४४।।

अर्थ – बंधकरण और उत्कर्षणकरण नियम से अपनी–अपनी प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति पर्यंत होते हैं। पुनः संक्रमण करण जिस प्रकृति की जो–जो स्वजाति है, उसकी बंध व्युच्छित्ति पर्यंत होता है।।४४४।।

कौन सा करण कब संभव

करण	कब संभव
बंध,उत्कर्षण	बंध व्युच्छित्ति पर्यंत
उदय, सत्त्व, उदीरणा	पूर्व कथित व्युच्छित्ति पर्यंत
संक्रमण	स्वजाति प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति पर्यंत
उपशांत,निधत्ति,निकाचित	अपूर्वकरण पर्यंत
अपकर्षण	आगे देखें

ओक्कट्टणकरणं पुण अजोगिसत्ताण जोगिचरिमोत्ति।
खीणं सुहुमंताणं खयदेसं सावलीयसमयोत्ति।।४४५।।
उवसंतोत्ति सुराऊ मिच्छत्तिय खवगसोलसाणं च।
खयदेसोत्ति य खवगे अट्ठकसायदिवीसाणं।।४४६।।
मिच्छतियसोलसाणं उवसमसेढिम्मि संतमोहोत्ति।
अट्ठकसायादीणं उवसमियट्ठाणगोत्ति हवे।।४४७।।
पढमकसायाणं च विसंजोजकं वोत्ति अयददेसोत्ति।
णिरयतिरियाउगाणमुदीरणसत्तोदया सिद्धा।।४४८।।

अर्थ – अयोगी की ८५ सत्त्व प्रकृतियों का सयोगी के अंत समय तक अपकर्षण करण होता है। क्षीण मोह में सत्त्व से व्युच्छिन्न हुईं १६ तथा सूक्ष्म सांपराय में सत्त्व से व्युच्छित्तिरूप हुआ जो सूक्ष्मलोभ – इस प्रकार १७ प्रकृतियों का क्षयदेश पर्यंत अपकर्षणकरण जानना। उस क्षयदेश का काल यहाँ पर एक समय अधिक आवलीमात्र है।।४४५।।

अर्थ – देवायु का अपकर्षणकरण उपशांत मोह पर्यंत है। मिथ्यात्वादि ३ और अनिवृत्तिकरण में क्षय हुई १६ प्रकृतियाँ इनका क्षयदेश पर्यंत अपकर्षण करण है। और क्षपक अवस्था में अनिवृत्तिकरण में क्षय हुई जो ८ कषाय को लेकर २० प्रकृतियाँ है उनका भी अपने-अपने क्षयदेश पर्यंत अपकर्षण करण है।।४४६।।

अर्थ – उपशम श्रेणी में मिथ्यात्वादि ३ और नरकद्विकादि १६- इनका उपशांतमोह पर्यंत अपकर्षण करण है। ८ कषायादिकों का अपने-अपने उपशम करने के स्थान तक अपकर्षण करण है।।४४७।।

अर्थ – प्रथम कषाय (अनंतानुबंधी चतुष्क) का (असंयतादि ४ में यथासंभव) जहाँ विसंयोजन (अन्यरूप परिणमन) हो, वहाँ तक अपकर्षण करण है। तथा नरकायु के असंयत तक और तिर्यंचायु के देशसंयत तक उदीरणा, सत्त्व, उदयकरण प्रसिद्ध हैं।।४४८।।

क्षयदेश

जिस स्थान में क्षय हुआ

प्रकृति प्रकार	स्वरूप	क्षयदेश
स्वमुखोदयी	जो प्रकृतियाँ अपने ही रूप से उदय में आकर नष्ट होती है	एक समय अधिक आवली
परमुखोदयी	जो प्रकृतियाँ अन्य प्रकृतिरूप से उदय में आकर नष्ट होती है	अंतिम कांडक की अंतिम फाली

अपकर्षण करण

<table>
<tr><th colspan="2">प्रकृति</th><th>संख्या</th><th>कहाँ पर्यंत</th></tr>
<tr><td colspan="2">अनंतानुबंधी चतुष्क</td><td>४</td><td>४ से ७ में जहाँ विसंयोजन हो</td></tr>
<tr><td colspan="2">देवायु</td><td>१</td><td>उपशांत मोह पर्यंत</td></tr>
<tr><td colspan="2">दर्शनमोहत्रिक</td><td>३</td><td rowspan="5">क्षयदेश पर्यंत</td></tr>
<tr><td rowspan="4">क्षपक श्रेणी</td><td>अनिवृत्तिकरण में व्युच्छिन्न १६</td><td>१६</td></tr>
<tr><td>अनिवृत्तिकरण में व्युच्छिन्न ८ कषायादि २०</td><td>२०</td></tr>
<tr><td>क्षीणमोह में सत्त्व व्युच्छिन्न १६</td><td>१६</td></tr>
<tr><td>सूक्ष्म लोभ</td><td>१</td></tr>
<tr><td colspan="2">अयोगी की ८५ सत्त्व प्रकृतियाँ</td><td>८५</td><td>सयोगी के अंत समय पर्यंत</td></tr>
<tr><td colspan="2">कुल</td><td>१४६</td><td></td></tr>
<tr><td rowspan="2">उपशम श्रेणी</td><td>दर्शनमोहत्रिक, नरकादि १६</td><td></td><td>उपशांतमोह पर्यंत</td></tr>
<tr><td>८ कषायादि २०</td><td></td><td>अपने-अपने उपशमने के स्थान पर्यंत</td></tr>
</table>

मिच्छस्स य मिच्छोत्ति य उदीरणा उवसमाहिमुहियस्स।
समयाहियावलित्ति य सुहुमे सुहुमस्स लोहस्स।।४४९।।

अर्थ – उपशम सम्यक्त्व के सम्मुख हुए जीव के मिथ्यात्व के अंत में एक समय अधिक आवली काल तक मिथ्यात्व प्रकृति का उदीरणाकरण होता है। सूक्ष्मलोभ का सूक्ष्म सांपराय में ही उदीरणा करण हैं।।४४९।।

उदीरणा करण

प्रकृति	कहाँ पर्यंत
नरकायु	असंयत पर्यंत
तिर्यंचायु	देशसंयत पर्यंत
मिथ्यात्व	उपशम सम्यक्त्व के सम्मुख हुए जीव को १ समयाधिक आवली पर्यंत
सूक्ष्म लोभ	सूक्ष्म सांपराय में ही

उदये संकममुदये चउसुवि दादुं कमेण णो सक्कं।
उवसंतं च णिधत्तिं णिकाचिदं तं अपुव्वोत्ति।।४५०।।

अर्थ – जो उदयावली में प्राप्त करने के योग्य (समर्थ) न हो ऐसा उपशांतद्रव्य, जो संक्रमण और उदय को प्राप्त करने के योग्य न हो ऐसा निधत्तिकरणद्रव्य, जो उदयावली, संक्रमण, उत्कर्षण, अपकर्षण को प्राप्त करने को समर्थ न हो ऐसा निकाचितकरण द्रव्य – ये तीनों अपूर्वकरण गुणस्थान तक ही हैं, ऊपर यथासंभव उदयावली आदि में प्राप्त करने को समर्थ हो ऐसे ही कर्मपरमाणु पाये जाते हैं।।४५०।।

इस गाथा के विषय की तालिका पृष्ठ क्र. –(गाथा ४४४)– पर देखें

दशकरण चूलिका समाप्त

अधिकार ५ - स्थान समुत्कीर्तन अधिकार

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
मंगलाचरणपूर्वक कथन प्रतिज्ञा	४५१	१	२५७
मूल प्रकृतियों में बंधस्थान व भुजाकारादि ४ प्रकार का बंध	४५२-४५३	२	२५८
मूल प्रकृतियों में उदयस्थान, उदीरणास्थान, सत्त्वस्थान	४५४-४५७	४	२५९
उत्तर प्रकृतियों में बंधस्थान संख्या	४५८	१	२६०
दर्शनावरण कर्म के बंधस्थान, भुजाकारादि बंध, उदयस्थान तथा सत्त्वस्थान	४५९-४६२	४	२६१
मोहनीय के बंधस्थान,भुजाकारादि बंध व भंग में कूट रचना	४६३-४७४	१२	२६३
मोहनीय के उदयस्थान व उनके भंगों व प्रकृतियों की संख्या	४७५-४८९	१५	२६८
मोहनीय के उदयस्थानों व प्रकृतियों की संख्या का उपयोग, योग, संयम, लेश्या, सम्यक्त्व अपेक्षा कथन	४९०-५०७	१८	२७९
मोहनीय के कुल सत्त्वस्थान व गुणस्थान अपेक्षा सत्त्वस्थान	५०८-५१५	८	२८७
मोहनीय के बंधस्थानों में सत्त्वस्थान	५१६-५१७	२	२९१
मोहनीयकर्म स्थान वर्णन पूर्ण व नामकर्म प्रारंभ	५१८	१	२९१
नामकर्म के बंधस्थान व भंग	५१९-५३७	१९	२९१
चारों गति के जीव मरकर कहाँ-कहाँ उत्पन्न होते हैं	५३८-५४३	६	३००
१४ मार्गणाओं में नामकर्म के बंधस्थान	५४४-५५१	८	३०४
नामकर्म के बंधस्थानों के पुनरुक्त भंग	५५२-५५३	२	३१८
बंध के स्वस्थानादि ३ भेदों में भुजकारादि बंध	५५४-५५५	२	३१८
गुणस्थानों में गमनागमन	५५६-५५९	४	३१९
कौन जीव मरण को प्राप्त नहीं होते	५६०-५६१	२	३२०
कृतकृत्यवेदक काल के किस भाग में मरने पर किस गति में गमन (उत्पत्ति)	५६२	१	३२१
नामकर्म के गुणस्थानों में भुजाकारादि भंग	५६३-५८२	२०	३२१
नामकर्म के उदयस्थान व भंग - ५ काल अपेक्षा	५८३-६०८	२६	३२९
नामकर्म के सत्त्वस्थान	६०९-६२६	१८	३४५
मूल प्रकृतियों के सामान्य से व गुणस्थानों में त्रिसंयोगी भंग	६२७-६२९	३	३५०

ज्ञानावरण,दर्शनावरण,वेदनीय,नाम व गोत्र के त्रिसंयोगी भंग	६३०-६३८	९	३५१
कौन जीव कब आयु बाँधता है?	६३९-६४०	२	३५५
आयु कर्म संबंधी नियम व भंग	६४१-६४९	९	३५५
वेदनीय, गोत्र और आयु के कुल एवं अपुनरुक्त भंग	६५०-६५१	२	३५९
मोहनीय के गुणस्थानों में त्रिसंयोगी भंग	६५२-६५९	८	३५९
मोहनीय के एक आधार, दो आधेय संबंधी भंग	६६०-६७२	१३	३६१
मोहनीय के दो आधार, एक आधेय संबंधी भंग	६७३-६९१	१९	३६४
नामकर्म के गुणस्थानों में त्रिसंयोगी भंग	६९२-७०३	१२	३७०
१४ जीवसमासों में नामकर्म के बंध-उदय-सत्त्व स्थान	७०४-७०९	६	३७३
१४ मार्गणाओं में नामकर्म के बंध-उदय-सत्त्व स्थान	७१०-७३८	२९	३७४
मध्य मंगलाचरण	७३९	१	३८२
नामकर्म के एक आधार, दो आधेय संबंधी भंग	७४०-७५९	२०	३८२
नामकर्म के दो आधार, एक आधेय संबंधी भंग	७६०-७८४	२५	३८६
कुल गाथाएँ	**४५१-७८४**	**३३४**	

णमिऊण णेमिणाहं सच्चजुहिट्ठिरणमंसियंघिजुगं।
बन्धुदयसत्तजुत्तं ठाणसमुक्कित्तणं वोच्छं।।४५१।।

अर्थ - प्रत्यक्ष वंदन करने वाले सत्यरूप 'युधिष्ठिर' पांडव द्वारा जिनके चरणयुगल को नमस्कार किया गया है ऐसे श्री नेमिनाथ तीर्थंकर को नमस्कार करके मैं नेमिचन्द्राचार्य बंध, उदय, सत्ता संयुक्त - स्थान समुत्कीर्तन को कहूँगा।।४५१।।

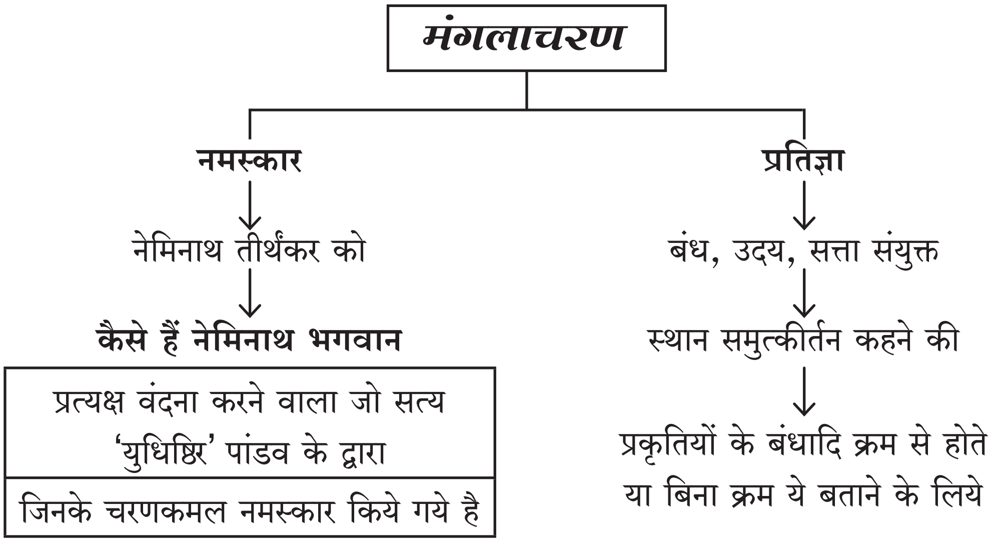

छसु सगविहमट्ठविहं कम्मं बन्धंति तिसु य सत्तविहं।
छव्विहमेकट्ठाणे तिसु एक्कमबन्धगो एक्को।।४५२।।

अर्थ – मिश्र गुणस्थान बिना अप्रमत्त पर्यंत ६ गुणस्थानों में आयु के बिना ७ प्रकार के अथवा आयु सहित ८ प्रकार के कर्म बंधते हैं। मिश्र,अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण – इन ३ गुणस्थानों में आयु बिना ७ प्रकार के ही कर्म बंधते हैं। एक सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में आयु एवं मोह के बिना ६ प्रकार के ही कर्म बंधते हैं। उपशांतमोहादि ३ गुणस्थानों में एक वेदनीय कर्म ही बंधता है। अयोगी में बंध नहीं है।।४५२।।

मूल प्रकृतियों में बंधस्थान

गुणस्थान	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
बंधस्थान	७ या ८		७	७ या ८				७		६	१			०

चत्तारि तिण्णि तिय चउ पयडिट्ठाणाणि मूलपयडीणं।
भुजगारप्पदराणि य अवट्ठिदाणिवि कमे होंति।।४५३।।

अर्थ – इस प्रकार से मूलप्रकृतियों के बंधस्थान ४ हैं। इन स्थानों के भुजाकार बंध, अल्पतर बंध और अवस्थित बंध – ये ३ प्रकार के बंध होते हैं। तथा 'च' शब्द से चौथा अवक्तव्य बंध भी समझना चाहिये। इनमें (उपशमश्रेणी से उतरने वाले के) ३ प्रकार का भुजाकार बंध, (चढ़ने वाले के) ३ प्रकार का अल्पतर बंध और (अपने-अपने स्थान में बंध होने पर) ४ प्रकार का अवस्थित बंध होता है।।४५३।।

भुजाकारादि ४ प्रकार का बंध

	भुजाकार	अल्पतर	अवस्थित	अवक्तव्य
स्वरूप	पहले थोड़ी पश्चात् बहुत प्रकृतियों को बांधे	पहले बहुत, पश्चात् थोड़ी प्रकृतियों को बांधे	पहले जितनी बांधे-पश्चात् उतनी ही बांधे	कुछ भी न बांधकर पश्चात् बांधता है
मूल प्रकृतियों में कितने संभव	३	३	४	नहीं पाया जाता
कब	उपशमश्रेणी से उतरते समय	ऊपर-ऊपर गुण-स्थान चढ़ने में	अपने ही स्थान में	

मूल प्रकृतियों में कौन से भुजाकारादि बंध

भुजाकार		अल्पतर		अवस्थित	
गुणस्थान	बंध संख्या	गुणस्थान	बंध संख्या	गुणस्थान	बंध संख्या
११ से १०	१ ⟶ ६	१-७ से १-८	८ ⟶ ७	१,२,४-७ से १,२,४-७	८ ⟶ ८
१० से ९	६ ⟶ ७	९ से १०	७ ⟶ ६	१-९ से १-९	७ ⟶ ७
८ से नीचे	७ ⟶ ८	१० से ११या१२	६ ⟶ १	१० से १०	६ ⟶ ६
				११-१३ से ११-१३	१ ⟶ १

अट्ठुदओ सुहुमोत्ति य मोहेण विणा हु संतखीणेसु।
घादिदराण चउक्कस्सुदओ केवलीदुगे णियमा।।४५४।।

अर्थ - सूक्ष्मसांपराय तक ८ मूल प्रकृतियों का उदय है, उपशांतमोह और क्षीणमोह में मोहनीय के बिना ७ का उदय है, तथा केवलीद्विक (सयोगी और अयोगी) में ४ अघातिया कर्मों का उदय नियम से है।।४५४।।

मूल प्रकृतियों में उदय

गुणस्थान	१ से १०	११-१२	१३-१४
उदय संख्या	८ - सर्व	७ - मोहनीय बिना	४ - अघातिया

घादीणं छदुमठ्ठा उदीरगा रागिणो हि मोहस्स।
तदियाऊण पमत्ता जोगंता होंति दोण्हंपि।।४५५।।
मिस्सूणपमत्तंते आउस्सद्धा हु सुहुमखीणाणं।
आवलिसिट्ठे कमसो सग पण दो चेवुदीरणा होंति।।४५६।।

अर्थ - घातिया कर्मों की उदीरणा करनेवाले (क्षीणमोह तक) छद्मस्थ जीव हैं, वहाँ भी मोहनीय की उदीरणा करनेवाले सरागी (सूक्ष्मसांपराय तक) हैं, वेदनीय और आयुकर्म की उदीरणा करने वाले (प्रमत्त तक) प्रमादी जीव हैं, तथा नाम और गोत्र इन दोनों की उदीरणा सयोगी पर्यंत जीव करते हैं।।४५५।।

अर्थ - मिश्र के बिना प्रमत्त तक ५ गुणस्थानों में आयु की स्थिति में आवलीमात्र काल शेष रहने पर आयु बिना ७ कर्मों की उदीरणा होती है, सूक्ष्मसांपराय में उतना ही काल बाकी रहने पर आयु-मोहनीय-वेदनीय इन ३ के बिना ५ कर्मों की उदीरणा होती हैं। तथा क्षीणमोह में उतना ही काल कम रहने पर नाम और गोत्र इन दो कर्मों की उदीरणा होती है।।४५६।।

मूल प्रकृतियों में उदीरणा

कर्म	गुणस्थान	
मोहनीय	१०वें के १ आवली पूर्व तक	सरागी
ज्ञानावरण,दर्शनावरण,अंतराय	१२वें के १ आवली पूर्व तक	छद्मस्थ
वेदनीय	६वें तक	प्रमादी
नाम, गोत्र	१३वें तक	सयोगी
आयु	मिश्र बिना १ से ६ गुणस्थान में मरण के १ आवली पूर्व तक	

संतोत्ति अट्ठ सत्ता खीणे सत्तेव होंति सत्ताणि।
जोगिम्मि अजोगिम्मि य चत्तारि हवंति सत्ताणि।।४५७।।

अर्थ - उपशांतमोह पर्यंत ८ कर्मों की सत्ता है। क्षीणमोह में (मोहनीय के बिना) ७ कर्मों की ही सत्ता है, और सयोग-अयोग केवली इन दोनों में ४ (अघातिया) कर्मों की ही सत्ता है।।४५७।।

मूल प्रकृतियों में सत्त्व

गुणस्थान तक	११	१२	१४
सत्त्व कर्म	मोहनीय	ज्ञानावरण,दर्शनावरण,अंतराय	४ अघातिया

उत्तर प्रकृतियाँ

तिण्णि दस अट्ठ ठाणाणि दंसणावरणमोहणामाणं।
एत्थेव य भुजगारा सेसेसेयं हवे ठाणं।।४५८।।

अर्थ - दर्शनावरण, मोहनीय और नामकर्म के क्रम से ३, १० और ८ बंधस्थान है, तथा भुजाकार बंध भी इन्हीं में होते है। और शेष ज्ञानावरणादिकों में एक-एक ही बंधस्थान है।।४५८।।

उत्तर प्रकृतियाँ बंध स्थान

कर्म	दर्शनावरण	मोहनीय	नाम	शेष ५ कर्म
बंध स्थान	३	१०	८	१

शेष ५ कर्मों के बंधरूप १ स्थान की प्रकृतियों की संख्या

कर्म	ज्ञानावरण, अंतराय	वेदनीय, आयु, गोत्र
प्रकृतियों की संख्या	५	१

णव छक्क चदुक्कं च य बिदियावरणस्स बंधठाणाणि।
भुजगारप्पदराणि य अवट्ठिदाणिवि य जाणाहि।।४५९।।
णव सासणोत्ति बंधो छच्चेव अपुव्वपढमभागोत्ति।
चत्तारि होंति तत्तो सुहुमकसायस्स चरिमोत्ति।।४६०।।

अर्थ – दूसरे आवरण (दर्शनावरण) के ९ प्रकृतिरूप, (स्त्यानगृद्धित्रिक के बिना) ६ प्रकृतिरूप, और (निद्रा-प्रचला के भी बिना) ४ प्रकृतिरूप – इस तरह ३ बंधस्थान हैं; तथा उनके भुजाकार, अल्पतर और अवस्थित बंध हैं। 'अपि' शब्द से अवक्तव्य बंध भी है।।४५९।।

अर्थ – दर्शनावरण का ९ का बंध सासादन पर्यंत है। ६ का इसके ऊपर अपूर्वकरण के प्रथम भाग तक हैं। इसके बाद ४ का सूक्ष्मसांपराय के अंत समय तक है।।४६०।।

दर्शनावरण के बंध स्थान (३)

	९ प्रकृति	६ प्रकृति	४ प्रकृति
प्रकृतियाँ	सर्व	स्त्यानगृद्धित्रिक बिना शेष	५ निद्रा बिना
कहाँ तक	सासादन	८वें के प्रथम भाग	१०वें के अंत समय

दर्शनावरण के भुजाकारादि बंध

भुजाकार		अल्पतर		अवक्तव्य		अवस्थित	
गुणस्थान	**बंध संख्या**	**गुण-स्थान**	**बंध संख्या**	**गुणस्थान**	**बंध संख्या**	**गुण-स्थान**	**बंध संख्या**
८वें के दूसरे से प्रथम भाग	४ ⟶ ६	१ से ४,५,७	९ ⟶ ६	११ से १०	० ⟶ ४	१-२	९ ⟶ ९
३-६ से १-२	६ ⟶ ९	८वें के प्रथम से दूसरे भाग	६ ⟶ ४	११ से ४ (बद्धायु मरकर देव)	० ⟶ ६	३ से ८वें के प्रथम भाग	६ ⟶ ६
						८वें के दूसरे भाग से १०	४ ⟶ ४

खीणोत्ति चारि उदया पंचसु णिद्दासु दोसु णिद्दासु।
एक्के उदयं पत्ते खीणदुचरिमोत्ति पंचुदया।।४६१।।

अर्थ – (दर्शनावरण की चक्षुदर्शनावरणादि) ४ प्रकृतियों का उदयस्थान जागृत जीव के क्षीणमोह पर्यंत है, और निद्रावान जीव के प्रमत्त पर्यंत ५ निद्राओं में से १ का उदय होने पर तथा क्षीणमोह के द्विचरम समय तक निद्रा और प्रचला–इन २ निद्राओं में से एक का उदय होने पर दर्शनावरण की ५ प्रकृतिरूप उदयस्थान जानना।।४६१।।

दर्शनावरण के उदय स्थान (२)

	४ प्रकृति	५ प्रकृति
अवस्था	जागृत	निद्रित
प्रकृतियाँ	चक्षुदर्शनावरणादि ४	चक्षुदर्शनावरणादि ४ + १ निद्रा
गुणस्थान	१ से १२ तक	* ६ तक :– ५ निद्रा में से १ *७ से १२ के द्विचरम समय तक :–निद्रा,प्रचला में से १

मिच्छादुवसंतोत्ति य अणियट्टीखवगपढमभागोत्ति।
णवसत्ता खीणस्स दुचरिमोत्ति य छच्चदूवरिमे।।४६२।।

अर्थ – मिथ्यात्व से उपशांतमोह तक और क्षपक श्रेणी में अनिवृत्तिकरण के पहले भाग तक दर्शनावरण का ९ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है। इनके ऊपर क्षीणमोह के द्विचरम समय तक ६ तथा उसके चरम समय में ४ का सत्त्वस्थान है।।४६२।।

दर्शनावरण के सत्त्व स्थान (३)

	९ प्रकृति	६ प्रकृति	४ प्रकृति
प्रकृतियाँ	सर्व	स्त्यानगृद्धित्रिक बिना शेष	५ निद्रा बिना
गुणस्थान	* उपशम श्रेणी में – १ से ११ * क्षपक श्रेणी में –१ से ९वें के प्रथम भाग तक	९वें के द्वितीय भाग से १२वें के द्विचरम समय तक	१२वें के चरम समय में

बावीसमेक्कवीसं सत्तारस तेरसेव णव पंच।
चदुतियदुगं च एक्कं बंधट्ठाणाणि मोहस्स।।४६३।।
बावीसमेक्कवीसं सत्तर सत्तार तेर तिसु णवयं।
थूले पणचदुतियदुगमेक्कं मोहस्स ठाणाणि।।४६४।।
उगुवीसं अट्ठारस चोद्दस चोद्दस य दस य तिसु छक्कं।
थूले चदुतिदुगेक्कं मोहस्स य होंति धुवबंधा।।४६५।।
सगसंभवधुवबंधे वेदेक्के दोजुगाणमेक्के य।
ठाणो वेदजुगाणं भंगहदे होंति तब्भंगा।।४६६।।

अर्थ – मोहनीयकर्म के बंधस्थान २२,२१,१७,१३,९,५,४,३,२ और १ प्रकृतिरूप है।।४६३।।

अर्थ – उक्त मोहनीय के बंधस्थानों में मिथ्यादृष्टि से देशसंयत तक क्रम से २२, २१, १७, १७, १३ बंधस्थान हैं। प्रमत्तादि ३ में प्रत्येक में ९-९ स्थान हैं। स्थूल (अर्थात् नवमें गुणस्थान) में ५, ४, ३, २, १ प्रकृतिरूप ५ स्थान हैं।।४६४।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि आदि अनिवृत्तिकरण के उक्त भागों तक क्रम से १९, १८, १४, १४, १०, प्रमत्तादि ३ में ६-६-६, नवमें में ४-३-२-१ मोहनीय की ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ है।।४६५।।

अर्थ – पूर्वोक्त ध्रुवबंधी प्रकृतियों में यथासंभव ३ वेदों में से १ वेद, २ युगल (हास्य-शोक, रति-अरति) में से १-१ मिलाने से स्थान होते हैं। वेद के प्रमाण को युगल के प्रमाण के साथ गुणा करने से उस-उस स्थान के भंग होते हैं।।४६६।।

मोहनीय के बंध स्थान (१०)

<table>
<tr><th colspan="2" rowspan="2">गुणस्थान</th><th rowspan="2">संख्या</th><th colspan="4">प्रकृतियाँ</th></tr>
<tr><th colspan="2">ध्रुवबंधी</th><th colspan="2">अध्रुवबंधी</th></tr>
<tr><td colspan="2">१</td><td>२२</td><td>१९</td><td>मिथ्यात्व,१६ कषाय भय, जुगुप्सा</td><td>३</td><td>* हास्य-रति व शोक-अरति के युगल में से कोई १ युगल,
* ३ वेद में से कोई १ वेद</td></tr>
<tr><td colspan="2">२</td><td>२१</td><td>१८</td><td>पूर्वोक्त १९-
१ मिथ्यात्व</td><td>३</td><td>*हास्य युगल में से कोई १ युगल
* स्त्री, पुरुषवेद में कोई १ वेद</td></tr>
<tr><td colspan="2">३-४</td><td>१७</td><td>१४</td><td>पूर्वोक्त १८-
४ अनंतानुबंधी</td><td>३</td><td rowspan="3">*हास्य युगल में से कोई १ युगल
* पुरुषवेद</td></tr>
<tr><td colspan="2">५</td><td>१३</td><td>१०</td><td>पूर्वोक्त १४-
४ अप्रत्याख्यानावरण</td><td>३</td></tr>
<tr><td colspan="2">६-८</td><td>९</td><td>६</td><td>पूर्वोक्त १०-
४ प्रत्याख्यानावरण</td><td>३</td></tr>
<tr><td rowspan="5">९</td><td>पहला भाग</td><td>५</td><td>४</td><td>पूर्वोक्त ६-
२ भय, जुगुप्सा</td><td>१</td><td>पुरुषवेद</td></tr>
<tr><td>दूसरा भाग</td><td>४</td><td>४</td><td>संज्वलन चतुष्क</td><td colspan="2" rowspan="4"></td></tr>
<tr><td>तीसरा भाग</td><td>३</td><td>३</td><td>संज्वलन मान, माया, लोभ</td></tr>
<tr><td>चौथा भाग</td><td>२</td><td>२</td><td>संज्वलन माया,लोभ</td></tr>
<tr><td>पाँचवां भाग</td><td>१</td><td>१</td><td>संज्वलन लोभ</td></tr>
</table>

छब्बावीसे चदु इगिवीसे दोद्दो हवंति छट्ठोत्ति।

एक्केक्कमदो भंगो बंधट्ठाणेसु मोहस्स।।४६७।।

अर्थ - मोहनीय के बंधस्थानों में २२ के ६ भंग, २१ के ४, ऊपर प्रमत्त तक २-२, इसके आगे सब स्थानों में १-१ भंग हैं।।४६७।।

इस गाथा के विषय की तालिका पृष्ठ क्र. -(गाथा ४७०)- पर देखें

दस वीसं एक्कारस तेत्तीसं मोहबंधठाणाणि।

भुजगारप्पदराणि य अवट्ठिदाणिवि य सामण्णे।।४६८।।

अर्थ - (पहले कहे हुए मोहनीय के) १० बंधस्थानों में सामान्य रीति से भुजाकार बंध २०, अल्पतर बंध ११ और अवस्थित बंध ३३ हैं।।४६८।।

मोहनीय के सामान्य से कुल भुजाकारादि बंध

गुणस्थान		संख्या	भुजाकार	अल्पतर	अवक्तव्य
१		२२		३	
२		२१	१		
३,४		१७	२	२	
५		१३	३	१	
६,८		९	४	१	
९	पहला भाग	५	२	१	
	दूसरा भाग	४	२	१	
	तीसरा भाग	३	२	१	
	चौथा भाग	२	२	१	
	पाँचवां भाग	१	२		
१०		0			
अवस्थित बंध			२०	+११	+२
			= ३३		

अप्पं बंधंतो बहुबंधे बहुगादु अप्पबंधेवि।

उभयत्थ समे बंधे भुजगारादी कमे होंति।।४६९।।

अर्थ - पहले थोड़ी प्रकृतियों का बंध किया हो पीछे बहुत प्रकृतियों के बांधने पर भुजाकार, पहले बहुत का बंध किया था पीछे थोड़ी प्रकृतियों के बांधने पर अल्पतर, पहले पीछे दोनों समयों में समान (एकसा) बंध होने पर अवस्थित बंध होता है। तथा 'अपि' शब्द से इन स्थानों में अवक्तव्य बंध भी होता है।।४६९।।

इस गाथा के विषय की तालिका पृष्ठ क्र. -(गाथा ४५३)- पर देखें

सामण्णअवत्तव्वो ओदरमाणम्मि एक्कयं मरणे।
एक्कं च होदि एत्थवि दो चेव अवट्ठिदा भंगा।।४७०।।
सत्तावीसहियसयं पणदालं पंचहत्तरिहियसयं।
भुजगारप्पदराणि य अवट्ठिदाणिवि विसेसेण।।४७१।।
णभ चउवीसं बारस वीसं चउरट्ठवीस दोद्दो य।
थूले पणगादीणं तियतिय मिच्छादिभुजगारा।।४७२।।
अप्पदरा पुण तीसं णभ णभ छद्दोण्णि दोण्णि णभ एक्कं।
थूले पणगादीणं एक्केकं अंतिमे सुण्णं।।४७३।।
भेदेण अवत्तव्वा ओदरमाणम्मि एक्कयं मरणे।
दो चेव होंति एत्थवि तिण्णेव अवट्ठिदा भंगा।।४७४।।

अर्थ – सामान्यपने से (भंगों की विवक्षा के बिना) अवक्तव्य बंध उपशमश्रेणी से उतरने में १ है, और १ वहाँ पर मरण होने से होता हैं, ऐसे २ बंध है। और दूसरे समय आदि में उसी प्रकार बंध होने पर अवस्थित बंध भी यहाँ पर २ ही है।।४७०।।

अर्थ – विशेषपने से (अर्थात् भंगों की अपेक्षा) १२७ भुजाकार बंध है, अल्पतर बंध ४५ हैं, और अवस्थित बंध १७५ है।।४७१।।

अर्थ – (भंगों की विवक्षा से) मिथ्यादृष्टि आदि में भुजाकार बंध क्रम से शून्य, २४, १२, २०, २४, २८, २, २ और अनिवृत्तिकरण में ५ आदि के ३-३ है। इस प्रकार कुल भुजाकार बंधों की संख्या १२७ होती है।।४७२।।

अर्थ – अल्पतर बंध मिथ्यादृष्टि आदि में ३०, शून्य, शून्य, ६, २, २, शून्य, १ प्रकृतिरूप क्रम से होता है। अनिवृत्तिकरण में ५ आदि प्रकृतिरूप का १-१ ही अल्पतर बंध होता हैं; अंत के पाँचवें भाग में शून्य अर्थात् अल्पतर बंध नहीं होता।।४७३।।

अर्थ – (भंग की विवक्षा के विशेष से) अवक्तव्यबंध, सूक्ष्मसांपराय से उतरने में १ होता है। मरण होने पर २ भंग ऐसे ३ अवक्तव्य बंध होते है। अतएव अवस्थित बंध के भंग यहाँ भी ३ होते है।।४७४।।

मोहनीय के बंध स्थानों के लिये कूट विवरण

कूट = कूट के आकार की ऐसी रचना इसलिये कूट संज्ञा

भय,जुगुप्सा
हास्य-रति युगल
३ वेद
१६ कषाय
मिथ्यात्व

मोहनीय के बंध स्थानों के भंग व भंगों की अपेक्षा भुजाकार बंध

गुणस्थान	कूट	भंग	व्युच्छित्ति	भुजाकार बंध भंग	कुल
१ (२२ प्रकृति)	२ २ २ १ १ १ १६ १	१ × २ × ३ × १ × १ = ६	मिथ्यात्व, नपुंसकवेद	–	–
२ (२१ प्रकृति)	२ २ २ १ १ १६	१ × २ × २ × १ = ४	अनंतानुबंधी, स्त्रीवेद	२१ ⟶ २२ (४ × ६)	२४
३ (१७)	२ २ २ १ १२	१ × २ × १ × १ = २	–	१७ ⟶ २२ (२ × ६)	१२
४ (१७)	मिश्रवत्		अप्रत्याख्यानावरण	१७⟶ २२ १७⟶ २१ (२ × ६) + (२ × ४)	२०
५ (१३)	२ २ २ १ ८	१ × २ × १ × १ = २	प्रत्याख्यानावरण	१३⟶ २२ १३⟶ २१ १३⟶ १७ (२ × ६) + (२ × ४) + (२ × २)	२४
६ (९)	२ २ २ १ ४	१ × २ × १ × १ = २	अरति, शोक	९⟶ २२ ९⟶ २१ ९⟶ १७ ९⟶ १३ (२ × ६) + (२ × ४) + (२ × २) + (२ × २)	२८
७ (९)	२ २ १ ४	१ × १ × १ × १ = १	–	९ ⟶ १७ (देव असंयत) (१ × २)	२

८ (९)		अप्रमत्तवत्		हास्य, रति, भय, जुगुप्सा	९ ⟶ १७ (१ × २)	२
९	पहला भाग (५ प्रकृति)	१ ४	१ × १ = १	पुरुषवेद	५ ⟶ १७ ५ ⟶ ९ (१ × २) + (१ × १)	३
	दूसरा भाग (४ प्रकृति)	४	१	संज्वलन क्रोध	४ ⟶ १७ ४ ⟶ ५ (१ × २) + (१ × १)	३
	तीसरा भाग (३ प्रकृति)	३	१	संज्वलन मान	३ ⟶ १७ ३ ⟶ ४ (१ × २) + (१ × १)	३
	चौथा भाग (२ प्रकृति)	२	१	संज्वलन माया	२ ⟶ १७ २ ⟶ ३ (१ × २) + (१ × १)	३
	पाँचवां भाग (१ प्रकृति)	१	१	संज्वलन लोभ	१ ⟶ १७ १ ⟶ २ (१ × २) + (१ × १)	३
					कुल	**१२७**

मोहनीय के बंध स्थानों के भंगों की अपेक्षा अल्पतर बंध

गुणस्थान		अल्पतर बंध भंग	कुल
१		२२⟶१७, २२⟶१३, २२⟶९; (६×२)+(६×२)+(६×१)	३०
२		यहाँ से नीचे ही जाता हैं,इसलिये भुजाकार ही	–
३		यहाँ से नीचे या असंयत में ही जाता,वहाँ अवस्थित ही	–
४		१७ ⟶ १३, १७ ⟶ ९; (२ × २) + (२ × १)	६
५		१३ ⟶ ९ (२ × १)	२
६		९ ⟶ ९ (२ × १) प्रमत्त में अरति-शोक की व्युच्छित्ति होने से अल्पतर भंग की विवक्षा	२
७		यहाँ से ऊपर जाने पर समान ही,अल्पतर नहीं	–
८		९ ⟶ ५ (१ × १)	१
९	पहला भाग	५ ⟶ ४ (१ × १)	१
	दूसरा भाग	४ ⟶ ३ (१ × १)	१
	तीसरा भाग	३ ⟶ २ (१ × १)	१
	चौथा भाग	२ ⟶ १ (१ × १)	१
	पाँचवां भाग	यहाँ से १०वें में जाने पर बंध का अभाव, इसलिये अल्पतर नहीं	
		कुल	**४५**

मोहनीय के बंध स्थानों के भंगों की अपेक्षा अवक्तव्य बंध

गुणस्थान	अवक्तव्य बंध भंग	कुल
१०	० ⟶ १७, ० ⟶ १; २ + १	३

मोहनीय के बंध स्थानों के भंगों की अपेक्षा अवस्थित बंध

अवस्थित बंध भंग		कुल
कुल भुजाकार + अल्पतर + अवक्तव्य	= १२७ + ४५ + ३	१७५

दस णव अट्ठ य सत्त य छप्पण चत्तारि दोण्णि एक्कं च।
उदयट्ठाणा मोहे णव चैव य होंति णियमेण।।४७५।।

अर्थ – १०,९,८,७,६,५,४,२,१ प्रकृतिरूप मोहनीय के उदयस्थान नियम से ९ हैं।।४७५।।

मोहनीय के उदयस्थान (९)

उदयस्थान	१०	९	८	७	६	५	४	२	१

मिच्छं मिस्सं सगुणे वेदगसम्मेव होदि सम्मत्तं।
एक्का कसायजादी वेददुजुगलाणमेक्कं च।।४७६।।
भयसहियं च जुगुच्छासहियं दोहिंवि जुदं च ठाणाणि।
मिच्छादिअपुव्वंते चत्तारि हवंति णियमेण।।४७७।।

अर्थ – (मोहनीय की उदय प्रकृतियों में से)**मिथ्यात्व व मिश्र का उदय अपने-अपने गुणस्थान में है।** सम्यक्त्व प्रकृति का उदय वेदक सम्यक्त्वी जीव के (४ से ७ गुणस्थान में) है। अनंतानुबंधी आदि ४ कषायों की क्रोध मान माया लोभ रूप ४ जाति उसमें से १ कषायजाति, ३ वेदों में से १ वेद, हास्य-शोक व रति-अरति के युगलों में से किसी १ युगल का उदय पाया जाता है।।४७६।।

अर्थ – (एक काल में एक जीव के) केवल भय सहित, अथवा केवल जुगुप्सा सहित, अथवा भय-जुगुप्सा दोनों सहित अथवा 'च' शब्द से दोनों ही रहित उदय स्थान होते है। इसलिये मिथ्यादृष्टि से लेकर अपूर्वकरण तक ४-४ कूट नियम से हैं।।४७७।।

मोहनीय उदय - नियम

प्रकृति	एक साथ किनका उदय संभव
सम्यक्त्व प्रकृति	वेदक सम्यक्त्वी को ४ से ७ गुणस्थान में
अनंतानुबंधी आदि १६ कषाय	✻ ४ क्रोध या ४ मान या ४ माया या ४ लोभ का; ✻ इसीप्रकार ३, २ या १ क्रोध, मान, माया, लोभ का
हास्य-रति, अरति-शोक	किसी १ युगल का
३ वेद	किसी १ का
भय-जुगुप्सा	सिर्फ भय का; सिर्फ जुगुप्सा का; दोनों का; दोनों का नहीं

मोहनीय के गुणस्थानों में उदयस्थान के कूट

१ से ८ गुणस्थान में भय-जुगुप्सा की अपेक्षा से प्रत्येक में ४ कूट बनते हैं

गुणस्थान	भय-जुगुप्सा	भय	जुगुप्सा	भय-जुगुप्सा रहित
१	अनंतानुबंधी सहित मिथ्यात्व के कूट			
	२ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४ १	१ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४ १	१ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४ १	० २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४ १
कुल प्रकृति	१०	९	९	८
२	मिथ्यात्व रहित			
	२ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४	१ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४	१ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४	० २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४
	९	८	८	७
३	अनंतानुबंधी रहित, मिश्र प्रकृति सहित			
	२ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	१ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	१ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	० २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १
	९	८	८	७
४	वेदक असंयत (मिश्र की जगह सम्यक्त्व प्रकृति)			
	२ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	१ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	१ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	० २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १
	९	८	८	७

५	वेदक देशसंयत (अप्रत्याख्यानावरण कषाय रहित)			
	२ २ २ १ १ १ २ २ २ २ १	१ २ २ १ १ १ २ २ २ २ १	१ २ २ १ १ १ २ २ २ २ १	० २ २ १ १ १ २ २ २ २ १
	८	७	७	६
६	वेदक प्रमत्त (प्रत्याख्यानावरण कषाय रहित)			
	२ २ २ १ १ १ १ १ १ १ १	१ २ २ १ १ १ १ १ १ १ १	१ २ २ १ १ १ १ १ १ १ १	० २ २ १ १ १ १ १ १ १ १
	७	६	६	५
७	वेदक अप्रमत्त के कूट वेदक प्रमत्तवत्			
८	अपूर्वकरण (सम्यक्त्व प्रकृति रहित)			
	२ २ २ १ १ १ १ १ १ १	१ २ २ १ १ १ १ १ १ १	१ २ २ १ १ १ १ १ १ १	० २ २ १ १ १ १ १ १ १
	६	५	५	४

९	अनिवृत्तिकरण (हास्यादि ६ कषाय रहित)				
	पहला भाग	दूसरा भाग	तीसरा भाग	चौथा भाग	पाँचवां भाग
	वेद-कषाय सहित	वेद रहित	क्रोध रहित	मान रहित	माया रहित
	१ १ १ १ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १	१ १	१
	२	१	१	१	१
	सूक्ष्मसांपराय (सूक्ष्म लोभ सहित)				
१०	१				
	१				

अणसंजोजिदसम्मे मिच्छं पत्ते ण आवलित्ति अणं।
उवसमखइये सम्मं ण हि तत्थवि चारि ठाणाणि।।४७८।।

अर्थ - अनंतानुबंधी कषाय का विसंयोजक क्षायोपशम सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होने पर आवलीमात्र काल तक अनंतानुबंधी का उदय नहीं होता, (इस अपेक्षा मिथ्यात्व में अनंतानुबंधी रहित ४ कूट और भी जानने)। तथा उपशम-क्षायिक सम्यक्त्व में सम्यक्त्व प्रकृति का उदय नहीं है, सो वहाँ (उपशम और क्षायिक की अपेक्षा) असंयतादि ४ गुण-स्थानों में ४-४ कूट दूसरे होते हैं।।४७८।।

मिथ्यात्व में उदय स्थान - विशेष

१	अनंतानुबंधी का विसंयोजक वेदक सम्यक्त्वी
२	मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त हुआ
३	यहाँ आवली मात्र काल तक अनंतानुबंधी का उदय नहीं है
४	क्योंकि मिथ्यात्व को प्राप्त होकर पहले समय में जो समयप्रबद्ध बंधता है उसका १ आवली काल तक अपकर्षण द्वारा उदयावली में प्राप्त करने का सामर्थ्य नहीं है
५	अनंतानुबंधी का बंध मिथ्यात्व में ही है
६	पहले अनंतानुबंधी थी उसका विसंयोजन किया,इसलिये आवली काल तक उदय नहीं है
७	उसकी अपेक्षा मिथ्यात्व में अनंतानुबंधी रहित ४ कूट और है

गुणस्थान	भय-जुगुप्सा	भय	जुगुप्सा	भय-जुगुप्सा रहित
	अनंतानुबंधी रहित मिथ्यात्व के कूट			
१	२ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	१ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	१ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	० २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १
कुल प्रकृति	९	८	८	७

असंयतादि ४ गुणस्थान में उदय स्थान - विशेष

सामान्य	विशेष
वेदक सम्यक्त्वी	उपशम व क्षायिक सम्यक्त्वी
सम्यक्त्व प्रकृति उदय	उदय नहीं
सम्यक्त्व प्रकृति सहित ४ कूट	सम्यक्त्व प्रकृति रहित ४ कूट

असंयतादि में सम्यक्त्व प्रकृति रहित कूट

गुणस्थान	भय-जुगुप्सा	भय	जुगुप्सा	भय-जुगुप्सा रहित
	उपशम अथवा क्षायिक असंयत			
४	२ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३	१ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३	१ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३	0 २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३
कुल प्रकृति	८	७	७	६
	उपशम अथवा क्षायिक देशसंयत			
५	२ २ २ १ १ १ २ २ २ २	१ २ २ १ १ १ २ २ २ २	१ २ २ १ १ १ २ २ २ २	0 २ २ १ १ १ २ २ २ २
	७	६	६	५
	उपशम अथवा क्षायिक प्रमत्त-अप्रमत्त			
६-७	२ २ २ १ १ १ १ १ १ १	१ २ २ १ १ १ १ १ १ १	१ २ २ १ १ १ १ १ १ १	0 २ २ १ १ १ १ १ १ १
	६	५	५	४

पुव्विल्लेसुवि मिलिदे अड चउ चत्तारि चदुसु अट्ठेव।
चत्तारि दोण्णि एक्कं ठाणा मिच्छादिसुहुमंते।।४७९।।
दसणवणवादि चउतियतिट्ठाण णवट्ठसगसगादि चऊ।
ठाणा छादि तियं च य चदुवीसगदा अपुव्वोत्ति।।४८०।।
एक्क य छक्केयारं एयारेयारसेव णव तिण्णि।
एदे चउवीसगदा चदुवीसेयार दुगठाणे।।४८१।।

अर्थ - इन कूटों में पहले कहे हुए कूट मिलाने से मिथ्यात्वादि से सूक्ष्मसांपराय तक क्रम से ८, ४, ४, असंयतादि ४ में ८-८ और आगे ४, २, १ कूट होते है।।४७९।।

अर्थ - मिथ्यात्वादि ३ में क्रम से १० आदि, ९ आदि, ९ आदि; ४,३,३ (उदय) स्थान है। असंयतादि ४ गुणस्थानों में क्रम से ९ आदि, ८ आदि, ७ आदि, ७ आदि; ४-४ स्थान है। अपूर्वकरण में ६ आदि ३ स्थान है। अपूर्वकरण पर्यंत सर्व स्थान २४-२४ भंगों से सहित हैं।।४८०।।

अर्थ - सर्व गुणस्थानों में मिलकर १० आदि प्रकृतिरूप १,६,११,११,११,९,३ स्थान हैं। ये सब स्थान २४-२४ भंगों सहित है। २ और १ प्रकृतिरूप १-१ स्थान के २४ व ११ भंग हैं।।४८१।।

गुणस्थानों में कुल कूट, प्रकृतियों की संख्या, अपुनरुक्त स्थान

गुणस्थान		कुल कूट	उदय प्रकृति संख्या									अपुनरुक्त स्थान
१	अनंतानुबंधी सहित	८	१०	९	८							१०, ९, ८, ७
				९								
	अनंतानुबंधी रहित			९	८	७						
					८							
२		४		९	८	७						९, ८, ७
					८							
३		४		९	८	७						९, ८, ७
					८							
४	वेदक	८		९	८	७						९, ८, ७, ६
					८							
	उपशम, क्षायिक				८	७	६					
						७						
५	वेदक	८			८	७	६					८, ७, ६, ५
						७						
	उपशम, क्षायिक					७	६	५				
							६					
६	वेदक	८				७	६	५				७, ६, ५, ४
							६					
	उपशम, क्षायिक						६	५	४			
								५				
७	वेदक	८				७	६	५				७, ६, ५, ४
							६					
	उपशम, क्षायिक						६	५	४			
								५				
८		४					६	५	४			६, ५, ४
								५				

९	पहला भाग	२								२		२
	दूसरा भाग											१
	तीसरा भाग											
	चौथा भाग										१	
	पाँचवां भाग											
१०		१										१
कुल स्थान			१	६	११	११	११	९	३	१	१	
प्रकृति संख्या समान होने पर भी प्रकृति भेद के कारण स्थान अपुनरुक्त ही है												

१ से ८ गुणस्थान में प्रत्येक कूट में २४-२४ भंग है

मिथ्यात्व में १० प्रकृतिरूप स्थान के २४ भंगों का विवरण

हास्य-रति के १२ भंग					
मिथ्यात्व	+ (अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन)	क्रोध	+ पुरुषवेद	+ २ हास्य,रति	+ २ भय,जुगुप्सा
"	+ (")	मान	"	"	"
"	+ (")	माया	"	"	"
"	+ (")	लोभ	"	"	"
"	+ (")	क्रोध	+स्त्रीवेद	"	"
"	+ (")	मान	"	"	"
"	+ (")	माया	"	"	"
"	+ (")	लोभ	"	"	"
"	+ (")	क्रोध	नपुंसकवेद	"	"
"	+ (")	मान	"	"	"
"	+ (")	माया	"	"	"
"	+ (")	लोभ	"	"	"
इसी प्रकार अरति-शोक के १२ भंग होते है					
कुल १२ + १२ = २४ भंग					
=मिथ्यात्व× कषाय × वेद × युगल × भय,जुगुप्सा=१ × ४ × ३ × २ × १=२४					
इसी प्रकार ९ आदि प्रकृति रूप स्थानों में अपनी-अपनी प्रकृतियों के अनुसार भी २४-२४ भंग बनते है					

उदयट्ठाणं दोण्हं पणबंधे होदि दोण्हमेकस्स।
चदुविहबंधट्ठाणे सेसेसेयं हवे ठाणं।।४८२।।

अर्थ – अनिवृत्तिकरण में ५ प्रकृति के बंधस्वरूप तथा ४ प्रकृति के बंधस्वरूप – इस प्रकार २ भागों में ३ वेद और ४ संज्वलन का उदय होता है। अतएव वहाँ पर ४-४ कषाय; १-१ वेद के साथ उदयरूप होने से एक भाग के १२ भंग होते है और दोनों के मिलकर २४ भंग होते हैं। किंतु कनकनन्दि आचार्य के पक्ष में जिस जगह ४ प्रकृतियों का बंध पाया जाता है उसके अंत समय में वेदों के उदय का अभाव ही है, अतएव वहाँ पर, और ३,२,१ प्रकृति के बंध स्थानों में तथा अबंध स्थान में क्रम से ४, ३, २, १, १ संज्वलन कषायों में से १-१ का ही उदय रहता है। अतएव वहाँ पर क्रम से ४,३,२,१,१ भंग होते हैं। इस प्रकार १ प्रकृतिरूप बंधस्थान में ११ ही भंग सिद्ध हुए।।४८२।।

अनिवृत्तिकरण में २ प्रकृतिरूप स्थान के २४ भंग

बंध	५	४	
उदय	२	२	१ वेद, १ कषाय
भंग	१२	१२	३ वेद × ४ कषाय
कुल भंग	२४		

अनिवृत्तिकरण व सूक्ष्मसांपराय में १ प्रकृतिरूप स्थान के ११ भंग

	अनिवृत्तिकरण				सूक्ष्मसांपराय	
बंध	४	३	२	१	०	
उदय	१	१	१	१	१	१ कषाय
भंग	४	३	२	१	१	**=११ कुल भंग**
प्रकृति	४ कषाय	क्रोध बिना ३	माया लोभ	बादर लोभ	सूक्ष्म लोभ	

अणियट्टिकरणपढमा संढित्थीणं च सरिस उदयद्धा।
तत्ता मुहुत्तअंते कमसो पुरिसादिउदयद्धा।।४८३।।

अर्थ – अनिवृत्तिकरण के प्रथम भाग के पहले समय से लेकर नपुंसकवेद और स्त्रीवेद के उदय का काल समान है, परंतु थोड़ा है। इससे पुरुषवेद और संज्वलन ४ का उदय काल यथासंभव अंतर्मुहूर्त क्रम से अधिक-अधिक है।।४८३।।

नपुंसकवेद, स्त्रीवेद	पुरुषवेद	स. क्रोध	स. मान	स. माया	स. लोभ
समान अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त अधिक	उत्तरोत्तर अंतर्मुहूर्त अधिक →			

पुरिसोदएण चडिदे बंधुदयाणं च जुगवदुच्छित्ती।
सेसोदयेण चडिदे उदयदुचरिमम्हि पुरिसबंधछिदी।।४८४।।

अर्थ – पुरुषवेद के उदय सहित जो श्रेणी चढ़ता है, उसके पुरुषवेद के बंध-उदय व्युच्छित्ति एक काल में होती है। अथवा 'च' शब्द से बंध की व्युच्छित्ति उदय के द्विचरम समय में होती है। और शेष (स्त्रीवेद तथा नपुंसकवेद) के उदय सहित जो श्रेणी चढ़ता है, उसके पुरुषवेद की बंध व्युच्छित्ति उदय के द्विचरम समय में होती है।।४८४।।

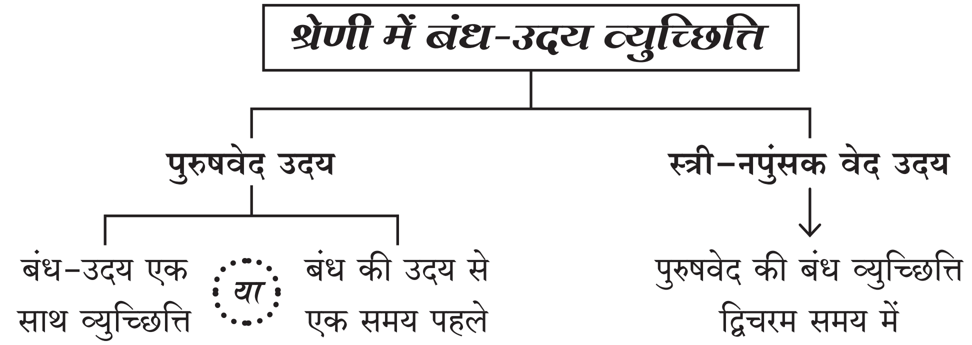

पणबंधगम्मि बारस भंगा दो चेव उदयपयडीओ।
दोउदये चदुबंधे बारेव हवंति भंगा हु।।४८५।।
कोहस्स य माणस्स य मायालोहाणियट्टिभागम्हि।
चदुतिदुगेक्कं भंगा सुहुमे एक्को हवे भंगो।।४८६।।

अर्थ – जहाँ ५ प्रकृतियों का बंध है ऐसे अनिवृत्तिकरण में कषाय और वेद इन २ प्रकृतियों का ही उदय है, (इस कारण ४ कषाय और ३ वेद को गुणा करने से) १२ भंग होते हैं। इसी प्रकार जहाँ ४ प्रकृतियों का बंध होता है वहाँ पर भी २ के उदयरूप स्थान में १२ ही भंग होते हैं।।४८५।।

अर्थ – क्रोध मान माया और लोभ के उदयरूप अनिवृत्तिकरण के जिन चार भागों में ४, ३, २, १ के बंध है उनमें क्रम से कषाय बदलने की अपेक्षा ही ४, ३, २, १ भंग हैं। और सूक्ष्मसांपराय में सूक्ष्म लोभ के उदयरूप स्थान में १ ही भंग है। इस प्रकार कुल ११ भंग होते हैं।।४८६।।

इस गाथा के विषय की तालिका पृष्ठ क्र. -(गाथा ४८२)- पर देखें

बारससयतेसीदीठाणवियप्पेहिं मोहिदा जीवा।
पणसीदिसदसगेहिं पयडिवियप्पेहिं ओघम्मि।।४८७।।
एक्क य छक्केयारं दससगचदुरेक्कयं अपुणरुत्ता।
एदे चदुवीसगदा बार दुगे पंच एक्कम्मि।।४८८।।
णवसयसत्तत्तरिहिं ठाणवियप्पेहिं मोहिदा जीवा।
इगिदालूणत्तरिसयपयडिवियप्पेहिं णायव्वा।।४८९।।

अर्थ – ओघ में मोहनीय के सर्व १२८३ उदयस्थानों में तथा ८५०७ प्रकृति भेदों में जगत के चराचर जीव मोहित हो रहे हैं।।४८७।।

अर्थ – १० आदि प्रकृति के क्रम से १,६,११,१०,७,४,१ स्थान अपुनरुक्त हैं। इन ४० स्थानों के २४-२४ भंग है। २ एवं १ प्रकृतिरूप स्थान के क्रमशः १२ भंग तथा ५ भंग अपुनरुक्त है।।४८८।।

अर्थ – ९७७ (अपुनरुक्त) उदयस्थानों के भेद से तथा ६९४१ प्रकृतियों के भेद से तीनलोक के चराचर जीव मोहित हो रहे हैं, ऐसा जानना।।४८९।।

मोहनीय के सर्व उदयस्थान व प्रकृति भेद और अपुनरुक्त उदयस्थान व प्रकृति भेद

उदय प्रकृति	१०	९	८	७	६	५	४	२	कुल	प्रत्येक के भंग	कुल भंग	प्रकृति भंग		सर्व भंग
												२	१	
स्थान	१	६	११	११	११	९	३	१	५३	२४	५३×२४ = १२७२		११	१२७२+११ = १२८३
कुल प्रकृति	१०	५४	८८	७७	६६	४५	१२	२	३५४	२४	३५४×२४ = ८४९६		११	८४९६+११ = ८५०७
पुनरुक्त स्थान	०	०	०	१	४	५	२					१२	६	
अपुनरुक्त स्थान	१	६	११	१०	७	४	१		४०	२४	४०×२४ = ९६०	१२	५	९६०+१२+५ = ९७७
कुल प्रकृति	१०	५४	८८	७०	४२	२०	४		२८८	२४	२८८×२४ = ६९१२	२४	५	६९१२+२४+५ = ६९४१

७ आदि प्रकृति के पुनरुक्त स्थान

गुणस्थान		उदय प्रकृति संख्या				
६	वेदक	७	६	५		अपुनरुक्त
			६			
	उपशम, क्षायिक		६	५	४	अपुनरुक्त
				५		
७	वेदक	७	६	५		पुनरुक्त
			६			
	उपशम, क्षायिक		६	५	४	पुनरुक्त
				५		
८			६	५	४	पुनरुक्त
				५		
पुनरुक्त स्थान		१	४	५	२	

प्रकृति	कितने पुनरुक्त स्थान		किस गुणस्थान में पुनरुक्त		अपुनरुक्त कौन सा	
	कुल			कब	गुणस्थान	स्थान संख्या
७	१	१	७	वेदक सम्यक्त्व	६	१
६	४	२	७	वेदक सहित	६	२
		१	७	वेदक रहित	६	१
		१	८			
५	५	१	७	वेदक सहित	६	१
		२	७	वेदक रहित	६	२
		२	८			
४	२	१	७	वेदक रहित	६	१
		१	८			
२	१	१	९	४ प्रकृतिरूप बंध	९वें में ५ प्रकृतिरूप बंध	
१	६	३	९	३ प्रकृतिरूप बंध	९वें में ४ प्रकृतिरूप बंध	
		२	९	२ प्रकृतिरूप बंध		
		१	९	१ प्रकृतिरूप बंध		

उपयोग, योग, संयम, लेश्या, सम्यक्त्व की अपेक्षा गुणस्थानों में मोह के उदयरूप स्थान और प्रकृतियाँ

उदयट्ठाणं पयडिं सगसगउवजोगजोगआदीहिं।
गुणयित्ता मेलविदे पदसंखा पयडिसंखा य।।४९०।।

अर्थ – ४७९ गाथा के द्वारा बताई गई उदय स्थानों की संख्या और उन स्थानों की प्रकृतियों की संख्या को अपने-अपने गुणस्थानों में संभवते उपयोग, योग और आदि शब्द से संयम, लेश्या, सम्यक्त्व इनसे गुणा करके फिर सबको जोड़ने से जो प्रमाण हो, उतनी ही वहाँ मोह की स्थानसंख्या और प्रकृतियों की संख्या है।।४९०।।

मिच्छदुगे मिस्सतिये पमत्तसत्ते जिणे य सिद्धे य।
पण छस्सत्त दुगं च य उवजोगा होंति दो चेव।।४९१।।
णवणउदिसगसयाहियसत्तसहस्सप्पमाणमुदयस्स।
ठाणवियप्पे जाणसु उवजोगे मोहणीयस्स।।४९२।।
एकावण्णसहस्सं तेसीदिसमण्णियं वियाणाहि।
पयडीणं परिमाणं उवजोगे मोहणीयस्स।।४९३।।

अर्थ – मिथ्यात्वादि २ में, मिश्रादि ३ में, प्रमत्तादि ७ में, सयोगी अयोगी जिन में, और सिद्ध जीवों में उपयोग क्रम से ५, ६, ७, २ और २ होते हैं।।४९१।।

अर्थ – इस प्रकार गुणा करने से उपयोग की अपेक्षा से मोहनीय के उदय स्थानों के भेद ७७९९ जानना।।४९२।।

अर्थ – उपयोग के आश्रय से मोहनीय की प्रकृतियों का प्रमाण ५१०८३ जानना।।४९३।।

उपयोग की अपेक्षा गुणस्थानों में मोह के उदयरूप स्थान और उनकी प्रकृतियाँ

गुण–स्थान	उदयरूप स्थान	कुल स्थान	प्रकृतियों का जोड़	उपयोग	उपयोग अपेक्षा	
					कुल स्थान	प्रकृतियों का जोड़
१	१०,९,९,८ ९,८,८,७	८	६८	३ अज्ञान + २ दर्शन = ५	८ × ५ = ४०	६८ × ५ = ३४०
२	९,८,८,७	४	३२		४ × ५ = २०	३२ × ५ = १६०
३	९,८,८,७	४	३२	३ ज्ञान + ३ दर्शन = ६	४ × ६ = २४	३२ × ६ = १९२
४	९,८,८,७ ८,७,७,६	८	६०		८ × ६ = ४८	६० × ६ = ३६०
५	८,७,७,६ ७,६,६,५	८	५२		८ × ६ = ४८	५२ × ६ = ३१२
६	७,६,६,५ ६,५,५,४	८	४४	४ ज्ञान + ३ दर्शन = ७	८ × ७ = ५६	४४ × ७ = ३०८
७	७,६,६,५ ६,५,५,४	८	४४		८ × ७ = ५६	४४ × ७ = ३०८
८	६,५,५,४	४	२०		४ × ७ = २८	२० × ७ = १४०
कुल प्रत्येक के २४ भंग अपूर्वकरण तक कुल भंग					३२० ×२४ = ७६८०	२१२० × २४ = ५०८८०
९ सवेद भाग	२	१	२	पूर्वोक्त ७	१ × ७ = ७ × १२ = ८४	२ × ७ = १४ × १२ = १६८
	१२ भंग					
९ अवेद भाग	१	१	१	पूर्वोक्त ७	१ × ७ = ७ × ४ = २८	१ × ७ = ७ × ४ = २८
	४ भंग					
१०	१	१	१	पूर्वोक्त ७	१ × ७ = ७ × १ = ७	१ × ७ = ७ × १ = ७
	१ भंग					
मोह के उपयोग की अपेक्षा कुल भंग					७७९९	५१०८३

तिसु तेरं दस मिस्से णव सत्तसु छट्ठयम्मि एक्कारा।
जोगिम्मि सत्त जोगा अजोगिठाणं हवे सुण्णं।।४९४।।
मिच्छे सासण अयदे पमत्तविरदे अपुण्णजोगगदं।
पुण्णगदं च य सेसे पुण्णगदे मेलिदं होदि।।४९५।।
सासणअयदपमत्ते वेगुव्वियमिस्स तं च कम्मयियं।
ओरालमिस्स हारे अडसोलडवग्ग अट्ठवीससयं।।४९६।।
णत्थि णउंसयवेदो इत्थीवेदो णउंसइत्थिदुगे।
पुव्वुत्तपुण्णजोगगचदुसुट्ठाणेसु जाणेज्जो।।४९७।।
तेवण्णणवसयाहियबारसहस्सप्पमाणमुदयस्स।
ठाणवियप्पे जाणसु जोगं पडि मोहणीयस्स।।४९८।।
बिदिये बिगिपणगयदे खदुणवएक्कं खअट्ठचउरो य।
छट्ठे चउसुण्णसगं पयडिवियप्पा अपुण्णम्हि।।४९९।।
पणदालछस्सयाहियअट्ठासीदीसहस्समुदयस्स।
पयडीणं परिसंखा जोगं पडि मोहणीयस्स।।५००।।

अर्थ – मिथ्यात्व, सासादन, असंयत – इन ३ में १३ योग हैं, मिश्र में १०, देशसंयत व अप्रमत्तादि ७ में ९ योग हैं, प्रमत्त में ११ योग हैं, सयोगी के ७ योग हैं, और अयोगी में शून्य है।।४९४।।

अर्थ – मिथ्वात्व, सासादन, असंयत और प्रमत्तविरत – इन ४ में अपर्याप्त योग को प्राप्त तथा पर्याप्त योग को प्राप्त इन दोनों को मिलाकर स्थान प्रमाण और प्रकृतियों का प्रमाण होता है। तथा शेष गुणस्थानों में केवल पर्याप्त योग ही को प्राप्त स्थानप्रमाण और प्रकृतिप्रमाण होता है।।४९५।।

अर्थ – सासादन के वैक्रियिकमिश्र योग में ८ का वर्ग अर्थात् ६४ स्थान है। असंयत के वैक्रियिकमिश्र योग और कार्मण योग में १६ के वर्ग – २५६ स्थान हैं। असंयत के औदारिकमिश्र योग में ८ का वर्ग – ६४ स्थान है। और प्रमत्त के आहारक–आहारकमिश्र योग में १२८ स्थान है।।४९६।।

अर्थ – पूर्वोक्त अपर्याप्तयोग को प्राप्त ४ स्थानों में क्रम से नपुंसकवेद नहीं, स्त्रीवेद नहीं, और शेष २ में नपुंसकवेद व स्त्रीवेद – दोनों ही नहीं हैं, ऐसा जानना।।४९७।।

अर्थ – इस तरह मोहनीय के उदय स्थानों के भेद योग की अपेक्षा से १२९५३ जानना।।४९८।।

अर्थ – सासादन (के वैक्रियिकमिश्र योग) में दो एक पाँच अर्थात् ५१२, असंयत (के वैक्रियिकमिश्र और कार्मण) में शून्य दो नव एक अर्थात् १९२०, 'च' शब्द से असंयत (के औदारिकमिश्र योग) में शून्य आठ चार अर्थात् ४८० और छठे (प्रमत्त के आहारकद्विक) में चार शून्य सात ७०४ अंकरूप प्रकृतियों के भेद अपर्याप्त अवस्था में होते हैं।।४९९।।

अर्थ – इस तरह सब भेदों को मिलाने से मोहनीय की प्रकृतियों की संख्या योग की अपेक्षा ८८६४५ होती है।।५००।।

योग की अपेक्षा गुणस्थानों में मोह के उदयरूप स्थान और उनकी प्रकृतियाँ

गुण-स्थान	उदयरूप स्थान	कुल स्थान	प्रकृतियों का जोड़	योग	योग अपेक्षा: कुल स्थान	योग अपेक्षा: प्रकृतियों का जोड़
१	१०,९,९,८	४	३६	आहारकद्विक छोड़कर शेष १३	४ × १३ = ५२	३६ × १३ = ४६८
	९,८,८,७	४	३२	पर्याप्त योग १० ४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिक- वैक्रियिक काययोग	४ × १० = ४०	३२ × १० = ३२०
२	९,८,८,७	४	३२	आहारकद्विक, वैक्रियिकमिश्र छोड़कर शेष १२	४ × १२ = ४८	३२ × १२ = ३८४
३	९,८,८,७	४	३२	पर्याप्त योग १०	४ × १०=४०	३२ × १० = ३२०
४	९,८,८,७ ८,७,७,६	८	६०		८ × १० = ८०	६० × १० = ६००
५	८,७,७,६ ७,६,६,५	८	५२	४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिक काययोग = ९	८ × ९ = ७२	५२ × ९ = ४६८
६	७,६,६,५ ६,५,५,४	८	४४		८ × ९ = ७२	४४ × ९ = ३९६
७	७,६,६,५ ६,५,५,४	८	४४		८ × ९ = ७२	४४ × ९ = ३९६
८	६,५,५,४	४	२०		४ × ९ =३६	२० × ९ = १८०
कुल **प्रत्येक के २४ भंग** **अपूर्वकरण तक कुल भंग**					**५१२** **×२४** **=१२२८८**	**३५३२** **× २४** **= ८४७६८**

गुण–स्थान		उदयरूप स्थान	कुल स्थान	प्रकृतियों का जोड़	योग	योग अपेक्षा	
						कुल स्थान	प्रकृतियों का जोड़
९	सवेद भाग	२	१	२	पूर्वोक्त ९ योग	१ × ९ = ९	२ × ९ = १८
		१२ भंग				× १२ = **१०८**	× १२ = **२१६**
	अवेद भाग	१	१	१	पूर्वोक्त ९ योग	१ × ९ = ९	१ × ९ = ९
		४ भंग				× ४ = **३६**	× ४ = **३६**
१०		१	१	१	पूर्वोक्त ९ योग	१ × ९ = ९	१ × ९ = ९
		१ भंग				× १ = **९**	× १ = **९**
मोह के पर्याप्त योग की अपेक्षा कुल भंग						**१२४४१**	**८५०२९**
अपर्याप्त योग का प्रमाण							
२		९,८,८,७	४	३२	वैक्रियिकमिश्र काययोग	४ × १ = ४	३२ × १ = ३२
		२ २ १ १ १ १ १ १	१६ भंग (यहाँ नपुंसकवेद का उदय नहीं)			× १६ = **६४**	× १६ = **५१२**
४		९,८,८,७ ८,७,७,६	८	६०	वैक्रियिक मिश्र–कार्माण काययोग	८ × २ =१६	६० × २ = १२०
		२ २ १ १ १ १ १ १	१६ भंग (यहाँ स्त्रीवेद का उदय नहीं)			× १६ =**२५६**	× १६ = **१९२०**
४		९,८,८,७ ८,७,७,६	८	६०	औदारिक मिश्र काययोग	८ × १ = ८	६० × १ = ६०
		२ २ १ १ १ १ १	८ भंग (यहाँ सिर्फ पुरुष वेद का उदय)			× ८ = **६४**	× ८ = **४८०**
आहारक काययोग का प्रमाण							
६		७,६,६,५ ६,५,५,४	८	४४	आहारक–आहारक मिश्र काययोग	८ × २ =१६	४४ × २ = ८८
		पूर्वोक्तवत् ८ भंग				× ८ = **१२८**	× ८ = **७०४**
मोह के योग की अपेक्षा कुल भंग						**१२९५३**	**८८६४५**

तेरससयाणि सत्तरिसत्तेव य मेलिदे हवंतित्ति।
ठाणवियप्पे जाणसु संजमलंबेण मोहस्स।।५०१।।
तेवण्णतिसदसहियं सत्तसहस्सप्पमाणमुदयस्स।
पयडिवियप्पे जाणसु संजमलंबेण मोहस्स।।५०२।।

अर्थ – संयम के अवलंबन से मोहनीय के उदय स्थानों के भेद मिलाने पर १३७७ होते हैं, ऐसा जानना।।५०१।।

अर्थ – संयम के अवलंबन से मोहनीय के उदय प्रकृति के भेद ७३५३ प्रमाण होते हैं, ऐसा जानना।।५०२।।

संयम के आश्रय गुणस्थानों में मोह के उदयरूप स्थान और उनकी प्रकृतियाँ

गुण–स्थान	उदयरूप स्थान	कुल स्थान	प्रकृतियों का जोड़	संयम	संयम अपेक्षा: कुल स्थान	संयम अपेक्षा: प्रकृतियों का जोड़
६	७,६,६,५ / ६,५,५,४	८	४४	सामायिक, छेदोपस्थापना	८ × ३ = २४	४४ × ३ = १३२
७	७,६,६,५ / ६,५,५,४	८	४४	परिहारविशुद्धि = ३	८ × ३ = २४	४४ × ३ = १३२
८	६,५,५,४	४	२०	सामायिक, छेदोपस्थापना	४ × २ = ८	२० × २ = ४०
कुल प्रत्येक के २४ भंग अपूर्वकरण तक कुल भंग					**५६ ×२४ = १३४४**	**३०४ × २४ = ७२९६**
९ **सवेद भाग**	२	१	२	पूर्वोक्त २	१ × २ = २ × १२ = **२४**	२ × २ = ४ × १२ = **४८**
	१२ भंग					
९ **अवेद भाग**	१	१	१	पूर्वोक्त २	१ × २ = २ × ४ = **८**	१ × २ = २ × ४ = **८**
	४ भंग					
१०	१	१	१	सूक्ष्मसांपराय	१ × १ = १ × १ = **१**	१ × १ = १ × १ = **१**
	१ भंग					
मोह के संयम के आश्रय कुल भंग					**१३७७**	**७३५३**

मिच्छचउक्के छक्कं देसतिये तिण्णि होंति सुहलेस्सा।

जोगित्ति सुक्कलेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु।।५०३।।

पंचसहस्सा बेसयसत्ताणउदी हवंति उदयस्स।

ठाणवियप्पे जाणसु लेस्सं पडि मोहणीयस्स।।५०४।।

अट्ठत्तीससहस्सा बेण्णिसया होंति सत्ततीसा य।

पयडीणं परिमाणं लेस्सं पडि मोहणीयस्स।।५०५।।

अर्थ – मिथ्यात्वादि ४ में ६ लेश्या हैं, देशसंयतादि ३ में ३ शुभलेश्या हैं, उसके बाद सयोगी पर्यंत एक शुक्ल लेश्या ही है, और अयोगी गुणस्थान लेश्या रहित है।।५०३।।

अर्थ – लेश्या प्रति मोहनीय के उदय स्थानों के भेद ५२९७ होते हैं, ऐसा जानना।।५०४।।

अर्थ – लेश्या प्रति मोहनीय की प्रकृतियों का परिमाण ३८२३७ होता है, ऐसा जानना।।५०५।।

लेश्या के आश्रय गुणस्थानों में मोह के उदयरूप स्थान और उनकी प्रकृतियाँ

गुण–स्थान	उदयरूप स्थान	कुल स्थान	प्रकृतियों का जोड़	लेश्या	लेश्या अपेक्षा	
					कुल स्थान	प्रकृतियों का जोड़
१	१०,९,९,८ ९,८,८,७	८	६८	कृष्णादि ६ लेश्याएँ = ६	८ × ६ = ४८	६८ × ६ = ४०८
२	९,८,८,७	४	३२		४ × ६ = २४	३२ × ६ = १९२
३	९,८,८,७	४	३२		४ × ६ = २४	३२ × ६ = १९२
४	९,८,८,७ ८,७,७,६	८	६०		८ × ६ = ४८	६० × ६ = ३६०
५	८,७,७,६ ७,६,६,५	८	५२	पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या = ३	८ × ३ = २४	५२ × ३ = १५६
६	७,६,६,५ ६,५,५,४	८	४४		८ × ३ = २४	४४ × ३ = १३२
७	७,६,६,५ ६,५,५,४	८	४४		८ × ३ = २४	४४ × ३ = १३२
८	६,५,५,४	४	२०	शुक्ल लेश्या	४ × १ = ४	२० × १ = २०
कुल प्रत्येक के २४ भंग अपूर्वकरण तक कुल भंग					**२२० ×२४ = ५२८०**	**१५९२ × २४ = ३८२०८**

९	सवेद भाग	२	१	२	शुक्ल लेश्या	१ × १ = १	२ × १ = २
		१२ भंग				× १२ = **१२**	× १२ = **२४**
	अवेद भाग	१	१	१	शुक्ल लेश्या	१ × १ = १	१ × १ = १
		४ भंग				× ४ = **४**	× ४ = **४**
१०		१	१	१	शुक्ल लेश्या	१ × १ = १	१ × १ = १
		१ भंग				× १ = **१**	× १ = **१**
मोह के लेश्या के आश्रय कुल भंग						**५२९७**	**३८२३७**

अट्ठत्तरीहिं सहिया तेरसयसया हवंति उदयस्स।
ठाणवियप्पे जाणसु सम्मत्तगुणेण मोहस्स।।५०६।।
अट्ठेव सहस्साइं छव्वीसा तह य होंति णादव्वा।
पयडीणं परिमाणं सम्मत्तगुणेण मोहस्स।।५०७।।

अर्थ – सम्यक्त्व गुण सहित मोहनीय के उदय स्थानों के भेद १३७८ होते हैं, ऐसा जानना।।५०६।।

अर्थ – सम्यक्त्व गुण सहित मोहनीय की प्रकृतियों का प्रमाण ८०२६, ऐसा जानना।।५०७।।

सम्यक्त्व सहित गुणस्थानों में मोह के उदयरूप स्थान और उनकी प्रकृतियाँ

गुण–स्थान	उदयरूप स्थान	कुल स्थान	प्रकृतियों का जोड़	सम्यक्त्व	सम्यक्त्व अपेक्षा	
					कुल स्थान	प्रकृतियों का जोड़
४	९,८,८,७	४	३२	क्षायोपशमिक=१	४ × १ = ४	३२ × १ = ३२
	८,७,७,६	४	२८	औपशमिक, क्षायिक = २	४ × २ = ८	२८ × २ = ५६
५	८,७,७,६	४	२८	क्षायोपशमिक=१	४ × १ = ४	२८ × १ = २८
	७,६,६,५	४	२४	औपशमिक, क्षायिक = २	४ × २ = ८	२४ × २ = ४८
६	७,६,६,५	४	२४	क्षायोपशमिक=१	४ × १ = ४	२४ × १ = २४
	६,५,५,४	४	२०	औपशमिक, क्षायिक = २	४ × २ = ८	२० × २ = ४०
७	७,६,६,५	४	२४	क्षायोपशमिक=१	४ × १ = ४	२४ × १ = २४
	६,५,५,४	४	२०	औपशमिक, क्षायिक = २	४ × २ = ८	२० × २ = ४०

गुण–स्थान		उदयरूप स्थान	कुल स्थान	प्रकृतियों का जोड़	सम्यक्त्व	सम्यक्त्व अपेक्षा कुल स्थान	सम्यक्त्व अपेक्षा प्रकृतियों का जोड़
८		६,५,५,४	४	२०	औपशमिक, क्षायिक = २	४ × २ = ८	२० × २ = ४०
कुल प्रत्येक के २४ भंग अपूर्वकरण तक कुल भंग						**५६ ×२४ = १३४४**	**३३२ × २४ = ७९६८**
९	**सवेद भाग**	२	१	२	पूर्वोक्त २	१ × २ = २	२ × २ = ४
		१२ भंग				× १२ = २४	× १२ = ४८
	अवेद भाग	१	१	१	पूर्वोक्त २	१ × २ = २	१ × २ = २
		४ भंग				× ४ = ८	× ४ = ८
१०		१	१	१	पूर्वोक्त २	१ × २ = २	१ × २ = २
		१ भंग				× १ = २	× १ = २
मोह के सम्यक्त्व सहित कुल भंग						**१३७८**	**८०२६**

यहाँ जैसे उपयोग, योग, संयम, लेश्या, सम्यक्त्व के आश्रय से मोहनीय के उदय स्थान और उनके प्रकृति भेद कहे, वैसे ही जीवसमासों में, गति आदि मार्गणाओं में तथा आगे कहे जायेंगे ऐसे ४१ जीवपदों में आगम के अनुसार मोहनीय के उदय स्थान भेद १३७८ और प्रकृति भेद ८०२६ जानना

अट्ठ य सत्त य छक्क य चदुतिदुगेगाधिगाणि वीसाणि।
तेरस बारेयारं पणादि एगूणयं सत्तं।।५०८।।

अर्थ – मोहनीय के सत्त्वस्थान ८,७,६,४,३,२,१ से अधिक २० (अर्थात् २८, २७, २६, २४, २३, २२, २१) तथा १३, १२, ११, ५ और इससे भी १-१ कम (अर्थात् ४, ३, २, १) स्थान हैं।।५०८।।

मोहनीय के कुल सत्त्वस्थान (१५); हेतु सहित

सत्त्वस्थान	घटायी गई प्रकृतियाँ	हेतु
२८	0	सम्यक्त्व प्राप्ति (मिथ्यात्व के ३ टुकड़े)
२७	सम्यक्त्व प्रकृति	उद्वेलना
२६	+ मिश्र	उद्वेलना, अनादि मिथ्यात्व
२४	अनंतानुबंधी चतुष्क	विसंयोजना
२३	+ मिथ्यात्व	क्षय
२२	+ मिश्र	
२१	+ सम्यक्त्व प्रकृति	
१३	+ मध्यम ८ कषाय	
१२	+ स्त्रीवेद/नपुंसकवेद	
११	+ स्त्रीवेद/नपुंसकवेद	
५	+ हास्यादि ६ नोकषाय	
४	+ पुरुषवेद	
३	+ संज्वलन क्रोध	
२	+ संज्वलन मान	
१	+ संज्वलन माया	

तिण्णेगे एगेगं दो मिस्से चदुसु पण णियट्टीए।
तिण्णि य थूलेयारं सुहुमे चत्तारि तिण्णि उवसंते।।५०९।।
पढमतियं च य पढमं पढमं चउवीसयं च मिस्सम्हि।
पढमं चउवीसचऊ अविरददेसे पमत्तिदरे।।५१०।।
अडचउरेक्कावीसं उवसमसेढिम्हि खवगसेढिम्हि।
एक्कावीसं सत्ता अट्ठकसायाणियट्टित्ति।।५११।।
तेरस बारेयारं तेरस बारं च तेरसं कमसो।
पुरिसित्थिसंढवेदोदयेण गदपणगबंधम्हि।५१२।।
पुरिसोदयेण चडिदे अंतिमखंडंतिमोत्ति पुरिसुदओ।
तप्पणिधिम्मिदराणं अवगदवेदोदयं होदि।।५१३।।
तट्ठाणे एक्कारस सत्ता तिण्होदयेण चडिदाणं।
सत्तण्हं समग छिदी पुरिसे छण्हं च णवगमत्थित्ति।।५१४।।

इदि चदुबंधक्खवगे तेरस बारस एगार चउसत्ता।
तिदुइगिबंधे तिदुइगि णवगुच्छिट्ठाणमविवक्खा।।५१५।।

अर्थ – मिथ्यात्व में ३ स्थान हैं, सासादन में १, मिश्र में २, असंयतादि ४ में ५-५, निवृत्ति (अर्थात् अपूर्वकरण) में ३, स्थूलकषाय (अर्थात् ९वें) में ११, सूक्ष्मसांपराय में ४, उपशांतकषाय में ३ सत्त्वस्थान हैं।।५०९।।

अर्थ – मिथ्यात्व में पहले ३ सत्त्वस्थान है। सासादन में पहला(२८ प्रकृतिरूप) ही है, मिश्र में पहला और २४ प्रकृतिरूप ये दो स्थान हैं। अविरत, देशविरत, प्रमत्त और अप्रमत्त इनमें पहला तथा २४ आदि प्रकृतिरूप ४(२४, २३, २२, २१) सत्त्वस्थान हैं।।५१०।।

अर्थ – उपशमश्रेणी में (४ गुणस्थानों में) २८, २४, २१ प्रकृतिरूप ३-३ स्थान है। क्षपकश्रेणी में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के अष्ट कषाय वाले भाग में २१ प्रकृतिरूप १-१ स्थान है।।५११।।

अर्थ – उसके ऊपर पुरुषवेद और ४ संज्वलन – इन ५ के बंध वाले अनिवृत्तिकरण के भाग में – जो पुरुषवेद के उदयसहित श्रेणी चढ़े उसके १३, १२, ११ प्रकृतिरूप ३ स्थान हैं। स्त्रीवेद के उदयसहित श्रेणी चढ़नेवाले के १३ और (नपुंसकवेद के क्षय होने पर) १२ का स्थान है। नपुंसकवेद के उदय से श्रेणी चढ़नेवाले के १३ प्रकृतिरूप स्थान है, क्योंकि उसके नपुंसकवेद और स्त्रीवेद इन दोनों के क्षय होने का प्रारंभ एक काल में ही होता है।।५१२।।

अर्थ – पुरुषवेद के उदयसहित क्षपक श्रेणी चढ़नेवालों के अंतिम खंड के अंतिम समय पर्यंत (नपुंसकवेद क्षपणाखंड-स्त्रीवेद क्षपणाखंड-पुरुषवेद क्षपणाखंडों में अंतिम के खंड (भाग) के अंत समय तक) हमेशा पुरुषवेद का उदय और बंध पाया जाता है। उसी पुरुषवेद क्षपणा के अंतिम के खंड के समीप अन्य वेद अर्थात् नपुंसक-स्त्रीवेद इन दोनों के उदय का अभाव होता है।।५१३।।

अर्थ – उन पूर्वोक्त दोनों स्थानों में ७ नोकषाय और ४ संज्वलन – इस तरह ११ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है। ३ वेदों में से किसी भी वेद के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले के ७ नोकषाय की व्युच्छित्ति एक काल में ही होती है, परंतु विशेष यह है कि पुरुषवेद के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले के पुरुषवेद के नूतन समयप्रबद्ध पाये जाते हैं इसलिये उसके ६ नोकषाय की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।।५१४।।

अर्थ – इस पूर्वोक्त प्रकार से क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले के ४ प्रकृतियों के बंधवाले अनिवृत्तिकरण के भाग में १३, १२, ११, और ४ प्रकृतिरूप सत्त्व है। तथा ३, २, १ प्रकृति के बंध होने वाले भागों में ३, २, १ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान पाया जाता है। यहाँ नूतन समयप्रबद्ध और उच्छिष्टावली (उदय से बचे हुए प्रथम स्थिति के निषेक) की विवक्षा ग्रहण नहीं की है।।५१५।।

गुणस्थानों में मोहनीय के सत्त्वस्थान

गुणस्थान	संख्या	सत्त्वस्थान	किसके संभव
१	३	२८, २७, २६	चारों गति के जीव उद्वेलना करते हैं
२	१	२८	
३	२	२८, २४	अनंतानुबंधी का विसंयोजक
४ से ७	५	२८,२४,२३,२२,२१	विसंयोजक, दर्शन मोह क्षपक
८	३	२८, २४, २१	विसंयोजक, क्षायिक सम्यक्त्वी
९	११	२८,२४,२१,१३,१२,११,५,४,३,२,१	पूर्वोक्त, चारित्र मोह क्षपक
१०	४	२८, २४, २१, १	
११	३	२८, २४, २१	विसंयोजक, क्षायिक सम्यक्त्वी

क्षपक अनिवृत्तिकरण के सत्त्वस्थान

श्रेणी चढ़नेवाले –								
नपुंसकवेद से			स्त्रीवेद से			पुरुषवेद से		
व्युच्छित्ति	बंध	सत्त्व	व्युच्छित्ति	बंध	सत्त्व	व्युच्छित्ति	बंध	सत्त्व
		२१			२१			२१
	५	१३	नपुंसकवेद	५	१३		५	१३
	५	१३		५	१२	नपुंसकवेद	५	१३
स्त्री–नपुंसकवेद	४	१३	स्त्रीवेद	४	१२	स्त्रीवेद	५	१२
७ नोकषाय	४	११	७ नोकषाय	४	११	७ नोकषाय	५	११
	४	४		४	४		४	४
	३	३		३	३		३	३
	२	२		२	२		२	२
	१	१		१	१		१	१

तिण्णेव दु बावीसे इगिवीसे अट्ठवीस कम्मंसा।।
सत्तरतेरेणवबंधगेसु पंचेव ठाणाणि।।५१६।।
पंचविधचदुविधेसु य छ सत्त सेसेसु जाण चत्तारि।
उच्छिट्ठावलिणवकं अविवेक्खिय सत्तठाणाणि।।५१७।।जुम्मम्।।

अर्थ – मोहनीय के २२ प्रकृतिरूप बंधस्थान में कर्मांश अर्थात् सत्त्वस्थान २८–२७–२६ प्रकृतिरूप ३ है। २१ प्रकृतिरूप बंधस्थान में २८ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है। १७–१३–९ के बंधस्थानों

में २८ प्रकृतिरूप आदि ५-५ सत्त्वस्थान है। ५ के बंधस्थान में ६ सत्त्वस्थान हैं, ४ के बंधस्थान में ७ सत्त्वस्थान हैं, तथा शेष (३-२-१) के बंधस्थान में ४-४ सत्त्वस्थान हैं। **ये सत्त्वस्थान उच्छिष्टावली और नूतन बंधरूप समयप्रबद्ध की अपेक्षा नहीं करके ही कहे गये है।।५१६-५१७।।**

बंधस्थानों में सत्त्वस्थान

बंधस्थान	संख्या	सत्त्वस्थान
२२	३	२८, २७, २६
२१	१	२८
१७, १३, ९	५	२८, २४, २३, २२, २१
५	६	२८, २४, २१, १३, १२, ११
४	७	२८, २४, २१, १३, १२, ११, ४
३	४	२८, २४, २१, ३
२	४	२८, २४, २१, २
१	४	२८, २४, २१, १

दसणवपण्णरसाइं बंधोदयसत्तपयडिठाणाणि।
भणिदाणि मोहणिज्ने एत्तो णामं परं वोच्छं।।५१८।।

अर्थ - इस प्रकार मोहनीय के १०,९ और १५ बंध, उदय, सत्त्व स्थान कहे। इसके आगे नाम कर्म के कहेंगे।।५१८।।

मोहनीय के कुल बंध, उदय, सत्त्व-स्थान

बंधस्थान	उदयस्थान	सत्त्वस्थान
↓	↓	↓
१०	९	१५

णिरया पुण्णा पण्हं बादरसुहुमा तहेव पत्तेया।
वियलाऽसण्णी सण्णी मणुवा पुण्णा अपुण्णा य।।५१९।।
सामण्णतित्थकेवलि उहयसमुग्घादगा य आहारा।
देवावि य पज्ञत्ता इदि जीवपदा हु इगिदाला।।५२०।।जुम्मम्।।

अर्थ - नारकी सर्व पर्याप्त ही हैं, (पृथ्वीकाय १ जलकाय २ तेजकाय ३ वायुकाय ४ साधारणवनस्पतिकाय ५ - ये) ५ बादर और सूक्ष्म हैं, प्रत्येक वनस्पतिकाय, विकलत्रय, असंज्ञी पंचेंद्री, संज्ञी पंचेंद्री, और मनुष्य - ये १७ पर्याप्त तथा अपर्याप्त है। सामान्यकेवली, तीर्थंकर केवली, और दोनों ही समुद्घात करने वाले, आहारकशरीर वाले, और देव - ये ६ पर्याप्त ही होते हैं। इस प्रकार कुल ४१ जीवपद हैं।।५१९-५२०।।

नाम कर्म के आधारभूत ४१ जीवपद

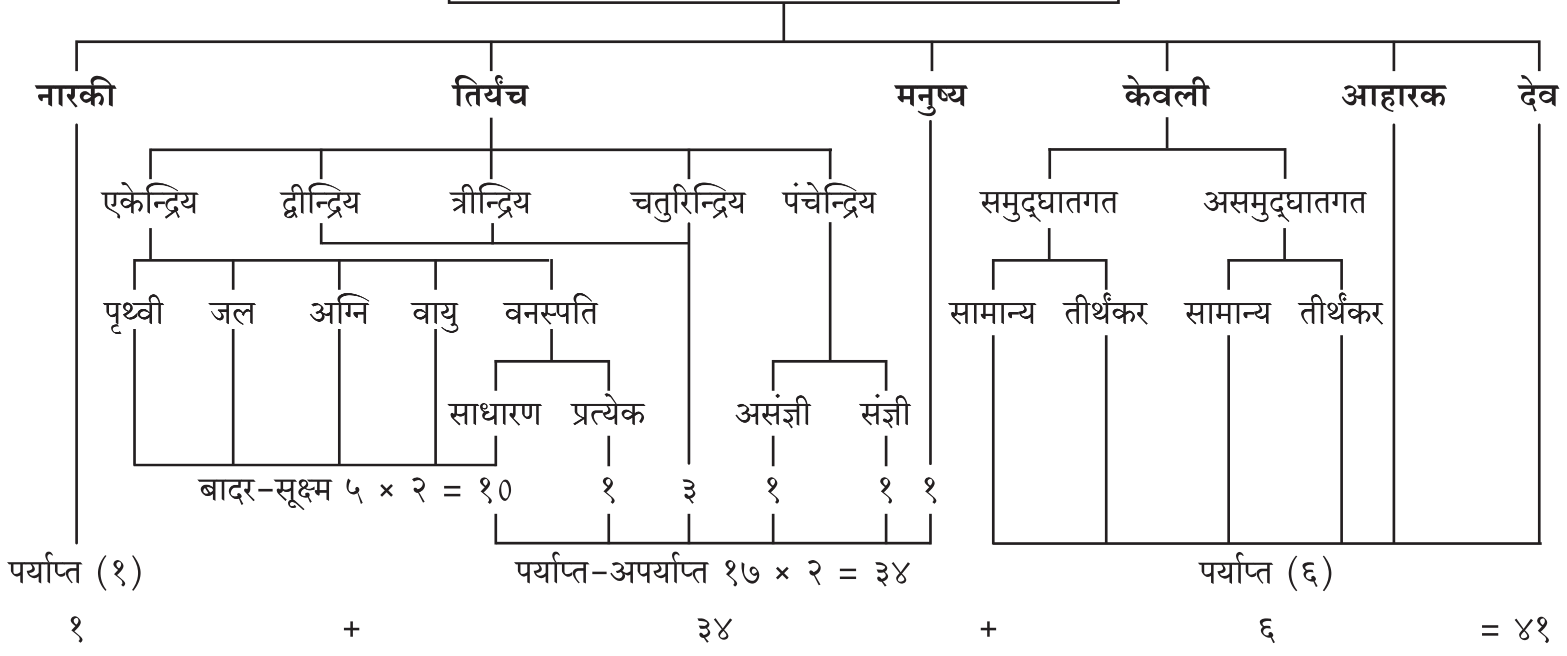

३६ कर्मपद

= ४१ जीवपद – ४ केवली – १ आहारक

४ केवली → क्योंकि केवलीपना जीव का स्वभाव है, इसलिये ये सिर्फ जीवपद ही है

१ आहारक → देवगति सहित ही आहारक का बंध है, इसलिये देवगति में गर्भित किया है

बंधादि में कौन से पद की विवक्षा

	पद	कारण
बंध	कर्म पद	इन प्रकृतिरूप नामकर्म का बंध होता है
उदय – सत्त्व	जीव पद	इनका उदय सत्त्व जीव के पाया जाता है

तेवीसं पणवीसं छव्वीसं अट्ठवीसमुगतीसं।
तीसेक्कतीसमेवं एक्को बंधो दुसेढिम्हि।।५२१।।

अर्थ – (नामकर्म के बंधस्थान) २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ प्रकृतिरूप और १ प्रकृतिरूप (आठवां बंधस्थान) दोनों श्रेणियों में बँधता है।।५२१।।

नामकर्म के कुल बंध स्थान (८)

बंधस्थान	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१
गुणस्थान	८वें के छठे भाग तक यथासंभव							❊ ८वें के सांतवें भाग से १०वें तक ❊ दोनों श्रेणी में

ठाणमपुण्णेण जुदं पुण्णेण य उवरि पुण्णगेणेव।
तावदुगाणण्णदरेणण्णदरेणमरणिरयाणं।।५२२।।
णिरयेण विणा तिण्हं एक्कदरेणेवमेव सुरगइणा।
बंधंति विणा गइणा जीवा तज्जोगपरिणामा।।५२३।।जुम्मम्।।

अर्थ – (२३ प्रकृतिरूप स्थान) अपर्याप्त प्रकृति सहित बंधता हैं, (२५ प्रकृतिरूप स्थान) पर्याप्तप्रकृति सहित और 'च' शब्द से अपर्याप्तसहित भी बंधता है। २६ आदि स्थान पर्याप्त प्रकृति सहित ही बंधते हैं। उनमें भी २६ प्रकृतिरूप स्थान आतप उद्योत इन दोनों में से कोई एक प्रकृति सहित बंधता है, (२८ प्रकृतिरूप स्थान) देवगति और नरकगति में से कोई १ गति सहित बंधता है, (२९ प्रकृतिरूप और ३० प्रकृतिरूप – ये २ स्थान) नरकगति के बिना तिर्यंच आदि ३ गतियों में से कोई १ गति सहित बंधते हैं, (३१ प्रकृतिरूप स्थान) देवगति के सहित बंधता है और १ प्रकृतिरूप स्थान किसी गति कर्म के साथ नहीं बंधता। इस प्रकार इन स्थानों को जीव उन-उन स्थान योग्य परिणामों से युक्त होने पर बांधते है।।५२२-५२३।।

कौन सा बंध स्थान किस कर्मपद सहित बंधता है ?

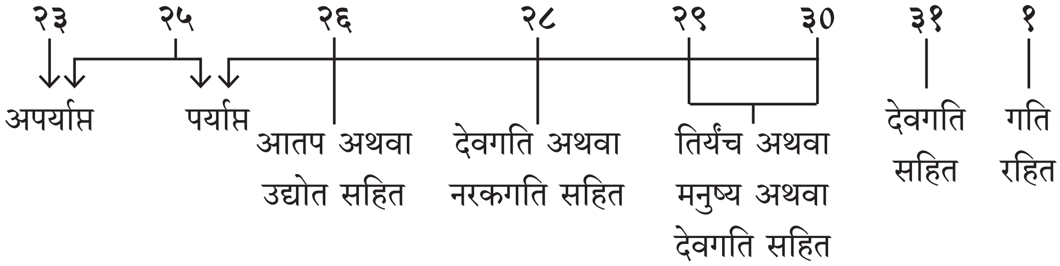

भूबादरपज्ञेत्तेणादावं बंधजोग्गमुज्ञोवं।
तेउतिगूणतिरिक्खपसत्थाणं एयदरगेण।।५२४।।

अर्थ - आतप प्रकृति पृथ्वीकाय बादर पर्याप्त सहित ही बंधयोग्य है, और उद्योत प्रकृति तेजकायादि ३(तेज, वायु, साधारण वनस्पति) के बिना शेष तिर्यंच संबंधी प्रशस्त प्रकृतियों में से किसी भी १ प्रकृति के साथ बंधयोग्य है।।५२४।।

आतप-उद्योत प्रकृति किस जीवपद सहित बंधती है ?

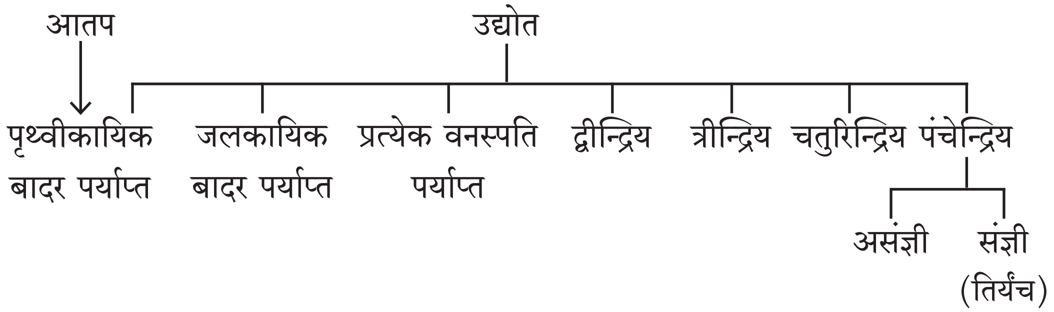

णरगइणामरगइणा तित्थं देवेण हारमुभयं च।
संजदबंधट्ठाणं इदराहि गईहि णत्थित्ति।।५२५।।

अर्थ - तीर्थंकर प्रकृति को देव और नारक असंयत तो मनुष्यगति सहित ही बांधते हैं, और असंयतादि ४ गुणस्थान वाले मनुष्य देवगति सहित ही बाँधते हैं। तथा आहारकद्विक को अथवा तीर्थंकर प्रकृति, आहारक दोनों को देवगति सहित ही बाँधते हैं, क्योंकि संयत के योग्य बंधस्थान देवगति के बिना अन्य गतियों सहित बंधता ही नहीं है।।५२५।।

तीर्थंकर प्रकृति और आहारकद्विक को कौन, किस गति/स्थान सहित कब बाँधता हैं

प्रकृति	स्वामी (कौन)	किस गति सहित	किस स्थान सहित	किस गुणस्थान में (कब)
तीर्थंकर प्रकृति	देव,नारकी	मनुष्य	३०	४थें
	मनुष्य	देव	२९	४थें से ८वें के छठे भाग तक
आहारकद्विक	मनुष्य	देव	३०	७वें से ८वें के छठे भाग तक
तीर्थंकर प्रकृति,आहारकद्विक			३१	

णामस्स णव धुवाणि य सरूणतसजुम्मगाणमेक्कदरं।
गइजाइदेहसंठाणाणूणेक्कं च सामण्णा।।५२६।।
तसबंधेण हि संहदिअंगोवंगाणमेक्कदरगं तु।
तप्पुण्णेण य सरगमणाणं पुण एगदरगं तु।।५२७।।
पुण्णेण समं सव्वेणुस्सासो णियमदो दु परघादो।
जोगट्ठाणे तावं उज्जोवं तित्थमाहारं।।५२८।।विसेसयं।।

अर्थ - नामकर्म की तैजसादि ९ ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ; स्वर के बिना त्रसादि नौ युगल में से एक-एक - ऐसे ९, गति ४, जाति ५, शरीर ३, संस्थान ६, आनुपूर्वी ४ इनमें से एक-एक ऐसे ५; सब मिलकर २३ प्रकृतियाँ सामान्य बंधरूप है। त्रस प्रकृति के साथ ही ६ संहनन, ३ अंगोपांग में से किसी १ का बंध होता है। त्रस पर्याप्त प्रकृति सहित स्वर युगल तथा विहायोगति युगल में से १-१ का बंध होता है। पर्याप्त प्रकृति सहित जो सब त्रस, स्थावर हैं; उनके साथ परघात और उच्छ्वास नियम से बंध योग्य हैं। आतप, उद्योत, तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक - ये प्रकृतियाँ पहले कहे हुए योग्य नामपदों में बंध योग्य है।।५२६-५२८।।

सभी के बंधने वाली २३ सामान्य प्रकृतियाँ

९ ध्रुवबंधी	+ ९ युगल	+ ५ शेष
तैजस, कार्मण; वर्णादि ४; अगुरुलघु, उपघात, निर्माण	स्वर बिना ९ युगल में से १-१	४ गति, ५ जाति, ३ शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी → इनमें से १-१

प्रकृति बंध - नियम

पृष्ठ क्र. १६२ पर उदय संबंधी नियम देखें। जिस प्रकृति का जिसके साथ उदय होता है बंध भी उसी प्रकृति के बंधने पर होगा।

तित्थेणाहारदुगं एक्कसराहेण बंधमेदीदि।
पक्खित्ते ठाणाणं पयडीणं होदि परिसंखा।।५२९।।
एयक्खअपज्जत्तं इगिपज्जत्त बितिचपणरापज्जत्तं।
एइंदियपज्जत्तं सुरणिरयगईहिं संजुत्तं।।५३०।।
पज्जत्तगबितिचप मणुसदेवगदिसंजुदाणि दोण्णि पुणो।
सुरगइजुदमगइजुदं बंधट्ठाणाणि णामस्स।।५३१।।जुम्मं।।

अर्थ – तीर्थंकर प्रकृति सहित आहारकद्विक एक काल में बंध को प्राप्त होती है, इस कारण पूर्वोक्त २३ के बंध में यथासंभव प्रकृतियों के मिलाने से स्थानों और प्रकृतियों की संख्या होती है।।५२९।।

अर्थ – एकेन्द्रिय अपर्याप्त सहित २३ का १ स्थान हैं; एकेन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-अपर्याप्त तथा मनुष्य अपर्याप्त सहित २५ के ६ स्थान हैं; एकेन्द्रिय पर्याप्त आतप, एकेन्द्रिय पर्याप्त उद्योत सहित २६ के २ स्थान हैं; देवगति तथा नरकगति सहित २८ के २ स्थान हैं; द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त सहित ४ स्थान, मनुष्यगति, देवगति तीर्थंकर प्रकृति सहित – इस प्रकार २९ के ६ स्थान हैं; पुनः द्वीन्द्रिय पर्याप्त आदि उद्योत सहित ४ स्थान, मनुष्यगति तीर्थंकर प्रकृति सहित, देवगति आहारकद्विक सहित – इस प्रकार ३० के ६ स्थान हैं; देवगति आहारकद्विक तीर्थंकर प्रकृति सहित १ स्थान ३१ का है; और यशःकीर्ति सहित १ का १ स्थान है। इस प्रकार नामकर्म के बंधस्थान है।।५३०-५३१।।

२३ आदि बंध स्थानों में प्रकृतियाँ

<table>
<tr><th>स्थान</th><th>संख्या</th><th colspan="2">पद</th><th colspan="2">प्रकृतियाँ</th></tr>
<tr><td>२३</td><td>१</td><td>एकेन्द्रिय</td><td>अपर्याप्त</td><td>२३ सामान्य</td><td></td></tr>
<tr><td rowspan="3">२५(६)</td><td>१</td><td>"</td><td>पर्याप्त</td><td>२३ सामान्य + २</td><td>परघात, उच्छ्वास</td></tr>
<tr><td>४</td><td>(त्रस) द्वी, त्री,चौ,पंचे</td><td rowspan="2">अपर्याप्त</td><td rowspan="2">२३ सामान्य + २</td><td rowspan="2">संहनन, औ. अंगोपांग</td></tr>
<tr><td>१</td><td>मनुष्य</td></tr>
<tr><td>२६(२)</td><td>२</td><td>एकेन्द्रिय</td><td rowspan="5">पर्याप्त</td><td>एकेन्द्रिय पर्याप्त २५+१</td><td>आतप/उद्योत में कोई १</td></tr>
<tr><td>२८(२)</td><td>२</td><td>नरक, देव</td><td>२३ सामान्य + ५</td><td>परघात, उच्छ्वास, स्वर, विहायोगति, वै.अंगोपांग</td></tr>
<tr><td rowspan="3">२९(६)</td><td>४</td><td>त्रस</td><td>त्रसअपर्याप्त २५-१+५</td><td rowspan="2">-१= अपर्याप्त पर्याप्त,परघात,उच्छ्वास, स्वर, विहायोगति = ५</td></tr>
<tr><td>१</td><td>मनुष्य</td><td>मनुष्य अपर्याप्त २५ - १ + ५</td></tr>
<tr><td>१</td><td>देव</td><td>देव सामान्य २८+१</td><td>तीर्थंकर प्रकृति</td></tr>
</table>

३०(६)	४	त्रस	पर्याप्त	त्रस पर्याप्त २९+१	उद्योत
	१	मनुष्य		मनुष्य पर्याप्त २९+१	तीर्थंकर प्रकृति
	१	देव		देव सामान्य २८+२	आहारकद्विक
३१	१	देव		" + १	तीर्थंकर प्रकृति
१	१	–			यश:कीर्ति

संठाणे संहडणे विहायजुम्मे य चरिमछज्जुम्मे।
अविरुद्धेक्कदरादो बंधट्ठाणेसु भंगा हु।।५३२।।

अर्थ – ६ संस्थान, ६ संहनन, विहायोगति युगल और अंत के स्थिरादि ६ युगल – इनमें अविरुद्ध १-१ का ग्रहण करने से और उनका आपस में गुणा करने पर बंधस्थानों में (४६०८) भंग होते हैं।।५३२।।

३६ कर्मपदों में नामकर्म के बंधस्थानों के भंग

६ संस्थान	६ संहनन	विहायोगति युगल	स्वर, स्थिर, शुभ, सुभग, आदेय, यश:कीर्ति – इनके प्रतिपक्षीरुप युगल
६ ×	६ ×	२ ×	२ × २ × २ × २ × २ × २
कुल = ४६०८ भंग			

तत्थासत्थो णारयसव्वापुण्णेण होदि बंधो दु।
ऐक्कदराभावादो तत्थेक्को चेव भङ्गो दु।।५३३।।
तत्थासत्थं एदि हु साहारणस्थूलसव्वसुहुमाणं।
पज्जत्तेण य थिरसुहजुम्मेक्कदरं तु चदुभङ्गा।।५३४।।
पुढवीआऊतेऊवाऊपत्तेयवियलसण्णीणं।
सत्थेण असत्थं थिरसुहजसजुम्मट्ठभंगा हु।।५३५।।
सण्णिस्स मणुस्सस्स य ओघेक्कदरं तु मिच्छभंगा हु।
छादालसयं अट्ठ य बिदिये बत्तीससयभंगा।।५३६।।
मिस्साविरदमणुस्सट्ठाणे मिच्छादिदेवजुदठाणे।
सत्थं तु पमत्तंते थिरसुहजसजुम्मगट्ठभंगा हु।।५३७।।

अर्थ – उन प्रशस्त तथा अप्रशस्त बंधरूप प्रकृतियों में नरकगति सहित तथा त्रस-स्थावर युक्त सब अपर्याप्त सहित दुर्भगादि अप्रशस्त प्रकृतियों का ही बंध होता है, क्योंकि इनमें बंधयोग्य प्रकृतियों की प्रतिपक्षी प्रकृतियों का बंध नहीं होता। इसलिये (उक्त २८-२३-२५ के स्थानों में) अप्रशस्त १-१ प्रकृति का ही बंध होने से १-१ ही भंग है।।५३३।।

अर्थ – उन एकेन्द्रिय के ११ भेदों में साधारण वनस्पति बादर पर्याप्त तथा सर्व सूक्ष्म पर्याप्त सहित

२५ के बंधस्थान में १-१ अप्रशस्त प्रकृति ही बंध को प्राप्त होती है। विशेषता यह हैं कि स्थिर-शुभ के युगलों में से किसी १-१ का बंध होने से २५ के ६ स्थानों में ४-४ भंग होते हैं।।५३४।।

अर्थ - पृथ्वीकाय, जलकाय, तेजकाय, वायुकाय, प्रत्येक वनस्पति, द्वीन्द्रियादि विकल ३, असंज्ञी पंचेंद्री - इनके (अविरोधी त्रस बादर पर्याप्तादि से हुए जो २५, २६, २९, ३० प्रकृतिरूप स्थान हैं, उनमें त्रस बादर आदि प्रशस्त प्रकृतियों के साथ यथासंभव १-१ दुर्भगादि अप्रशस्त प्रकृतियों का ही बंध होता है, और) स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति - इन ३ युगलों में से १-१ प्रशस्त अथवा अप्रशस्त किसी का भी बंध होता है। अतएव इन ३ युगलों की प्रकृति बदलने की अपेक्षा ८-८ भंग होते हैं।।५३५।।

अर्थ - तिर्यंचगति पर्याप्त सहित सैनी (के २९ के स्थान और उद्योत सहित ३० के स्थान में), तथा मनुष्यगति पर्याप्त सहित (२९ के स्थान में) सामान्य (६ संस्थान, ६ संहनन, विहायोगति आदि ७ युगल, इनमें १-१ सभी प्रकृतियों का बंध संभव है। अतएव पूर्वोक्त १-१ स्थान में संस्थानादि की १-१ प्रकृति के बदलने) से मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ४६०८ भंग होते हैं। और दूसरे गुणस्थान (में २९ के और ३० के दोनों ही स्थानों) में ३२००-३२०० भंग होते हैं।।५३६।।

अर्थ - (देव, नारकी) मिश्र और अविरत वाले पर्याप्त मनुष्यगति सहित (२९ के स्थान में), देव, नारकी असंयत के मनुष्यगति पर्याप्त तीर्थंकर प्रकृति सहित ३० के स्थान में, मिथ्यात्वादि प्रमत्त पर्यंत जीवों के देवगति सहित स्थान में प्रशस्त प्रकृति का बंध अप्रशस्त प्रकृति के साथ होता है, इससे स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति - इन ३ युगलों की अपेक्षा ८-८ भंग कहे हैं। (अप्रमत्त से लेकर सूक्ष्मसांपराय तक १-१ ही भंग है।।५३७।।

मिथ्यात्व में नामकर्म के बंधस्थानों के भंग

स्थान	कर्मपद	विवरण	संख्या	भंग	भंग विवरण (प्रकृतियाँ)
२८	नरकगति		१	१	९+१०+९ = ९ ध्रुवबंधी + त्रस चतुष्क, अस्थिरादि ६ अप्रशस्त(१०) + नरकद्विक, पंचेन्द्रिय, वैक्रियिकद्विक, हुंडक संस्थान, परघात, उच्छ्वास, अ. विहायोगति(९)
२३	एकेन्द्रिय अपर्याप्त	सूक्ष्म व बादर - पृथ्वी,जल, अग्नि,वायु, साधारण वन. = ५×२=१० + बादर प्रत्येक वन. १	११	१	९+९+५ = ९ ध्रुवबंधी + विवक्षित जीवपद अनुसार सूक्ष्म/बादर तथा साधारण/प्रत्येक(२); स्थावर, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयश:कीर्ति(७) + तिर्यंचद्विक, एकेन्द्रिय, औदारिक शरीर, हुंडक संस्थान (५)

<table>
<tr><th>स्थान</th><th>कर्मपद</th><th>विवरण</th><th>संख्या</th><th>भंग</th><th colspan="3">भंग विवरण (प्रकृतियाँ)</th></tr>
<tr><td rowspan="2">२५</td><td rowspan="2">त्रस अपर्याप्त</td><td rowspan="2">द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-असंज्ञी, संज्ञी, मनुष्यगति</td><td rowspan="2">६</td><td rowspan="2">१</td><td colspan="3">९+९+७ = ९ ध्रुवबंधी +
त्रस, बादर,अपर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयश:कीर्ति(९) +</td></tr>
<tr><td>विवक्षित जीव पद अनुसार तिर्यंचद्विक/ मनुष्य द्विक(२)</td><td>तिर्यंचद्विक में विवक्षित जीवपद अनु-सार द्वी,त्री,चौ पंचेन्द्रिय(१)</td><td>औदारिकद्विक, हुंडक संस्थान, असंप्राप्ता सृपाटिका संहनन(४)</td></tr>
<tr><td>२५</td><td rowspan="2">एकेन्द्रिय पर्याप्त</td><td>बादर साधारण वनस्पति(१), सर्व सूक्ष्म(५)</td><td>६</td><td>४</td><td colspan="3">स्थिर-शुभ के युगलों में से किसी १-१ का बंध होने से = २ × २ = ४ भंग</td></tr>
<tr><td>२५</td><td>बादर-पृथ्वी, जल,अग्नि, वायु, प्रत्येक वनस्पति</td><td>५</td><td>८</td><td colspan="3" rowspan="5">स्थिर-शुभ-यश:कीर्ति के युगलों में से किसी १-१ का बंध होने से
= २ × २ × २ = ८ भंग</td></tr>
<tr><td>२६</td><td>" आतपयुत</td><td>बादर पृथ्वी</td><td>१*</td><td>८</td></tr>
<tr><td>२६</td><td>" उद्योतयुत</td><td>बादर-पृथ्वी जल, प्रत्येक वनस्पति</td><td>३*</td><td>८</td></tr>
<tr><td>२९</td><td>त्रस पर्याप्त</td><td>द्वी, त्री, चौ, पंचे असंज्ञी</td><td>४</td><td>८</td></tr>
<tr><td>३०</td><td>" उद्योतयुत</td><td>"</td><td>४*</td><td>८</td></tr>
<tr><td>२९</td><td>पर्याप्त</td><td rowspan="2">पंचे संज्ञी तिर्यंच</td><td>१</td><td rowspan="3">४६०८</td><td colspan="3" rowspan="3">संस्थान, संहनन, विहायोगति, स्थिरादि ६ युगल = ६ × ६ × २^७ = ४६०८ भंग</td></tr>
<tr><td>३०</td><td>" उद्योतयुत</td><td>१*</td></tr>
<tr><td>२९</td><td colspan="2">मनुष्यगति पर्याप्त</td><td>१</td></tr>
<tr><td>२८</td><td colspan="2">देवगति</td><td>१</td><td>८</td><td colspan="3">स्थिर-शुभ-यश:कीर्ति के युगल = ८ भंग</td></tr>
<tr><td colspan="3">कुल</td><td>३६</td><td></td><td colspan="3"></td></tr>
<tr><td colspan="8">* ये कर्मपद पूर्व में गर्भित हैं</td></tr>
</table>

सासादनादि गुणस्थानों में नामकर्म के बंधस्थानों के भंग

गुणस्थान	स्थान	कर्मपद	विवरण	भंग	भंग विवरण (प्रकृतियाँ)
२	२९	पर्याप्त संज्ञी तिर्यंच	उद्योत रहित	३२००	संस्थान, संहनन, विहायोगति, स्थिरादि ६ युगल =५×५×$२^{७}$ = ३२०० भंग
	३०		उद्योत सहित		
	२९	मनुष्य पर्याप्त			
३	२९	”		८	स्थिर-शुभ-यश:कीर्ति युगल = २ × २ × २ = ८
४	२९	”		८	
	३०		तीर्थंकरयुत	८	
१ से ६	२८	देवगति		८	
४ से ६	२९		तीर्थंकरयुत	८	
७ से ८वें के छठे भाग तक	२८			१	मात्र प्रशस्त प्रकृतियों का ही बंध हैं
	२९		तीर्थंकरयुत	१	
	३०		आहारकद्विकयुत	१	
	३१		” +तीर्थंकरयुत	१	
८वें के सांतवें भाग से १०वें तक	१	-	यश:कीर्ति मात्र	१	मात्र यश:कीर्ति का ही बंध हैं

गमन (कौन जीव मरकर कहाँ उत्पन्न होता है)

णेरयियाणं गमणं सण्णीपज्जत्तकम्मतिरियणरे।
चरिमचऊतित्थूणे तेरिच्छे चेव सत्तमिया।।५३८।।
तत्थतणऽविरदसम्मो मिस्सो मणुवदुगमुच्चयं णियमा।
बंधदि गुणपडिवण्णा मरंति मिच्छेव तत्थ भवा।।५३९।।

अर्थ - नारकी जीवों का गमन (मरकर उत्पत्ति) गर्भज पर्याप्त सैनी पंचेंद्री कर्मभूमियाँ तिर्यंच अथवा मनुष्य में होता है। अंत के ४ नरकों वाले जीव तीर्थंकरादि के बिना पूर्वोक्त तिर्यंच अथवा मनुष्य में उत्पन्न होते हैं। परंतु सातवें नरकवाले पूर्वोक्त तिर्यंच पर्याय में ही उत्पन्न होते हैं।।५३८।।

अर्थ - उस सातवीं पृथ्वी में उत्पन्न हुआ असंयतसम्यग्दृष्टि और मिश्र अपने-अपने गुणस्थानों में मनुष्यद्विक तथा उच्च गोत्र - इनको नियम से बाँधता है। किंतु यहाँ पर उत्पन्न हुए सासादन-मिश्र-असंयत जीव जिस समय मरण को प्राप्त होते हैं उस समय मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होकर ही मरण करते हैं।।५३९।।

नारकी का गमन

मनुष्यगति — तिर्यंचगति

कर्मभूमिया संज्ञी पर्याप्त गर्भज ही होता हैं

कौन-से नरक व उससे नीचे के नरकों में से निकलकर जीव किनमें उत्पन्न नहीं होता हैं

<table>
<tr><th>नरक</th><th colspan="2">किनमें उत्पन्न नहीं होता</th></tr>
<tr><td>१-३</td><td>अर्धचक्री, सकलचक्री और बलभद्र</td><td rowspan="5">सभी भोगभूमि-कुभोगभूमि में नहीं होते है</td></tr>
<tr><td>४</td><td>तीर्थंकर</td></tr>
<tr><td>५</td><td>चरमशरीरी</td></tr>
<tr><td>६</td><td>सकल संयमी</td></tr>
<tr><td rowspan="3">७</td><td>मनुष्य</td></tr>
<tr><td colspan="2">यहाँ ३-४ गुणस्थान में मनुष्यद्विक, उच्च गोत्र का नियम से बंध होता है</td></tr>
<tr><td colspan="2">यहाँ २,३,४ गुणस्थानवाला जीव मिथ्यात्व में आकर ही मरण को प्राप्त होता है</td></tr>
</table>

कौन जीव किस-किस नरक तक ही उत्पन्न हो सकते हैं

जीव	नरक
असंज्ञी	१
सरीसर्प	२
पंछी	३
सर्प, आदि के ५ संहनन के धारक	४
सिंह	५
स्त्री, आदि के ४ संहनन के धारक	६
व्रजवृषभनाराच संहनन के धारक मत्स्य-मनुष्य	७
ये विषय सम्यग्ज्ञान चंद्रिका की गाथा ५४९ की टीका से लिया गया है	

तेउदुगं तेरिच्छे सेसेग अपुण्णवियलगा य तहा।
तित्थूण णरेवि तहाऽसण्णी घम्मे य देवदुगे।।५४०।।
सण्णीवि तहा सेसे णिरये भोगेवि अच्चुदंतेवि।
मणुवा जंति चउग्गदिपरियंतं सिद्धिठाणं च।।५४१।।

अर्थ - तिर्यंचगति में तेजद्विक(तेज,वायु) मरण करके तिर्यंचगति में ही उत्पन्न होते हैं। शेष एकेन्द्रिय (अर्थात् पृथ्वी, जल और वनस्पति के बादर सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त) तथा द्वीन्द्रिय आदि विकलत्रय - ये सब जीव तिर्यंचगति में उत्पन्न होते हैं, और तीर्थंकरादि त्रेसठ शलाका(पदवीधारक) पुरुषों के बिना शेष मनुष्य में भी उत्पन्न होते हैं।असंज्ञी पंचेंद्री मरण करके पूर्वोक्त तिर्यंच-मनुष्यगति में तथा धम्मानाम वाले पहले नरक में और देव युगल में (अर्थात् भवनवासी-व्यंतर देवों में) उत्पन्न होते है।।५४०।।

अर्थ - इसी प्रकार संज्ञी पंचेंद्री तिर्यंच भी शेष अर्थात् असंज्ञी पंचेंद्रीवत् पूर्वोक्त गतियों में, सब नारकीयों में, सब भोगभूमिया में और अच्युत स्वर्ग पर्यंत सब देवों में उत्पन्न होते है। और मनुष्य मरण करके चारों ही गतियों में तथा सिद्धिस्थान (मोक्ष) में प्राप्त होते हैं।।५४१।।

तिर्यंच का गमन

कौन तिर्यंच	कहाँ उत्पन्न होता है
समस्त अग्नि और वायु	भोगभूमिया बिना अन्य सर्व तिर्यंचों में
अवशेष एकेन्द्रिय (पृथ्वी,जल,वनस्पति) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय	" तथा ६३ शलाका बिना अन्य मनुष्यों में
असंज्ञी पंचेन्द्रिय	" तथा प्रथम नरक, भवनवासी-व्यंतर देवों में
संज्ञी पंचेन्द्रिय	सर्व नारकियों में, सर्व तिर्यंचों में, ६३ शलाका बिना अन्य मनुष्यों में, १६वें स्वर्ग तक देवों में
भोगभूमिया तिर्यंच -	
मिथ्यादृष्टि, सासादन	भवनत्रिक देवों में
सम्यग्दृष्टि	सौधर्म-ईशान स्वर्ग में
नित्य एवं चतुर्गति सूक्ष्म निगोद से आये हुये मनुष्य सम्यक्त्व व देश संयम ग्रहण कर सकते हैं, सकलसंयम नहीं	

मनुष्य का गमन

कौन मनुष्य		कहाँ उत्पन्न होता है
कर्मभूमिया पर्याप्त मनुष्य		संज्ञी तिर्यंचवत् सर्व जीवों में तथा कल्पातीत अहमिंद्र देवों में
अपर्याप्त मनुष्य		कर्मभूमिया तिर्यंचों में और तीर्थंकरादि विशेष पद रहित सामान्य मनुष्यों में
भोगभूमिया मनुष्य	मिथ्यादृष्टि, सासादन	भवनत्रिक देवों में
	सम्यग्दृष्टि	सौधर्म-ईशान स्वर्ग में

सर्व कुभोग भूमिया मनुष्य	भवनत्रिक देवों में
चरम शरीरी मनुष्य	स्वात्मोपलब्धिरुप सिद्धि स्थान (मोक्ष)
आहारक देह सहित प्रमत्तसंयत	वैमानिक देवों में

आहारगा दु देवे देवाणं सण्णिकम्मतिरियणरे।
पत्तेयपुढविआऊबादरपज्जत्तगे गमणं।।५४२।।
भवणतियाणं एवं तित्थूण णरेसु चेव उप्पत्ती।
ईसाणंताणेगे सदरदुगंताण सण्णीसु।।५४३।।जुम्मं।।

अर्थ – आहारक शरीर सहित (प्रमत्त गुणस्थानवाले) मरण करके वैमानिक देवों में ही उत्पन्न होते हैं। सब देवों की उत्पत्ति सामान्य से पंचेन्द्री कर्मभूमिया तिर्यंच तथा मनुष्य में, और प्रत्येक वनस्पति–पृथ्वी–जल बादर पर्याप्त जीवों में होती हैं। विशेष यह है कि – भवनत्रिक देवों की उत्पत्ति तीर्थंकरादिकों में नहीं होती है। ईशान स्वर्ग पर्यंत के देवों की उत्पत्ति पूर्वोक्त मनुष्य, तिर्यंचों में तथा एकेन्द्रिय पर्याप्त में होती है। और ऊपर शतार–सहस्रार पर्यंत देवों की उत्पत्ति पूर्वोक्त मनुष्य, संज्ञी पंचेंद्री तिर्यंचों में होती है। (इस प्रकार चारों गति के जीवों की संक्षेप से मरण और उत्पत्ति कही है)।।५४२–५४३।।

देव का गमन

कौन देव	कहाँ उत्पन्न होता है
१३$^{वें}$ स्वर्ग से सर्वार्थसिद्धि* तक	कर्मभूमिया मनुष्यों में
३$^{रे}$ स्वर्ग से १२$^{वें}$ स्वर्ग तक	" तथा कर्मभूमिया संज्ञी पर्याप्त तिर्यंचों में
सौधर्म–ईशान स्वर्ग	" तथा बादर पर्याप्त पृथ्वी, जल, प्रत्येक वनस्पति में
भवनत्रिक देव	सौधर्म–ईशानवत् तिर्यंचों में तथा ६३ शलाका बिना अन्य कर्मभूमिया मनुष्य में
⁕ सौधर्म इंद्र की शची नामक पट्टदेवी, ⁕ लोकपाल सहित सौधर्मादिक दक्षिण दिशा के इंद्र, ⁕ लौकांतिक देव, सर्वार्थसिद्धि के देव	च्युत होकर मनुष्य होकर नियम से निर्वाण को ही प्राप्त करते हैं
***अनुदिश एवं अनुत्तर विमानों से च्युत जीव नारायण एवं प्रतिनारायण नहीं होते हैं**	

आगे की तालिका का विषय सम्यग्ज्ञान चंद्रिका की गाथा ५४८ की टीका से लिया गया है

देवों में कौन-कैसे जीव उत्पन्न होते हैं ?

मिथ्यादृष्टि भोगभूमिया जीव	उत्पत्ति स्थान
* मनुष्यलोक संबंधी ३० भोगभूमि के तिर्यंच एवं मनुष्य * मानुषोत्तर से स्वयंप्रभ पर्वत के बीच असंख्यात द्वीप संबंधी जघन्य भोगभूमिया तिर्यंच * लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र के, अंतर्द्वीप संबंधी कुभोगभूमिया मनुष्य	भवनत्रिक या कल्पवासिनी देवियों में

कौन जीव उत्कृष्ट रुप से कौन-से स्वर्ग तक उत्पन्न होते हैं?	
जीव	**कौन-से स्वर्ग तक**
मिथ्यादृष्टि भोगभूमिया और तापसी	भवनत्रिक
परिव्राजक संन्यासी, एकदंडी, त्रिदंडी	भवनत्रिक से ५वें स्वर्ग
कर्मभूमिया भद्र मिथ्यादृष्टि तथा उपशम ब्रह्मचर्य सहित, वानप्रस्थ, एकजटी, शतजटी, सहस्रजटी, नागा, कांजी भक्षण करनेवाले, कंदमूल, पत्र, पुष्प, फल खानेवाले, अकाम निर्जरा संयुक्त, एकदंडी, त्रिदंडी मिथ्या कायक्लेशादि तपश्चरणरुप(बालतपरुप) परिणत	भवनत्रिक से १६वें स्वर्ग
सादि, अनादि वा अभव्य मिथ्यादृष्टि, अर्हंत के द्रव्य-लिंग का धारक, बाह्य में ६ प्रकार के तप में मग्न, त्रिकाल देव वंदनादि क्रिया सहित, दर्शन-चारित्र मोह के उदय संयुक्त, उपशम ब्रह्मचर्यादि संयुक्त **द्रव्यलिंगी**	भवनत्रिक से उपरिम ग्रैवेयक तक
द्रव्य से जिनरूप-महाव्रती और भाव से असंयत,देशसंयत,मिथ्यादृष्टि	उपरिम ग्रैवेयक तक
तिर्यंच-मनुष्य असंयत और देशसंयत	१ से १६वें स्वर्ग तक
सकल संयमी भाव लिंगी मुनिराज	सौधर्म से सर्वार्थसिद्धि

अकाम निर्जरा -	*अभिलाषा रहित अपने बंधनादि द्वारा क्षुधा-तृष्णा का सहना, ब्रह्मचर्य धारण करना, भूमि पर सोना, मलादिक धारण करना, परिषहादि सहन करना - इन कार्यों द्वारा हाने वाली निर्जरा*
बालतप -	*मिथ्यादर्शन सहित, मोक्ष उपाय रहित, बहुत कायक्लेश करना, कपटरुप बहुत व्रत धारण करना*

णामस्स बंधठाणा णिरयादिसु णवयवीस तीसमदो।
आदिमछक्कं सव्वं पणछण्णववीस तीसं च।।५४४।।

अर्थ - नामकर्म के बंधस्थान नरकादि गति में क्रम से नरकगति में २९-३० के दो, तिर्यंचगति में आदि के ६,मनुष्यगति में सब स्थान तथा देवगति में २५-२६-२९-३० प्रकृतिरूप ४ स्थान है।।५४४।।

नामकर्म के बंध स्थान १४ मार्गणाओं में

नरकगति मार्गणा

गुणस्थान	नरक	बंधस्थान	
		२९ प्रकृति	३० प्रकृति
१	१ से ६	पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच,पर्याप्त मनुष्य	पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच उद्योत सहित
	७	पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच	
२	सातों	पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच,पर्याप्त मनुष्य	
३	सातों	पर्याप्त मनुष्य	–
४	१ से ३	पर्याप्त मनुष्य	पर्याप्त मनुष्य तीर्थंकर सहित
	४ से ७		–

तिर्यंचगति आदि मार्गणा

जीव	बंधयोग्य स्थान	संख्या
सामान्य तिर्यंच	२३, २५, २६, २८, २९, ३०	६
लब्धि अपर्याप्त तिर्यंच-मनुष्य	२३, २५, २६, २९, ३०	५
मनुष्य	सर्व स्थान	८
देव	२५, २६, २९, ३०	४

देवों में बंधस्थान

गुणस्थान	देव	बंधस्थान
१	भवनत्रिक देव,कल्पवासिनी स्त्री,सौधर्म-ईशान स्वर्ग	२५, २६, २९, ३०
	३ से १२ स्वर्ग	२९, ३०
	१२वें स्वर्ग से ऊपर	२९
२	भवनत्रिक से १२वें स्वर्ग तक	२९,३०
	१२वें स्वर्ग से ऊपर	२९
३	भवनत्रिक से उपरिम ग्रैवेयक तक	२९
४	भवनत्रिक, कल्पवासिनी स्त्री	२९
	वैमानिक देव	२९,३०
ये विषय सम्यग्ज्ञान चंद्रिका की गाथा ५४८ की टीका से लिया गया है		

पंचक्खतसे सव्वं अडवीसूणादिछक्कयं सेसे।
चउमणवयणोराले सड देवं वा विगुव्वदुगे।।५४५।।
अडवीसदु हारदुगे सेसदुजोगेसु छक्कमादिल्लं।
वेदकसाये सव्वं पढमिल्लं छक्कमण्णाणे।।५४६।।

अर्थ – पंचेन्द्री में और त्रसकाय में तो सब बंधस्थान हैं। और शेष (एकेन्द्रियादि चार इन्द्रियों में तथा पृथ्वीकायादि पाँच स्थावरों) में २८ के स्थान के बिना आदि के ६ स्थान अर्थात् ५ स्थान हैं। ४ मनोयोग, ४ वचनयोग तथा औदारिक काययोग में सब बंधस्थान है। और वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्र काययोग में देवगतिवत् ४ स्थान हैं।।५४५।।

अर्थ – आहारक-आहारकमिश्र काययोग में २८ तथा २९ के दो स्थान है। शेष कार्मण और औदारिकमिश्र काययोग में आदि के ६ स्थान है। वेद-कषाय मार्गणा में सब बंधस्थान है। ज्ञान मार्गणा में ३ कुज्ञानों में आदि के ६ स्थान है।।५४६।।

इन्द्रिय-काय मार्गणा

जीव	बंधयोग्य स्थान
पंचेन्द्रिय, त्रसकाय	सर्व स्थान
एकेंद्रिय से चतुरिन्द्रिय, स्थावरकाय	२३, २५, २६, २९, ३० (देवद्विक एवं नरकद्विक के बंध का यहाँ अभाव है)

योग मार्गणा

जीव	बंधयोग्य स्थान
४ मनोयोग,४ वचनयोग,औदारिक काययोग	सर्व स्थान
वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र	२५, २६, २९, ३० (देववत्)
आहारक, आहारक मिश्र	२८,२९ (आहारक का बंध न होने से ३०, ३१ के स्थान नहीं है)
कार्माण, औदारिक मिश्र	२३, २५, २६, २८, २९, ३०

योग विशेष - तिर्यंच एवं मनुष्य

<table>
<tr><th>योग</th><th>गुणस्थान</th><th>बंधयोग्य स्थान</th></tr>
<tr><td>औदारिक मिश्र</td><td>१</td><td rowspan="2">२३,२५,२६,२९,३०
(देवद्विक एवं नरकद्विक के २८ के बंध स्थान का अभाव है)</td></tr>
<tr><td rowspan="4">कार्माण</td><td>१</td></tr>
<tr><td>२</td><td>२९, ३०</td></tr>
<tr><td>४ (तिर्यंच)</td><td>२८</td></tr>
<tr><td>४ (मनुष्य)</td><td>२८, २९</td></tr>
</table>

वेद-कषाय मार्गणा

जीव	बंधयोग्य स्थान
३ वेद, ४ कषाय	सर्व स्थान

वेद विशेष

द्रव्य	भाव	बंध अयोग्य स्थान
पुरुषवेदी	स्त्री, नपुंसकवेदी	देवगति, तीर्थंकरयुत २९ व ३१ क्योंकि चरमशरीरी तीर्थंकर क्षपकश्रेणी पुरुषवेद के उदयसहित ही चढ़ते हैं

चरमशरीरी तीर्थंकर के कितने कल्याणक होते हैं ?

तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ –	कल्याणक
४ या ५ गुणस्थान में	तप, ज्ञान, मोक्ष (३)
६ या ७ गुणस्थान में	ज्ञान, मोक्ष (२)
पूर्व भव में	गर्भादि पाँचों (५)

सण्णाणे चरिमपणं केवलजहखादसंजमे सुण्णं।
सुदमिव संजमतिदए परिहारे णत्थि चरिमपदं।।५४७।।
अंतिमठाणं सुहुमे देसाविरदीसु हारकम्मं वा।
चक्खूजुगले सव्वं सगसगणाणं व ओहिदुगे।।५४८।।

अर्थ – मतिज्ञानादि ४ सम्यक् ज्ञानों में अंत के ५ स्थान है। केवलज्ञान और यथाख्यात संयम में शून्य (अर्थात् बंधस्थान का अभाव है)। सामायिक आदि ३ संयमों में श्रुतज्ञान की तरह ५ स्थान है। परिहारविशुद्धि संयम में अंत का स्थान नहीं है, बाकी ४ स्थान है।।५४७।।

अर्थ – सूक्ष्मसांपरायसंयम में अंत का १ ही स्थान है। देशसंयम में आहारकवत् (२८ और २९ के दो स्थान) है। असंयत में कार्मण काययोगवत् (आदि के ६ स्थान) है। चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन इन दोनों में सब स्थान हैं। अवधिदर्शन-केवलदर्शन इन दोनों में अपने-अपने ज्ञानवत् बंधस्थान है।।५४८।।

ज्ञान मार्गणा

जीव	बंधयोग्य स्थान
३ कुज्ञान	२३, २५, २६, २८, २९, ३०
मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्ययज्ञान	२८, २९, ३०, ३१, १
केवलज्ञान	नामकर्म के बंध का अभाव है

संयम मार्गणा

जीव	बंधयोग्य स्थान
सामायिक, छेदोपस्थापना	२८, २९, ३०, ३१, १
परिहारविशुद्धि	२८, २९, ३०, ३१
सूक्ष्मसांपराय	१
यथाख्यात	केवलज्ञानवत्
देशसंयम	२८, २९
असंयम	२३, २५, २६, २८, २९, ३०

दर्शन मार्गणा

जीव	बंधयोग्य स्थान
चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन	सर्व स्थान
अवधिदर्शन	अवधिज्ञानवत्
केवलदर्शन	केवलज्ञानवत्

कम्मं वा किण्हतिये पणुवीसाछक्कमट्ठवीसचऊ।
कमसो तेऊजुगले सुक्काए ओहिणाणं वा।।५४९।।

अर्थ – कृष्णादि ३ लेश्याओं में कार्मण काययोगवत् आदि के ६ बंधस्थान है। तेजोलेश्या और पद्मलेश्या इन दोनो में क्रम से २५ आदि के ६ स्थान, तथा २८ आदि के ४ स्थान हैं। शुक्ललेश्या में अवधिज्ञान की तरह अंत के ५ स्थान हैं।।५४९।।

लेश्या मार्गणा

जीव	बंधयोग्य स्थान
कृष्ण, नील, कापोत लेश्या	२३, २५, २६, २८, २९, ३०
पीत लेश्या	२५, २६, २८, २९, ३०, ३१
पद्म लेश्या	२८, २९, ३०, ३१
शुक्ल लेश्या	२८, २९, ३०, ३१, १

लेश्या

द्रव्य ↓
वर्ण नामकर्म से उदय
से हुआ शरीर का वर्ण

भाव ↓
मोह के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम
सहित जीव की योगरूप चंचलता
(यहाँ इसी को ग्रहण किया है)

नरकों में लेश्या

नरक	लेश्या	
प्रथम नरक के प्रथम इन्द्रक बिल	कापोत	जघन्य अंश
मध्य में ↕		मध्यम अंश
तीसरे नरक के द्विचरम इन्द्रक बिल		उत्कृष्ट अंश
तीसरे नरक का अंतिम इन्द्रक बिल	नील	जघन्य अंश
मध्य में ↕		मध्यम अंश
पाँचवें नरक के द्विचरम इन्द्रक बिल		उत्कृष्ट अंश
पाँचवें नरक के अंतिम इन्द्रक बिल	कृष्ण	जघन्य अंश
मध्य में ↕		मध्यम अंश
सातवें नरक के इन्द्रक बिल		उत्कृष्ट अंश

तिर्यंचगति में लेश्या

तिर्यंच	लेश्या
सर्व एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय	३ अशुभ लेश्या – कृष्ण, नील, कापोत
लब्धि-निर्वृत्ति अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय	
अपर्याप्त संज्ञी कर्मभूमिया १,२,४ गुणस्थानवर्ती	
पर्याप्त असंज्ञी	कृष्ण, नील, कापोत, पीत
पर्याप्त संज्ञी कर्मभूमिया	६ लेश्या
अपर्याप्त भोगभूमिया	जघन्य कापोत
पर्याप्त भोगभूमिया	पीत, पद्म, शुक्ल
देशसंयत	

मनुष्यगति में लेश्या

मनुष्य	लेश्या
लब्धि अपर्याप्त	३ अशुभ लेश्या - कृष्ण, नील, कापोत
निर्वृत्ति अपर्याप्त, पर्याप्त कर्मभूमिया	६ लेश्या
निर्वृत्ति अपर्याप्त भोगभूमिया	जघन्य कापोत
पर्याप्त भोगभूमिया, देशसंयतादि	पीत, पद्म, शुक्ल
अपूर्वकरणादि	शुक्ल

देवगति में लेश्या

देव	लेश्या
भवनत्रिक अपर्याप्त	अशुभ लेश्या - कृष्ण, नील, कापोत
भवनत्रिक पर्याप्त	पीत लेश्या का जघन्य अंश
सौधर्मद्विक के प्रथम इंद्रक, श्रेणीबद्ध, प्रकीर्णक तक	
सौधर्मद्विक के द्वितीय इंद्रक से सानत्कुमारद्विक के छठवें इंद्रक तक	पीत लेश्या का मध्यम अंश
सानत्कुमारद्विक के ७वें इंद्रक एवं श्रेणीबद्धों में	पीत का उत्कृष्ट, पद्म का जघन्य अंश
ब्रह्मद्विक के ४ इंद्रक, लांतवद्विक के २ इंद्रक, शुक्रद्विक का १ इंद्रक	पद्म का मध्यम अंश
शतारद्विक का १ इंद्रक	पद्म का उत्कृष्ट, शुक्ल का जघन्य
आनत चतुष्क के ६ इंद्रक, ९ ग्रैवेयकों के ९ इंद्रक, अनुदिशों का १ इंद्रक, अनुत्तरों के श्रेणीबद्धों में	शुक्ल का मध्यम अंश
सर्वार्थसिद्धि	शुक्ल का उत्कृष्ट अंश

भव्वे सव्वमभव्वे किण्हं वा उवसमम्मि खइए य।
सुक्कं वा पम्मं वा वेदगसम्मत्तठाणाणि।।५५०।।
अडवीसतिय दु साणे मिस्से मिच्छे दु किण्हलेस्सं वा।
सण्णीआहारिदरे सव्वं तेवीसछक्कं तु।।५५१।।

अर्थ - भव्य मार्गणा में सब बंधस्थान हैं। अभव्य में कृष्णलेश्यावत् (आदि के ६ स्थान) है। सम्यक्त्व मार्गणा में से उपशम सम्यक्त्व में तथा क्षायिक सम्यक्त्व में शुक्ललेश्यावत् (५ स्थान) हैं।

तथा वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्व में पद्मलेश्यावत् (२८ को आदि लेकर ४ बंधस्थान) हैं।।५५०।।

अर्थ – सासादन सम्यक्त्व में २८ को आदि लेकर ३ एवं मिश्र मे २ (२८,२९) स्थान हैं। तथा मिथ्यात्व में कृष्णलेश्यावत् (आदि के ६ स्थान) हैं। संज्ञीमार्गणा और आहार मार्गणा में सब बंधस्थान है। और असंज्ञी-अनाहारमार्गणा में २३ को आदि लेकर ६ बंधस्थान हैं।।५५१।।

भव्य मार्गणा

जीव	बंधयोग्य स्थान
भव्य	सर्व स्थान
अभव्य	कृष्णलेश्यावत् – २३, २५, २६, २८, २९, ३०

सम्यक्त्व मार्गणा

सम्यक्त्व स्वामी

- **औपशमिक**
  - **प्रथमोपशम** → *४ गति के पर्याप्त जीव
  - **द्वितीयोपशम** → *पर्याप्त मनुष्य *निर्वृत्ति अपर्याप्त वैमानिक देव
- **क्षायोपशमिक (वेदक)** → *४ गति के पर्याप्त *निर्वृत्ति अपर्याप्त जीव
- **क्षायिक** → * प्रथम नरक * भोगभूमिया तिर्यंच, * भोगभूमिया अथवा कर्मभूमिया मनुष्य * वैमानिक देव पर्याप्त अथवा अपर्याप्त

प्रथमोपशम सम्यक्त्व कैसे जीव के होता हैं ?

- ४ गति का मिथ्यादृष्टि
- सैनी ही हो (असैनी न हो)
- पर्याप्त हो (लब्धि-निर्वृत्ति अपर्याप्त न हो)
- गर्भज/उपपादज हो (सम्मूर्छन न हो)
- विशुद्ध परिणामी हो (संक्लेश परिणामी न हो)
- विशेष ग्रहणरूप साकारोपयोग का धारी हो (अनाकार दर्शनोपोयोग युक्त न हो)

तिर्यंच मनुष्य में सम्यक्त्वादि प्राप्ति के निमित्त कारण

कहाँ	जीव	कारण	क्या प्राप्त करते
मानुषोत्तर से स्वयंप्रभ पर्वत के बीच असंख्यात द्वीपों में स्थित जघन्य भोगभूमि	तिर्यंच	जातिस्मरण, देव संबोधन	प्रथमोपशम सम्यक्त्व
मनुष्यलोक संबंधी ३० भोगभूमि	तिर्यंच-मनुष्य	जातिस्मरण, देव-चारणमुनि संबोधन	
स्वयंप्रभ पर्वत के पार कर्मभूमि	तिर्यंच	जातिस्मरण, देव संबोधन	" + प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित देशसंयम
मनुष्यलोक संबंधी १५ कर्मभूमि	तिर्यंच	जातिस्मरण,देव-मनुष्य संबोधन,जिनबिंब दर्शन	"
	मनुष्य		" + प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित अप्रमत्त
ये विषय सम्यग्ज्ञान चंद्रिका की गाथा ५४८ की टीका से लिया गया है			

सम्यक्त्व मार्गणा में बंधस्थान

मार्गणा	बंधयोग्य स्थान
औपशमिक, क्षायिक	शुक्ललेश्यावत् २८, २९, ३०, ३१, १
क्षायोपशमिक	पद्मलेश्यावत् २८, २९, ३०, ३१
सासादन	२८, २९, ३०
मिश्र	२८, २९
मिथ्या रुचि	कृष्णलेश्यावत् २३, २५, २६, २८, २९, ३०

प्रथमोपशम सम्यक्त्वी जीव के बंधस्थान

जीव		गुणस्थान	बंधस्थान
नारकी	१ से ३ नरक	४	२९(म), ३०(मती)
	४ से ७ नरक		२९(म)
तिर्यंच		४, ५	२८(दे)
मनुष्य		४ से ६	२८(दे), २९(देती)
		७	२८(दे), २९(देती), ३०(देआ), ३१(देती आ)
देव		४	२९(म)

द्वितीयोपशम सम्यक्त्वी जीव के बंधस्थान

जीव	गुणस्थान	बंधस्थान
मनुष्य	७ से ८वें के छठे भाग तक	२८, २९, ३०, ३१
	८वें के सांतवें भाग से १०वें तक	१
	११वें	–
	६ से ४ (उपशमश्रेणी उतरते समय)	२८, २९
निर्वृत्ति अपर्याप्त देव	४	२९, ३०

क्षायोपशम सम्यक्त्वी जीव के बंधस्थान

जीव		गुणस्थान	बंधस्थान
नारकी	१ से ३ नरक	४	२९, ३०
	४ से ७ नरक		२९
कर्मभूमि तिर्यंच		४, ५	२८
भोगभूमि तिर्यंच–मनुष्य		४	
कर्मभूमि मनुष्य		४ से ६	२८, २९
		७	२८, २९, ३०, ३१
देव	भवनत्रिक	४	२९
	वैमानिक		२९, ३०

क्षायिक सम्यक्त्वी जीव के बंधस्थान

जीव	बंधस्थान
प्रथम नरक के नारकी	२९, ३०
भोगभूमिया तिर्यंच, मनुष्य	२८
कर्मभूमिया मनुष्य	२८, २९, ३०, ३१, १
वैमानिक देव	२९, ३०

क्षायिक सम्यक्त्व का विधान

दर्शन मोह की क्षपणा स्वामी

		कौन	कहाँ
प्रस्थापक (प्रारंभक)		कर्मभूमिया मनुष्य	तीर्थंकर,केवली,श्रुतकेवली के पादमूल में
निष्ठापक (पूर्ण करनेवाला)	**अबद्धायु अपेक्षा**	कर्मभूमिया मनुष्य	वहीं पर
	बद्धायु अपेक्षा (मरण होने पर)	देव में	वैमानिक देव
		मनुष्य, तिर्यंच में	भोगभूमिया मनुष्य-तिर्यंच में
		नरक में	प्रथम नरक

दर्शन मोह की क्षपणा क्रम

क्षायोपशम सम्यक्त्वी असंयतादि ४ गुणस्थानों में
पहले ३ करण द्वारा अनंतानुबंधी की विसंयोजना करता है
पश्चात् विश्राम लेकर अंतर्मूहुर्त या अधिक काल भी (आगे के भवों में)
दर्शनमोह त्रिक का ३ करण द्वारा
कृत्य कृत्य वेदक होकर
क्षय करता है

अनंतानुबंधी की विसंयोजना का विधान

अनंतानुबंधी चतुष्क के परमाणुओं को २१ कषाय रूप परिणमन	
अध:प्रवृत्त करण	❊ ४ आवश्यक होना -
	प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता
	सातादि प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग बंध बढ़ना
	असातादि अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग बंध घटना
	सर्व प्रकृतियों का स्थिति बंध घटना
अपूर्व करण	❊ पूर्व के ४ आवश्यक होते रहना +
	अनंतानुबंधी की गुणश्रेणी निर्जरा होना
	गुण संक्रमण - पहले से असंख्यातगुणा द्रव्य संक्रमित होना
	स्थितिकांडकघात - सत्ता के कर्मों की स्थिति घटना
	अनुभागकांडकघात - सत्ता के कर्मों का अनुभाग घटना

अनिवृत्ति करण	※ पूर्व के ८ आवश्यक होते रहना +	
	प्रथम समय में अनंतानुबंधी सत्त्व स्थिति पृथक्त्व लाख सागर प्रमाण रहती है	
	बहुभाग काल बीतने पर-	संख्यात हजार स्थिति कांडक द्वारा
		प्रत्येक कांडक में पल्य के संख्यात भाग स्थिति घटाकर
	असंज्ञी पंचेन्द्रिय के स्थिति बंध जितनी १००० सागरप्रमाण स्थिति शेष रहती है	
	पश्चात्	उतने ही कांडकों द्वारा
	चतुरिन्द्रिय के स्थिति बंध जितनी १०० सागर प्रमाण स्थिति शेष रहती है	
	पश्चात्	उतने ही कांडकों द्वारा
	त्रीन्द्रिय के स्थिति बंध जितनी ५० सागर प्रमाण स्थिति शेष रहती है	
	पश्चात्	उतने ही कांडकों द्वारा
	द्वीन्द्रिय के स्थिति बंध जितनी २५ सागर प्रमाण स्थिति शेष रहती है	
	पश्चात्	उतने ही कांडकों द्वारा
	एकेंद्रिय के स्थिति बंध जितनी १ सागर प्रमाण स्थिति शेष रहती है	
	पश्चात्	उतने ही कांडकों द्वारा
	पल्य प्रमाण स्थिति शेष रहती है	
	पश्चात्	प्रत्येक कांडक में पल्य के असंख्यात भाग स्थिति घटाकर
	पल्य का असंख्यात भाग प्रमाण स्थिति शेष रहती है(इसे **दूरापकृष्टि** कहते है)	
	पश्चात्	उतने ही कांडकों द्वारा
	आवलीप्रमाण स्थिति शेष रहती है (इसे **उच्छिष्टावली** कहते है)	
	इतनी स्थिति शेष रहने पर विसंयोजना,उपशमना,क्षपणा क्रिया नहीं होती है	
	आवली काल के निषेकों को १-१ कर अन्य प्रकृति रूप परिणमाता है	
	इस प्रकार आवली काल के अंत समय में अनंतानुबंधी की विसंयोजना हो जाती है	

दर्शन मोह क्षय

	※ विश्राम के पश्चात्
	३ करण करता है, वहाँ पूर्वोक्त प्रकार आवश्यक होते हैं

अनिवृत्ति करण का बहुभाग जाने पर	पहले मिथ्यात्व का क्षय करता है
	फिर मिश्र का क्षय करता है
	फिर सम्यक् प्रकृति का क्षय करता है
	सम्यक् प्रकृति की स्थिति अंतर्मूहुर्त शेष रहती है **(यहाँ तक जीव प्रस्थापक होता है)**
	यहाँ से वह कृत्य कृत्य वेदक व निष्ठापक होता है
	अंतर्मूहुर्त तक सम्यक् प्रकृति के १-१ निषेक को भोगकर समाप्त करता है
	और **क्षायिक सम्यक्त्वी होता है**

सासादन सम्यक्त्वी जीव के बंधस्थान

जीव	बंधस्थान
निर्वृत्ति अपर्याप्त - बादर पृथ्वी,जल,प्रत्येक वनस्पति, द्वीन्द्रिय,त्रीन्द्रिय,चतुरिन्द्रिय,असैनी पंचेन्द्रिय,सैनी तिर्यंच,मनुष्य	२९(ति,म), ३०(तिउ)
पर्याप्त नारकी	
पर्याप्त-अपर्याप्त भवनत्रिकादि १२वें स्वर्ग तक देव	
पर्याप्त-संज्ञी तिर्यंच, मनुष्य	२८(दे),२९(ति,म),३०(तिउ)
पर्याप्त-अपर्याप्त १२वें स्वर्ग से ९वें ग्रैवेयक तक	२९(म)

उपशम सम्यक्त्व की विराधना को प्राप्त जीव के बंधस्थान

जीव	बंधस्थान
सासादन निर्वृत्ति अपर्याप्त	२९, ३०
सासादन से मिथ्यात्व को प्राप्त निर्वृत्ति अपर्याप्त	२३, २५, २६, २९, ३०
पर्याप्त दशा को प्राप्त मिथ्यादृष्टि	२३, २५, २६, २८, २९, ३०
ये विषय सम्यग्ज्ञान चंद्रिका की गाथा ५४८ की टीका से लिया गया है	

मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव के बंधस्थान

जीव	बंधस्थान
पर्याप्त - देव एवं नारकी	२९(म)
पर्याप्त - तिर्यंच एवं मनुष्य	२८(दे)

मिथ्यादृष्टि जीव के बंधस्थान

जीव		बंधस्थान
नारकी	१ से ६ नरक	२९(ति,म), ३०(तिउ)
	७ नरक	२९(ति), ३०(तिउ)
तिर्यंच	एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय पर्यंत समस्त जीव, अग्नि एवं वायु छोड़कर	२३, २५, २६, २९, ३०
	अग्नि एवं वायु	२३,२५(ति),२६,२९(ति),३०
तिर्यंच व मनुष्य	लब्धि-निर्वृत्ति अपर्याप्त असैनी-सैनी तिर्यंच,मनुष्य	२३, २५, २६, २९, ३०
	पर्याप्त सैनी-असैनी तिर्यंच, मनुष्य	२३, २५, २६, २८, २९, ३०
देव	भवनत्रिकादि दूसरे स्वर्ग तक	२५, २६, २९(ति,म), ३०
	३ से १२ स्वर्ग	२९(ति,म), ३०
	१३वें स्वर्ग से ९वें ग्रैवेयक तक	२९(म)

संज्ञी-आहारक मार्गणा

जीव	बंधयोग्य स्थान
संज्ञी, आहारक	सर्व स्थान
असंज्ञी, अनाहारक	२३, २५, २६, २८, २९, ३०

संज्ञी-आहारक मार्गणा - विशेष

मार्गणा	जीव	बंधयोग्य स्थान
संज्ञी	नारकी	२९, ३०
	तिर्यंच	२३, २५, २६, २८, २९, ३०
	मनुष्य	सर्व स्थान
	देव	२५, २६, २९, ३०
असंज्ञी	एकेंद्रिय से चतुरिन्द्रिय	२३, २५, २६, २९, ३०
	पंचेन्द्रिय	२३, २५, २६, २८, २९, ३०
आहारक	देव, नारकी	२९, ३०
	तिर्यंच	२३, २५, २६, २८, २९, ३०
	मनुष्य	सर्व स्थान
अनाहारक	देव, नारकी	२९, ३०
	तिर्यंच, मनुष्य	२३, २५, २६, २८, २९, ३०

मोक्षमार्ग

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग: सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र - इन तीनों की एकता मोक्षमार्ग हैं	
सम्यग्दर्शन	तत्त्व रुचि
सम्यग्ज्ञान	तत्त्वों का सम्यक् जानना
सम्यक्चारित्र	सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान सहित जीवों की विराधना नहीं करना

णिरयादिजुदट्ठाणे भंगेणप्पप्पणम्मि ठाणम्मि।
ठविदूण मिच्छभंगे सासणभंगा हु अत्थित्ति।।५५२।।
अविरदभंगे मिस्सयदेसपमत्ताण सव्वभंगा हु।
अत्थित्ति ते दु अवणिय मिच्छाविरदापमादेसु।।५५३।।जुम्मं।।

अर्थ - नरकादि गति सहित स्थानों को अपने-अपने भंगों के साथ अपने-अपने गुणस्थानों में स्थापन करने से मिथ्यात्व के बंधस्थानों के भंगों में सासादन के भंग गर्भित हो जाते हैं। असंयत के भंगों में मिश्र, देशविरत, प्रमत्त के सब बंधस्थानों के भंग गर्भित हो जाते हैं। इस प्रकार मिथ्यात्व, असंयत, प्रमत्त में बंधस्थानों के भंग होते हैं।।५५२-५५३।।

नामकर्म के बंधस्थानों के पुनरुक्त भंग

गुणस्थान	१	४
बंधस्थान के भंग	४६०८	८
गर्भित गुणस्थान	२	३, ५, ६
बंधस्थान के भंग	३२००	८

भुजगारा अप्पदरा अवट्ठिदावि य सभंगसंजुत्ता।
सव्वपरट्ठाणेण य णेदव्वा ठाणबंधम्मि।।५५४।।
अप्पपरोभयठाणे बंधट्ठाणाण जो दु बंधस्स।
सट्ठाण परट्ठाणं सव्वपरट्ठाणमिदि सण्णा।।५५५।।

अर्थ - ये पूर्वोक्त बंध - भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित और 'च' शब्द से अवक्तव्य - ऐसे ४ प्रकार के हैं। वे अपने-अपने भंगो सहित नामकर्म के बंधस्थानों में स्वस्थान, परस्थान, सर्वपरस्थानों के सहित लाना।।५५४।।

अर्थ - अपना विवक्षित गुणस्थान, अन्य गुणस्थान, अन्यगति और अन्य ही गुणस्थान स्वरूप उभयस्थान - (इन तीनों में मिथ्यात्व, असंयत, अप्रमत्त के बंधस्थान संबंधी जो भुजाकारादि बंध हैं) उनके क्रम से स्वस्थान भुजाकारादि, परस्थान भुजाकारादि और सर्वपरस्थान भुजाकारादि - ऐसे ३ नाम है।।५५५।।

बंध - स्व, पर, उभय स्थान स्वरूप

- **भुजाकार** — * पहले थोड़ी, पश्चात् बहुत प्रकृतियों को बांधे
- **अल्पतर** — * पहले बहुत, पश्चात् थोड़ी प्रकृतियों को बांधे
- **अवस्थित** — * पहले जितनी बांधे, पश्चात् उतनी ही बांधे
- **अवक्तव्य** — * कुछ भी न बांधकर पश्चात् बांधता है

- **स्वस्थान** → विवक्षित निज-गुणस्थान
- **परस्थान** → विवक्षित गुणस्थान से अन्य गुणस्थान
- **सर्व परस्थान** → विवक्षित गुणस्थान से अन्य ही गुणस्थान एवं विवक्षित गति से अन्य ही गति

चदुरेक्कदुपण पंच य छत्तिगठाणाणि अप्पमत्तंता।
तिसु उवसमगे संते त्ति य तियतिय दोण्णि गच्छंति।।५५६।।
सासणपमत्तवज्जं अपमत्तंतं समल्लियइ मिच्छो।
मिच्छत्तं बिदियगुणो मिस्सो पढमं चउत्थं च।।५५७।।
अविरदसम्मो देसो पमत्तपरिहीणमप्पमत्तंतं।
छट्ठाणाणि पमत्तो छट्ठगुणं अप्पमत्तो दु।।५५८।।जुम्मं।।
उवसामगा दु सेढिं आरोहंति य पडंति य कमेण।
उवसामगेसु मरिदो देवतमत्तं समल्लियई।।५५९।।

अर्थ - अप्रमत्त पर्यंत गुणस्थान वाले जीव अपने-अपने मिथ्यात्वादि गुणस्थानों को छोड़कर क्रम से ४, १, २, ५, ५, ६, ३ गुणस्थानों को प्राप्त होते हैं। अपूर्वकरणादि ३ उपशम श्रेणी वाले ३-३ गुणस्थानों को तथा उपशांतमोह वाले २ गुणस्थानों को प्राप्त होते हैं।।५५६।।

अर्थ - मिथ्यात्व वाला, सासादन और प्रमत्त को छोड़कर अप्रमत्त पर्यंत ४ गुणस्थानों को प्राप्त होता है। दूसरे गुणस्थान वाला मिथ्यात्व को, मिश्र वाला पहले, चौथे दो गुणस्थानों को प्राप्त होता है। अविरत तथा देशविरत ये दोनों प्रमत्त गुणस्थान के सिवाय अप्रमत्त तक पाँचों में जाते हैं। प्रमत्त वाला अप्रमत्त तक ६ गुणस्थानों में जाता है। अप्रमत्त वाला छठे गुणस्थान को तथा 'तु' शब्द से उपशमक-क्षपक अपूर्वकरण को और मरण की अपेक्षा से देव असंयत को प्राप्त होता है।।५५७-५५८।।

अर्थ - अपूर्वकरणादि उपशम श्रेणीवाले उपशम श्रेणी को अनुक्रम से चढ़ते भी है और अनुक्रम से उतरते भी है। तथा उपशम श्रेणी में मरण होने पर महार्द्धिक देव होते हैं; (अतएव चढ़ने की अपेक्षा

ऊपर का और उतरने की अपेक्षा नीचे का तथा मरण की अपेक्षा चौथा इस तरह उपशम श्रेणीवालों के ३-३ गुणस्थान होते हैं। उपशांत कषाय के १०वां और चौथा दो ही हैं)।।५५९।।

गुणस्थानों में गमन- आगमन

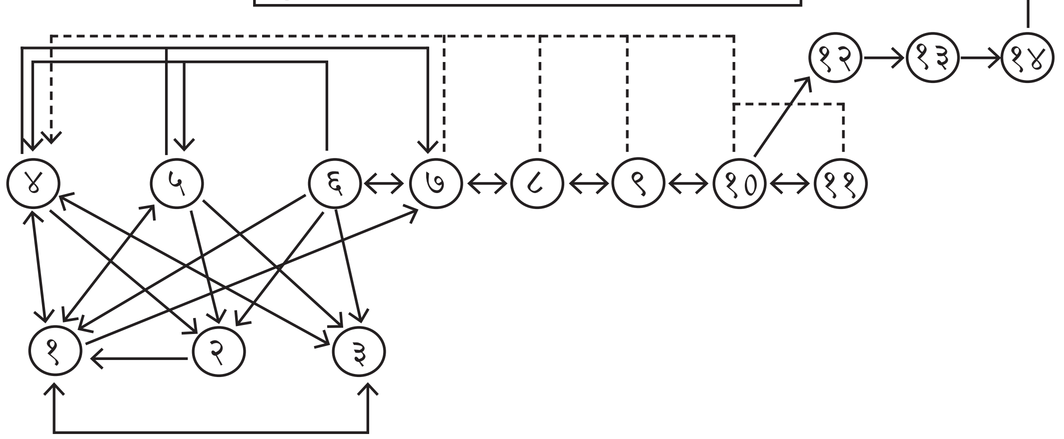

मिस्सा आहारस्स य खवगा चडमाणपढमपुव्वा य।
पढमुवसम्मा तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति।।५६०।।
अणसंजोजिदमिच्छे मुहुत्तअंतं तु णत्थि मरणं तु।
किदकरणिज्जं जाव दु सव्वपरट्ठाण अट्ठपदा।।५६१।।

अर्थ - मिश्रगुणस्थानवर्ती, निर्वृति अपर्याप्त अवस्थारूप मिश्र काययोगी, क्षपक श्रेणीवाले, चढ़नेवाले अपूर्वकरण उपशमक के प्रथमभाग वाले, प्रथमोपशम सम्यक्त्वी, महातमप्रभा (७वां) नरक के २,३,४ गुणस्थानवर्ती जीव मरण को प्राप्त नहीं होते। अनंतानुबंधी का विसंयोजन करके मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाले का अंतर्मुहूर्त तक मरण नहीं होता। दर्शन मोहनीय का क्षय करनेवाला जीव कृत्कृत्यपना प्राप्त होने तक नहीं मरता। उस बद्धायु जीव कृत्य-कृत्य के पूर्वोक्त सर्व परस्थानों के अर्थवान पद हैं।।५६०-५६१।।

कौन-कौन जीव मरण को प्राप्त नहीं होते हैं ?

- मिश्र गुणस्थानवर्ती
- निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्थारुप मिश्र काययोगी
- क्षपक श्रेणीवाले
- उपशम श्रेणी चढ़ते हुए अपूर्वकरण के प्रथम भाग में स्थित
- प्रथमोपशम सम्यक्त्वी
- सातवें नरक में २,३,४ गुणस्थानवर्ती
- अनंतानुबंधी का विसंयोजन कर मिथ्यात्व में आये जीव का अंतर्मुहूर्त पर्यंत
- दर्शनमोह का क्षय करने वाले जीव का कृतकृत्यपना दशा प्राप्त होने पर्यंत

देवेसु देवमणुवे सुरणरतिरिये चउग्गईसुंपि।
कदकरणिज्जुप्पत्ती कमसो अंतोमुहुत्तेण।।५६२।।

अर्थ – कृतकृत्यवेदक का काल अंतर्मुहूर्त है, उसके ४ भाग कीजिये। वहाँ (पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे भाग में मरण को प्राप्त) जीव क्रम से देवों में, देव-मनुष्यों में, देव-मनुष्य-तिर्यंचों में, चारों गतियों में उत्पन्न होते हैं।।५६२।।

कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्व के किस भाग में मरकर जीव कहाँ उत्पन्न होता है

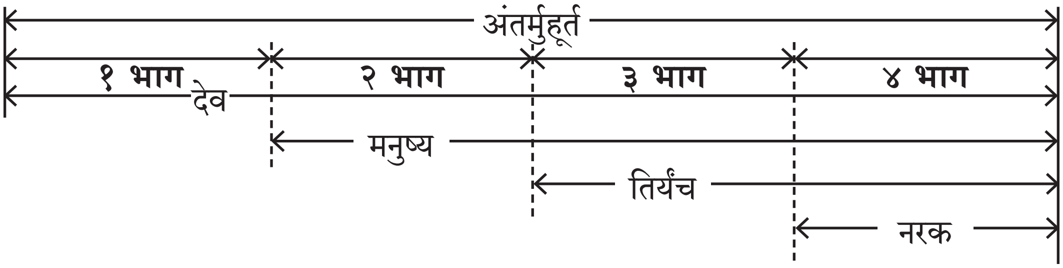

तिविहो दु ठाणबंधो भुजगारप्पदरवट्ठिदो पढमो।
अप्पं बंधंतो बहुबंधे बिदियो दु विवरीयो।।५६३।।
तदियो सणामसिद्धो सव्वे अविरुद्धठाणबंधभवा।
ताणुप्पत्तिं कमसो भंगेण समं तु वोच्छामि।।५६४।।जुम्मं।।

अर्थ – नामकर्म के बंधस्थान ३ प्रकार के हैं – भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित। पहला भुजाकार बंध पहले थोड़ी प्रकृतियों को बाँधता है पश्चात् बहुत प्रकृतियों को बांधता है। दूसरा अल्पतर इससे विपरीत है। तीसरा अवस्थित बंध तो अपने नाम से ही सिद्ध है। ये सब भुजाकारादि बंध अविरुद्ध बंधस्थानों से उत्पन्न होते हैं, उनकी उत्पत्ति को क्रम से भंगों सहित कहूँगा।।५६३-५६४।।

इस गाथा के विषय की तालिका पृष्ठ क्र. -(गाथा ५५४)- पर देखें

भूबादरतेवीसं बंधंतो सव्वमेव पणुवीसं।
बंधदि मिच्छाइट्ठी एवं सेसाणमाणेज्जो।।५६५।।
तेवीसट्ठाणादो मिच्छत्तीसोत्ति बंधगो मिच्छो।
णवरि हु अट्ठावीसं पंचिंदियपुण्णगो चेव।।५६६।।
भोगे सुरट्ठवीसं सम्मो मिच्छो य मिच्छगअपुण्णे।
तिरिउगतीसं तीसं णरउगुतीसं च बंधदि हु।।५६७।।
मिच्छस्स ठाणभंगा एयारं सदरि दुगुणसोल णवं।
अडदालं बाणउदी सदाण छादाल चत्तधियं।।५६८।।

विवरीयेणप्पदरा होंति हु तेरासिएण भंगा हु।
पुव्वपरट्ठाणाणं भंगा इच्छा फलं कमसो।।५६९।।
लहुकरणं इच्छंतो एयारादीहिं उवरिमं जोग्गं।
संगुणिदे भुजगारा उवरीदो होंति अप्पदरा।।५७०।।
भुजगारप्पदराणं भंगसमासो समो हु मिच्छस्स।
पणतीसं चउणउदी सट्ठी चोदालमंककमे।।५७१।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि बादर पृथ्वीकाय २३ के स्थान को बांधता हुआ २५ को आदि लेकर सब स्थानों को बांधता है। इसी प्रकार (त्रैराशिक गणित से) शेष बंधस्थानों में भी बंध भेद जानना।।५६५।।

अर्थ – मिथ्यात्व में बंधयोग्य २३ के स्थान से लेकर ३० के स्थान पर्यंत स्थानों के भुजाकारों को मिथ्यादृष्टि जीव बाँधता है। विशेषता यह है कि – २८ के स्थान को पर्याप्त पंचेन्द्रिय ही बाँधता है।।५६६।।

अर्थ – भोगभूमि में पर्याप्त पंचेन्द्री सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, 'च' शब्द से निर्वृति अपर्याप्त सम्यग्दृष्टि जीव देवगति सहित २८ के स्थान को बांधते है। निर्वृति अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यंचगति सहित २९ के वा ३० के स्थान को, और मनुष्यगति सहित २९ के स्थान को बांधते है।।५६७।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि के स्थानों के भंग २३ के ११, २५ के ७०, २६ के ३२, २८ के ९, २९ के ९२४८, ३० के ४६४० जानना।।५६८।।

अर्थ – (भुजाकार बंध के भंगों की त्रैराशिक से) उलटी त्रैराशिक करने पर अल्पतर के भंग होते हैं। उसमें पहले स्थानरूप भंगों को इच्छा राशि तथा पिछले स्थानों को फलराशि करने पर क्रम से भेद होते हैं।।५६९।।

अर्थ – जो थोड़े में जानना चाहता है उसको समझना चाहिये कि ११ आदि अंकों से ऊपर के अंकों के जोड़ का गुणा करे तब भुजाकार भंग होते हैं। और ऊपर के ३० आदि स्थानों के भंगों से नीचे के भंगों को परस्पर में जोड़ने से जो प्रमाण हो उसके साथ गुणा करे तब अल्पतर भंग होते हैं।।५७०।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि में कहे हुए भुजाकार और अल्पतर की भंग संख्या समान है। वह पैंतीस चौरानवें साठ और चवालीस के अंकों को अंकाना वाम तो गति के क्रम से रखने पर ४४६०९४३५ प्रमाण होती है।।५७१।।

भोगभूमिया के बंधस्थान

जीव – पर्याप्त पंचेन्द्री		बंधस्थान
सम्यग्दृष्टि	पर्याप्त, निर्वृति अपर्याप्त	२८(दे)
मिथ्यादृष्टि	पर्याप्त	
	निर्वृति अपर्याप्त	२९(ति), ३०(तिउ), २९(म)

मिथ्यादृष्टि के नामकर्म के भुजाकारादि भंग

स्थान	कर्मपद	भंग	कुल भंग		भुजाकार भंग		अल्पतर भंग		
	विवरण के लिये देखें पृष्ठ गाथा ७३३				विवक्षित स्थान के भंग×(कुल सर्व स्थानों के भंग जिसे वह प्राप्त कर सकता है)		गुणकार	×गुण्य	= सर्वभंग
२३	११	१	११×१=११	११	११(७०+३२+९+९२४८+४६४०) = ११×१३९९९	=१५३९८९			
२५	६	१	६×१=६	७०	७०×(३२+९+९२४८+४६४०) = ७०×१३९२९	=९७५०३०	७०	×११	= ७७०
	६	४	६×४=२४						
	५	८	५×८=४०						
२६	१	८+८=१६	१×१६=१६	३२	३२×(९+९२४८+४६४०) = ३२×१३८९७	=४४४७०४	३२	×८१	= २५९२
	२	८	२×८=१६						
२८	१	१	१×१=१	९	९×(९२४८+४६४०) = ९×१३८८८	=१२४९९२	९	×११३	= १०१७
	१	८	१×८=८						
२९	४	८	४×८=३२	९२४८	९२४८×(४६४०)	=४२९१०७२०	९२४८	×१२२	= ११२८२५६
	१	४६०८	१×४६०८						
	१	४६०८	१×४६०८						
३०	४	८	४×८=३२	४६४०			४६४०	× ९३७०	= ४३४७६८००
	१	४६०८	१×४६०८						
कुल						४४६०९४३५			४४६०९४३५
अवस्थित भंग					= भुजाकार + अल्पतर = ४४६०९४३५ + ४४६०९४३५ = ८९२१८८७०				

देवट्ठवीस णरदेवुगुतीस मणुस्सतीस बंधयदे।
तिछणवणवदुगभंगा तित्थविहीणा हु पुणरुत्ता।।५७२।।
देवट्ठवीसबंधे देवुगुतीसम्मि भंग चउसट्ठी।
देवुगुतीसे बंधे मणुवत्तीसेवि चउसट्ठी।।५७३।।
तित्थयरसत्तणारयमिच्छो णरऊणतीसबंधो जो।
सम्मम्मि तीसबंधो तियछक्कडछक्कचउभंगा।।५७४।।

अर्थ – (असंयत में) देवगति सहित २८ के स्थान में, मनुष्यगति सहित तथा देवगति सहित २९ के स्थान में, मनुष्यगति सहित ३० के बंधस्थान में ३६९९२ भुजाकार के भंग होते हैं। इनमें जो तीर्थंकर रहित है वे पुनरुक्त भंग होते हैं (क्योंकि वे मिथ्यादृष्टि के भंगों में गर्भित हो जाते हैं)।।५७२।।

अर्थ – (मनुष्य असंयत में) देवगति सहित २८ का बंध करके, देवगति-तीर्थंकर प्रकृति सहित २९ का बंध करता है तब दोनों के भंगों को गुणा करने से ६४ भंग होते हैं। देवगति-तीर्थंकर प्रकृति सहित २९ का बंध करके (देव असंयत या नारकी असंयत होकर) मनुष्यगति-तीर्थंकर प्रकृति सहित ३० का बंध करता है तब भी ६४ ही भंग होते हैं।।५७३।।

अर्थ – तीर्थंकर प्रकृति के सत्त्व सहित नारकी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त अवस्था में (४६०८ भंगों वाले) मनुष्यगति सहित २९ के स्थान का बंध करता है। शरीरपर्याप्ति पूर्ण करके सम्यक्त्व सहित हुआ मनुष्यगति-तीर्थंकर प्रकृति सहित ३० को बांधता है, उसके ३६८६४ भंग होते हैं।।५७४।।

असंयत के नामकर्म के भुजाकारादि भंग

पुनरुक्त भंग
↓
तीर्थंकर रहित भंग जो मिथ्यात्व गुणस्थान के भंगों में आ गये

अपुनरुक्त भंग
↓
तीर्थंकर सहित भंग

असंयत के अपुनरुक्त भुजाकार भंग

स्थान	किस पद सहित	स्वामी	भंग	भुजाकार भंग
२८	देवगति	मनुष्य	८ ↓	
२९	देवगति तीर्थंकर प्रकृति सहित		८ ↓	६४
३०	मनुष्य तीर्थंकर प्रकृति सहित	देव अथवा नारकी	८	६४
२९	मनुष्य	तीर्थंकर की सत्ता सहित नारकी मिथ्यादृष्टि	४६०८ ↓	
३०	मनुष्य तीर्थंकर प्रकृति सहित		८	३६८६४
कुल भुजाकार भंग				**३६९९२**

बावत्तरि अप्पदरा देवुगुतीसा दु णिरयअडवीसं।
बंधंत मिच्छभंगेणवगयतित्था हु पुणरुत्ता।।५७५।।

अर्थ – ७२ अल्पतर भंग असंयत में होते हैं। (पहले जिसने नरकायु का बंध किया है ऐसा मनुष्य असंयत तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्रारम्भ करके) देवगति-तीर्थंकर प्रकृति सहित २९ का बंध करता हुआ, (नरकगति के सन्मुख होकर अंतर्मुहूर्त तक मिथ्यादृष्टि होता हुआ) नरकगति सहित २८ का बंध करता है, तब ८ भंग होते हैं। और देव वा नारकी असंयत मनुष्यगति-तीर्थंकर प्रकृति सहित ३० के स्थान को बाँधता है उसके ८ भंग होते हैं। तथा पीछे वह मरणकर तीर्थंकरपने से माता के गर्भ में उत्पन्न हुआ वहाँ पर देवगति-तीर्थंकर प्रकृति सहित २९ के स्थान का बंध करता है, उसके भी ८ भंग होते हैं। इनको आपस में गुणा करने में ६४ भंग हुए। इनको जोड़ने पर ७२ अल्पतर भंग असंयत में होते हैं। तीर्थंकर प्रकृति रहित मनुष्यगति सहित २९ को बाँधकर पश्चात् देवगति सहित २८ को बाँधता है, उसके ६४ भंग पुनरुक्त हैं – पूर्व में मिथ्यादृष्टि के भंगों में आ गये हैं, इसलिये नहीं कहे।।५७५।।

असंयत के अपुनरुक्त अल्पतर व अवस्थित भंग

स्थान	किस पद सहित	स्वामी	भंग	अल्पतर
२९	देवगति तीर्थंकर प्रकृति सहित	नरकायु की सत्ता सहित मनुष्य असंयत	८ ↓	
२८	नरकगति	नरक जाने के सन्मुख पूर्वोक्त जीव अंतर्मुहूर्त के लिये मिथ्यादृष्टि हुआ	१	८
३०	मनुष्य तीर्थंकर प्रकृति सहित	असंयत देव, नारकी	८ ↓	
२९	देवगति तीर्थंकर प्रकृति सहित	तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता सहित माता के गर्भ में अवतरित असंयत मनुष्य	८	६४
कुल अल्पतर भंग				७२
कुल अवस्थित भंग		= भुजाकार+अल्पतर = ३६९९२+७२		=३७०६४

देवजुदेक्कट्ठाणे णरतीसे अप्पमत्तभुजयारा।
पणदालिगिहारुभये भंगा पुणरुत्तगा होंति।।५७६।।
इगि अड अट्ठिगि अट्ठिगिभेदड अट्ठड दुणव य वीस तीसेक्के।
अडिगिगि अडिगिगि बिहि उणखिगि इगिइगितीस देवचउ कमसो।।५७७।।

अर्थ – देवगति सहित एक के स्थान में और मनुष्यगति-तीर्थंकर प्रकृति सहित ३० के स्थान में अप्रमत्त में ४५ भुजाकार भंग होते हैं। और तीर्थंकर प्रकृति सहित, आहारक सहित और दोनों ही सहित – इन ३ स्थानों में जो भंग हैं, वे पुनरुक्त है।।५७६।।

अर्थ – नीचे की पंक्ति के १, ८, ८, १, ८, १, १, १, १, १ भंगों सहित २८, २८,२८,

२९, २९, ३०, १, १, १, १ प्रकृतिरूप स्थानों में ऊपर की पंक्ति के ८, १, १, ८, १, १, १, १, १, १ भंगों सहित २९, ३०, ३१, ३०, ३१, ३१ और देव सहित ४ स्थानों को क्रम से बाँधता है। (सो १-१ ऊपर की पंक्ति के स्थान भंगों को १-१ नीचे की पंक्ति के स्थान भंगों के साथ गुणा करने से कुल भुजाकार भंग ४५ होते हैं।।५७७।।

अप्रमत्त के अपुनरुक्त भुजाकार भंग

स्थान	किस पद सहित	स्वामी	भंग	भुजाकार भंग
२८	देवगति	अप्रमत्त	१ ↓	
२९	देवगति तीर्थंकर प्रकृति	प्रमत्त	८	१×८=८
२८	देवगति	प्रमत्त	८ ↓ ↓	
३०	देवगति आहारकद्विक	अप्रमत्त	१	८×१=८
३१	देवगति आहारकद्विक तीर्थंकर प्रकृति	”	१	८×१=८
२९	देवगति तीर्थंकर प्रकृति	अप्रमत्त	१ ↓	
३०	मनुष्यगति तीर्थंकर प्रकृति	देव असंयत	८	१×८=८
२९	देवगति तीर्थंकर प्रकृति	प्रमत्त	८ ↓	
३१	देवगति आहारकद्विक तीर्थंकर प्रकृति	अप्रमत्त	१	८×१=८
३०	देवगति आहारकद्विक	अप्रमत्त	१ ↓	
३१	देवगति आहारकद्विक तीर्थंकर प्रकृति	”	१	१×१=१
१	यश:कीर्ति	अपूर्वकरण के ७वें भाग में स्थित	१ ↓ ↓ ↓ ↓	
२८	देवगति	उतरते हुये अपूर्वकरण के ६ठे भाग में स्थित	१	१×१=१
२९	देवगति तीर्थंकर प्रकृति		१	१×१=१
३०	देवगति आहारकद्विक		१	१×१=१
३१	देवगति आहारकद्विक तीर्थंकर प्रकृति		१	१×१=१
कुल भुजाकार भंग				४५

इगिविहिगिगि खखतीसे दस णव णवडधियवीसमट्ठविहं।
देवचउक्केक्केक्के अपमत्तप्पदरछत्तीसा।।५७८।।
सव्वपरट्ठाणेण य अयदपमत्तिदरसव्वभंगा हु।
मिच्छस्सभंगमज्झे मिलिदे सव्वे हवे भंगा।।५७९।।
भुजगारा अप्पदरा हवंति पुव्ववरठाणसंताणे।
पयडिसमोऽसंताणोऽपुणरुत्तेत्ति य समुद्दिट्ठो।।५८०।।

भुजगारे अप्पदरेऽवत्तव्वे ठाइदूण समबंधो।
होदि अवट्ठिदबंधो तब्भंगा तस्स भंगा हु।।५८१।।
पडिय मरियेक्कमेककूणतीस तीसं च बंधगुवसंते।
बंधो दु अवत्तव्वो अवट्ठिदो बिदियसमयादी।।५८२।।

अर्थ - १-१ भंग सहित १,१,शून्य,शून्य से अधिक तीस प्रकृतिरूप स्थानों को बाँधकर ८-८ भंगों सहित १०,९,९ और ८ से अधिक २० प्रकृतिरूप स्थानों को तथा १-१ भंग सहित देवगति सहित ४ स्थानों को बाँधता है। इस प्रकार अप्रमत्त में ३६ अल्पतर भंग होते हैं।।५७८।।

अर्थ - सर्व परस्थानों द्वारा 'च' शब्द से स्वस्थानों और परस्थानों द्वारा संयुक्त जो असंयत और अप्रमत्तादि के सब भुजाकारादि भंगों को मिथ्यादृष्टि के भुजाकारादि भंगों में मिलाने पर नामकर्म के सर्व भुजाकारादि भंग होते हैं।।५७९।।

अर्थ - पहले स्थान थोड़ी प्रकृतिरूप उनको बहुत प्रकृतिरूप स्थानों के द्वारा यथासंभव लगाने पर भुजाकार होते हैं। पुनश्च पूर्व स्थान बहुत प्रकृतिरूप उनको थोडी प्रकृतिरूप स्थानों द्वारा यथासंभव लगाने पर अल्पतर होते हैं। पुनश्च प्रकृतियों की संख्या समान होने पर भी 'असंतानः' अर्थात् प्रकृतियों का समुदाय यदि प्रकृति भेद से युक्त हो तो उसे अपुनरूक्त ही कहते हैं, ऐसा कहा हैं।।५८०।।

अर्थ - भुजाकार, अल्पतर और अवक्तव्य भंगों को स्थापन करके जिन-जिन भंगों सहित प्रकृतियों का उनमें एक समय बंध होकर, उन्ही भंगों सहित प्रकृतियों का द्वितीयादि समयों में भी जहाँ समान बंध हो, वहाँ उसे अवस्थित बंध कहते हैं। अतएव उन तीनों के जितने भंग है उतने ही अवस्थित के भंग होते हैं।।५८१।।

अर्थ - उपशांत मोह में नामकर्म की किसी भी प्रकृति को न बाँधकर वही से गिरकर १ के स्थान को बांधे सो एक तो यह, और मरण कर देव असंयत होने पर ८-८ भंगों सहित मनुष्यगति सहित २९ के स्थान को तथा मनुष्यगति-तीर्थंकर प्रकृति सहित ३० के स्थान को बाँधे, सो इन दोनों के १६ - इस तरह १७ अवक्तव्य भंग के भेद हैं। और द्वितीयादि समय में भी उन्हीं के समान बंध हो वहाँ पर उतने ही अवस्थित बंध होते हैं।।५८२।।

अप्रमत्त के अपुनरुक्त अल्पतर व अवस्थित भंग

स्थान	किस पद सहित	स्वामी	भंग	अल्पतर भंग
३१	देवगति आहारकद्विक तीर्थंकर प्रकृति	अप्रमत्त	१ ↓	
३०	मनुष्यगति तीर्थंकर प्रकृति	देव असंयत	८	१×८=८
२९	देवगति तीर्थंकर प्रकृति	प्रमत्त	८ ↓	१×८=८
३०	देवगति आहारकद्विक	अप्रमत्त	१ ↓	
२९	देवगति तीर्थंकर प्रकृति	प्रमत्त	८	१×८=८
२८	देवगति	”	८ ↓	१×८=८

२८	देवगति	अपूर्वकरण के ६वें भाग में स्थित	१	
२९	देवगति तीर्थंकर प्रकृति		१	
३०	देवगति आहारकद्विक		१	
३१	देवगति आहारकद्विक तीर्थंकर प्रकृति		१	
१	यश:कीर्ति	अपूर्वकरण के ७वें भाग में स्थित	१	(१×१)×४=४
कुल अल्पतर भंग				**३६**
कुल अवस्थित भंग		=भुजाकार+अल्पतर=४५+३६		**=८१**

उपशांत मोही के अपुनरुक्त अवक्तव्य भंग

स्थान	किस पद सहित	स्वामी	भंग	अल्पतर भंग
०	–	उपशांत मोह	०	
१	यश:कीर्ति	सूक्ष्मसांपराय	१	१
२९	मनुष्यगति	देव असंयत	८	८
३०	मनुष्यगति तीर्थंकर प्रकृति सहित	”	८	८
कुल अवक्तव्य भंग				**१७**

नामकर्म के सर्व भुजाकारादि बंधस्थानों के अपुनरुक्त भंग

	भुजाकार	अल्पतर	अवस्थित	अवक्तव्य
मिथ्यात्व	४४६०९४३५	४४६०९४३५	८९२१८८७०	
असंयत	३६९९२	७२	३७०६४	
अप्रमत्त	४५	३६	८१	
उपशांत मोह			१७	१७
जोड़	**४४६४६४७२**	**४४६०९५४३**	**८९२५६०३२**	**१७**

प्रकृतियों का समुदाय यदि प्रकृति भेद से युक्त हो तो उसे अपुनरूक्त ही कहते हैं

जैसे – तीर्थंकर प्रकृति बिना संहनन सहित भी २९ का बंध है और तीर्थंकर प्रकृति सहित संहनन बिना भी २९ का बंध है। इन दोनों में २९ की समानता होने पर भी तीर्थंकर और संहनन प्रकृति के भेद से अपुनरूक्तपना कहते हैं, ऐसा कहा हैं।

विग्गहकम्मसरीरे सरीरमिस्से सरीरपज्जत्ते।
आणावचिपज्जत्ते कमेण पंचोदये काला।।५८३।।
एक्कं व दो व तिण्णि व समया अंतोमुहुत्तयं तिसुवि।
हेट्ठिमकालूणाओ चरिमस्स य उदयकालो दु।।५८४।।

अर्थ – नामकर्म के उदयस्थान विग्रहगति व कार्मण शरीर में, मिश्र (अपर्याप्त) शरीर में, शरीर पर्याप्ति में, आन (श्वासोच्छ्वास) पर्याप्ति में और वचन पर्याप्ति में नियत काल हैं अर्थात् जिस काल में उदययोग्य हैं उसी काल में उदय होते हैं। इस तरह क्रम से ५ उदय काल हैं।।५८३।।

अर्थ – उन उदय कालों का प्रमाण विग्रहगति में १, २ या ३ समय हैं, और मिश्र शरीरादि ३ में काल अंतर्मुहूर्त–अंतर्मुहूर्त प्रमाण है, और अंत की भाषा पर्याप्ति का काल पूर्व कथित चारों का काल घटाने से शेष भुज्यमान आयु प्रमाण जानना।।५८४।।

नामकर्म के उदयस्थान योग्य ५ नियत उदयकाल

नियत काल	विग्रहगति/कार्मण*	मिश्र शरीर	शरीर पर्याप्ति	श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति	भाषा पर्याप्ति
			↓ *शरीर पर्याप्ति की पूर्णता*	↓ *श्वासा. पर्याप्ति की पूर्णता*	↓ *भाषा पर्याप्ति की पूर्णता* ↓ *मरण*
स्वरूप	कार्मण शरीर पाया जाता है	⟵ जब तक पूर्ण न हो ⟶ शरीर पर्याप्ति (अपर्याप्त अवस्था)	श्वासा. पर्याप्ति	भाषा पर्याप्ति	शेष सर्व आयु
काल	१,२,३ समय	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	अवशेष आयु
**यहाँ कार्मण विशेषण समुद्घात केवली के कार्मण के ग्रहण निमित्त कहा है*					

सव्वापज्जत्ताणं दोण्णिवि काला चउक्कमेयक्खे।
पंचवि होंति तसाणं आहारस्सुवरिमचउक्कं।।५८५।।
कम्मोरालियमिस्सं ओरालुस्सासभास इति कमसो।
काला हु समुग्घादे उवसंहरमाणगे पंच।।५८६।।

अर्थ – सब लब्धि अपर्याप्तकों में पहले के २ काल, एकेन्द्रिय में ४ काल, त्रसों में ५ काल और आहारक शरीर में पहले के बिना ऊपर के ४ काल है।।५८५।।

अर्थ – समुद्घात केवली के कार्मण, औदारिकमिश्र, औदारिक शरीर पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति काल – इस प्रकार ५ काल क्रम से अपने प्रदेशों का समेटने के समय ही होते हैं। (किंतु फैलाते समय ३ ही काल है)।।५८६।।

जीवसमास में काल

<table>
<tr><th colspan="3">जीव</th><th>कालों की संख्या</th><th>कालों के नाम</th></tr>
<tr><td colspan="3">सर्व लब्धि अपर्याप्त</td><td>२</td><td>प्रारंभ के २ (कार्माण, मिश्र)</td></tr>
<tr><td colspan="3">एकेन्द्रिय</td><td>४</td><td>प्रारंभ के ४ (भाषा पर्याप्ति बिना शेष)</td></tr>
<tr><td colspan="3">त्रस</td><td>५</td><td>पाँचों</td></tr>
<tr><td colspan="3">आहारक शरीर</td><td>४</td><td>पहले कार्माण बिना अन्य शेष ४</td></tr>
<tr><td rowspan="2">समुद्घात केवली</td><td rowspan="2">प्रदेशों को</td><td>समेटते हुये</td><td>५</td><td>संज्ञी पंचेन्द्रियवत् पाँचों</td></tr>
<tr><td>फैलाते हुये</td><td>३</td><td>शरीर पर्याप्ति, मिश्र, कार्मण</td></tr>
</table>

ओरालं दंडदुगे कवाडजुगले य तस्स मिस्सं तु।
पदरे य लोगपूरे कम्मे व य होदि णायव्वो।।५८७।।

अर्थ – दंड समुद्घात के करने वा समेटनेरूप युगल में अर्थात् दो समयों में औदारिक शरीर पर्याप्ति काल है, कपाट समुद्घात के करने और समेटनेरूप युगल में औदारिकमिश्र शरीर काल है, प्रतर समुद्घात में और लोकपूरण समुद्घात में कार्मण काल है।।५८७।।

समुद्घात में उदयकाल

समुद्घात	समय	काल
दंड युगल (फैलाने व समेटने में)	२	औदारिक शरीर पर्याप्ति
कपाट युगल	२	औदारिक मिश्र
प्रतर युगल व लोकपूरण	३	कार्मण

णामधुवोदयबारस गइजाईणं च तसतिजुम्माणं।
सुभगादेज्जजसाणं जुम्मेक्कं विग्गहे वाणू।।५८८।।
मिस्सम्मि तिअंगाणं संठाणाणं च एगदरगं तु।
पत्तेयदुगाणेक्को उवघादो होदि उदयगदो।।५८९।।
तसमिस्से ताणि पुणो अंगोवंगाणमेगदरगं तु।
छण्हं संहडणाणं एगदरो उदयगो होदि।।५९०।।
परघादमंगपुण्णे आदावदुगं विहायमविरुद्धे।
सासवची तप्पुण्णे कमेण तित्थं च केवलिणि।।५९१।।जुम्मं।।

अर्थ – नामकर्म की १२ ध्रुव उदयरूप प्रकृतियाँ, ४ गति, ५ जाति और त्रसादि ३ युगल–त्रस स्थावर, बादर सूक्ष्म, पर्याप्त अपर्याप्त में से १–१, तथा सुभग–आदेय और यश:कीर्ति, इन ३ के युगल में से १–१ प्रकृति का और विग्रहगति में ४ आनुपूर्वी प्रकृतियों में से कोई १ का उदय होने

से कुल २१ प्रकृतिरूप स्थान विग्रहगति में ही होता है।।५८८।।

अर्थ – उक्त २१ प्रकृतिरूप उदयस्थान में से आनुपूर्वी के घटाने और औदारिकादि ३ शरीरों में से १, ६ संस्थानों में से १, प्रत्येक साधारण इन दोनों में से १, और उपघात – ये ४ उनमें मिलाने से २४ का स्थान होता है। इस स्थान का मिश्र शरीर के काल में उदय होता है।।५८९।।

अर्थ – पहले कही हुई ४ प्रकृतियों, ३ अंगोपांगों में से १, ६ संहननों में से १ – ये सब ६ प्रकृतियाँ मिश्र शरीर वाले त्रस जीव के उदययोग्य हैं।।५९०।।

अर्थ – शरीर पर्याप्ति काल में ही परघात प्रकृति त्रस स्थावरों के उदययोग्य होती है। आतप-उद्योत ये दोनों तथा दोनों विहायोगति – ये अविरुद्ध योग्य त्रस स्थावर के पर्याप्तिकाल में उदययोग्य होती है। उच्छ्वास और स्वर युगल – इनका अपने-अपने पर्याप्तिकाल में उदय होता है। और तीर्थंकर प्रकृति का उदय केवली के ही होता है।।५९१।।

कौन-सी प्रकृति का उदय किस जीव के किस काल में प्रारंभ होता है

कार्मण काल

४ आनुपूर्वी का उदय केवल विग्रहगति में ही होता है, अन्यत्र नहीं

२० प्रकृतियों का उदय सब जीवों के निरंतर पाया जाता है

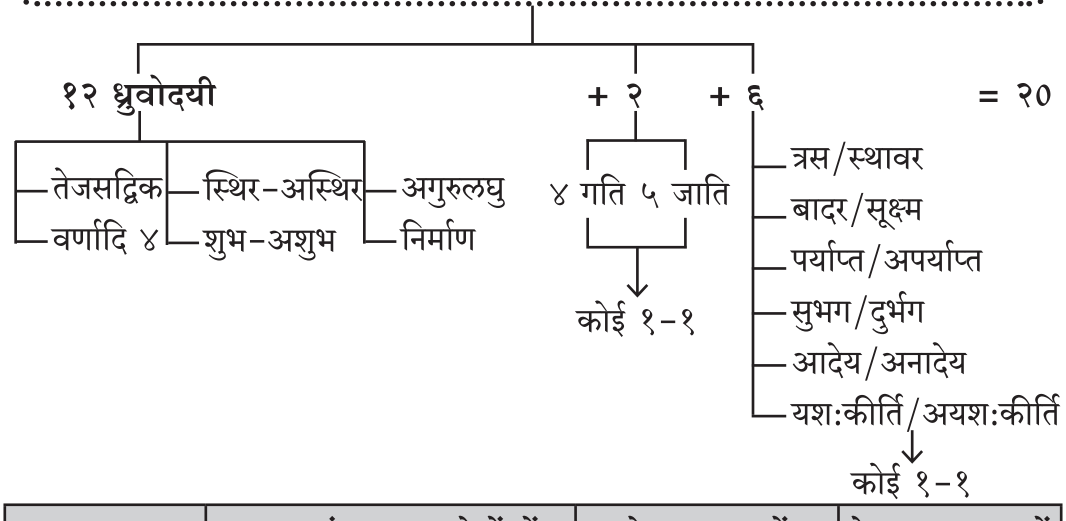

काल	त्रस एवं स्थावर दोनों में	केवल त्रस में	केवल स्थावर में
मिश्र	३ शरीर, ६ संस्थान, प्रत्येक/साधारण, उपघात	३ अंगोपांग, ६ संहनन	
शरीर	परघात, उद्योत	विहायोगति युगल	आतप
श्वासोच्छ्वास	उच्छ्वास		
भाषा		स्वर युगल	

वीसं इगिचउवीसं तत्तो इगितीसओत्ति एयधियं।
उदयट्ठाणा एवं णव अट्ठ य होंति णामस्स।।५९२।।
चदुगदिया एइंदी विसेसमणुदेवणिरयएइंदी।
इगिबितिचपसामण्णा विसेससुरणारगेइंदी।।५९३।।
सामण्णसयलवियलविसेसमणुस्ससुरणारया दोण्हं।
सयलवियलसामण्णा सजोगपंचक्खवियलया सामी।।५९४।।जुम्मं।।

अर्थ – नामकर्म के उदयस्थान २०, २१, २४ और इससे ऊपर १-१ अधिक ३१ के स्थान तक ७, ९ और ८ – इस प्रकार १२ हैं।।५९२।।

अर्थ – २१ के स्थान के चारों गति के जीव स्वामी हैं, २४ के एकेन्द्रिय, २५ के विशेष मनुष्य-देव-नारकी-एकेन्द्रिय स्वामी है, २६ के एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रिय-सामान्य मनुष्य जीव स्वामी हैं, २७ के विशेष पुरुष-देव नारकी-एकेन्द्रिय स्वामी है। २८ और २९ के सामान्य (मनुष्य)-पंचेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय-विशेष मनुष्य-देव-नारकी स्वामी हैं, ३० के पंचेन्द्रिय विकलेन्द्रिय-सामान्य (मनुष्य) स्वामी हैं, ३१ के सयोग केवली-पंचेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय जीव स्वामी हैं, (९ और ८ के स्थान के अयोग केवली स्वामी हैं)।।५९३-५९४।।

नामकर्म के उदयस्थान - स्वामी प्रकृतियों सहित

स्थान	स्थान स्वामी	उदयकाल	प्रकृतियाँ	
२०(१)	समुद्घात केवली	कार्मण	२०	सर्व जीवों के निरंतर उदयरुप
२१ (२)	१. ४ गति के जीव	कार्मण (विग्रहगति में)	२०+१	४ आनुपूर्वी में कोई १
	२ स.तीर्थंकर केवली	कार्मण	२०+१	तीर्थंकर प्रकृति
२४ (१)	एकेन्द्रिय	मिश्र	२०+४	औदारिक शरीर,हुंडक संस्थान, साधारण/प्रत्येक में से १,उपघात
२५ (३)	१. एकेन्द्रिय	शरीर पर्याप्ति	पूर्वोक्त २४+१	परघात
	२. आहारक	मिश्र	२०+५	आहारकद्विक समचतुरस्र संस्थान, प्रत्येक, उपघात
	३. देव, नारकी	मिश्र	२०+५	वैक्रियिकद्विक, समचतुरस्र/ हुंडक, उपघात, प्रत्येक
२६ (३)	१. एकेन्द्रिय	शरीर पर्याप्ति	एकेन्द्रिय की पूर्वोक्त २५+१	आतप/उद्योत
	२. एकेन्द्रिय	श्वासो.पर्याप्ति		उच्छ्वास
	३. विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय,सामान्य मनुष्य व स.केवली	मिश्र	२०+६	औदारिकद्विक, ६ संस्थान-६ संहनन में कोई १-१, प्रत्येक, उपघात

स्थान	स्थान स्वामी	उदयकाल	प्रकृतियाँ	
२७ (४)	१. आहारक	शरीर पर्याप्ति	आहारक की पूर्वोक्त२५+२	परघात,प्र. विहायोगति
	२. समुद्घात तीर्थंकर केवली	मिश्र	सामान्य केवली की पूर्वोक्त २६+१	तीर्थंकर प्रकृति
	३. देव, नारकी	शरीर पर्याप्ति	देव/नारकी की पूर्वोक्त २५+२	परघात, प्र./अप्र. विहायोगति
	४. एकेन्द्रिय	श्वासो.पर्याप्ति	एकेन्द्रिय की श्वासो.पर्याप्ति की २६+१	आतप/उद्योत
२८ (३)	३. विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय,सामान्य मनुष्य व स.केवली	शरीर पर्याप्ति	विवक्षित जीवों के मिश्र काल की २६+२	परघात, प्र./अप्र. विहायोगति
	२. आहारक	श्वासो.पर्याप्ति	आहारक की पूर्वोक्त२७+१	उच्छ्वास
	३. देव, नारकी	श्वासो.पर्याप्ति	पूर्वोक्त २७+१	उच्छ्वास
२९ (६)	१. सामान्य मनुष्य, समुद्घात केवली	श्वासो.पर्याप्ति	विवक्षित जीवों के शरीर पर्याप्ति की २८+१	उच्छ्वास
	२. विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय	शरीर पर्याप्ति	विवक्षित जीवों के शरीर पर्याप्ति की २८+१	उद्योत
	३. विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय	श्वासो.पर्याप्ति	विवक्षित जीवों के शरीर पर्याप्ति की २८+१	उच्छ्वास
	४. समुद्घात तीर्थंकर केवली	शरीर पर्याप्ति	तीर्थंकर के मिश्र काल की २७+२	परघात, प्रशस्त विहायोगति
	५. आहारक	भाषा पर्याप्ति	आहारक की पूर्वोक्त२८+१	सुस्वर
	६. देव, नारकी	भाषा पर्याप्ति	देव,नारकी पूर्वोक्त २८+१	सुस्वर/दुस्वर
३० (४)	१. विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय	श्वासो.पर्याप्ति	विवक्षित जीवों के शरीर पर्याप्ति की २९+१	उच्छ्वास
	२. विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय,सामान्य मनुष्य	भाषा पर्याप्ति	विवक्षित जीवों के श्वासो. पर्याप्ति की २९+१	सुस्वर/दुस्वर
	३. समुद्घात तीर्थंकर केवली	श्वासो.पर्याप्ति	तीर्थंकर के शरीर पर्याप्ति की २९+१	उच्छ्वास
	४. सामान्य केवली, समुद्घात केवली	भाषा पर्याप्ति	सामान्य केवली के श्वासो. पर्याप्ति की २९+१	सुस्वर/दुस्वर

३१ (२)	१. तीर्थंकर केवली, स.तीर्थंकर केवली	भाषा पर्याप्ति	तीर्थंकर के श्वासो. पर्याप्ति की ३०+१	सुस्वर
	२. विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय	भाषा पर्याप्ति	विवक्षित जीवों के श्वासो. पर्याप्ति की ३०+१	सुस्वर/दुस्वर
९	तीर्थंकर अयोग केवली		मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश:कीर्ति, तीर्थंकर	
८	सामान्य अयोग केवली		पूर्वोक्त ९ में तीर्थंकर बिना ८	

एगे इगिवीसपणं इगिछव्वीसट्ठुवीसतिण्णि णरे।
सयले वियलेवि तहा इगितीसं चावि वचिठाणे।।५९५।।
सुरणिरयविसेसणरे इगिपणसगवीसतिण्णि समुघादे।
मणुसं वा इगिवीसे वीसं रूवाहियं तित्थं।।५९६।।
वीसदु चउवीसचऊ पणछव्वीसादिपंचयं दोसु।
उगुतीसति पणकाले गयजोगे होंति णव अट्ठं।।५९७।।विसेसयं।।

अर्थ – एकेन्द्रिय के उदययोग्य २१ आदि ५ स्थान है; मनुष्य के उदययोग्य २१,२६ और २८ आदि ३ स्थान – इस तरह ५ स्थान है; सकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय के उसी प्रकार मनुष्यवत् ५ उदययोग्य स्थान और भाषा पर्याप्ति में ३१ का स्थान – इस प्रकार ६ उदययोग्य स्थान हैं। देव, नारकी, विशेष मनुष्य (आहारक और केवल सहित) इनके २१, २५ तथा २७ आदि ३ – इस प्रकार ५ उदययोग्य स्थान है। समुद्घात केवली के कार्मण काल में २१ के स्थान की जगह सामान्य केवली के २० का उदय स्थान होता है, (क्योंकि आनुपूर्वी कम हो जाती है)। तीर्थंकर समुद्घात केवली के तीर्थंकर प्रकृति सहित २१ का स्थान होता है। इस प्रकार केवली कार्मण के २० और २१ के २ स्थान उदययोग्य हैं। और विग्रहगति के कार्मण में २१ का ही स्थान होता है। मिश्र शरीर काल में २४ आदि के ४ स्थान, शरीर पर्याप्ति काल में २५ आदि के ५ स्थान, आनप्रान(श्वासोच्छ्वास) पर्याप्ति काल में २६ आदि के ५ स्थान, भाषा पर्याप्ति काल में २९ आदि के ३ स्थान उदययोग्य है। अयोगी में तीर्थंकर केवली के ९ का और सामान्य केवली के ८ का – ये २ उदययोग्य स्थान है।।५९५-५९७।।

नामकर्म के उदयस्थान - सर्व जीवों के पाँचों काल में

जीव / काल	एकेन्द्रिय	देव	नारकी	तिर्यंच	मनुष्य	सामान्य केवली	तीर्थंकर केवली	आहारक
कार्मण में	२१	२१	२१	२१	२१	२०	२१	-
मिश्र शरीर में	२४	२५	२५	२६	२६	२६	२७	२५
शरीर पर्याप्ति में	२५ २६	२७	२७	२८ २९	२८	२८	२९	२७
श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति में	२६ २७	२८	२८	२९ ३०	२९	२९	३०	२८
भाषा पर्याप्ति में	-	२९	२९	३० ३१	३०	३०	३१	२९

गयजोगस्स य बारे तदियाउगगोद इदि विहीणेसु।
णामस्स य णव उदया अट्ठेव य तित्थहीणेसु।।५९८।।

अर्थ - अयोग केवली की १२ उदय प्रकृतियों में से (तीसरा) वेदनीय, आयु, गोत्र - ये ३ प्रकृतियों के बिना नामकर्म की ९ उदययोग्य है। तीर्थंकर प्रकृति बिना ८ का ही उदय है।।५९८।।

इस गाथा के विषय की तालिका पृष्ठ क्र. -(गाथा ५९१)- पर देखें

संठाणे संहडणे विहायजुम्मे य चरिमचदुजुम्मे।
अविरुद्धेक्कदरादो उदयट्ठाणेसु भंगा हु।।५९९।।

अर्थ - ६ संस्थानों में से, ६ संहननों में से, विहायोगति युगल में से, और अंत के सुभगादि ४ युगलों में से अविरोधी १-१ प्रकृति का ग्रहण करने पर नामकर्म के भंग होते हैं। (इन सबको आपस में गुणा करने से ११५२ भंग हो जाते हैं)।।५९९।।

नामकर्म के उदयस्थानों में सर्व भंग विवरण

६ संस्थान	६ संहनन	विहायोगति युगल	स्वर, सुभग, आदेय, यश:कीर्ति - इनके प्रतिपक्षीरुप युगल
६ ×	६ ×	२ ×	२ × २ × २ × २
कुल = ११५२ भंग			

तत्थासत्था णारयसाहारणसुहुमगे अपुण्णे य।
सेसेगविगलऽसण्णीजुदठाणे जसजुगे भंगा।।६००।।
सण्णिम्मि मणुस्सम्मि य ओघेक्कदरं तु केवले वज्जं।
सुभगादेज्जजसाणि य तित्थजुदे सत्थमेदीदि।।६०१।।
देवाहारे सत्थं कालवियप्पेसु भंगमाणेज्जो।
वोच्छण्णं जाणित्ता गुणपडिवण्णेसु सव्वेसु।।६०२।।

अर्थ – उन उदय प्रकृतियों में से नारकी, साधारण वनस्पति सर्व सूक्ष्म और सर्व लब्धि अपर्याप्त – इनमें अप्रशस्त प्रकृतियों का ही उदय होता है। शेष एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय – इनमें पूर्वकथित अप्रशस्त का ही उदय होता है, परंतु यशःकीर्ति–अयशःकीर्ति इन दोनों में से किसी १ का उदय होने से उदयस्थानों में २–२ भंग होते हैं।।६००।।

अर्थ – संज्ञी पंचेन्द्रिय के और मनुष्य के सामान्य कथनवत् १–१ का उदय होने से ११५२ भंग होते हैं। केवलज्ञान अवस्था में वज्रवृषभनाराच संहनन, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति – इनका ही उदय होता है। तीर्थंकर केवली के सर्व प्रशस्त प्रकृतियों का ही उदय होता है।।६०१।।

अर्थ – देवों में और आहारक सहित प्रमत्त में प्रशस्त प्रकृतियों का ही उदय है, इसलिये उनके सर्व काल के उदयस्थानों में १–१ ही भंग होता है। और सासादनादि गुणस्थानों को प्राप्त हुए जीवों में अथवा विग्रहगति के कार्माणादि कालों में व्युच्छिन्न प्रकृतियों को जानकर शेष प्रकृतियों के भंग यथासंभव जानना।।६०२।।

नारकादि ४१ जीवपदो में पाये जानेवाल नाम कर्म के उदयस्थानों के भंग

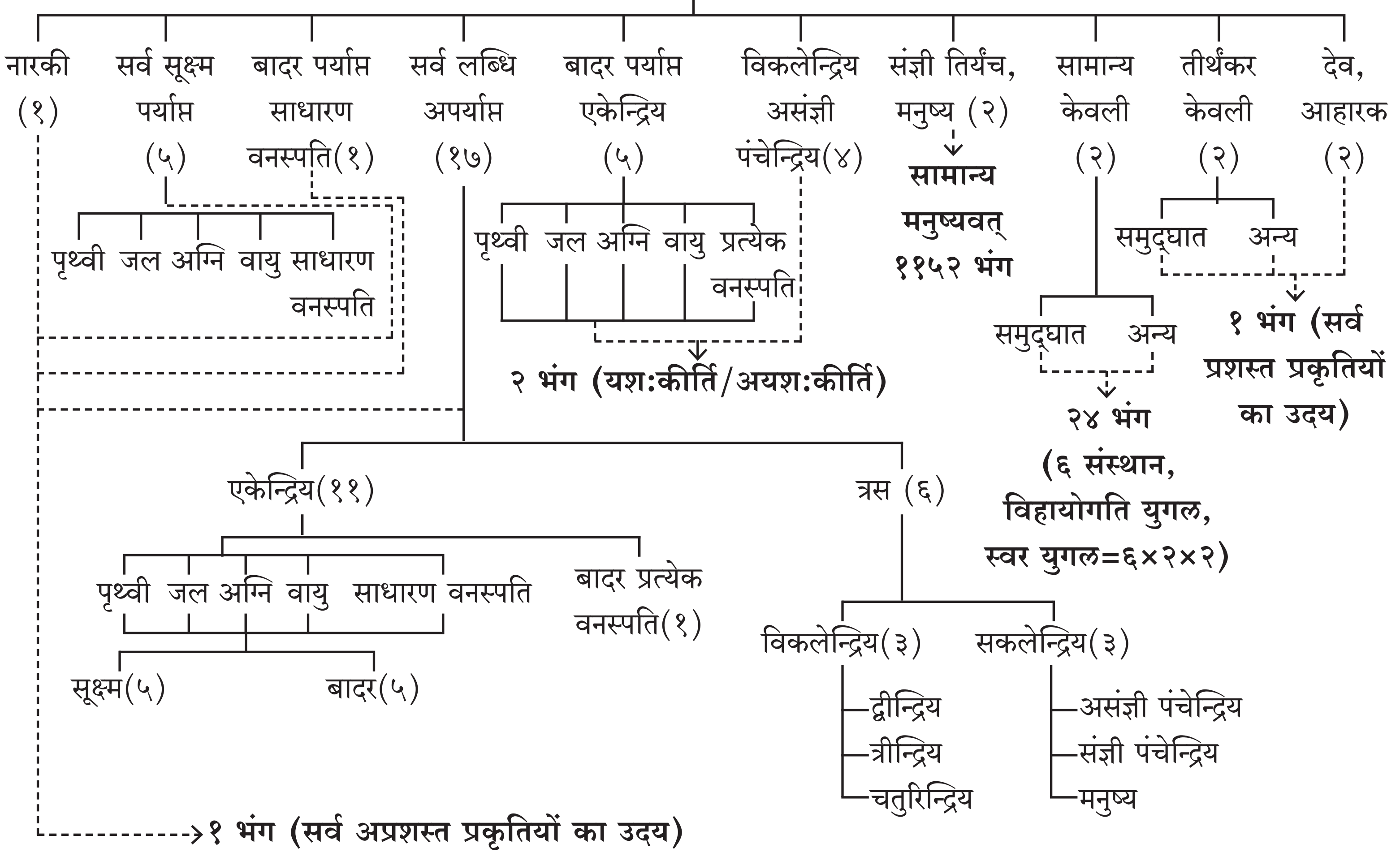

वीसादीणं भंगा इगिदालपदेसु संभवा कमसो।
एक्कं सट्ठी चेव य सत्तावीसं च उगुवीसं।।६०३।।
वीसुत्तरछच्चसया बारस पण्णत्तरीहि संजुत्ता।
एक्कारससयसंखा सत्तरससयाहिया सट्ठी।।६०४।।
ऊणत्तीससयाहियएक्कावीसा तदोवि एकट्ठी।
एक्कारससयसहिया एक्केक्क विसरिसगा भंगा।।६०५।।विसेसयं।।
सामण्णकेवलिस्स समुग्घादगदस्स तस्स वचि भंगा।
तित्थस्सवि सगभंगा समेदि तत्थेक्कमवणिज्जो।।६०६।।

अर्थ – २० के स्थान को आदि लेकर स्थानों के विसदृश्य(अपुनरुक्त) भंग ४१ जीवपदों की अपेक्षा यथासंभव क्रम से १, ६०, २७, १९, ६२०, १२, ११७५, १७६०, २९२१, ११६१ होते हैं। अयोग केवली के तीर्थंकर प्रकृति सहित ९ का १ और तीर्थंकर रहित ८ का १ भंग (– इस प्रकार कुल ७७५८ भंग होते हैं)।।६०३-६०५।।

अर्थ – भाषापर्याप्ति काल में सामान्य केवली के तथा समुद्घात सहित सामान्य केवली के ३० के स्थान में २४-२४ भंग समान हैं। और तीर्थंकर केवली व तीर्थंकर समुद्घात केवली के ३१ के स्थान में १-१ भंग है, सो वह भी समान है। इस कारण ये २५ भंग पुनरुक्त होने से ग्रहण नहीं करने चाहिये।।६०६।।

आगे कहे जानेवाले नामकर्म के उदयस्थानों के भंग संख्या विवरण

संख्या	विवरण
८	सुभग, आदेय, यश:कीर्ति युगल = २×२×२ = ८
२८८	पूर्वोक्त ८ × ६ संस्थान × ६ संहनन = २८८
५७६	पूर्वोक्त २८८ × विहायोगति युगल (२) = ५७६
११५२	पूर्वोक्त ५७६ × स्वर युगल (२) = ११५२
२	यश:कीर्ति युगल
६	६ संस्थान
१२	६ संस्थान × विहायोगति युगल (२) = १२
२४	पूर्वोक्त १२ × स्वर युगल (२) = २४
४	आतप/उद्योत × यश:कीर्ति युगल (२) = ४

४१ जीवपदो के ५ कालों में नाम कर्म के उदयस्थानों के भंग

		पर्याप्त				समुद्घातगत्				लब्धि अपर्याप्त	
जीवपद		सर्व सूक्ष्म, बादर साधारण वनस्पति	बादर एकेन्द्रिय	विकलेंद्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय	संज्ञी तिर्यंच, मनुष्य	सामान्य केवली	तीर्थंकर केवली	देव, नारकी	आहारक	सर्व एकेन्द्रिय	विकलेंद्रिय पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य
संख्या / काल		६	५	४	२	१	१	२	१	११	६
कार्मण	स्थान	२१	२१	२१	२१	२०	२१	२१		२१	२१
	भंग	१	२	२	८	१	१	१		१	१
मिश्र शरीर	स्थान	२४	२४	२६	२६	२६	२७	२५	२५	२४	२६
	भंग	१	२	२	२८८	६	१	१	१	१	१
शरीर पर्याप्ति	स्थान	२५	२५	२८	२८	२८	२९	२७	२७		
	भंग	१	२	२	५७६	१२	१	१	१		
श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति	स्थान	२६	२६	२९	२९	२९	३०	२८	२८		
	भंग	१	२	२	५७६	१२	१	१	१		
भाषा पर्याप्ति	स्थान			३०	३०	३०	३१	२९	२९		
	भंग			२	११५२	२४	१	१	१		
पुनरुक्त भंग	*समुद्घात सहित सामान्य व तीर्थंकर केवली के और भाषा पर्याप्ति काल में समुद्घात रहित केवली के भंग समान है*										

आतप/उद्योत के उदय सहित तिर्यंच के उदयस्थानों के भंग

जीवपद		बादर पर्याप्त		विकलेंद्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय	संज्ञी तिर्यंच
		पृथ्वी	जल, प्रत्येक वनस्पति		
काल	संख्या	१	२	४	१
शरीर पर्याप्ति	स्थान	२६	२६	२९	२९
	भंग	४	२	२	५७६
श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति	स्थान	२७	२७	३०	३०
	भंग	४	२	२	५७६
भाषा पर्याप्ति	स्थान			३१	३१
	भंग			२	११५२

अयोग केवली के उदयस्थानों के भंग

जीवपद	सामान्य केवली	तीर्थंकर केवली
स्थान	८	९
भंग	१	१

२० आदि स्थानों के कुल भंग

स्थान	जीवपद अपेक्षा भंग (भंग × जीवपद)	कुल भंग
२०	१ × १ (१ भंग × १ जीवपद)	१
२१	(१×६)+(२×५)+(२×४)+(८×२)+(१×१)+(१×२)+(१×११)+(१×६) = ६+१०+८+१६+१+२+११+६	६०
२४	(१×६)+(२×५)+(१×११) = ६+१०+११	२७
२५	(१×६)+(२×५)+(१×२)+(१×१) = ६+१०+२+१	१९
२६	(१×६)+(२×५)+(२×४)+(२८८×२)+(६×१)+(१×६)+(४×१)+(२×२) = ६+१०+८+५७६+६+६+४+४	६२०
२७	(१×१)+(१×२)+(१×१)+(४×१)+(२×२) = १+२+१+४+४	१२
२८	(२×४)+(५७६×२)+(१२×१)+(१×२)+(१×१)=८+११५२+१२+२+१	११७५
२९	(२×४)+(५७६×२)+(१२×१)+(१×१)+(१×२)+(१×१)+(२×४) +(५७६×१) = ८+११५२+१२+१+२+१+८+५७६	१७६०

३०	(२×४)+(११५२×२)+(२४×१)+(१×१)+(२×४)+(५७६×१) = ८+२३०४+२४+१+८+५७६	२९२१
३१	(१×१)+(२×४)+(११५२×१) = १+८+११५२	११६१
८	१	१
९	१	१
	कुल भंग	**७७५८**

णारयसण्णिमणुस्ससुराणं उवरिमगुणाण भंगा जे।
पुणरुत्ता इदि अवणिय भणिया मिच्छस्स भंगेसु।।६०७।।

अर्थ – नारकी, संज्ञी तिर्यंच, मनुष्य, देव – इनके ऊपर के अर्थात् सासादनादि गुणस्थानों में जो भंग हैं वे मिथ्यात्व के भंग के समान होने से पुनरुक्त हैं, इसलिये उन पुनरुक्त भंगों को घटाकर केवल मिथ्यात्व के भंगों में ही उनको भी कहा गया है।।६०७।।

गुणस्थानों में नाम कर्म के उदयस्थानों भंग

मिथ्यात्व गुणस्थान के स्थान एवं भंग

सामान्य भंगों में से मिथ्यात्व बिना शेष गुणस्थानों के भंग घटाकर मिथ्यात्व के भंग निकालना

मिथ्यात्व बिना शेष गुणस्थानों के स्थान एवं भंग

जीवपद		संख्या	कार्मण	मिश्र शरीर	शरीर पर्याप्ति	श्वासो. पर्याप्ति	भाषा पर्याप्ति	अयोग केवली	कुल भंग
समुद्घातगत	सामान्य केवली	१	२०	२६	२८	२९	३०	८	
			१	६	१२	१२	२४	१	५६
	तीर्थंकर केवली	१	२१	२७	२९	३०	३१	९	
			१	१	१	१	१	१	६
आहारक		१		२५	२७	२८	२९		
				१	१	१	१		४
कुल भंग									६६
मिथ्यात्व गुणस्थान के भंग		= कुल सामान्य भंग–मिथ्यात्व बिना शेष गुणस्थानों के भंग = ७७५८–६६							७६९२

मिथ्यात्व गुणस्थान के स्थान अपेक्षा भंग

उदयस्थान	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	८	९
कुल सामान्य भंग	१	६०	२७	१९	६२०	१२	११७५	१७६०	२९२१	११६१	१	१
मिथ्यात्व बिना शेष गुण. के भंग	−१	−१	०	−१	−६	−२	−१३	−१४	−२५	−१	−१	−१
मात्र मिथ्यात्व गुणस्थान के भंग	०	५९	२७	१८	६१४	१०	११६२	१७४६	२८९६	११६०	०	०
	कुल भंग = ७६९२											

सासादन गुणस्थान

जीवपद		बादर पर्याप्त पृथ्वी, जल, प्रत्येक वनस्पति	विकलेंद्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय	संज्ञी तिर्यंच, मनुष्य	देव	नारकी	उद्योत सहित संज्ञी
काल	संख्या	३	४	२	१	१	१
कार्मण	स्थान	२१	२१	२१	२१	यहाँ सासादन पर्याप्त अवस्था में ही होता है	
	भंग	२	२	८	१		
मिश्र शरीर	स्थान	२४	२६	२६	२५		
	भंग	२	२	२८८	१		
शरीर	स्थान	पर्याप्ति पूर्ण होने के पूर्व ही मिथ्यात्व में आ जाता है					
श्वासो.	स्थान						
भाषा पर्याप्ति	स्थान			३०	२९	२९	३१
	भंग			११५२	१	१	११५२

स्थान	जीवपद अपेक्षा भंग (भंग × जीवपद)		कुल भंग
२१	(२×३)+(२×४)+(८×२)+(१×१)	= ६+८+१६+१	३१
२४	(२×३)	= ६	६
२५	(१×१)	= १	१
२६	(२×४)+(२×२८८)	= ८+५७६	५८४
२९	(१×१)+(१×१)	= १+१	२
३०	११५२×२	= २३०४	२३०४
३१	११५२×१	= ११५२	११५२
कुल भंग			४०८०

मिश्र गुणस्थान

मिश्र गुणस्थान मात्र भाषा पर्याप्ति के काल में ही होता है

जीवपद		संज्ञी तिर्यंच, मनुष्य	देव, नारकी	उद्योत सहित संज्ञी	कुल
काल	संख्या	२	२	१	
भाषा पर्याप्ति	स्थान	३०	२९	३१	
	भंग	११५२	१	११५२	
	कुल	११५२×२=२३०४	१×२=२	११५२×१=११५२	३४५८

अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान

जीवपद		मनुष्य	देव, नारकी	भोगभूमिया तिर्यंच		कर्मभूमिया तिर्यंच	
				तिर्यंच	उद्योत सहित	तिर्यंच	उद्योत सहित
काल	संख्या	१	२	१	१	१	१
कार्मण	स्थान	२१	२१	२१			
	भंग	१	१	१			
मिश्र शरीर	स्थान	२६	२५	२६			
	भंग	३६*	१	१			
शरीर पर्याप्ति	स्थान	२८	२७	२८	२९		
	भंग	७२**	१	१	१		
श्वासो. पर्याप्ति	स्थान	२९	२८	२९	३०		
	भंग	७२	१	१	१		
भाषा पर्याप्ति	स्थान	३०	२९			३०	३१
	भंग	११५२	१			११५२	११५२

** ३६ = ६ संस्थान × ६ संहनन*

*** ७२ = ६ संस्थान × ६ संहनन × २ विहायोगति युगल*

स्थान	जीवपद अपेक्षा भंग (भंग × जीवपद)		कुल भंग
२१	(१×१)+(१×२)+(१×१)	= १+२+१	४
२५	(१×२)	= २	२
२६	(३६×१)+(१×१)	= ३६+१	३७

२७	(१×२)	= २	२
२८	(७२×१)+(१×२)+(१×१)	= ७२+२+१	७५
२९	(७२×१)+(१×२)+(१×१)+(१×१)	= ७२+२+१+१	७६
३०	(११५२×१)+(१×१)+(११५२×१)	= ११५२+१+११५२	२३०५
३१	११५२×१	= ११५२	११५२
कुल भंग			३६५३

देशसंयत गुणस्थान

जीवपद		संज्ञी तिर्यंच,मनुष्य	उद्योत सहित संज्ञी	कुल	* १४४ = ६ संस्थान × ६ संहनन × २ विहायोगति युगल × २ स्वर युगल
काल	संख्या	२	१		
भाषा पर्याप्ति	स्थान	३०	३१		
	भंग	१४४*	१४४		
	कुल	१४४×२=२८८	१४४×१=१४४	४३२	

प्रमत्तसंयत गुणस्थान

जीवपद	संख्या		मिश्र शरीर	शरीर पर्याप्ति	श्वासो. पर्याप्ति	भाषा पर्याप्ति	कुल भंग	
आहारक	१	स्थान	२५	२७	२८	२९		
		भंग	१	१	१	१	४	कुल भंग
सामान्य मनुष्य	१	स्थान				३०		=
		भंग				१४४	१४४	१४८

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान

जीवपद	भाषा पर्याप्ति काल उदयस्थान	कुल भंग
सामान्य मनुष्य	३०	१४४

उपशमश्रेणी (गुणस्थान ८,९,१०,११)

जीवपद	उदयस्थान	प्रत्येक में कुल भंग	*७२=६ संस्थान × ३ संहनन ×२ विहायोगति युगल × २ स्वर युगल
सामान्य मनुष्य	३०	७२*	

क्षपकश्रेणी (गुणस्थान ८,९,१०,१२)

जीवपद	उदयस्थान	प्रत्येक में कुल भंग	*२४=६ संस्थान x २ विहायोगति युगल x २ स्वर युगल
सामान्य मनुष्य	३०	२४*	

सयोगकेवली गुणस्थान

जीवपद	संख्या		कार्मण	मिश्र शरीर	शरीर पर्याप्ति	श्वासो. पर्याप्ति	भाषा पर्याप्ति
सामान्य केवली	१	स्थान	२०	२६	२८	२९	३०
		भंग	१	६	१२	१२	२४
तीर्थंकर केवली	१	स्थान	२१	२७	२९	३०	३१
		भंग	१	१	१	१	१

स्थान	२०	२१	२६	२७	२८	२९	३०	३१	कुल भंग
भंग	१	१	६	१	१२	१+१२ = १३	१+२४ = २५	१	६०

अयोगकेवली गुणस्थान

जीवपद	सामान्य केवली	तीर्थंकर केवली	कुल भंग
स्थान	८	९	
भंग	१	१	२

अडवण्णा सत्तसया सत्तसहस्सा य होंति पिंडेण।
उदयट्ठाणे भंगा असहायपरक्कमुद्दिट्ठा।।६०८।।

अर्थ – सहाय रहित पराक्रम के धारी श्री महावीर स्वामी ने नामकर्म संबंधी २० आदि के पूर्वोक्त १२ उदयस्थानों में अपुनरुक्त भंग सब मिलाकर ७७५८ कहे हैं।।६०८।।

इस गाथा के विषय की तालिका पृष्ठ क्र. –(गाथा ६०३–६०५)– पर देखें

तिदुइगिणउदी णउदी अडचउदोअहियसीदि सीदी य।
ऊणासीदट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस य णव सत्ता।।६०९।।
सव्वं तित्थाहारुभऊणं सुरणिरयणरदुचारिदुगे।
उव्वेल्लिदे हदे चउ तेरे जोगिस्स दसणवयं।।६१०।।
गयजोगस्स दु तेरे तदियाउगगोदइदि विहीणेसु।
दस णामस्स य सत्ता णव चेव य तित्थहीणेसु।।६११।।

गुणसंजादप्पयडिं मिच्छे बंधुदयगंधहीणम्मि।
सेसुव्वेल्लणपयडिं णियमेणुव्वेल्लदे जीवो।।६१२।।

अर्थ – ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १० और ९ प्रकृतिरूप-नामकर्म के १३ सत्त्वस्थान हैं।।६०९।।

अर्थ – नामकर्म की सर्व प्रकृतिरूप ९३ का स्थान है, उनमें से तीर्थंकर घटाने से ९२ का स्थान, आहारकद्विक घटाने से ९१ का, तीनों घटाने से ९० का स्थान होता है। उस ९० के स्थान में देवद्विक की उद्वेलना होने से ८८ का स्थान होता है, इसमें नरक चतुष्क की उद्वेलना होने पर ८४ का स्थान होता है, इसमें मनुष्यद्विक की उद्वेलना होने से ८२ का स्थान होता है, तथा ९३ आदि ४ (९३,९२,९१,९०) स्थानों में क्रम से अनिवृत्तिकरण में क्षय होने वाली १३ प्रकृतियों के घटाने से ८०,७९,७८,७७ के ४ स्थान होते हैं। अयोगी के १० और ९ का स्थान होता है।।६१०।।

अर्थ – अयोग केवली के १३ प्रकृतियों में से वेदनीय, आयु, गोत्र – ये ३ प्रकृतियाँ कम करने से नामकर्म की १० प्रकृतियों का सत्त्व है। उनमें भी तीर्थंकर प्रकृति घटाने पर ९ प्रकृतियों का सत्त्वस्थान होता है।।६११।।

अर्थ – मिथ्यात्व में जिन प्रकृतियों के बंध अथवा उदय की गंध (अर्थात् वासना) भी नहीं, ऐसी सम्यक्त्वादि गुण से उत्पन्न हुई सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्र प्रकृति, आहारकद्विक – इन ४ प्रकृतियों की तथा शेष उद्वेलन प्रकृतियों की उद्वेलना यह जीव मिथ्यात्व में करता है।।६१२।।

नामकर्म के कुल सत्त्वस्थान

सत्त्वस्थान	प्रकृति विवरण	घटायी गई प्रकृतियाँ
९३		
९२	९३-१	तीर्थंकर प्रकृति
९१	९३-२	आहारकद्विक
९०	९३-३	तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक
८८	९०-२	देवद्विक
८४	८८-४	नरकचतुष्क
८२	८४-२	मनुष्यद्विक
८०	९३-१३	नरकद्विक, तिर्यंचद्विक , एकेन्द्रिय, विकलेंद्रिय, आतप, उद्योत, सूक्ष्म, साधारण, स्थावर
७९	८०-१	तीर्थंकर प्रकृति
७८	८०-२	आहारकद्विक
७७	८०-३	तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक
१०	मनुष्यद्विक, पंचेन्द्रिय, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश:कीर्ति, तीर्थंकर	
९	१०-१	तीर्थंकर

सत्थत्तादाहारं पुव्वं उव्वेल्लदे तदो सम्मं।
सम्मामिच्छं तु तदो एगो विगलो य सगलो य।।६१३।।
वेदगजोग्गे काले आहारं उवसमस्स सम्मत्तं।
सम्मामिच्छं चेगे वियले वेगुव्वछक्कं तु।।६१४।।

अर्थ – आहारकद्विक प्रशस्त प्रकृति है, इसलिये चारों गति के मिथ्यादृष्टि जीव पहले इन दोनों की उद्वेलना करते है। पश्चात् सम्यक्त्व प्रकृति की, उसके बाद सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति की उद्वेलना करते हैं। उसके बाद एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय जीव शेष देवद्विकादिकों की उद्वेलना करते हैं।।६१३।।

अर्थ – वेदक योग्यकाल में आहारक की उद्वेलना, उपशम काल में सम्यक्त्व प्रकृति व सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति की उद्वेलना करता है। एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय पर्याय में वैक्रियिक षट्क की उद्वेलना करता है।।६१४।।

१३ प्रकृतियों की उद्वेलना का क्रम

प्रकृति	आहारकद्विक	सम्यक्त्व प्रकृति	मिश्र	देवद्विक	नरकचतुष्क	मनुष्यद्विक उच्चगोत्र	
स्वामी	४ गति के मिथ्यादृष्टि			तिर्यंच	एकेन्द्रिय,विकलेन्द्रिय	अग्नि, वायु	
काल	वेदक योग्य काल	उपशम काल				जघन्य उत्कृष्ट	$\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}$

उदधिपुधत्तं तु तसे पल्लासंखूणमेगमेयक्खे।
जाव य सम्मं मिस्सं वेदगजोग्गो य उवसमस्सतदो।।६१५।।

अर्थ – सम्यक्त्व प्रकृति की और मिश्र प्रकृति की सत्तारूप स्थिति पृथक्त्व सागर प्रमाण त्रस के शेष रहे और पल्य के असंख्यातवें भाग कम १ सागर प्रमाण एकेन्द्रिय के शेष रहे वह 'वेदक योग्य काल' है। और उससे भी सत्तारूप स्थिति कम हो जाय तब 'उपशम काल' कहते है।।६१५।।

सम्यक्त्व प्रकृति-मिश्र की स्थिति अनुसार काल का विभाजन

	वेदक योग्य काल	उपशम योग्य काल
त्रस के	जब तक सत्तारुप स्थिति पृथक्त्व सागर या अधिक हो	जब सत्तारुप स्थिति पृथक्त्व सागर से कम हो
एकेन्द्रिय के	जब तक सत्तारुप स्थिति (सागर– $\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}$) या अधिक हो	जब सत्तारुप स्थिति (सागर– $\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}$) से कम हो

तेउदुगे मणुवदुगं उच्चं उव्वेल्लदे जहण्णिदरं।
पल्लासंखेज्जदिमं उव्वेल्लणकालपरिमाणं।।६१६।।

पल्लासंखेज्जदिमं ठिदिमुव्वेल्लदि मुहुत्तअंतेण।
संखेज्जसायरठिदिं पल्लासंखेज्जकालेण।।६१७।।

अर्थ – तेजकाय और वायुकाय के मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र – इन ३ की उद्वेलना होती है। और उस उद्वेलना के काल का प्रमाण जघन्य अथवा उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।।६१६।।

अर्थ – पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति की अंतर्मुहूर्त काल में उद्वेलना करता है। अतएव संख्यात सागर प्रमाण मनुष्यद्विकादि की सत्तारूप स्थिति की उद्वेलना त्रैराशिक विधि से पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल में ही कर सकता है, ऐसा सिद्ध होता है।।६१७।।

इस गाथा के विषय की तालिका पृष्ठ क्र. –(गाथा ६१३–६१४)– पर देखें

सम्मत्तं देसजमं अणसंजोजणविहिं च उक्कस्सं।
पल्लासंखेज्जदिमं वारं पडिवज्जदे जीवो।।६१८।।
चत्तारि वारमुवसमसेढिं समरुहदि खविदकम्मंसो।
बत्तीसं वाराइं संजममुवलहिय णिव्वादि।।६१९।।

अर्थ – प्रथमोपशम सम्यक्त्व, क्षयोपशम सम्यक्त्व, देशसंयम और अनंतानुबंधी कषाय के विसंयोजन का विधान – इन ४ को जीव उत्कृष्टपने पल्य के असंख्यातवें भाग समयों का जितना प्रमाण है उतनी बार छोड़कर ग्रहण करता है (पश्चात् नियम से सिद्धपद को ही पाता है)।।६१८।।

अर्थ – उत्कृष्टपने उपशमश्रेणी ४ बार ही चढ़ता है, पश्चात् कर्मों के अंशों को क्षय करता हुआ क्षपकश्रेणी चढ़ता है। सकल संयम को उत्कृष्टपने से ३२ बार ही धारण करता है पश्चात् मोक्ष को प्राप्त होता है।।६१९।।

किस अवस्था को जीव उत्कृष्टपने कितनी बार प्राप्त कर सकता हैं

(पश्चात् नियम से मोक्ष जाता है)

अवस्था	कितनी बार
प्रथमोपशम सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व, देशसंयम, अनंतानुबंधी का विसंयोजक	$\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}$ काल के समय प्रमाण
उपशमश्रेणी	४
सकलसंयम	३२

सुरणरसम्मे पढमो सासणहीणेसु होदि बाणउदी।
सुरसम्मे णरणारयसम्मे मिच्छे य इगिणउदी।।६२०।।
णउदी चदुग्गदिम्मि य तेरसखवगोत्ति तिरियणरमिच्छे।
अडचउसीदी सत्ता तिरिक्खमिच्छम्मि बासीदी।।६२१।।
सीदादिचउट्ठाणा तेरसखवगादु अणुवसमगेसु।
गयजोगस्स दुचरिमं जाव य चरिमम्हि दसणवयं।।६२२।।

अर्थ – पहला ९३ का सत्त्वस्थान असंयत सम्यग्दृष्टि देव के तथा असंयत सम्यग्दृष्टि आदि मनुष्य के होता है। सासादन रहित चारों गति के जीवों के ९२ का स्थान होता है, और ९१ का स्थान देव सम्यग्दृष्टि के तथा मनुष्य और नारकी सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि के होता है।।६२०।।

अर्थ – ९० का सत्त्वस्थान १३ प्रकृतियों के क्षय वाले अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के भाग पर्यत चारों गतियों के जीवों के होता है। ८८-८४ के दोनों स्थानों की सत्ता मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य के ही है, और ८२ का सत्त्वस्थान तिर्यंच मिथ्यादृष्टि के ही होता है।।६२१।।

अर्थ – ८० को आदि लेकर ४ स्थान (८०,७९,७८,७७) १३ प्रकृति के क्षय करनेवाले क्षपक अनिवृत्तिकरण से लेकर अयोगी के द्विचरम समय तक पाये जाते हैं। और १० का तथा ९ का सत्त्वस्थान अयोगकेवली के अंतसमय में होता है।।६२२।।

नामकर्म के गुणस्थानों में गति अपेक्षा सत्त्वस्थान

सत्त्वस्थान	गति	स्वामी – गुणस्थान
९३	देव	४
	मनुष्य	४ से ८, ९ से ११ (उपशम श्रेणी अपेक्षा)
९२	४ गति	सासादन रहित यथायोग्य १ से ११ गुणस्थान
९१	देव	४
	नरक, मनुष्य	१, ४
९०	४ गति	यथायोग्य १ से ११
८८, ८४	तिर्यंच, मनुष्य	१
८२	तिर्यंच	१
८०, ७९, ७८, ७७	मनुष्य	९ से १२ के द्विचरम समय तक
१०, ९		१४ के चरम समय में

णिरये बाइगिणउदी णउदी भूआदिसव्वतिरियेसु।
बाणउदी णउदी अडचउबासीदी य होंति सत्ताणि।।६२३।।
बासीदिं वज्जित्ता बारसठाणाणि होंति मणुवेसु।
सीदादिचउट्ठाणा छट्ठाणा केवलिदुगेसु।।६२४।।
समविसमट्ठाणाणि य कमेण तित्थिदरकेवलीसु हवे।
तिदुणवदी आहारे देवे आदिमचउक्कं तु।।६२५।।
बाणउदिणउदिसत्ता भवणतियाणं च भोगभूमीणं।
हेट्ठिमपुढविचउक्कभवाणं च य सासणे णउदी।।६२६।।

अर्थ – नामकर्म के सत्त्वस्थान नारकी जीवों में ९२,९१,९० – ये ३ हैं। और पृथ्वीकायादि सब तिर्यंचों में ९२,९०,८८,८४,८२ – ये ५-५ है।।६२३।।

अर्थ – मनुष्यों में ८२ के स्थान को छोड़कर शेष १२ स्थान होते हैं; परंतु सयोगी के ८० को आदि लेकर ४ सत्त्वस्थान है, और अयोगी के ८० को आदि लेकर ६ सत्त्वस्थान है।।६२४।।

अर्थ – केवली के जो ४ और ६ स्थान कहे हैं उनमें से सम संख्या वाले तीर्थंकर केवली के और विषम संख्यावाले स्थान (तीर्थंकर प्रकृति रहित) सामान्य केवली के होते हैं। आहारक में ९३,९२ के २ स्थान है और वैमानिक देवों में आदि के ४ सत्त्वस्थान होते हैं।।६२५।।

अर्थ – भवनत्रिक देवों के, भोगभूमिया मनुष्य-तिर्यंचों के और नीचे की अंजनादि ४ नरक पृथ्वीयों के नारकियों के ९२,९० – ये २ स्थान की सत्ता है। सासादन में सब जीवों के एक ९० का ही सत्त्वस्थान है।।६२६।।

४१ जीवपदों में नामकर्म के सत्त्वस्थान

जीवपद		स्थान
नरक	१ से ३	९२, ९१, ९०
	४ से ७	९२, ९०
पृथ्वीकायादि सर्व तिर्यंच		९२, ९०, ८८, ८४, ८२
सामान्य मनुष्य		८२ छोड़कर शेष १२
सयोग केवली		८०, ७९, ७८, ७७
अयोग केवली		८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९
तीर्थंकर केवली		८०, ७८, १०
सामान्य केवली		७९, ७७, ९
आहारक		९३, ९२
वैमानिक देव		९३, ९२, ९१, ९०
भवनत्रिक देव, सर्व भोगभूमिया मनुष्य एवं तिर्यंच,		९२, ९०
सर्व सासादन गुणस्थानवर्ती जीव		९०

त्रिसंयोगी (बंध,उदय,सत्त्व) भंग

मूलुत्तरपयडीणं बंधोदयसत्तठाणभंगा हु।
भणिदा हु तिसंजोगे एत्तो भंगे परूवेमो।।६२७।।
अट्ठविहसत्तछब्बंधगेसु अट्ठेव उदयकम्मंसा।
एयविहे तिवियप्पो एयवियप्पो अबंधम्मि।।६२८।।

अर्थ – मूल प्रकृतियों के और उत्तर प्रकृतियों के बंध उदय सत्त्वरूप स्थान और भंग कहे। इसके बाद अब हम बंध-उदय-सत्ता इनके त्रिसंयोगी भंगों का निरूपण करते हैं।।६२७।।

अर्थ – मूल प्रकृतियों में से ज्ञानावरणादि ८, ७ व ६ प्रकार के बंध वाले जीवों के उदय और सत्त्व ८-८ प्रकार का होता है। जिसके एक प्रकार मूल प्रकृति का बंध है उसके (उदय ७ प्रकार, सत्त्व ८ प्रकार; अथवा उदय-सत्त्व दोनों ७-७ प्रकार, ४-४ प्रकार के होने से) ३ विकल्प होते हैं। जिसके एक प्रकृति का भी बंध नहीं है उसके (उदय और सत्त्व ४-४ प्रकार के होने से) एक ही विकल्प होता है।।६२८।।

मूल प्रकृतियों में त्रिसंयोगी (बंध,उदय,सत्त्व) भंग

बंध		उदय		सत्त्व	
८	सर्व	८	सर्व	८	सर्व
७	आयु बिना	८		८	
६	मोहनीय एवं आयु बिना	८		८	
१	वेदनीय	७	मोहनीय बिना	८	
१		७		७	मोहनीय बिना
१		४	४ अघातिया कर्म	४	४ अघातिया कर्म
०		४		४	

मिस्से अपुव्वजुगले बिदियं अपमत्तओत्ति पढमदुगं।
सुहुमादिसु तदियादी बंधोदयसत्तभंगेसु।।६२९।।

अर्थ – बंध उदय सत्त्व के भंगों में से (गुणस्थानों की अपेक्षा) मिश्र और अपूर्व युगल(अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण) – इन ३ में दूसरा भंग है। मिश्र के बिना अप्रमत्त पर्यंत ६ गुणस्थानों में प्रथम २ भंग है। सूक्ष्मसांपराय आदि में (अयोगी पर्यंत क्रम से) तीसरा भंग आदि जानना।।६२९।।

मूल प्रकृतियों के गुणस्थानों में त्रिसंयोगी भंग

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
बंध	८, ७		७	८, ७				७		६	१			०
उदय	८, ८		८	८, ८				८			७		४	
सत्त्व	८, ८		८	८, ८				८				७	४	

बंधोदयकम्मंसा णाणावरणंतरायिए पंच।
बंधोपरमेवि तहा उदयंसा होंति पंचेव।।६३०।।

अर्थ – ज्ञानावरण और अंतरायकर्म का ५-५ प्रकृतिरूप बंध, उदय और सत्त्व (सूक्ष्म सांपराय पर्यंत) है। बंध का अभाव होने पर भी (इन दोनों की उपशांतमोह और क्षीणमोह में) उदय तथा सत्त्वरूप प्रकृतियाँ ५-५ ही है।।६३०।।

ज्ञानावरण, अंतराय के गुणस्थानों में त्रिसंयोगी भंग

	१ से १०	११ से १२
बंध	५	०
उदय	५	
सत्त्व	५	

बिदियावरणे णवबंधगेसु चदुपंचउदय णवसत्ता।
छब्बंधगेसु एवं तह चदुबंधे छडंसा य।।६३१।।
उवरदबंधे चदुपंचउदय णव छच्च सत्त चदु जुगलं।
तदियं गोदं आउं विभज्ज मोहं परं वोच्छं।।६३२।।जुम्मं।।

अर्थ - दूसरे आवरण(दर्शनावरण) की ९ प्रकृतियों के बंधक के उदय ५ का अथवा ४ का और सत्ता ९ की ही होती है। इसी प्रकार ६ प्रकृतियों के बंधक के भी उदय और सत्ता जानना। और ४ प्रकृतियों के बंधक के पूर्वोक्त प्रकार उदय ४-५ का, सत्त्व ९ का तथा ६ का भी सत्त्व पाया जाता है। जिसके बंध का अभाव है उसके उदय तो ४ वा ५ का है और सत्त्व ९ का वा ६ का है, तथा उदय-सत्त्व दोनों ही ४-४ का भी है। अब तीसरा(वेदनीय), गोत्र, आयु के भंगों का विभाग द्वारा कथन करके आगे मोहनीय के भी भंगों को कहूँगा।।६३१-६३२।।

दर्शनावरण के गुणस्थानों में त्रिसंयोगी भंग

	१	२	३	४	५	६	७	८उप	८क्ष	९उप	९क्ष	१०उप	१०क्ष	११	१२द्विच	१२च
बंध	९		६					६, ४		४				०		
उदय	४, ५															४
सत्त्व	९										९,६	९	६	९	६	४

दर्शनावरण की उपरोक्त ९, ६, ५, ४ का विवरण

९	सर्व	५	चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवल दर्शनावरण एवं ५ निद्रा में कोई १ निद्रा
६	स्त्यानगृद्धित्रिक बिना शेष ६	४	५ निद्रा बिना शेष ४

सादासादेक्कदरं बंधुदया होंति संभवट्ठाणे।
दोसत्तं जोगित्ति य चरिमे उदयागदं सत्तं।।६३३।।
छट्ठोत्ति चारि भंगा दो भंगा होंति जाव जोगिजिणे।
चउभंगाऽजोगिजिणे ठाणं पडि वेयणीयस्स।।६३४।।जुम्मं।।

अर्थ – साता और असाता इन दोनों में से १ ही का बंध व उदय योग्य स्थान में होता है। और सत्त्व २ का ही सयोगी पर्यंत है। अयोगी के अंत समय में जिसका उदय उसी का सत्त्व होता है। इसलिये वेदनीय कर्म के (गुणस्थानों की अपेक्षा से भंग इस प्रकार कहे हैं कि-) प्रमत पर्यंत ४ भंग है, सयोगीजिन पर्यंत २ भंग होते हैं, और अयोगीजिन गुणस्थान में ४ भंग है।।६३३-६३४।।

वेदनीय के गुणस्थानों में त्रिसंयोगी भंग

गुणस्थान	कुल	भंग संख्या	बंध	उदय	सत्त्व	कुल भंग
१ से ६	६	४	साता	साता	दोनों का	४ × ६ = २४
			साता	असाता	दोनों का	
			असाता	साता	दोनों का	
			असाता	असाता	दोनों का	
७ से १३	७	२*	साता	साता	दोनों का	२ × ७ = १४
			साता	असाता	दोनों का	
१४ के द्विचरम समय तक	१	२	0	साता	दोनों का	२ × १ = २
			0	असाता	दोनों का	
१४ के चरम समय में	१	२	0	साता	साता	२ × १ = २
			0	असाता	असाता	
कुल भंग						४२

** ये पुनरुक्त भंग हैं, शेष ८ अपुनरुक्त हैं*

णीचुच्चाणेगदरं बंधुदया होंति संभवट्ठाणे।
दोसत्तजोगित्ति य चरिमे उच्चं हवे सत्तं।।६३५।।
उच्चुव्वेल्लिदतेऊ वाउम्मि य णीचमेव सत्तं तु।
सेसिगिवियले सयले णीचं च दुगं च सत्तं तु।।६३६।।
उच्चुव्वेल्लिदतेऊ वाऊ सेसे य वियलसयलेसु।
उप्पण्णपढमकाले णीचं एयं हवे सत्तं।।६३७।।
मिच्छादि गोदभंगा पण चदु तिसु दोण्णि अट्ठठाणेसु।
एक्केक्का जोगिजिणे दो भंगा होंति णियमेण।।३६८।।

अर्थ – नीच गोत्र और उच्च गोत्र – इन दोनों में से १ ही का बंध तथा उदय यथा योग्य स्थानों में होता है, और सत्त्व अयोगी के द्विचरम समय पर्यंत दोनों का ही पाया जाता है। और चरम समय में उच्च गोत्र का ही सत्त्व पाया जाता है।।६३५।।

अर्थ – जिनके उच्च गोत्र की उद्वेलना हो गई है ऐसे तेज(अग्नि) और वायु के नीच गोत्र का ही सत्त्व पाया जाता है। शेष एकेन्द्रिय, विकलेन्द्री तथा पंचेन्द्रिय इनके नीच गोत्र का अथवा दोनों का ही सत्त्व है।।६३६।।

अर्थ – उच्च गोत्र की उद्वेलना सहित तेज और वायु के नीच गोत्र का ही सत्त्व है। ये दोनों मरण कर जिनमें उत्पन्न हों ऐसे एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न होने के समय से अंतर्मुहूर्त तक नीच गोत्र का ही सत्त्व है पश्चात् उच्च गोत्र को बाँधने पर दोनों का सत्त्व होता है।।६३७।।

अर्थ – (गुणस्थानों की अपेक्षा) गोत्र कर्म के भंग नियम से मिथ्यात्व गुणस्थान में ५, सासादन में ४, (मिश्रादि) ३ में २, (प्रमत्तादि) ८ में १ ही भंग है। अयोगी जिन में २ भंग होते हैं।।६३८।।

गोत्र कर्म के गुणस्थानों में त्रिसंयोगी भंग

बंध	नीच	नीच	उच्च	उच्च	नीच	0	0
उदय	नीच	उच्च	उच्च	नीच	नीच	उच्च	उच्च
सत्त्व	२	२	२	२	नीच	२	उच्च
भंग क्रमांक	१	२	३	४	५	६	७
गुणस्थान	←		१		→		
	←		२	→			
			← ३,४,५		→		
			←६से१०→				
						←११ से १४वें के द्विचरम समय तक→	
							← १४वें के चरम समय में →

गोत्र कर्म के गुणस्थान संबंधी सर्व भंगों का जोड़

गुणस्थान	भंग विवरण	भंग संख्या	कुल भंग
१	१ से ५	५	१ × ५ = ५
२	१ से ४	४	१ × ४ = ४
३ से ५	३, ४	२	३ × २ = ६
६ से १०	३	१	५ × १ = ५
११ से १३	६	१	३ × १ = ३
१४	६, ७	२	१ × २ = २
कुल भंग का जोड़			२५

सुरणिरया णरतिरियं छम्मासवसिट्ठगे सगाउस्स।
णरतिरिया सव्वाउं तिभागसेसम्मि उक्कस्सं।।६३९।।
भोगभुमा देवाउं छम्मासवसिट्ठगे य बंधंति।
इगिविगला णरतिरियं तेउदुगा सत्तगा तिरियं।।६४०।।जुम्मं।।

अर्थ – अपनी भुज्यमान आयु के अधिक से अधिक ६ महीने शेष रहने पर देव और नारकी मनुष्यायु अथवा तिर्यंचायु को बाँधते हैं। मनुष्य और तिर्यंच अपनी आयु के तीसरे भाग के शेष रहने पर चारों आयुओं में से योग्यतानुसार किसी भी एक को बाँधते हैं। भोगभूमिया जीव अपनी आयु के ६ महीने शेष रहने पर देवायु को ही बाँधते हैं। एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय मनुष्यायु अथवा तिर्यंचायु को बाँधते है। तेजद्विक (अग्नि-वायु) और सातवीं पृथ्वी के नारकी तिर्यंचायु को ही बाँधते हैं।।६३९-६४०।।

कौन जीव कितना काल अवशेष रहने पर कौन-सी आयु को बाँधते हैं ?

जीव	भुज्यमान आयु का कितना काल अवशेष रहने पर	कौन-सी आयु को ही बाँधते हैं –
नारकी एवं देव	६ माह	मनुष्यायु और तिर्यंचायु
मनुष्य एवं तिर्यंच	तीसरा भाग	चारों आयु
भोगभूमिया जीव	६ माह	देवायु
एकेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय	तीसरा भाग	मनुष्यायु और तिर्यंचायु
अग्नि-वायु	"	तिर्यंचायु
सातवीं पृथ्वी के नारकी	६ माह	"

सगसगगदीणमाउं उदेदि बंधे उदिण्णगेण समं।
दो सत्ता हु अबंधे एक्कं उदयागदं सत्तं।।६४१।।
एक्के एक्कं आऊ एक्कभवे बंधमेदि जोग्गपदे।
अडवारं वा तत्थवि तिभागसेसे व सव्वत्थ।।६४२।।
इगिवारं वज्जित्ता वड्ढी हाणी अवट्ठिदी होदि।
ओवट्टुणघादो पुण परिणामवसेण जीवाणं।।६४३।।

अर्थ – अपनी-अपनी गति सम्बन्धी ही एक आयु का उदय होता है। परभव की आयु का भी बंध होने पर उदयरूप आयु सहित २ आयु की सत्ता होती है। जो परभव की आयु का बंध न हो तो एक उदयागत आयु की ही सत्ता रहती है।।६४१।।

अर्थ – एक जीव एक भव में एक ही आयु बाँधता है। वह भी योग्य काल में ८ बार ही बाँधता

है। वहाँ पर भी वह सब जगह आयु का तीसरा-तीसरा भाग शेष रहने पर ही बाँधता है।।६४२।।

अर्थ - ८ अपकर्षणों (त्रिभागों) में पहली बार के बिना द्वितीयादि बार में जो पहली बार में आयु बाँधी थी, उसी की स्थिति की वृद्धि, हानि अथवा अवस्थिति होती हैं। जीवों के परिणामों के निमित्त से उदय प्राप्त आयु का अपवर्तनघात भी होता है।।६४३।।

आयु बंध संबंधी कुछ नियम

बंध	✻ एक जीव एक भव में एक ही आयु बाँधता है		
	✻ योग्य काल (अपकर्ष काल) में ८ बार ही बाँधता है		
	✻ भुज्यमान आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर ही बाँधता है		
	✻ तीसरा-तीसरा भाग शेष रहने पर बंध हो ही ऐसा नियम नहीं है		
	✻ पहली बार के बिना द्वितीयादि बार में जो पहली बार में आयु बाँधी थी, उसी की स्थिति की वृद्धि, हानि अथवा अवस्थिति होती हैं		
	✻ अन्य काल में आयु का बंध होता ही नहीं है		
उदय	✻ अपनी-अपनी गति की आयु का होता है		
	✻ परिणामों के निमित्त से अपवर्तनघात(कदलीघात) भी होता है		
सत्त्व	परभव की आयु का बंध	होने पर	२ का होता है
		न होने पर	१ का होता है

एवमबंधे बंधे उवरदबंधेवि होंति भंगा हु।
एक्कस्सेक्कम्मि भवे एक्काउं पडि तये णियमा।।६४४।।

अर्थ - इस प्रकार बंध नहीं होने पर, बंध होने पर व उपरत बंध अवस्था में १ जीव के १ पर्याय में १-१ आयु के प्रति ३-३ भंग नियम से होते है।।६४४।।

१-१ आगामी आयु के प्रति ३ -३ भंग

	बंध	अबंध	उपरत बंध
बंध	१	0	0
उदय	१	१	१
सत्त्व	२	१	२
	आगामी आयु का बंध हो रहा है	*आगामी आयु का बंध अतीत काल में नहीं हुआ है एवं वर्तमान काल में भी नहीं हो रहा है*	*आगामी आयु का पहले बंध हो गया हैं और वर्तमान काल में बंध नहीं हो रहा है*

एक्काउस्स तिभंगा संभवआऊहिं ताडिदे णाणा।
जीवे इगिभवभंगा रूऊणगुणूणमसरित्थे।।६४५।।

अर्थ – उक्त १-१ आयु के ३-३ भंगों को विवक्षित गति में संभव होने वाली आयु बंध की संख्या से गुणा करने पर नाना जीवों की अपेक्षा १-१ भव के भंग होते हैं। अपुनरुक्त भंगों की अपेक्षा बध्यमान आयु की संख्या रूप गुणाकार में १ घटा के जो प्रमाण हो उसे पूर्वकथित भंगों में घटाने से अपुनरुक्त भंग होते हैं।।६४५।।

आयु कर्म के त्रिसंयोगी भंग

चारों गति संबंधी अपुनरुक्त भंग			
नरक	तिर्यंच	मनुष्य	देव
५	९	९	५

	कुल भंग =	अपुनरुक्त भंग =
सूत्र	पूर्वोक्त ३ भंग × बंध योग्य आयु की संख्या	कुल भंग- (बध्यमान आयु का प्रमाण-१)
नरक-देव	३ × २ = **६**	६ - (२-१) = **५**
तिर्यंच-मनुष्य	३ × ४ = **१२**	१२ - (४-१) = **९**

	नरक में ५ भंग					तिर्यंच में ९ भंग								
बंध	ति.	म.	०	०	०	न.	ति.	म.	दे.	०	०	०	०	०
उदय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
सत्त्व	२	२	१	न.ति.	न.म.	२	२	२	२	१	ति.न.	ति.ति.	ति.म.	ति.दे.
भंग क्र.	१	२	३	४	५	१	२	३	४	५	६	७	८	९
	इसी प्रकार देव में हैं					इसी प्रकार मनुष्य में हैं								

पण णव णव पण भङ्गा आउचउक्केसु होंति मिच्छम्मि।
णिरयाउबंधभंगेणूणा ते चेव बिदियगुणे।।६४६।।
सव्वाउबंधभंगेणूणा मिस्सम्मि अयदसुरणिरये।
णरतिरिये तिरियाऊ तिण्णाउगबंधभंगूणा।।६४७।।
देस णरे तिरिये तियतियभंगा होंति छट्ठसत्तमगे।
तियभङ्गा उवसमगे दोद्दो खवगेसु एक्केक्को।।६४८।।
अडछव्वीसं सोलस वीसं छत्तिगतिगं च चदुसु दुगं।
असरिसभङ्गा तत्ता अजोगिअंतेसु एक्केक्को।।६४९।।

अर्थ – वे अपुनरुक्त भंग मिथ्यात्व में नरकादि गति में चार आयुओं के क्रम से ५, ९, ९, ५ होते हैं। दूसरे गुणस्थान में नरकायु के बिना भंग होते हैं।।६४६।।

अर्थ – आयु बंध की अपेक्षा जो भंग कहे थे वे सर्व कम करने से मिश्र में भंग होते हैं। असंयत में देव–नरक गति में तो तिर्यंचायु का बंधरूप भंग नहीं है। मनुष्य–तिर्यंच गति में आयु बंध की अपेक्षा ३ आयुबंधरूप भंग कम होते हैं।।६४७।।

अर्थ – देशसंयत गुणस्थान में तिर्यंच और मनुष्यों में ३–३ भंग होते हैं। छठे–सातवें गुणस्थान में (मनुष्य के ही और देवायु के बंध की ही अपेक्षा) ३–३ भंग होते हैं। उपशमश्रेणी में (देवायु का भी बंध न होने से देवायु के अबंध–उपरतबंध की अपेक्षा) २–२ भंग है। और क्षपकश्रेणी में १–१ ही भंग है।।६४८।।

अर्थ – सब मिलकर अपुनरुक्त भंग (मिथ्यात्वादि ७ गुणस्थानों में क्रम से) २८, २६, १६, २०, ६, ३, ३ हैं। (उपशमश्रेणी वाले) ४ गुणस्थानों में २–२ भंग है। (क्षपकश्रेणी में अपूर्वकरण से) अयोगी तक १–१ भंग है।।६४९।।

गुणस्थानों में आयु कर्म के त्रिसंयोगी भंग

गुणस्थान	चारों गति में भंग संख्या				भंगों का जोड़	भंग क्रमांक विवरण			
	न.	ति.	म.	दे.		न.	ति.	मनुष्य	देव
१	५	९	९	५	२८	सर्व(१–५)	सर्व(१–९)	सर्व(१–९)	सर्व(१–५)
२	५	८	८	५	२६	सर्व(१–५)	२–९	२–९	सर्व(१–५)
३	३	५	५	३	१६	३–५	५–९	५–९	३–५
४	४	६	६	४	२०	२–५	४–९	४–९	२–५
५		३	३		६		४, ५, ९	४, ५, ९	
६–७			३		६			४, ५, ९	
८–११ उ.श्रेणी			२		८			५,९	
८–१० क्ष.श्रेणी			१		३			५	
१२–१४			१		३			५	
सर्व भंगों का जोड़					११६				

बादालं पणुवीसं सोलसअहियं सयं च वेयणिये।

गोदे आउम्मि हवे मिच्छादि अजोगिणो भङ्गा।।६५०।।

वेयणिये अडभङ्गा गोदे सत्तेव होंति भङ्गा हु।

पण णव णव पण भङ्गा आउचउक्केसु विसरित्था।।६५१।।

अर्थ – मिथ्यात्वादि अयोगी तक गुणस्थानों में भंगों का जोड़ – वेदनीय के ४२, गोत्र के २५ और आयु के ११६ होते हैं।।६५०।।

अर्थ – पूर्वोक्त भंगों में अपुनरुक्त मूल भंग वेदनीय के ८, और गोत्र के ७ होते हैं। चारों आयुओं के क्रम से ५, ९, ९, ५ भंग होते हैं।।६५१।।

इस गाथा के विषय की तालिका वेदनीय के लिये पृष्ठ क्र. –(गाथा ६३३)–, गोत्र के लिये पृष्ठ क्र. –(गाथा ६३५)–, आयु के लये पृष्ठ क्र. –(गाथा ६४६)– पर देखें

मोहस्स य बंधोदयसत्तट्ठाणाण सव्वभङ्गा हु।

पत्तेउत्तं व हवे तियसंजोगेवि सव्वत्थ।।६५२।।

अट्ठसु एक्को बंधो उदया चदु ति दुसु चउसु चत्तारि।

तिण्णि य कमसो सत्तं तिण्णेगदु चउसु पणग तियं।।६५३।।

अणियट्टीबंधतिय पणदुगएक्कारसुहुमउदयंसा।

इगि चत्तारि य संते सत्तं तिण्णेव मोहस्स।।६५४।।जुम्मं।।

बावीसं दसयचऊ अडवीसतियं च मिच्छबंधादी।

इगिवीसं णवयतियं अट्ठावीसे च बिदियगुणे।।६५५।।

सत्तरसं णवयतियं अडचउवीसं पुणोवि सत्तरसं।

णवचउ अडचउवीस य तिवीसतियमंसयं चउसु।।६५६।।

तेरट्ठचऊ देसे पमदिदरे णव सगादिचत्तारि।

तो णवगं छादित्तियं अडचउरिगिवीसयं च बंधतियं।।६५७।।

पंचादिपंचबंधो णवमगुणे दोण्णि एक्कमुदयो दु।

अट्ठचदुरेक्कवीसं तेरादीअट्ठयं सत्तं।।६५८।।

लोहेक्कुदओ सुहुमे अडचउरिगिवीसमेक्कयं सत्तं।

अडचउरिगिवीसंसा संते मोहस्स गुणठाणे।।६५९।।

अर्थ – मोहनीय के बंध उदय सत्त्व स्थानों के सर्व भंग जैसे पहले जुदे-जुदे कहे थे वैसे ही बंधादि के त्रिसंयोग में भी भंग होते हैं।।६५२।।

अर्थ – मोहनीय के आदि के आठ गुणस्थानों में यथासंभव एक-एक ही बंधस्थान है। उदयस्थान पहले गुणस्थान में ४, आगे दो गुणस्थानों में ३-३, आगे चार गुणस्थानों में ४-४ तथा एक में ३ है। सत्त्वस्थान तीन गुणस्थानों में क्रम से ३, १, २ है। आगे चार गुणस्थानों में ५-५, आगे एक में ३

है। अनिवृत्तिकरण में बंध-उदय-सत्त्व स्थान क्रम से ५, २, ११ है। सूक्ष्म सांपराय में (बंधस्थान का अभाव है) उदयस्थान और सत्त्वस्थान क्रम से १ और ४ है। उपशांतमोह में (बंध-उदय का अभाव होने से सिर्फ) सत्त्वस्थान ३ है।।६५३-६५४।।

अर्थ - मिथ्यात्व में बंधादि क्रम से २२ का एक; १० को आदि लेकर चार; और २८ को आदि लेकर तीन हैं। और दूसरे में बंधस्थान २१ का एक; उदयस्थान ९ से लेकर तीन; सत्त्वस्थान २८ का ही है।।६५५।।

अर्थ - मिश्र में बंधादि क्रम से १७ का; ९ से लेकर तीन; २८,२४ के है। पुनः असंयत में बंधादि क्रम से १७ का; ९ से लेकर चार; २८,२४ के व २३ से लेकर तीन - कुल पाँच है। इस तरह ये ही ५ सत्त्वस्थान असंयतादि चार में है।।६५६।।

अर्थ - देशसंयत में १३ का; ८ से लेकर चार स्थान; (सत्त्वस्थान पूर्वोक्त पाँच) है। प्रमत्त और अप्रमत्त में बंध-उदय क्रम से ९ का; ७ से लेकर चार है। आगे (अपूर्वकरण में) बंधादि क्रम से ९ का, ६ से लेकर तीन; व २८,२४,२१ का है।।६५७।।

अर्थ - नवमें गुणस्थान में ५ से लेकर पाँच बंधस्थान हैं; २, १ का उदयस्थान है; २८,२४,२१ का तीन सत्त्वस्थान हैं। क्षपकश्रेणी में १३ से लेकर ८ सत्त्वस्थान हैं। (ऊपर मोह के बंध का अभाव है अतएव उदय और सत्त्व ही है)।।६५८।।

अर्थ - सूक्ष्मसांपराय में उदयस्थान एक सूक्ष्मलोभरूप ही है; सत्त्वस्थान २८,२४,२१ के तीन है। (ऊपर मोह के उदय का भी अभाव हैं, अतएव) उपशांतमोह में सत्त्वस्थान ही है और वे २८,२४,२१ के तीन हैं। (ऊपर मोह सत्त्व भी नहीं है।) इसप्रकार मोहनीय के बंधादि स्थान गुणस्थानों में है।।६५९।।

मोहनीय के गुणस्थानों में त्रिसंयोगी भंग

गुणस्थान	बंध		उदय		सत्त्व	
१	१	२२	४	१०,९,८,७	३	२८,२७,२६
२	१	२१	३	९,८,७	१	२८
३	१	१७	३	९,८,७	२	२८,२४
४	१	१७	४	९,८,७,६	५	२८,२४,२३,२२,२१
५	१	१३	४	८,७,६,५	५	"
६	१	९	४	७,६,५,४	५	"
७	१	९	४	"	५	"
८	१	९	३	६,५,४	३	२८,२४,२१
९	५	५,४,३,२,१	२	२,१	११	२८,२४,२१,१३,१२,११,५,४,३,२,१
१०	0	×	१	१	४	२८,२४,२१,१
११	0	×	0	×	३	२८,२४,२१

बंधपदे उदयंसा उदयट्ठाणेवि बंध सत्तं च।
सत्ते बंधुदयपदं इगिअधिकरणे दुगाधेज्जं।।६६०।।

अर्थ – बंधस्थान में उदयस्थान और सत्त्वस्थान, उदयस्थान में बंधस्थान और सत्त्वस्थान, सत्त्वस्थान में बंधस्थान और उदयस्थान होते हैं। इस प्रकार एक अधिकरण में दो आधेय होते हैं।।६६०।।

त्रिसंयोग में विशेष - एक आधार, दो आधेय

	स्वरूप	१	२	३
आधार (अधिकरण)	जिसमें कहना हो	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्त्वस्थान
आधेय	आधार में जिसको कहना हो	उदयस्थान, सत्त्वस्थान	बंधस्थान, सत्त्वस्थान	बंधस्थान, उदयस्थान

बावीसयादिबन्धेसुदयंसा चदुतितिगिचउपंच।
तिसु इगि छद्दो अट्ठ य एक्कं पंचेव तिट्ठाणे।।६६१।।
दसयचऊ पढमतियं णवतियमडवीसयं णवादिचऊ।
अडचदुतिदुइगिवीसं अडचदु पुव्वं व सत्तं तु।।६६२।।
सगचउ पुव्वं वंसा दुगमडचउरेक्कवीस तेरतियं।
दुगमेक्कं च य सत्तं पुव्वं वा अत्थि पणगदुगं।।६६३।।
तिसु एक्केक्कं उदओ अडचउरिगिवीससत्तसंजुत्तं।
चदुतिदयं तिदयदुगं दो एक्कं मोहणीयस्स।।६६४।।

अर्थ – २२ आदि बंधस्थानों में क्रम से उदयस्थान और सत्त्वस्थान इस प्रकार हैं – २२ में ४ उदयस्थान और ३ सत्त्वस्थान हैं, आगे ३-१, आगे के तीन स्थानों में उदयस्थान और सत्त्वस्थान ४-५ है, आगे १-६, आगे २-८, आगे के तीन स्थानों में १-५ है।।६६१।।

अर्थ – २२ के बंधस्थान में १० से लेकर चार उदयस्थान है और २८ से लेकर तीन सत्त्वस्थान है। २१ के बंधस्थान में ९ से लेकर तीन उदयस्थान; सत्त्वस्थान २८ का है। १७ के बंधस्थान में ९ से लेकर चार उदयस्थान और २८,२४,२३,२२,२१ के ५ सत्त्वस्थान है। १३ के बंधस्थान में ८ से लेकर चार उदयस्थान और सत्त्वस्थान पूर्वोक्त ५ हैं।।६६२।।

अर्थ – ९ के बंधस्थान में ७ से लेकर चार उदयस्थान और पूर्वोक्त ५ सत्त्वस्थान है। ५ के बंधस्थान में २ का उदयस्थान और २८,२४,२१ व १३ से लेकर तीन – ये ६ सत्त्वस्थान है। ४ के बंधस्थान में २ और १ प्रकृतिरूप उदयस्थान और सत्त्वस्थान पूर्वोक्त ६ व ५, ४ – ये ८ है।।६६३।।

अर्थ – ३-२-१ बंधस्थानों में उदयस्थान १-१ प्रकृतिरूप और सत्त्वस्थान २८-२४-२१ के तीन और तीन के बंधस्थान में ४-३ के मिलाने से कुल ५ सत्त्वस्थान हैं; २ के बंधस्थान में २-३ के स्थानों को पूर्वोक्त तीन सत्त्व स्थानों में मिलाने से ५ सत्त्वस्थान हैं; १ के बंधस्थान में सत्त्वस्थान पूर्वोक्त तीन स्थानों में २-१ के स्थान मिलाने से ५ सत्त्वस्थान हैं। ऐसे मोहनीय के बंधस्थानों में उदय-सत्त्व स्थान है।।६६४।।

मोहनीय के बंधस्थान में उदयस्थान, सत्त्वस्थान

बंधस्थान	उदयस्थान		सत्त्वस्थान	
	कुल स्थान	स्थान विवरण	कुल स्थान	स्थान विवरण
२२	४	१०,९,८,७	३	२८,२७,२६
२१	३	९,८,७	१	२८
१७	४	९,८,७,६	५	२८,२४,२३,२२,२१
१३	४	८,७,६,५	५	"
९	४	७,६,५,४	५	"
५	१	२	६	२८,२४,२१,१३,१२,११
४	२	२,१	८	२८,२४,२१,१३,१२,११,५,४
३	१	१	५	२८,२४,२१,४,३
२	१	१	५	२८,२४,२१,३,२
१	१	१	५	२८,२४,२१,२,१

दसयादिसु बंधंसा इगितिय तियछक्क चारिसत्तं च।
पणपण तियपण दुगपण इगितिग दुगछच्चऊणवयं।।६६५।।
पढमं पढमतिचउपणसत्तरतिग चदुसु बंधयं कमसो।
पढमतिछस्सगमडचउतिदुइगिवीसंसयं दोसु।।६६६।।
तेरदु पुव्वं वंसा णवमडचउरेक्कवीससत्तमदो।
पणदुगमडचउरेक्कावीसं तेरसतियं सत्तं।।६६७।।
चरिमे चदुतिदुगेक्कं अट्ठयचदुरेक्कसंजुदं वीसं।
एक्कारादीसव्वं कमेण ते मोहणीयस्स।।६६८।।

अर्थ – १० आदि उदयस्थानों में बंधस्थान और सत्त्वस्थान क्रम से १–३, ३–६, ४–७, ५–५, ३–५, २–५, १–३, २–६ और ४–९ होते हैं।।६६५।।

अर्थ – (१० के उदयस्थान में) बंधस्थान पहला (२२ का) है, आगे चार उदयस्थानों में क्रम से २२ से लेकर ३ स्थान, ४ स्थान, ५ स्थान, व १७ से लेकर तीन बंधस्थान है। सत्त्वस्थान पहले उदयस्थान में पहले २८ से लेकर तीन, आगे २८ से लेकर छह, २८ से लेकर सात और आगे दो उदयस्थानों में २८,२४,२३,२२,२१ – ये पाँच सत्त्वस्थान हैं।।६६६।।

अर्थ – (५ के उदयस्थान में) बंधस्थान १३ से लेकर दो और सत्त्वस्थान पूर्वोक्त पाँच है, (४ के उदयस्थान में)९ का बंधस्थान और २८,२४,२१ के तीन सत्त्वस्थान हैं, आगे २ के उदयस्थान में ५ से लेकर दो बंधस्थान और २८,२४,२१ के तीन व १३ से लेकर तीन – ये छह सत्त्वस्थान है।।६६७।।

अर्थ - अंत (के १ प्रकृति वाले उदयस्थान) में ४,३,२,१ के चार बंधस्थान हैं और २८,२४,२१ के तीन स्थान व ११ से लेकर ६ स्थान - ये नौ सत्त्वस्थान हैं। ऐसे मोहनीय के उदयस्थानों में बंध-सत्त्व स्थान है।।६६८।।

मोहनीय के उदयस्थान में बंधस्थान, सत्त्वस्थान

उदयस्थान	बंधस्थान		सत्त्वस्थान	
	कुल स्थान	स्थान विवरण	कुल स्थान	स्थान विवरण
१०	१	२२	३	२८,२७,२६
९	३	२२,२१,१७	६	२८,२७,२६,२४,२३,२२
८	४	२२,२१,१७,१३	७	२८,२७,२६,२४,२३,२२,२१
७	५	२२,२१,१७,१३,९	५	२८,२४,२३,२२,२१
६	३	१७,१३,९	५	"
५	२	१३,९	५	"
४	१	९	३	२८,२४,२१
२	२	५,४	६	२८,२४,२१,१३,१२,११
१	४	४,३,२,१	९	२८,२४,२१,११,५,४,३,२,१

सत्तपदे बंधुदया दसणव इगिति दुसु अडड तिपण दुसु।
अडसग दुगि दुसु बिबिगिगि दुगि तिसु इगिसुण्णमेक्कं च।।६६९।।
सव्वं सयलं पढमं दसतिय दुसु सत्तरादियं सव्वं।
णवयप्पहुदीसयलं सत्तरति णवादिपण दुपदे।।६७०।।
सत्तरसादि अडादीसव्वं पण चारि दोण्णि दुसु तत्तो।
पंचचउक्क दुगेक्कं चदुरिगि चदुतिण्णि एक्कं च।।६७१।।
तत्तो तियदुगमेक्कं दुप्पयडीएक्कमेक्कठाणं च।
इगिणभबंधो चरिमे एउदओ मोहणीयस्स।।६७२।।विसेसयं।।

अर्थ - २८ आदि सत्त्वस्थानों में बंधस्थान और उदयस्थान क्रम से १०-९, आगे दो स्थानों में १-३, आगे ८-८, आगे दो स्थानों में ३-५, आगे ८-७, आगे दो स्थानों में २-१, आगे २-२, १-१, आगे तीन स्थानों में २-१, आगे १ व शून्य-१ होते हैं।।६६९।।

अर्थ - (२८ के सत्त्वस्थान में) बंधस्थान सर्व (१०) और उदयस्थान सब (९), आगे दो (२७,२६) स्थानों में बंधस्थान पहला २२ का और उदयस्थान १० से लेकर तीन, (२४ में) १७ से लेकर सब (८) और ९ से लेकर सब (८), आगे दो (२३,२२) में १७ से लेकर तीन और ९ से लेकर पाँच है। (२१ में) १७ से लेकर (८) और ८ से लेकर सब (७) है। उसके बाद दो(१३,१२)

स्थानों में ५,४ और २ है। आगे (११ में) ५,४ और २,१ है। (५ में) ४ और १, (४ में) ४,३ और १ है। उसके बाद (३ में) ३,२ और १ है, (२ में) २,१ और १ है। (१ में) १, शून्य और १ है। ऐसे मोहनीय के सत्त्वस्थानों में बंध-उदय स्थान है।।६७०-६७२।।

मोहनीय के सत्त्वस्थान में बंधस्थान, उदयस्थान

सत्त्वस्थान	बंधस्थान		उदयस्थान	
	कुल स्थान	स्थान विवरण	कुल स्थान	स्थान विवरण
२८	१०	२२,२१,१७,१३,९,५,४,३,२,१	९	१०,९,८,७,६,५,४,२,१
२७	१	२२	३	१०,९,८
२६	१	२२	३	"
२४	८	१७,१३,९,५,४,३,२,१	८	९,८,७,६,५,४,२,१
२३	३	१७,१३,९	५	९,८,७,६,५
२२	३	१७,१३,९	५	"
२१	८	१७,१३,९,५,४,३,२,१	७	८,७,६,५,४,२,१
१३	२	५,४	१	२
१२	२	"	१	२
११	२	"	२	२,१
५	१	४	१	१
४	२	४,३	१	१
३	२	३,२	१	१
२	२	२,१	१	१
१	१	१/0	१	१

बंधुदये सत्तपदं बंधंसे णेयमुदयठाणं च।
उदयंसे बंधपदं दुट्ठाणाधारमेक्कमाधेज्जं।।६७३।।

अर्थ - बंध-उदय के स्थानों में सत्त्वस्थान, बंध-सत्त्वस्थानों में उदयस्थान और उदय-सत्त्वस्थानों में बंधस्थान, इस प्रकार दो स्थानों को आधार तथा एक स्थान को आधेय बनाकर तीन प्रकार से भंग होते हैं।।६७३।।

त्रिसंयोग - दो आधार, एक आधेय

	१	२	३
आधार	बंधस्थान, उदयस्थान	बंधस्थान, सत्त्वस्थान	उदयस्थान, सत्त्वस्थान
आधेय	सत्त्वस्थान	उदयस्थान	बंधस्थान

बावीसेण णिरुद्धे दसचउरुदये दसादिठाणतिये।
अट्ठावीसति सत्तं सत्तुदये अट्ठवीसेव।।६७४।।
इगिवीसेण णिरुद्धे णवयतिये सत्तमट्ठवीसेव।
सत्तरसे णवचदुरे अडचउतिदुगेक्कवीसंसा।।६७५।।
इगिवीसं ण हि पढमे चरिमे तिदुवीसयं ण तेरणवे।
अडचउसगचउरुदये सत्तं सत्तरसयं व हवे।।६७६।।
णवरि य अपुव्वणवगे छादितियुदयेवि णत्थि तिदुवीसा।
पणबंधे दोउदये अडचउरिगिवीसतेरसादितियं।।६७७।।
चदुबंधे दोउदये सत्तं पुव्वं व तेण एक्कुदये।
अडचउरेक्कावीसा एयारतिगं च सत्ताणि।।६७८।।
तिदुइगिबंधेक्कुदये चदुतियठाणेण तिदुगठाणेण।
दुगिठाणेण य सहिदा अडचउरिगिवीसया सत्ता।।६७९।।

अर्थ – २२ के बंध सहित जीव के १० से लेकर चार उदयस्थानों में से १० से लेकर तीन स्थानों में तो २८ से लेकर तीन सत्त्वस्थान है और ७ के उदयस्थान में २८ का ही सत्त्व है।।६७४।।

अर्थ – २१ के बंध सहित जीव के ९ से लेकर तीन उदयस्थानों में २८ का एक ही सत्त्वस्थान है। १७ के बंध सहित जीव के ९ से लेकर चार उदयस्थानों में २८,२४,२३,२२,२१ के ५ सत्त्वस्थान हैं।।६७५।।

अर्थ – पहले (९) का उदय होने पर २१ का सत्त्व नहीं होता है और अंतिम (६) का उदय होने पर २३,२२ का सत्त्व नहीं होता है। १३ के बंध सहित ८ से लेकर चार उदयस्थानों में तथा ९ के बंध सहित ७ से लेकर चार उदयस्थानों में सत्त्वस्थान १७ के बंधसहित स्थान जैसे है।।६७६।।

अर्थ – इतनी विशेषता है कि अपूर्वकरण में ९ के बंधसहित ६ से लेकर ३ उदयस्थानों में २३,२२ का सत्त्व नहीं होता है। और ५ के बंध सहित २ के उदयस्थान में २८,२४,२१ और १३ से लेकर तीन सत्त्वस्थान हैं।।६७७।।

अर्थ – ४ के बंधसहित २ के उदयस्थान में सत्त्व पूर्ववत् ५ के बंध सहित जैसे है। उसी ४ के बंध सहित १ के उदयस्थान में २८,२४,२१ और ११ से लेकर ३ सत्त्वस्थान है।।६७८।।

अर्थ – ३-२-१ के बंध सहित जीव के १ के उदयस्थान में २८,२४,२१ के तीन सत्त्वस्थानों में क्रम से ४ और ३ के दो सत्त्वस्थान मिलाने से, ३ और २ के दो सत्त्वस्थान मिलाने से, २ और १ के दो सत्त्वस्थान मिलाने से तीनों जगह पाँच-पाँच सत्त्वस्थान होते हैं।।६७९।।

मोहनीय के बंधस्थान, उदयस्थान में सत्त्वस्थान

<table>
<tr><th colspan="2">बंधस्थान</th><th>उदयस्थान</th><th>सत्त्वस्थान</th></tr>
<tr><td colspan="2">२२</td><td>१०,९,८</td><td>२८,२७,२६</td></tr>
<tr><td colspan="2">२२</td><td>७</td><td>२८</td></tr>
<tr><td colspan="2">२१</td><td>९,८,७</td><td>२८</td></tr>
<tr><td colspan="2">१७</td><td>९</td><td>२८,२४,२३,२२</td></tr>
<tr><td colspan="2">१७</td><td>८,७</td><td>२८,२४,२३,२२,२१</td></tr>
<tr><td colspan="2">१७</td><td>६</td><td>२८,२४,२१</td></tr>
<tr><td colspan="2">१३</td><td>८</td><td>२८,२४,२३,२२</td></tr>
<tr><td colspan="2">१३</td><td>७,६</td><td>२८,२४,२३,२२,२१</td></tr>
<tr><td colspan="2">१३</td><td>५</td><td>२८,२४,२१</td></tr>
<tr><td>९</td><td rowspan="3">प्रमत्त–
अप्रमत्त
गुणस्थान</td><td>७</td><td>२८,२४,२३,२२</td></tr>
<tr><td>९</td><td>६,५</td><td>२८,२४,२३,२२,२१</td></tr>
<tr><td>९</td><td>४</td><td>२८,२४,२१</td></tr>
<tr><td>९</td><td>अपूर्वकरण</td><td>६,५,४</td><td>”</td></tr>
<tr><td colspan="2">५</td><td>२</td><td>२८,२४,२१,१३,१२,११</td></tr>
<tr><td colspan="2">४</td><td>२</td><td>”</td></tr>
<tr><td colspan="2">४</td><td>१</td><td>२८,२४,२१,११,५,४</td></tr>
<tr><td colspan="2">३</td><td>१</td><td>२८,२४,२१,४,३</td></tr>
<tr><td colspan="2">२</td><td>१</td><td>२८,२४,२१,३,२</td></tr>
<tr><td colspan="2">१</td><td>१</td><td>२८,२४,२१,२,१</td></tr>
</table>

बावीसे अडवीसे दसचउरुदओ अणे ण सगवीसे।
छव्वीसे दसयतियं इगिअडवीसे दु णवयतियं।।६८०।।
सत्तरसे अडचदुवीसे णवयचदुरुदयमिगिवीसे।
णो पढमुदओ एवं तिदुवीसे णंतिमस्सुदओ।।६८१।।
तेरणवे पुव्वंसे अडादिचउ सगचउण्हमुदयाणं।
सत्तरसं व वियारो पणगुवसंते सगेसु दो उदया।।६८२।।
तेणेवं तेरतिये चदुबंधे पुव्वसत्तगेसु तहा।
तेणुवसंतंसेयारतिए एक्को हवे उदओ।।६८३।।

तिदुइगिबंधे अडचउरिगिवीसे चदुतिएण ति दुगेण।
दुगिसत्तेण य सहिदे कमेण एक्को हवे उदओ।।६८४।।

अर्थ – २२ के बंध सहित २८ के सत्त्वस्थान में १० से लेकर चार उदयस्थान है, क्योंकि अनंतानुबंधी रहित भी उदयस्थानों का संभव है। २२ के ही बंध सहित २७,२६ के सत्त्वस्थान में १० से लेकर तीन उदयस्थान है। २१ के बंध सहित २८ के सत्त्वस्थान में ९ से लेकर तीन उदयस्थान है।।६८०।।

अर्थ – १७ के बंध सहित – २८,२४ के सत्त्वस्थान में ९ से लेकर चार उदयस्थान है; २१ के सत्त्वस्थान में पहला (९ का) उदयस्थान नहीं होता, शेष ८ से लेकर तीन उदयस्थान होते हैं; २३,२२ के सत्त्वस्थान में अंत का (६ का) स्थान नहीं होता है, (इसलिये यहाँ पर भी ९ से लेकर तीन उदयस्थान है)।।६८१।।

अर्थ – १३ के बंध सहित और ९ के बंध सहित पूर्वोक्त १७ के बंध जैसे सत्त्व होने पर क्रम से ८ से लेकर चार उदयस्थान और ७ से लेकर चार उदयस्थान होते हैं। (विशेष – २१ के सत्त्व में १३ के बंध सहित के पहला ८ का उदयस्थान नहीं है और ९ के बंध सहित के ७ का उदयस्थान नहीं है; २३,२२ के सत्त्व में १३ के बंध सहित के अंत का ५ का उदयस्थान नहीं और ९ के बंध सहित के ४ का उदयस्थान नहीं है।) उपशांतमोह में कहे हुये २८,२४,२१ के सत्त्व उनके होने पर ५ के बंध सहित २ का उदय हैं।।६८२।।

अर्थ – उन ५ के बंध सहित १३ आदि तीन (१३,१२,११) के सत्त्वस्थान में तथा ४ के बंध सहित – पूर्वोक्त (२८ से लेकर तीन व १३ से लेकर तीन) सत्त्वस्थान में भी २ का उदय है; (४ के बंध सहित) उपशांतमोह में कहे हुये पूर्वोक्त २८ आदि तीन व ११ से लेकर तीन सत्त्वस्थान में १ का उदय है।।६८३।।

अर्थ – ३-२-१ के बंध सहित २८,२४,२१ व क्रम से ४,३ के सत्त्व; ३-२ के सत्त्व; २-१ के सत्त्वस्थान में १-१ का उदय है।।६८४।।

मोहनीय के बंधस्थान, सत्त्वस्थान में उदयस्थान

बंधस्थान	सत्त्वस्थान	उदयस्थान
२२	२८	१०,९,८,७
२२	२७,२६	१०,९,८
२१	२८	९,८,७
१७	२८,२४	९,८,७,६
१७	२१	८,७,६
१७	२३,२२	९,८,७

१३	२८,२४	८,७,६,५
१३	२१	७,६,५
१३	२३,२२	८,७,६
९	२८,२४	७,६,५,४
९	२१	६,५,४
९	२३,२२	७,६,५
५	२८,२४,२१	२
४	"	२,१
५	१३,१२,११	२
४	"	२
४	११,५,४	१
३	२८,२४,२१,४,३	१
२	२८,२४,२१,३,२	१
१	२८,२४,२१,२,१	१

दसगुदये अडवीसतिसत्ते बावीसबंध णवअट्ठे।
अडवीसे बावीसतिचउबंधो सत्तवीसदुगे।।६८५।।
बावीसबंध चदुतिदुवीसंसे सत्तरसयददुगबंधो।
अट्ठुदये इगिवीसे सत्तरबंधं विसेसं तु।।६८६।।जुम्मं।।
सत्तुदये अडवीसे बन्धो बावीसपंचयं तेण।
चउवीसतिगे अयदतिबंधो इगिवीसगयददुगबंधो।।६८७।।
छप्पणउदये उवसंतंसे अयदतिगदेसदुगबंधो।
तेण तिदोवीसंसे देसदुणवबंधयं होदि।।६८८।।
चउरुदयुवसंतंसे णवबंधो दोण्णिउदयपुव्वंसे।
तेरसतियसत्तेवि य पण चउ ठाणाणि बंधस्स।।६८९।।
एक्कुदयवसंतंसे बंधो चदुरादिचारि तेणेव।
एयारदु चदुबंधो चदुरंसे चदुतियं बंधो।।६९०।।
तेण तिये तिदुबंधो दुगसत्ते दोण्णि एक्कयं बंधो।
एक्कंसे इगिबंधो गयणं वा मोहणीयस्स।।६९१।।

अर्थ - १० के उदय सहित २८ आदि तीन सत्त्वस्थानों में २२ का बंध है, ९,८ के उदय सहित २८ के सत्त्वस्थान में क्रम से २२ से लेकर तीन और चार बंधस्थान है। तथा उन्हीं में २७ व २६ के दो सत्त्वस्थानों में २२ का बंध है। ९ के उदय सहित २४,२३,२२ के तीन सत्त्वस्थानों में १७ का बंध है। ८ के उदय सहित २४ से लेकर तीन सत्त्वस्थानों में १७,१३ का बंध है; २१ के सत्त्वस्थान में १७ का बंध है।।६८५-६८६।।

अर्थ - ७ के उदय सहित २८ के सत्त्वस्थान में २२ से लेकर पाँच बंधस्थान है। पूर्वोक्त ७ के उदय सहित २४ से लेकर तीन सत्त्वस्थानों में १७ से लेकर तीन बंधस्थान है। पूर्वोक्त ७ के उदयसहित २१ के सत्त्वस्थान में असंयत युगल में क्रम से १७-१३ का बंध है।।६८७।।

अर्थ - ६ के उदय सहित उपशांतमोह में कहे हुये (२८-२४-२१ के) तीन सत्त्वस्थानों में असंयतत्रिक (१७,१३,९) के बंधस्थान है। ५ के उदय सहित तीन सत्त्वस्थानों में देशसंयतद्विक (१३,९) के बंधस्थान हैं। और पूर्वोक्त ६ के उदय सहित २३,२२ के सत्त्वस्थानों में देशसंयतद्विक (१३,९) के बंधस्थान है; तथा ५ के उदय सहित ९ का बंध है।।६८८।।

अर्थ - ४ के उदय सहित उपशांतमोह में कहे हुये (२८-२४-२१ के) तीन सत्त्वस्थानों में ९ का बंध है। २ के उदय सहित पूर्वोक्त तीन सत्त्वस्थानों में पुरुषवेद के उदय के चरम समय तक ५ का बंध है। नपुंसक, स्त्रीवेद के उदय सहित श्रेणी चढ़ने वाले के वहाँ ४ का बंध है। तथा क्षपक श्रेणी में आठ कषाय, नपुंसक-स्त्री-पुरुष वेद के क्षपणरूप भागों में २१ और १३-१२-११ के सत्त्वस्थानों में ५ का बंध है। अन्य वेद के उदय सहित १३,१२ के सत्त्वस्थानों में ४ का बंध है।।६८९।।

अर्थ - १ के उदय सहित उपशांतमोह में कहे हुये (२८-२४-२१ के) सत्त्वस्थानों में ४ से लेकर चार बंधस्थान है। और १ के उदय सहित ११ व ५ के सत्त्वस्थानों में ४ का बंधस्थान है। १ के उदय सहित ४ के सत्त्वस्थान में ४ व ३ का बंधस्थान है।।६९०।।

अर्थ - उसी १ के उदय सहित ३ के सत्त्वस्थान में ३ व २ के बंधस्थान है; २ के सत्त्वस्थान में २ व १ के बंधस्थान है। १ के सत्त्वस्थान में १ का बंधस्थान है अथवा मगगनफ अर्थात् बंधाभाव है। इस प्रकार मोहनीय के त्रिसंयोगी भंग हैं।।६९१।।

मोहनीय के उदयस्थान, सत्त्वस्थान में बंधस्थान

उदयस्थान	सत्त्वस्थान	बंधस्थान
१०	२८,२७,२६	२२
९	२८	२२,२१,१७
८	२८	२२,२१,१७,१३
९	२७,२६	२२
८	२७,२६	२२

९	२४,२३,२२	१७
८	"	१७,१३
८	२१	१७
७	२८	२२,२१,१७,१३,९
७	२४,२३,२२	१७,१३,९
७	२१	१७,१३
६	२८,२४,२१	१७,१३,९
५	"	१३,९
६	२३,२२	"
५	"	९
४	२८,२४,२१	९
२	२८,२४,२१,१३,१२,११	५,४
१	२८,२४,२१	४,३,२,१
१	११,५	४
१	४	४,३
१	३	३,२
१	२	२,१
१	१	१,०

नामकर्म की प्रकृतियों के त्रिसंयोगी भंग

णामस्स य बंधोदयसत्तट्ठाणाण सव्वभंगा हु।
पत्तेउत्तं व हवे तियसंजोगेवि सव्वत्थ।।६९२।।
छण्णवछत्तियसगइगि दुगतिगदुग तिण्णिअट्ठचत्तारि।
दुगदुगचदु दुगपणचदु चदुरेयचदू पणेयचदू।।६९३।।
एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ छदुमट्ठ केवलिजिणाणं।
एगचदुरेगचदुरो दोचदु दोछक्कं बंधउदयंसा।।६९४।। जुम्मं।।
णामस्स य बंधोदयसत्ताणि गुणं पडुच्च उत्ताणि।
पत्तेयादो सव्वं भणिदव्वं अत्थजुत्तीए।।६९५।।
तेवीसादी बंधा इगिवीसादीणि उदयठाणाणि।
बाणउदादी सत्तं बंधा पुण अट्ठवीसतियं।।६९६।।

इगिवीसादीएक्कत्तीसंता सत्तअट्ठवीसूणा।
उदया सत्तं णउदी बंधा पुण अट्ठवीसदुगं।।६९७।।
एगुणतीसत्तिदयं उदयं बाणउदिणउदियं सत्तं।
अयदे बंधट्ठाणं अट्ठवीसत्तियं होदि।।६९८।।
उदया चउवीसूणा इगिवीसप्पहुदिएक्कतीसंता।
सत्तं पढमचउक्कं अपुव्वकरणोत्ति णायव्वं।।६९९।।कलावयं।।
अडवीसदुगं बंधो देसे पमदे य तीसदुगमुदओ।
पणवीससत्तवीसप्पहुदीचत्तारि ठाणाणि।।७००।।
अपमत्ते य अपुव्वे अडवीसादीण बंधमुदओ दु।
तीसमणियट्टिसुहुमे जसकित्ती एक्कयं बंधो।।७०१।।
उदओ तीसं सत्तं पढमचउक्कं च सीदिचउ संते।
खीणे उदओ तीसं पढमचऊ सीदिचउ सत्तं।।७०२।।जुम्मं।।
जोगिम्मि अजोगिम्मि य तीसिगितीसं णवट्ठयं उदओ।
सीदादिचऊछक्कं कमसो सत्तं समुद्दिट्ठं।।७०३।।

अर्थ – नामकर्म के बंध-उदय-सत्त्व स्थानों के सर्व भंग जैसे प्रत्येक जुदे-जुदे कथन में पहले कहे थे वैसे ही त्रिसंयोग में भी सर्वत्र भंग हैं।।६९२।।

अर्थ – नामकर्म के बंधस्थान-उदयस्थान-सत्त्वस्थान मिथ्यात्वादि में क्रम से ६-९-६, ३-७-१, २-३-२, ३-८-४, २-२-४, २-५-४, ४-१-४, ५-१-४, १-१-८, १-१-८ हैं। (आगे बंध का अभाव हैं, अतः उदयस्थान-सत्त्वस्थान ही हैं, सो क्रम से) १-४, १-४, २-४ और अयोगकेवली के २-६ हैं।।६९३-६९४।।

अर्थ – नामकर्म के बंध-उदय-सत्त्वस्थान जो ऊपर गुणस्थानों में हैं, वे ही प्रत्येक-प्रत्येक अर्थ युक्ति से कहते हैं।।६९५।।

अर्थ – (मिथ्यात्व में) २३ आदि (६) बंधस्थान है, २१ आदि (९) उदयस्थान हैं, ९२ आदि (६) सत्त्वस्थान है। आगे (दूसरे में) बंधस्थान २८ आदि तीन है। २७-२८ के स्थान बिना २१ आदि ३१ के स्थान पर्यंत सात उदयस्थान हैं, सत्त्वस्थान ९० का है। (तीसरे में) बंधस्थान २८ आदि दो है, २९ आदि तीन उदयस्थान हैं, ९२-९० सत्त्वस्थान हैं। असंयत में बंधस्थान २८ आदि तीन हैं, उदयस्थान २४ बिना २१ आदि ३१ पर्यंत आठ है, सत्त्वस्थान ९३ आदि चार है। ये ही चार-चार सत्त्वस्थान अपूर्वकरण तक जानना।।६९६-६९९।।

अर्थ – देशसंयत और प्रमत्त में २८ आदि दो बंधस्थान है, देशसंयत में ३० आदि दो उदयस्थान हैं। प्रमत्त में २५ का स्थान तथा २७ आदि लेकर चार स्थान – ये पाँच उदयस्थान है, सत्त्वस्थान पूर्वोक्त चार है।।७००।।

अर्थ – अप्रमत्त और अपूर्वकरण में २८ आदि चार तथा पाँच बंधस्थान क्रम से हैं, उदयस्थान ३० का ही है, सत्त्वस्थान पूर्वोक्त चार है। अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्म सांपराय में एक यशःकीर्ति का बंधस्थान है, उदयस्थान ३० का ही है, सत्त्वस्थान पहले (९३ के) स्थान आदि चार और ८० आदि लेकर चार (– ये आठ) है। उपशांतमोह और क्षीणमोह में उदयस्थान ३० का है, सत्त्वस्थान ९३ आदि चार उपशांतमोह में तथा ८० आदि चार क्षीणमोह में क्रम से है।।७०१-७०२।।

अर्थ – सयोगी और अयोगी के क्रम से उदयस्थान ३०-३१ के दो, तथा ९-८ के दो हैं, सत्त्वस्थान सयोगी में ८० आदि चार तथा अयोगी में (८०,७९,७८,७७ और १०,९) – ये छह कहे गये है।।७०३।।

१४ गुणस्थानों में नामकर्म के बंध-उदय-सत्त्व स्थान

गुण–स्थान	बंधस्थान		उदयस्थान		सत्त्वस्थान	
	स्थान	विवरण	स्थान	विवरण	स्थान	विवरण
१	६	२३,२५,२६, २८,२९,३०	९	२१,२४,२५,२६,२७, २८,२९,३०,३१	६	९२,९१,९०, ८८,८४,८२
२	३	२८,२९,३०	७	२१,२४,२५,२६, २९,३०,३१	१	९०
३	२	२८,२९	३	२९,३०,३१	२	९२,९०
४	३	२८,२९,३०	८	२१,२५,२६,२७, २८,२९,३०,३१	४	९३,९२,९१,९०
५	२	२८,२९	२	३०,३१	४	”
६	२	”	५	२५,२७,२८,२९,३०	४	”
७	४	२८,२९,३०,३१	१	३०	४	”
८	५	२८,२९,३०,३१,१	१	३०	४	”
९, १०	१	१	१	३०	८	९३,९२,९१,९०, ८०,७९,७८,७७
११	०		१	३०	४	९३,९२,९१,९०
१२	०		१	३०	४	८०,७९,७८,७७
१३	०		८	समुद्घात में – २०,२१, २६,२७,२८,२९,३०,३१	४	”
१४	०		२	९,८	६	८०,७९,७८,७७,१०,९

पणदोपणगं पणचदुपणगं बंधुदयसत्त पणगं च।
पणछक्कपणगछछक्कपणगमट्ठट्ठमेयारं।।७०४।।
सत्तेव अपज्जत्ता सामी सुहुमो य बादरो चेव।
वियलिंदिया य तिविहा होंति असण्णी कमा सण्णी।।७०५।।जुम्मं।।
बंधा तियपणछण्णववीसत्तीसं अपुण्णगे उदओ।
इगिचउवीसं इगिछव्वीसं थावरतसे कमसो।।७०६।।
बाणउदीणउदिचऊ सत्तं एमेव बंधयं अंसा।
सुहुमिदरे वियलतिये उदया इगिवीसयादिचउपणयं।।७०७।।
इगिछक्कडणववीसत्तीसिगितीसं च वियलठाणं वा।
बंधतियं सण्णिदरे भेदो बंधदि दु अडवीसं।।७०८।।विसेसयं।।
सण्णिम्मि सव्वबंधो इगिवीसप्पहुदिएक्कतीसंता।
चउवीसूणा उदओ दसणवपरिहीणसव्वयं सत्तं।।७०९।।

अर्थ - अपर्यात ७ जीवसमासों में बंध-उदय-सत्त्वस्थान क्रम से ५-२-५ हैं। सब सूक्ष्म जीवों के ५-४-५ हैं। सब बादर एकेन्द्रिय जीवों के ५-५-५ है। विकलत्रय के ५-६-५ है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय के ६-६-५ हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय ८-८-११ के स्वामी हैं।।७०४-७०५।।

अर्थ - अपर्याप्त ७ जीवसमासों में बंधस्थान २३,२५,२६,२९,३० के पाँच है; उदयस्थान क्रम से स्थावर में २१,२४ के दो है और त्रस में २१,२६ के दो है; सत्त्वस्थान ९२ का और ९० से लेकर चार - ऐसे पाँच है। सूक्ष्म-बादर और विकलत्रय इनमें बंधस्थान और सत्त्वस्थान तो ऐसे ही अपर्याप्तवत् है; उदयस्थान सूक्ष्म में २१ से लेकर चार और बादर में पाँच है। विकलत्रय में २१,२६,२८,२९,३०,३१ के छह हैं। असैनी पंचेन्द्रिय में बंधादि तीनों स्थान विकलत्रयवत् है, विशेषता यह कि यह २८ के स्थान को भी बाँधता है, इसलिये बंधस्थान छह हैं।।७०६-७०८।।

अर्थ - संज्ञी पंचेन्द्रिय में बंधस्थान सब (८) हैं; उदयस्थान २४ के बिना २१ से लेकर ३१ तक के ८ हैं; और सत्त्वस्थान १०,९ के बिना सब अर्थात ११ हैं।।७०९।।

१४ जीवसमासों में नामकर्म के बंध-उदय-सत्त्व स्थान

जीवसमास		बंधस्थान		उदयस्थान		सत्त्वस्थान	
		स्थान	स्थान विवरण	स्थान	स्थान विवरण	स्थान	स्थान विवरण
७ अपर्याप्त		५	२३,२५, २६,२९,३०	२ २	स्थावर- २१,२४ त्रस - २१,२६	५	९२,९०,८८, ८४,८२
एकेंद्रिय पर्याप्त	सूक्ष्म	५	”	४	२१,२४,२५,२६	५	”
	बादर	५	”	५	२१,२४,२५, २६,२७	५	”

विकलत्रय		५	"	६	२१,२६,२८, २९,३०,३१	५	"
पंचेंद्रिय	असंज्ञी	६	२३,२५,२६, २८,२९,३०	६	"	५	"
	संज्ञी	८	२३,२५,२६,२८, २९,३०,३१,१	८	२१,२५,२६,२७, २८,२९,३०,३१	११	९३,९२,९१,९०, ८८,८४,८२,८०, ७९,७८,७७

नामकर्म के १४ मार्गणाओं में बंध-उदय-सत्त्व स्थान

दोछक्कट्ठचउक्कं णिरयादिसु णामबंधठाणाणि।
पणणवएगारपणयं तिपंचबारसचउक्कं च।।७१०।।
एगे वियले सयले पण पण अड पंच छक्केगार पणं।
पणतेरं बंधादी सेसादेसेवि इदि णेयं।।७११।।
णिरयादिणामबंधा उगुतीसं तीसमादिमं छक्कं।
सव्वं पणछक्कुत्तरवीसुगुतीसं दुगं होदि।।७१२।।
उदया इगिपणसगअडणववीसं एक्कवीसपहुदिणवं।
चउवीसहीणसव्वं इगिपणसगअट्ठणववीसं।।७१३।।
सत्ता बाणउदितियं बाणउदीणउदिअट्ठसीदितियं।
बासीदिहीणसव्वं तेणउदिचउक्कयं होदि।।७१४।।

अर्थ – नामकर्म के बंधस्थान नरकादि चारों गतियों में क्रम से २-६-८-४ है; उदयस्थान ५-९-११-५ हैं; सत्त्वस्थान ३-५-१२-४ हैं।।७१०।।

अर्थ – एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के क्रम से ५-५-८ बंधस्थान हैं; ५-६-११ उदयस्थान हैं; ५-५-१३ सत्त्वस्थान हैं। इसी प्रकार शेष कायादिक मार्गणाओं में भी बंधादि स्थान जानना।।७११।।

अर्थ – नामकर्म के बंधस्थान नरकादि गतियों में क्रम से – नरकगति में २९,३० के दो; तिर्यंचगति में आदि के (२३ के) स्थान से लेकर छह; मनुष्यगति में सर्व(आठ); देवगति में २५,२६,२९,३० के चार है।।७१२।।

अर्थ – उदयस्थान नरकगति में २१,२५,२७,२८,२९ के पाँच है; तिर्यंचगति में २१ से लेकर नौ है; मनुष्यगति में २४ के स्थान के बिना सर्व हैं; देवगति में २१,२५,२७,२८,२९ के पाँच है।।७१३।।

अर्थ – सत्त्वस्थान नरकगति में ९२ से लेकर तीन हैं; तिर्यंचगति में ९२,९० के दो और ८८ से लेकर तीन – ये पाँच हैं; मनुष्यगति में ८२ के बिना सर्व है; देवगति में ९३ से लेकर चार है।।७१४।।

गति मार्गणा

	बंधस्थान		उदयस्थान		सत्त्वस्थान	
	स्थान	स्थान विवरण	स्थान	स्थान विवरण	स्थान	स्थान विवरण
नरक	२	२९,३०	५	२१,२५,२७,२८,२९	३	९२,९१,९०
तिर्यंच	६	२३,२५,२६, २८,२९,३०	९	२१,२४,२५,२६, २७,२८,२९,३०,३१	५	९२,९०,८८, ८४,८२
मनुष्य	८	२३,२५,२६, २८,२९,३०,३१,१	११	२०,२१,२५,२६, २७,२८,२९, ३०,३१,९,८	१२	९३,९२,९१,९०, ८८,८४,८०,७९, ७८,७७,१०,९
देव	४	२५,२६,२९,३०	५	२१,२५,२७,२८,२९	४	९३,९२,९१,९०

इगिविगल बंधठाणं अडवीसूणं तिवीसछक्कं तु।
सयलं सयले उदया एगे इगिवीसपंचयं वियले।।७१५।।
इगिछक्कडणववीसं तीसदु चउवीसहीणसव्वुदया।
णउदिचऊ बाणउदी एगे वियले य सव्वयं सयले।।७१६।।जुम्मं।।

अर्थ - इन्द्रिय मार्गणा में बंधस्थान एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय में २८ के बिना २३ से लेकर पाँच है; सकलेन्द्रिय में सर्व है। उदयस्थान एकेन्द्रिय में २१ से लेकर पाँच है; विकलेन्द्रिय में २१,२६,२८,२९,३०,३१ के छह हैं; पंचेन्द्रिय के २४ के बिना सर्व उदयस्थान हैं। सत्त्वस्थान एकेन्द्रिय-विकलेन्द्री के ९२ का तथा ९० से लेकर चार (९०,८८,८४,८२) - ऐसे कुल पाँच हैं; और सकलेन्द्रिय के सर्व सत्त्वस्थान हैं।।७१५-७१६।।

इन्द्रिय मार्गणा

	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्त्वस्थान
एकेंद्रिय	२३,२५,२६,२९,३०	२१,२४,२५,२६,२७	९२,९०,८८,८४,८२
विकलेंद्रिय	"	२१,२६,२८,२९,३०,३१	"
पंचेंद्रिय	२३,२५,२६,२८, २९,३०,३१,१	२०,२१,२५,२६,२७, २८,२९,३०,३१,९,८	९३,९२,९१,९०,८८,८४, ८२,८०,७९,७८,७७,१०,९

पुढवीयादीपंचसु तसे कमा बंधउदयसत्ताणि।
एयं वा सयलं वा तेउदुगे णत्थि सगवीसं।।७१७।।

अर्थ - काय मार्गणा में पृथ्वी कायादि पाँच स्थावरों में और त्रसकाय में बंध-उदय-सत्त्वस्थान क्रम से एकेन्द्रियवत् और पंचेन्द्रियवत् है। विशेष इतना :- तेजद्विक(अग्नि-वायु) में २७ का स्थान नहीं है (क्योंकि यह स्थान आतप वा उद्योत सहित है, सो उसका उदय इनमें नहीं होता है)।।७१७।।

काय मार्गणा

	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्त्वस्थान
पृथ्वी, जल	←——— एकेन्द्रियवत् ———→		
अग्नि, वायु	एकेन्द्रियवत्	२१,२४,२५,२६	एकेन्द्रियवत्
त्रस	←——— पंचेन्द्रियवत् ———→		

मणिवचि बंधुदयंसा सव्वं णववीसतीसइगितीसं।
दसणवदुसीदिवज्जिदसव्वं ओरालतम्मिस्से।।७१८।।
सव्वं तिवीसछक्कं पणुवीसादेक्कतीसपेरन्तं।
चउछक्कसत्तवीसं दुसु सव्वं दसयणवहीणं।।७१९।।जुम्मं।।
वेगुव्वे तम्मिस्से बंधंसा सुरगदीव उदयो दु।
सगवीसतियं पणजुदवीसं आहारतम्मिस्से।।७२०।।
बंधतियं अडवीसदु वेगुव्वं वा तिणउदिबाणउदी।
कम्मे वीसदुगुदओ ओरालियमिस्सयं व बंधंसा।।७२१।।जुम्मं।।

अर्थ – योग मार्गणा में मनोयोग और वचनयोग में बंधस्थान सर्व है; उदयस्थान २९,३०,३१ के तीन है, और सत्त्वस्थान १०,९ और ८२ के बिना सर्व है। औदारिकयोग में बंधस्थान सर्व हैं; औदारिकमिश्र में २३ से लेकर छह है; उदयस्थान औदारिकयोग में २५ से लेकर ३१ पर्यंत सात हैं और औदारिकमिश्र में २४,२६,२७ के तीन हैं; सत्त्वस्थान दोनों में १०,९ के बिना सर्व हैं।।७१८-७१९।।

अर्थ – वैक्रियिकयोग और वैक्रियिकमिश्रयोग में बंधस्थान व सत्त्वस्थान देवगतिवत् हैं; उदयस्थान वैक्रियिकयोग में २७ से लेकर तीन हैं; वैक्रियिकमिश्र में एक २५ का ही है। आहारक तथा आहारकमिश्रयोग में बंधादि तीनों स्थान क्रम से २८,२९ के दो; उदयस्थान वैक्रियिकयोगवत् २७ से लेकर तीन व आहारकमिश्र में एक २५ का ही है; सत्त्वस्थान ९३-९२ के दो हैं। कार्मण काययोगवत् में उदयस्थान २०-२१ के दो हैं; बंधस्थान-सत्त्वस्थान औदारिकमिश्रयोगवत् हैं।।७२०-७२१।।

योग मार्गणा

	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्त्वस्थान
४ मनोयोग, ४ वचनयोग	सर्व	२९,३०,३१	सर्व(९,१०,८२ नहीं)
औदारिक	सर्व	२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१	सर्व (९,१० नहीं)
औदारिकमिश्र	२३,२५,२६,२८,२९,३०	२४,२६,२७	"
वैक्रियिक	देवगतिवत्	२७,२८,२९	देवगतिवत्

वैक्रियिकमिश्र	"	२५	"
आहारक	२८,२९	२७,२८,२९	९३,९२
आहारकमिश्र	"	२५	"
कार्माण	औदारिक मिश्रवत्	२०,२१	औदारिक मिश्रवत्

वेदकसाये सव्वं इगिवीसणवं तिणउदिएक्कारं।
थीपुरिसे चउवीसं सीदडसदरी ण थीसंढे।।७२२।।

अर्थ – वेदमार्गणा और कषायमार्गणा में बंधस्थान सर्व हैं; उदयस्थान २१ से लेकर नौ है; सत्त्वस्थान ९३ से लेकर ११ हैं। विशेष इतना :– स्त्री–पुरुषवेद में २४ का उदय नहीं है (क्योंकि उसका उदय एकेन्द्रिय में ही है) और स्त्री–नपुंसकवेद में ८०,७८ के दो सत्त्वस्थान नहीं है (क्योंकि तीर्थंकर सत्त्व का धारी पुरुषवेद सहित ही क्षपक श्रेणी चढ़ता है।।७२२।।

वेद मार्गणा

	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्त्वस्थान
नपुंसक	सर्व ८	२१,२४,२५,२६,२७, २८,२९,३०,३१	९३,९२,९१,९०,८८, ८४,८२,७९,७७
स्त्री	"	२१,२५,२६,२७, २८,२९,३०,३१	"
पुरुष	"	"	९३,९२,९१,९०,८८,८४, ८२,८०,७९,७८,७७

कषाय मार्गणा

	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्त्वस्थान
क्रोध, मान, माया, लोभ	सर्व ८	२१,२४,२५,२६,२७, २८,२९,३०,३१	९३,९२,९१,९०,८८,८४, ८२,८०,७९,७८,७७

अण्णाणदुगे बन्धो आदीछ णउंसयं व उदयो दु।
सत्तं दुणउदिछक्कं विभंगबन्धा हु कुमदिं व।।७२३।।
उदया उणतीसतियं सत्ता णिरयं व मदिसुदोहीए।
अडवीसपंच बंधा उदया पुरिसं व अट्ठेव।।७२४।।
पढमचऊ सीदिचऊ सत्तं मणपज्जवम्हि बंधंसा।
ओहिं व तीसमुदयं ण हि बंधो केवले णाणे।।७२५।।
उदओ सव्वं चउपणवीसूणं सीदिछक्कयं सत्तं।
सुदमिव सामयियदुगे उदओ पणुवीससत्तवीसचऊ।।७२६।।कलावयं।।

परिहारे बंधतियं अडवीसचऊ य तीसमादिचऊ।
सुहुमे एक्को बंधो मणं व उदयंसठाणाणि।।७२७।।
जहखादे बंधतियं केवलयं वा तिणउदिचउ अत्थि।
देसे अडवीसदुगं तीसदु तेणउदिचारि बंधतियं।।७२८।।
अविरमणे बंधुदया कुमदिं व तिणउदिसत्तयं सत्तं।
पुरिसं वा चक्खिदरे अत्थि अचक्खुम्मि चउवीसं।।७२९।।

अर्थ – अज्ञानद्विक (कुमतिज्ञान-कुश्रुतज्ञान) में बंधस्थान २३ से लेकर छह हैं; उदयस्थान नपुंसकवेदवत् (नौ) हैं; सत्त्वस्थान ९२ से लेकर छह है। विभंग (कुअवधि) ज्ञान में बंधस्थान तो कुमतिज्ञानवत् हैं; उदयस्थान २९ से लेकर तीन है; सत्त्वस्थान नरकगतिवत् है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान में बंधस्थान २८ से लेकर पाँच हैं; उदयस्थान पुरुषवेदवत् आठ है; सत्त्वस्थान प्रथम(९३) से लेकर चार व ८० से लेकर चार – ऐसे आठ है। मन:पर्ययज्ञान में बंधस्थान और सत्त्वस्थान अवधिज्ञानवत् हैं; उदयस्थान ३० का ही है। केवलज्ञान में बंधस्थान का तो अभाव है; उदयस्थान २४,२५ के बिना सब हैं; सत्त्वस्थान ८० से लेकर छह हैं। संयम मार्गणा में सामायिक, छेदोस्थापना में बंधस्थान और सत्त्वस्थान श्रुतज्ञानवत् हैं; उदयस्थान २५ व २७ से लेकर चार – ऐसे पाँच है।।७२३-७२६।।

अर्थ – परिहारविशुद्धि में बंधादि तीन क्रम से २८ से लेकर चार; ३० का; ९३ से लेकर चार हैं। सूक्ष्मसांपराय में बंध १ का है, उदयस्थान और सत्त्वस्थान मनःपर्ययज्ञानवत् हैं।।७२७।।

अर्थ – यथाख्यात संयम में बंधादि तीनों केवलज्ञानवत् हैं, विशेष इतना :- ९३ को आदि लेकर चार सत्त्वस्थान और भी पाये जाते हैं। देशसंयत में बंधत्रिक २८,२९ के दो; ३०,३१ के दो; ९३ से लेकर चार हैं।।७२८।।

अर्थ – असंयत में बंध-उदयस्थान कुमतिज्ञानवत् हैं; सत्त्वस्थान ९३ से लेकर सात हैं। दर्शन मार्गणा में चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन में बंधादि पुरुषवेदवत् है, विशेष इतना :- अचक्षुदर्शन में २४ के स्थान का भी उदय होता है।।७२९।।

ज्ञान मार्गणा

	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्त्वस्थान
कुमति,कुश्रुत	२३,२५,२६,२८,२९,३०	नपुंसकवेदवत्	९२,९१,९०,८८,८४,८२
विभंग	"	२९,३०,३१	९२,९१,९०(नरकगतिवत्)
मति, श्रुत, अवधि	२८,२९,३०,३१,१	पुरुषवेदवत्	९३,९२,९१,९०, ८०,७९,७८,७७
मन:पर्यय	"	३०	"
केवल	-	सर्व(२४,२५ नहीं)	८०,७९,७८,७७,१०,९

संयम मार्गणा

	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्त्वस्थान
सामायिक, छेदोपस्थापना	श्रुतज्ञानवत्	२५,२७,२८, २९,३०	श्रुतज्ञानवत्
परिहारविशुद्धि	२८,२९,३०,३१	३०	९३,९२,९१,९०
सूक्ष्मसांपराय	१	मनःपर्ययज्ञानवत्	मनःपर्ययज्ञानवत्
यथाख्यात	केवलज्ञानवत्	केवलज्ञानवत्	९३,९२,९१,९०,८०, ७९,७८,७७,१०,९
देशसंयम	२८,२९	३०, ३१	९३,९२,९१,९०
असंयम	कुमतिज्ञानवत्	कुमतिज्ञानवत्	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२

ओहिदुगे बंधतियं तण्णाणं वा किलिट्ठलेस्सतिये।
अविरमणं वा सुहजुगलुदओ पुंवेदयं व हवे।।७३०।।
अडवीसचऊ बंधा पणछव्वीसं च अत्थि तेउम्मि।
पढमचउक्कं सत्तं सुक्के ओहिं व वीसयं चुदओ।।७३१।।जुम्मं।।

अर्थ – अवधिदर्शन और केवलदर्शन में बंधादि क्रम से अवधिज्ञान और केवलज्ञानवत् हैं। लेश्या मार्गणा में कृष्णादि तीन अशुभ लेश्याओं में बंधादि तीनों स्थान असंयतवत् हैं। शुभ युगल (पीत-पद्मलेश्या) में उदयस्थान पुरुषवेदवत् हैं; बंधस्थान पद्मलेश्या में २८ से लेकर चार और तेजोलेश्या में ये चार व २५,२६ के दो – ये छह हैं; सत्त्वस्थान दोनों में आदि के चार हैं। शुक्ललेश्या में बंधादि स्थान अवधिज्ञानवत् है, विशेष इतना :- २० के स्थान का भी उदय है।।७३०-७३१।।

दर्शन मार्गणा

	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्त्वस्थान
चक्षु	← पुरुषवेदवत् →		
अचक्षु	"	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१	"
अवधि	← अवधिज्ञानवत् →		
केवल	← केवलज्ञानवत् →		

लेश्या मार्गणा

	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्त्वस्थान
कृष्ण,नील, कापोत	⟵ असंयतवत् ⟶		
पीत	२५,२६,२८,२९,३०,३१	पुरुषवेदवत्	९३,९२,९१,९०
पद्म	२८,२९,३०,३१	"	"
शुक्ल	अवधिज्ञानवत्	२०,२१,२५,२६,२७, २८,२९,३०,३१	अवधिज्ञानवत्

भव्वे सव्वमभव्वे बन्धुदया अविरदव्व सत्तं तु।
णउदिचउ हारबंधणदुगहीणं सुदमिवुवसमे बंधो।।७३२।।
उदया इगिपणवीसं णववीसतियं च पढमचउ सत्तं।
उवसम इव बंधंसा वेदगसम्मे ण इगिबंधो।।७३३।।
उदया मदिं व खइये बंधादि सुदमिवत्थि चरिमदुगं।
उदयंसे वीसं च य साणे अडवीसतियबंधो।।७३४।।
उदया इगिवीसचऊ णववीसतियं च णउदियं सत्तं।
मिस्से अडवीसदुगं णववीसतियं च बंधुदया।।७३५।।
बाणउदिणउदिसत्तं मिच्छे कुमदिं व होदि बंधतियं।
पुरिसं वा सण्णीये इदरे कुमदिं व णत्थि इगिणउदी।।७३६।।कुलयं।।

अर्थ – भव्य मार्गणा में भव्य के बंध-उदय-सत्त्वस्थान सब हैं; अभव्य के बंध-उदयस्थान असंयमवत् हैं; सत्त्वस्थान ९० से लेकर चार है, विशेष इतना :- आहारकद्विक सहित ३० का बंध नहीं है किंतु उद्योत सहित है। सम्यक्त्व मार्गणा में उपशम सम्यक्त्व में बंधस्थान श्रुतज्ञानवत् हैं; उदयस्थान २१, २५ और २९ से लेकर तीन – ये पाँच हैं; सत्त्वस्थान प्रथम(९३) से लेकर चार है। वेदक सम्यक्त्व में बंधस्थान और सत्त्वस्थान तो उपशम सम्यक्त्ववत् हैं, विशेष इतना :- एक का बंधस्थान नहीं हैं; उदयस्थान मतिज्ञानवत् हैं। क्षायिक सम्यक्त्व में बंधादि श्रुतज्ञानवत् क्रम से पाँच; आठ; आठ हैं, विशेष इतना :- उदय और सत्त्व में अंत के दो-दो स्थान भी पाये जाते हैं व उदय में २० का स्थान भी है। सासादन सम्यक्त्व में बंधस्थान २८ से लेकर तीन हैं; उदयस्थान २१ से लेकर चार व २९ से लेकर तीन – ये सात हैं; सत्त्वस्थान ९० का ही है। मिश्ररुचि के बंधस्थान २८,२९ दो हैं; उदयस्थान २९ से लेकर तीन हैं; सत्त्वस्थान ९२, ९० के दो हैं। मिथ्यारुचि के बंधादि तीन स्थान कुमतिज्ञानवत् है। संज्ञी मार्गणा में संज्ञी के बंधादि स्थान पुरुषवेदवत् हैं। असंज्ञी के कुमतिज्ञानवत् हैं; विशेष इतना :- ९१ का सत्त्वस्थान नहीं है।।७३२-७३६।।

भव्य मार्गणा

	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्त्वस्थान
भव्य	सर्व	सर्व	सर्व
अभव्य	←—— असंयतवत्* ——→		९०,८८,८४,८२
	** आहारकद्विक सहित ३० का बंध नहीं, उद्योत सहित है*		

सम्यक्त्व मार्गणा

	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्त्वस्थान
उपशम	श्रुतज्ञानवत्	२१,२५,२९,३०,३१	९३,९२,९१,९०
वेदक	२८,२९,३०,३१	मतिज्ञानवत्	”
क्षायिक	श्रुतज्ञानवत्	२०,२१,२५,२६,२७, २८,२९,३०,३१,९,८	९३,९२,९१,९०,८० ७९,७८,७७,१०,९
सासादन	२८,२९,३०	२१,२४,२५,२६,२९,३०,३१*	९०
मिश्र	२८,२९	२९,३०,३१	९२,९०
मिथ्यात्व	←—— कुमतिज्ञानवत् ——→		
	** २७,२८ का उदय आने के काल तक सासादनपना एकेन्द्रियादिकों में संभव नहीं, इसलिये नहीं कहे*		

संज्ञी मार्गणा

	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्त्वस्थान
संज्ञी	←—— पुरुषवेदवत् ——→		
असंज्ञी	←—— कुमतिज्ञानवत् ——→		९२,९०,८८,८४,८२

आहारे बंधुदया संढं वा णवरि णत्थि इगिवीसं।
पुरिसं वा कम्मंसा इदरे कम्मं व बंधतियं।।७३७।।
अत्थि णवट्ठ य दुदओ दसणवसत्तं च विज्जदे एत्थ।
इदि बंधुदयप्पहुदीसुदणामे सारमादेसे।।७३८।।

अर्थ – आहारक मार्गणा में बंध-उदयस्थान नपुंसकवेदवत् हैं, विशेष इतना :- २१ का उदयस्थान नहीं है; सत्त्वस्थान पुरुषवेदवत् हैं। अनाहारक के बंधादि तीन स्थान कार्मणकाययोगवत् हैं।।७३७।।

अर्थ – इतना विशेष है कि अनाहारक मार्गणा में अयोगी के उदयस्थान ९,८ के दो हैं; सत्त्वस्थान १०,९ के दो हैं। इस प्रकार मार्गणाओं में नामकर्म के बंध-उदय-सत्त्व का त्रिसंयोग प्रगट सारभूत कहा है।।७३८।।

आहारक मार्गणा

	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्त्वस्थान
आहारक	नपुंसकवेदवत्	२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१	पुरुषवेदवत्
अनाहारक	कार्माण काययोगवत्	२०,२१,९,८	९३,९२,९१,९०,८८,८४, ८२,८०,७९,७८,७७,१०,९

मंगलाचरण

चारुसुदंसणधरणे कुवलयसंतोसणे समत्थेण।
माधवचंदेण महावीरेणत्थेण वित्थरिदो।।७३९।।

अर्थ – चारु अर्थात् उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन को धारण करने में और पृथ्वी समूह को आनंद उपजाने में समर्थ ऐसे जो 'माधवचंद्र' और 'महावीरस्वामी', उनके द्वारा ऐसा कथन परमार्थ से विस्ताररूप किया है। यहाँ माधवचंद्र तो नेमिनाथ तीर्थंकर और महावीर वर्धमान तीर्थंकर का नाम जानना। अथवा माधवचंद्र और वीरनंदी दोनों आचार्यों के नाम जानना।।७३९।।

णवपंचोदयसत्ता तेवीसे पण्णुवीस छव्वीसे।
अट्ठचदुरट्ठवीसे णवसत्तुगुतीसतीसम्मि।।७४०।।
एगेगं इगितीसे एगे एगुदयमट्ठसत्ताणि।
उवरदबंधे दसदस उदयंसा होंति णियमेण।।७४१।।जुम्मं।।
उदयंसट्ठाणाणि य सामित्तादो दु जाणिदव्वाणि।
बंधुदयं च णिरुंभिय सत्तस्स य संभवगदीए।।१।।
तियपणछवीसबंधे इगिवीसादेक्कतीसचरिमुदया।
बाणउदी णउदिचऊ सत्तं अडवीसगे उदया।।७४२।।
पुव्वं व ण चउवीसं बाणउदिचउक्कसत्तमुगुतीसे।
तीसे पुव्वं वुदया पढमिल्लं सत्तयं सत्तं।।७४३।।जुम्मं।।
इगितीसे तीसुदओ तेणउदी सत्तयं हवे एगे।
तीसुदओ पढमचऊ सीदादिचउक्कमवि सत्तं।।७४४।।
उवरदबंधेसुदया चउपणवीसूण सव्वयं होदि।
सत्तं पढमचउक्कं सीदादीछक्कमवि होदि।।७४५।।

अर्थ – २३,२५,२६ के बंधस्थान में उदयस्थान और सत्त्वस्थान ९-५ हैं। २८ के बंधस्थान में ८-४ हैं; २९ और ३० के बंधस्थान में ९-७ हैं। ३१ के बंधस्थान में १-१ है। १ के बंधस्थान में उदयस्थान १ और सत्त्वस्थान ८ हैं। मउपरतबंधफ अर्थात् बंध रहित स्थान में उदयस्थान और सत्त्वस्थान १०-१० नियम से हैं।।७४०-७४१।।

अर्थ – २३,२५,२६ के बंधस्थानों में २१ से लेकर ३१ पर्यंत उदयस्थान नौ हैं; सत्त्वस्थान ९२ का व ९० से लेकर चार – ऐसे पाँच हैं। २८ के बंधस्थान में उदयस्थान पूर्वोक्त नौ में से २४ के बिना आठ हैं; सत्त्वस्थान ९२ से लेकर चार हैं। २९,३० के बंधस्थानों में उदयस्थान पूर्वोक्त नौ हैं; सत्त्वस्थान प्रथम(९३) से लेकर सात हैं।।७४२-७४३।।

अर्थ – ३१ के बंधस्थान में उदयस्थान ३० का है; सत्त्वस्थान ९३ का है। १ के बंधस्थान में उदयस्थान ३० का है; सत्त्वस्थान प्रथम(९३) से लेकर चार व ८० से लेकर चार – ऐसे आठ हैं।।७४४।।

अर्थ – उपरतबंध में उदयस्थान २४,२५ के बिना सब (१०) हैं; सत्त्वस्थान प्रथम(९३) से लेकर चार और ८० से लेकर छह – ऐसे दस हैं।।७४५।।

त्रिसंयोग में विशेष - एक आधार, दो आधेय

नामकर्म के बंधस्थान में उदयस्थान, सत्त्वस्थान

बंधस्थान	उदयस्थान		सत्त्वस्थान	
	स्थान	स्थान विवरण	स्थान	स्थान विवरण
२३,२५,२६	९	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१	५	९२,९०,८८,८४,८२
२८	८	" (२४ बिना)	४	९२,९१,९०,८८
२९,३०	९	२१,२४,२५,२६,२७, २८,२९,३०,३१	७	९३,९२,९१,९०, ८८,८४,८२
३१	१	३०	१	९३
१	१	३०	८	९३,९२,९१,९०, ८०,७९,७८,७७
०	१०	२०,२१,२६,२७,२८, २९,३०,३१,९,८	१०	९३,९२,९१,९०,८०, ७९,७८,७७,१०,९

वीसादिसु बंधंसा णभदु छण्णव पणपणं च छसत्तं।
छण्णव छड दुसु छद्दस अट्ठदसं छक्कछक्क णभति दुसु।।७४६।।
वीसुदये बंधो ण हि उणसीदीसत्तसत्तरी सत्तं।
इगिवीसे तेवीसप्पहुदीतीसंतया बंधा।।७४७।।

सत्तं तिणउदिपहुदीसीदंता अट्ठसत्तरी य हवे।
चउवीसे पढमतियं णववीसं तीसयं बंधो।।७४८।।
बाणउदी णउदिचऊ सत्तं पणछस्सगट्ठणववीसे।
बंधा आदिमछक्कं पढमिल्लं सत्तयं सत्तं।।७४९।।
ते णवसगसदरिजुदा आदिमछस्सीदिअट्ठसदरीहिं।
णवसत्तसत्तरीहिं सीदिचउक्केहिं सहिदाणि।।७५०।।कलावयं।।
तीसे अट्ठवि बंधो ऊणत्तीसं व होदि सत्तं तु।
इगितीसे तेवीसप्पहुदीतीसंतयं बंधो।।७५१।।
सत्तं दुणउदिणउदीतिय सीदडहंत्तरी य णवगट्ठे।
बंधो ण सीदिपहुदीसुसमविसमं सत्तमुद्दिट्ठं।।७५२।।जुम्मं।।

अर्थ - २० आदि उदयस्थानों में बंधस्थान-सत्त्वस्थान क्रम से शून्य-२, ६-९, ५-५, ६-७, ६-९, ६-८, ६-८, ६-१०, ८-१०, ६-६ और (९,८ के) दो स्थानों में शून्य-३ हैं।।७४६।।

अर्थ - २० के उदयस्थान में बंध नहीं हैं; सत्त्वस्थान ७९,७७ के दो हैं। २१ में बंधस्थान २३ से लेकर ३० के अंत तक - ऐसे छह हैं; सत्त्वस्थान ९३ से लेकर ८० के अंत तक व ७८ का - ऐसे नौ है। २४ के उदयस्थान में बंधस्थान आदि के तीन व २९,३० के दो - ऐसे पाँच हैं; सत्त्वस्थान ९२ व ९० से लेकर चार - ऐसे पाँच हैं। २५,२६,२७,२८,२९ के उदयस्थानों में बंधस्थान २३ से लेकर छह हैं; सत्त्वस्थान क्रम से २५ में आदि के सात हैं, (२६ में) पहले सात व ७९,७७ के दो - ऐसे नौ हैं, (२७ में) आदि के छह व ८०,७८ के दो - ऐसे आठ हैं, (२८ में) आदि के छह व ७९,७७ के दो - ऐस आठ हैं, (२९ में) आदि के छह व ८० से लेकर चार - ऐसे दस हैं।।७४७-७५०।।

अर्थ - ३० के उदयस्थान में बंधस्थान आठ; सत्त्वस्थान २९वत् दस हैं। ३१ के उदयस्थान में बंधस्थान २३ से लेकर ३० के स्थान तक छह हैं; सत्त्वस्थान ९२ का व ९० से लेकर तीन व ८०,७८ के दो - ऐसे छह हैं। ९,८ के उदयस्थानों में बंधस्थान नहीं हैं, सत्त्वस्थान ८० से लेकर छह स्थानों में से समरूप तीन तो ९ में तथा विषमरूप तीन आठ में यथाक्रम से कहे गये है।।७५१-७५२।।

नामकर्म के उदयस्थान में बंधस्थान, सत्त्वस्थान

उदयस्थान	बंधस्थान		सत्त्वस्थान	
	स्थान	स्थान विवरण	स्थान	स्थान विवरण
२०	०		२	७९,७७
२१	६	२३,२५,२६,२८,२९,३०	९	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२,८०,७८
२४	५	२३,२५,२६,२९,३०	५	९२,९०,८८,८४,८२
२५	६	२३,२५,२६,२८,२९,३०	७	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२

२६	६	”	९	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२,७९,७७
२७	६	”	८	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८०,७८
२८	६	”	८	९३,९२,९१,९०,८८,८४,७९,७७
२९	६	”	१०	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८०,७९,७८,७७
३०	८	२३,२५,२६,२८, २९,३०,३१,१	१०	”
३१	६	२३,२५,२६,२८,२९,३०	६	९२,९०,८८,८४,८०,७८
९	०		३	८०,७८,१०
८	०		३	७९,७७,९

सत्ते बंधुदया चदुसग सगणव चतुसगं च सगणवयं।
छण्णव पणणव पणचदु चदुसिगिछक्कं णभेक्क सुण्णेगं।।७५३।।
तेणउदीए बंधा उगुतीसादीचउक्कमुदओ दु।
इगिपणछस्सगअट्ठयणववीसं तीसयं णेयं।।७५४।।
बाणउदीए बंधा इगितीसूणाणि अट्ठठाणाणि।
इगिवीसादीएक्कत्तीसंता उदयठाणाणि।।७५५।।
इगिणवदीए बंधा अडवीसत्तिदयमेक्कयं चुदओ।
तेणउदिं वा णउदीबंधा बाणउदियं व हवे।।७५६।।
चरिमदुवीसूणुदयो तिसु दुसु बंधा छतुरियहीणं च।
बासीदी बंधुदया पुव्वं विगिवीसचत्तारि।।७५७।। जुम्मं।।
सीदादिचउसु बंधा जसकित्ती समपदे हवे उदओ।
इगिसगणवधियवीसं तीसेक्कत्तीसणवगं च।।७५८।।
वीसं छडणववीसं तीसं चट्ठं च विसमठाणुदया।
दसणवगे ण हि बंधो कमेण णवअट्ठयं उदओ।।७५९।।जुम्मं।।

अर्थ – सत्त्वस्थानों में बंध-उदयस्थान क्रम से ४-७, ७-९, ४-७, ७-९, ६-९, ५-९, ५-४, चार सत्त्वस्थानों में १-६, आगे शून्य-१, शून्य-१ हैं।।७५३।।

अर्थ – ९३ के सत्त्वस्थान में बंधस्थान २९ से लेकर चार हैं; उदयस्थान २१,२५,२६,२७,२८,२९,३० के हैं।।७५४।।

अर्थ – ९२ के सत्त्वस्थान में बंधस्थान ३१ के बिना आठ अर्थात् सात हैं; उदयस्थान २१ से लेकर ३१ पर्यंत हैं।।७५५।।

अर्थ – ९१ के सत्त्वस्थान में बंधस्थान २८ से लेकर तीन व १ का – ऐसे चार हैं; उदयस्थान ९३वत् सात हैं। ९० के सत्त्वस्थान में बंधस्थान ९२वत् सात हैं; उदयस्थान अंत के दो व २० का

– इन तीन के बिना नौ हैं। ८८,८४ के सत्त्वस्थान में उदयस्थान ये ही नौ हैं, ८८ में बंधस्थान २३ से लेकर छह हैं, ८४ में चौथे(२८) के बिना २३ से लेकर छह अर्थात् पाँच हैं। ८२ के सत्त्वस्थान में बंधस्थान पूर्वोक्त पाँच; उदयस्थान २१ से लेकर चार हैं।।७५६-७५७।।

अर्थ – ८० आदि चार(८०,७९,७८,७७) सत्त्वस्थानों में बंधस्थान एक यश:कीर्ति का ही हैं। उदयस्थान समरूप ८०,७८ के सत्त्वस्थानों में २१,२७,२९,३०,३१,९ के छह हैं व विषमरूप ७९,७७ के सत्त्वस्थानों में २०,२६,२८,२९,३०,८ के छह उदयस्थान हैं। १०,९ के सत्त्वस्थानों में बंधस्थान नहीं हैं, उदयस्थान क्रम से ९ का और ८ का है।।७५८-७५९।।

नामकर्म के सत्त्वस्थान में बंधस्थान, उदयस्थान

सत्त्वस्थान	बंधस्थान		उदयस्थान	
	स्थान	स्थान विवरण	स्थान	स्थान विवरण
९३	४	२९,३०,३१,१	७	२१,२५,२६,२७,२८,२९,३०
९२	७	२३,२५,२६,२८,२९,३०,१	९	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१
९१	४	२८,२९,३०,१	७	२१,२५,२६,२७,२८,२९,३०
९०	७	२३,२५,२६,२८,२९,३०,१	९	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१
८८	६	२३,२५,२६,२८,२९,३०	९	"
८४	५	२३,२५,२६,२९,३०	९	"
८२	५	"	४	२१,२४,२५,२६
८०,७८	१	१	६	२१,२७,२९,३०,३१,९
७९,७७	१	१	६	२०,२६,२८,२९,३०,८
१०	०		१	९
९	०		१	८

तेवीसबंधगे इगिवीसणवुदयेसु आदिमचउक्के।
बाणउदिणउदिअडचउबासीदी सत्तठाणाणि।।७६०।।
तेणुवरिमपंचुदये ते चेवंसा विवज्ज बासीदिं।
एवं पणछव्वीसे अडवीसे एक्कवीसुदये।।७६१।।
बाणउदिणउदिसत्तं एवं पणुवीसयादिपंचुदये।
पणसगवीसे णउदी विगुव्वणे अत्थिणाहारे।।७६२।।विसेसयं।।
तेण णभिगितीसुदये बाणउदिचउक्कमेक्कतीसुदये।
णवरि ण इगिणउदिपदं णववीसिगिवीसबंधुदये।।७६३।।

तेणवदिसत्तसत्तं एवं पणछक्कवीसठाणुदये।
चउवीसे बाणउदी णउदिचउक्कं च सत्तपदं।।७६४।।जुम्मं।।
सगवीसचउक्कुदये तेणउदीछक्कमेवमिगितीसे।
तिगिणउदी ण हि तीसे इगिपणसगअट्ठणवयवी सुदये।।७६५।।
तेणउदिछक्कसत्तं इगिपणवीसेसु अत्थि बासीदी।
तेण छचउवीसुदये बाणउदी णउदिचउसत्तं।।७६६।।जुम्मं।।
एवं खिगितीसे ण हि बासीदी एक्कतीसबंधेण।
तीसुदये तेणउदी सत्तपदं एक्कमेव हवे।।७६७।।
इगिबंधट्ठाणेण दु तीसट्ठाणोदये णिरुंधम्मि।
पढमचऊसीदिचऊ सत्तट्ठाणाणि णामस्स।।७६८।।

अर्थ – २३ के बंधस्थान में २१ से लेकर नौ उदयस्थान हैं, उनमें से आदि के चार उदयस्थानों में सत्त्वस्थान ९२,९०,८८,८४,८२ के पाँच हैं। और (उसी २३ के बंध सहित) ऊपर के पाँच उदयस्थानों में सत्त्वस्थान ८२ के बिना चार ही हैं। २५,२६ के बंध सहित उदयस्थानों में सत्त्व पूर्वोक्त (२३वत्) है। २८ के बंध सहित २१ के उदयस्थान में ९२,९० का सत्त्वस्थान हैं। इसी प्रकार २८ के बंध सहित २५ से लेकर पाँच उदयस्थानों में सत्त्वस्थान हैं, विशेष इतना :– २५,२७ के उदयस्थान में ९० का सत्त्वस्थान है वह वैक्रियिक की अपेक्षा से है, आहारक की अपेक्षा से नहीं है।।७६०–७६२।।

अर्थ – उस २८ के बंध सहित ३०,३१ के उदयस्थानों में ९२ से लेकर चार सत्त्वस्थान है। विशेष इतना :– ३१ के उदयस्थान में ९१ का सत्त्वस्थान नहीं है। २९ के बंध सहित २१ के उदयस्थान में ९३ से लेकर सात सत्त्वस्थान है। इसी प्रकार पूर्वोक्त बंध सहित २५,२६ के उदय में सत्त्वस्थान है। (२९ के बंध सहित) २४ के उदय में ९२ व ९० से लेकर चार सत्त्वस्थान है।।७६३–७६४।।

अर्थ – २९ के बंध सहित २७ से लेकर चार स्थानों के उदय में सत्त्वस्थान ९३ से लेकर छह सत्त्वस्थान है। इसी प्रकार ३१ के उदय में भी है, विशेष इतना :– इस स्थान में ९३,९१ के सत्त्वस्थान नहीं है। ३० के बंध सहित २१,२५,२७,२८,२९ के उदय में ९३ से लेकर छह सत्त्वस्थान है, विशेष इतना :– ८२ के स्थान का सत्त्व २१,२५ के उदय में ही होता है अन्य स्थान में नहीं। ३० के बंध सहित २४,२६ के उदय में ९२ व ९० से लेकर चार – ऐसे पाँच सत्त्वस्थान है।।७६५–७६६।।

अर्थ – ३० के बंध सहित ३०,३१ के उदय में सत्त्वस्थान २४ के उदयवत् है, विशेष इतना :– यहाँ पर ८२ का सत्त्वस्थान नहीं है। ३१ के बंध सहित ३० के उदय में सत्त्वस्थान एक ९३ का ही है।।७६७।।

अर्थ – १ के बंध सहित ३० के उदय में प्रथम चार (९३ से लेकर चार) और ८० से लेकर चार सत्त्वस्थान नामकर्म के कहे गये हैं।।७६८।।

त्रिसंयोग - दो आधार, एक आधेय

नामकर्म के बंधस्थान, उदयस्थान में सत्त्वस्थान

बंधस्थान	उदयस्थान	सत्त्वस्थान	
		कुल स्थान	स्थान विवरण
२३,२५,२६	२१,२४,२५,२६	५	९२,९०,८८,८४,८२
"	२७,२८,२९,३०,३१	४	९२,९०,८८,८४
२८	२१	२	९२,९०
२८	२५,२६,२७,२८,२९	२	९२,९०*
२८	३०	४	९२,९१,९०,८८
२८	३१	३	९२,९०,८८
२९	२१,२५,२६	७	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२
२९	२४	५	९२,९०,८८,८४,८२
२९	२७,२८,२९,३०	६	९३,९२,९१,९०,८८,८४
२९	३१	४	९२,९०,८८,८४
३०	२१,२५	७	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२
३०	२४,२६	५	९२,९०,८८,८४,८२
३०	२७,२८,२९	६	९३,९२,९१,९०,८८,८४
३०	३०,३१	४	९२,९०,८८,८४
३१	३०	१	९३
१	३०	८	९३,९२,९१,९०,८०,७९,७८,७७

* २५ व २७ प्रकृति के उदय में ९० प्रकृतिक सत्त्व वैक्रियिक शरीर की अपेक्षा हैं, आहारक शरीर की अपेक्षा नहीं।

तेवीसबंधठाणे दुखणउदडचदुरसीदि सत्तपदे।
इगिवीसादिणउदओ बासीदे एक्कवीसचऊ।।७६९।।
एवं सपणछव्वीसे अडवीसे बंधगे दुणउदंसे।
इगिवीसादिणवुदया चउवीसङ्गणपरिहीणा।।७७०।।
इगिणउदीए तीसं उदओ णउदीए तिरियससण्णिं वा।
अडसीदीए तीसदु णववीसे बंधगे तिणउदीए।।७७१।।

इगिवीसादट्ठुदओ चउवीसूणो दुणउदिणउदितिये।
इगिवीसणविगिणउदे णिरयं व छवीसतीसधिया।।७७२।।
बासीदे इगिचउपणछव्वीसा तीसबंध तिगिणउदी।
सुरमिव दुणउदिणउदी चउसुदओ ऊणतीसं वा।।७७३।।कलावयं।।
इगितीसबंधठाणे तेणउदे तीसमेव उदयपदं।
इगिबंध तिणउदिचऊ सीदिचउक्केवि तीसुदओ।।७७४।।

अर्थ - २३ के बंध सहित ९२,९०,८८,८४ के सत्त्वस्थानों में २१ से लेकर नौ उदयस्थान हैं; और ८२ के सत्त्वस्थान में २१ से लेकर चार उदयस्थान हैं।।७६९।।

अर्थ - २५,२६ के बंध सहित भी सत्त्वस्थान और उदयस्थान २३वत् हैं। २८ के बंध सहित ९२ के सत्त्वस्थान में २१ से लेकर नौ उदयस्थानों में २४ के बिना आठ उदयस्थान हैं। ९१ के सत्त्वस्थान में ३० का उदयस्थान है; ९० के सत्त्वस्थान में संज्ञी तिर्यंचवत् २१ आदि उदयस्थान हैं; ८८ के सत्त्वस्थान में ३०,३१ के उदयस्थान हैं। २९ के बंध सहित ९३ के सत्त्वस्थान में २१ से लेकर आठ उदयस्थानों में २४ के बिना सात उदयस्थान हैं। ९२ का व ९० से लेकर तीन सत्त्वस्थानों में २१ से लेकर नौ उदयस्थान है; ९१ के सत्त्वस्थान में नरकगतिवत् (पाँच) व २६,३० के दो - ऐसे सात उदयस्थान हैं; ८२ के सत्त्वस्थान में २१,२४,२५,२६ के उदयस्थान हैं। ३० के बंध सहित ९३,९१ के सत्त्वस्थानों में देवगतिवत् (पाँच) उदयस्थान हैं; ९२ का व ९० से लेकर चार सत्त्वस्थानों में २९ के बंधवत् नौ उदयस्थान हैं। ३० के बंध सहित ८२ के सत्त्वस्थान में २९ के बंधवत् चार उदयस्थान हैं।।७७०-७७३।।

अर्थ - ३१ के बंध सहित ९३ के सत्त्वस्थान में ३० का ही उदयस्थान है। १ के बंध सहित ९३ से लेकर चार व ८० से लेकर चार के सत्त्वस्थानों में भी ३० का ही उदयस्थान है।।७७४।।

नामकर्म के बंधस्थान, सत्त्वस्थान में उदयस्थान

बंधस्थान	सत्त्वस्थान	उदयस्थान	
		स्थान	स्थान विवरण
२३,२५,२६	९२,९०,८८,८४	९	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१
"	८२	४	२१,२४,२५,२६
२८	९२	८	२१,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१
२८	९१	१	३०
२८	९०	६	२१,२६,२८,२९,३०,३१
२८	८८	२	३०,३१
२९	९३	७	२१,२५,२६,२७,२८,२९,३०

२९,३०	९२,९०,८८,८४	९	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१
२९	९१	७	२१,२५,२६,२७,२८,२९,३०
२९,३०	८२	४	२१,२४,२५,२६
३०	९३,९१	५	२१,२५,२७,२८,२९
३१	९३	१	३०
१	९३,९२,९१,९०,८०,७९,७८,७७	१	३०

इगिवीसट्ठाणुदये तिगिणउदे णवयवीसदुगबंधो।
तेण दुखणउदिसत्ते आदिमछक्कं हवे बंधो।।७७५।।
एवमडसीदितिदए ण हि अडवीसं पुणोवि चउवीसे।
दुखणउदडसीदितिए सत्ते पुव्वं व बन्धपदं।।७७६।।जुम्मं।
पणवीसे तिगिणउदे एगुणतीसंदुगं दुणउदीए।
आदिमछक्कं बंधो णउदिचउक्केवि णऽडवीसं।।७७७।।
छव्वीसे तिगिणउदे उणतीसं बंध दुगखणउदीए।
आदिमछक्कं एवं अडसीदितिए ण अडवीसं।।७७८।।
सगवीसे तिगिणउदे णववीसदुबंधयं दुणउदीए।
आदिमछण्णउदितिए एयं अडवीसयं णत्थि।।७७९।।
अडवीसे तिगिणउदे उणतीसदु दुजुदणउदिणउदितिये।
बंधो सगवीसं वा णउदीए अत्थि णऽडवीसं।।७८०।।
अडवीसमिवुणतीसे तीसे तेणउदिसत्तगे बंधो।
णववीसेक्कत्तीसं इगिणउदी अड्डवीसदुगं।।७८१।।
तेण दुणउदे णउदे अडसीदे बंधमादिमं छक्कं।
चुलसीदेवि य एवं णवरि ण अडवीसबंधपदं।।७८२।। जुम्मं।
तीसुदयं विगितीसे सजोग्गबाणउदिणउदितियसत्ते।
उवसंतचउक्कुदये सत्ते बंधस्स ण वियारो।।७८३।।

अर्थ – २१ के उदय सहित ९३,९१ के सत्त्वस्थानों में २९,३० के दो बंधस्थान हैं; ९२,९० के सत्त्वस्थान में आदि के छह बंधस्थान हैं। इसी प्रकार ८८ से लेकर तीन सत्त्वस्थानों में पूर्वोक्त छह बंधस्थानों में से २८ का बंधस्थान नहीं हैं, शेष पाँच बंधस्थान हैं। २४ के उदय सहित ९२,९० व ८८ से लेकर तीन सत्त्वस्थानों में भी पूर्वोक्त पाँच ही बंधस्थान हैं।।७७५-७७६।।

अर्थ – २५ के उदय सहित ९३,९१ के सत्त्वस्थानों में २९,३० के दो बंधस्थान हैं; ९२ के सत्त्वस्थान में आदि के छह बंधस्थान हैं; ९० से लेकर चार सत्त्वस्थानों में पूर्वोक्त छह में २८ के बिना पाँच बंधस्थान हैं।।७७७।।

अर्थ – २६ के उदय सहित ९३,९१ के सत्त्वस्थानों में २९ का ही बंधस्थान है; ९२,९० के सत्त्वस्थानों में आदि के छह बंधस्थान हैं; इसी प्रकार ८८ से लेकर तीन सत्त्वस्थानों में पूर्वोक्त छह स्थान में २८ के बिना पाँच बंधस्थान हैं।।७७८।।

अर्थ – २७ के उदय सहित ९३,९१ के सत्त्वस्थानों में २९,३० के दो बंधस्थान हैं; ९२ के सत्त्वस्थान में आदि के छह बंधस्थान है; ९० से लेकर तीन सत्त्वस्थानों में पूर्वोक्त छह स्थान में २८ के बिना पाँच बंधस्थान हैं।।७७९।।

अर्थ – २८ के उदय सहित ९३,९१ के सत्त्वस्थानों में २९,३० के दो बंधस्थान हैं; ९२ का व ९० से लेकर तीन सत्त्वस्थानों में २७ के उदयवत् बंधस्थान हैं, विशेष इतना :- ९० के सत्त्वस्थान में २८ का बंधस्थान नहीं है (गाथा ७५२ की टीका अनुसार यहाँ २८ का बंधस्थान होना चाहिये)।।७८०।।

अर्थ – २९ के उदय सहित ९३,९२,९१,९०,८८,८४ के सत्त्वस्थानों में २८ के उदयवत् बंधस्थान हैं। ३० के उदय सहित ९३ के सत्त्वस्थान में २९,३० के दो बंधस्थान हैं; ९१ के सत्त्वस्थान में (नरक गमन को सन्मुख तीर्थंकर के सत्त्ववाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य के) २८,२९ के बंधस्थान हैं। ९२,९०,८८ के सत्त्वस्थानों में आदि के छह बंधस्थान हैं; ८४ के सत्त्वस्थान में पूर्वोक्त छह बंस्थान में २८ के बिना पाँच बंधस्थान हैं।।७८१-७८२।।

अर्थ – ३१ के उदय सहित अपने-अपने योग्य ९२ के और ९० से लेकर तीन सत्त्वस्थानों में ३० के उदयवत् पाँच बंधस्थान हैं। उपशांत मोहादि चार गुणस्थानों में उदय-सत्त्व स्थान होने पर भी बंधस्थान का विचार नहीं किया गया है; (क्योंकि उनमें बंध का अभाव है)।।७८३।।

नामकर्म के उदयस्थान, सत्त्वस्थान में बंधस्थान

उदयस्थान	सत्त्वस्थान	बंधस्थान	
		स्थान	स्थान विवरण
२१	९३,९१	२	२९,३०
२१	९२,९०	६	२३,२५,२६,२८,२९,३०
२१	८८,८४,८२	५	२३,२५,२६,२९,३०
२४	९२,९०,८८,८४,८२	५	"
२५	९३,९१	२	२९,३०
२५	९२	६	२३,२५,२६,२८,२९,३०
२५	९०,८८,८४,८२	५	२३,२५,२६,२९,३०
२६	९३,९१	१	२९
२६	९२,९०	६	२३,२५,२६,२८,२९,३०
२६	८८,८४,८२	५	२३,२५,२६,२९,३०

२७,२८,२९	९३,९१	२	२९,३०
२७,२८,२९	९२	६	२३,२५,२६,२८,२९,३०
२७	९०,८८,८४	५	२३,२५,२६,२९,३०
२८,२९	९०	६	२३,२५,२६,२८,२९,३०
२८,२९	८८,८४	५	२३,२५,२६,२९,३०
३०	९३	२	२९,३१
३०	९१	२	२८,२९
३०,३१	९२,९०,८८	६	२३,२५,२६,२८,२९,३०
३०,३१	८४	५	२३,२५,२६,२९,३०
३०	९३,९२,९१,९०	0	0 –उपशांतमोह गुणस्थान
३०	८०,७९,७८,७७	0	0 – क्षीणमोह गुणस्थान
३०	७९,७७	0	0 – सयोगी गुणस्थान
३१	८०,७८		
८	७९,७७,९	0	0 – अयोगी गुणस्थान
९	८०,७८,१०		

णामस्स य बंधादिसु दुतिसंजोगा परूविदा एवं।
सुदवणवसंतगुणगणसायरचंदेण सम्मदिणा।।७८४।।

अर्थ – इस तरह नाम कर्म के बंध, उदय, सत्त्व स्थानों में द्विसंयोगी वा त्रिसंयोगी प्ररूपणा की है। किसने की है? श्रुत जो जैन सिध्दांत वही हुआ वन, उसको प्रफुल्लित करने के लिये वसंतऋतु समान और गुणों का गण अर्थात् समूह वही हुआ सागर अर्थात् समुद्र उसको बढाने के लिये चन्द्रमा समान ऐसे जो भले ज्ञान के धारक सन्मति–वर्द्धमान स्वामी उन्होंने प्ररूपणा की है।।७८४।।

अधिकार ६ - आस्रव अधिकार

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
मंगलाचरण पूर्वक कथन प्रतिज्ञा	७८५	१	३९३
मूल आस्रव (प्रत्यय) एवं उसके भेद	७८६	१	३९३
गुणस्थानों में मूल व उत्तर प्रत्यय	७८७-७९०	४	३९४
आस्रव के अधिकार - स्थान, स्थान प्रकार, कूट प्रकार, कूटोच्चारणविधान व भंग	७९१-७९९	९	३९७
आठों कर्मों के आस्रव के कारण	८००-८१०	११	४०८
कुल गाथाएँ	**७८५-८१०**	**२६**	

मंगलाचरण

णमिऊण अभयणंदि सुदसायरपारगिंदणंदिगुरुं।
वरवीरणंदिणाहं पयडीणं पच्चयं वोच्छं।।७८५।।

अर्थ - अभयनंदि नामक मुनीश्वर, बहुशास्त्र समुद्र के पारगामी इन्द्रनंदि नामक गुरू तथा उत्कृष्ट वीरनंदि नामक स्वामी - इन अपने गुरूओं को नमस्कार करके कर्म प्रकृतियों के प्रत्यय अर्थात् कारण ऐसे आस्रव उसको कहूँगा।७८५।।

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य आसवा होंति।
पण बारस पणुवीसं पण्णरसा होंति तब्भेया।।७८६।।

अर्थ - मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग - ये (चार मूल) आस्रव हैं। इनके भेद क्रम से ५, १२, २५ और १५ होते हैं।।७८६।।

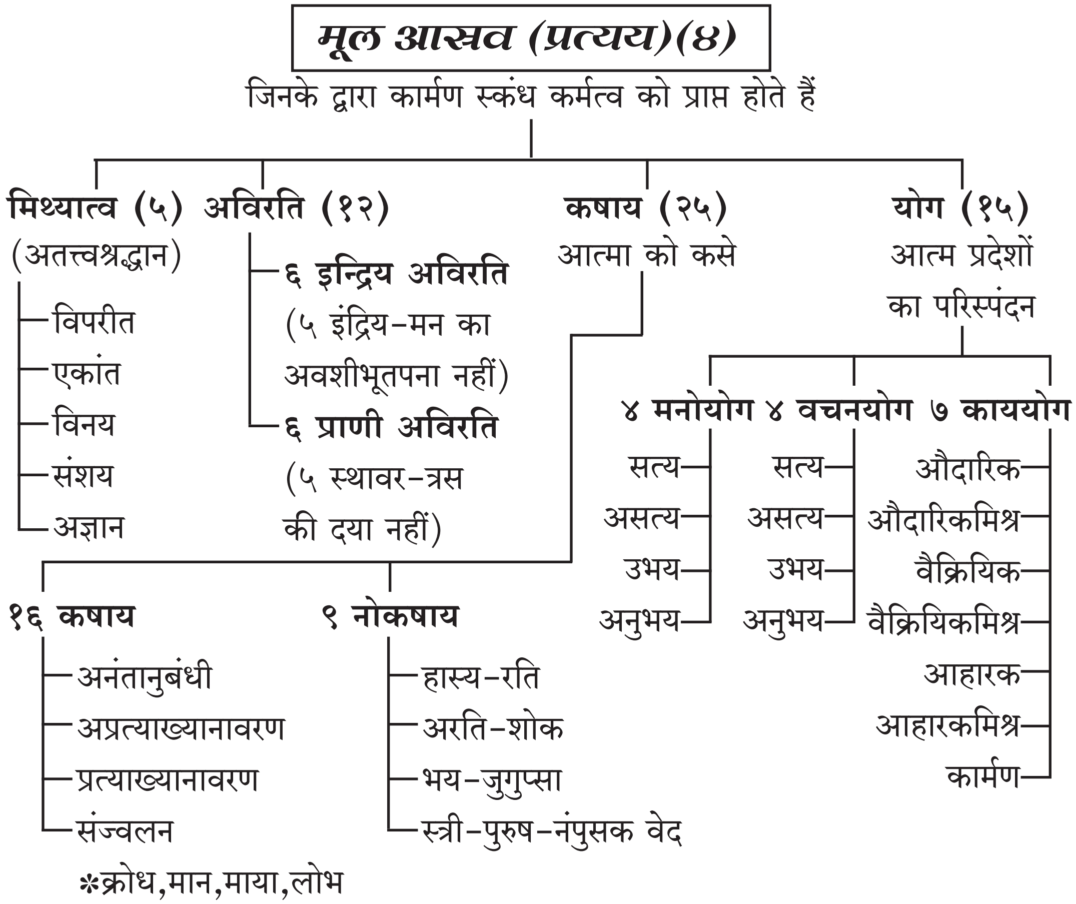

चदुपच्चइगो बंधो पढमे णंतरतिगे तिपच्चइगो।
मिस्सगबिदियं उवरिमदुगं च देसेक्कदेसम्मि।।७८७।।
उवरिल्लपंचये पुण दुपच्चया जोगपच्चओ तिण्हं।
सामण्णपच्चया खलु अट्ठण्हं होंति कम्माणं।।७८८।।

अर्थ - प्रथम (मिथ्यात्व) में चारों प्रत्ययों से बंध है। उसके बाद (सासादनादि) तीन में (मिथ्यात्व बिना) तीन प्रत्ययों से है। देशसंयत में दूसरा अविरत प्रत्यय विरतिकर मिला है व आगे के दो प्रत्यय पूर्ण ही हैं-ऐसे तीन प्रत्यय है।।७८७।।

अर्थ - ऊपर के पाँच (गुणस्थानों) में दो प्रत्ययों से बंध है। इससे आगे तीन गुणस्थानों में १ योग प्रत्यय से ही बंध है। इस तरह निश्चय से ८ कर्मों के ये सामान्य प्रत्यय होते हैं।।७८८।।

गुणस्थानों में मूल प्रत्यय

गुणस्थान	मूल प्रत्ययों की संख्या	मूल प्रत्ययों के नाम
१	४	मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग
२ से ४	३	अविरति, कषाय, योग
५	३	विरति से मिश्ररुप अविरति, कषाय, योग
६ से १०	२	कषाय, योग
११ से १३	१	योग
१४	०	–

पणवण्णा पण्णासा तिदाल छादाल सत्ततीसा य।
चदुवीसा बावीसा बावीसमपुव्वकरणोत्ति।।७८९।।
थूले सोलसपहुदी एगूणं जाव होदि दसठाणं।
सुहुमादिसु दस णवयं णवयं जोगिम्मि सत्तेव।।७९०।।जुम्मं।

अर्थ – मिथ्यात्वादि में ५५, ५०, ४३, ४६, ३७, २४, २२, २२ प्रत्यय अपूर्वकरण तक हैं। स्थूल (अनिवृत्तिकरण) में १६ को आदि लेकर एक-एक कम होते-होते १० भेद तक हैं। सूक्ष्म सांपरायादि में १०, ९, ९ प्रत्यय हैं। सयोगी में केवल ७ ही प्रत्यय हैं। अयोगी के प्रत्यय का अभाव है।।७८९-७९०।।

गुणस्थानों में उत्तरप्रत्यय

गुणस्थान	प्रत्यय अभाव	अनुदय प्रत्यय विवरण	प्रत्यय	व्युच्छित्ति प्रत्यय	
				संख्या	विवरण
१	२	आहारक,आहारक मिश्र	५५	५	५ मिथ्यात्व
२	७	२ + ५	५०	४	४ अनंतानुबंधी कषाय
३	१४	७+४+३(वैक्रियिकमिश्र, औदारिकमिश्र, कार्मण)	४३	०	–
४	११	१४–३ (वैक्रियिकमिश्र, औदारिकमिश्र, कार्मण)	४६	९	४ अप्रत्याख्यानावरण कषाय, वैक्रियिकद्विक, कार्मण, औदारिकमिश्र, त्रसहिंसा
५	२०	११ + ९	३७	१५	४ प्रत्याख्यानावरण कषाय, ११ अविरति
६	३३	२०+१५–२(आहारक, आहारकमिश्र)	२४	२	आहारक–आहारकमिश्र काययोग
७	३५	३३ + २	२२	०	
८	३५	३५ – ०	२२	६	हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा
९	४१	३५ + ६	१६	१,१,१, १,१,१	१–१ करके ३ वेद १–१ करके ३ कषाय
१०	४७	४१ + ६	१०	१	संज्वलन सूक्ष्म लोभ
११	४८	४७ + १	९	०	–
१२	४८	४८ – ०	९	४	असत्य–उभय मनोयोग, असत्य–उभय वचनयोग
१३	५०	४८ + ४ –२ (औदारिक मिश्र,कार्मण)	७ (उपचार से)	७	सत्य–अनुभय मनोयोग, सत्य–अनुभय वचनयोग, औदारिक, औदारिक मिश्र, कार्मण
१४	५७	सर्व	०	०	

अवरादीणं ठाणं ठाणपयारा पयारकूडा य।
कूडुच्चारणभंगा पंचविहा होंति इगिसमये।।७९१।।

अर्थ – जघन्य मध्यम उत्कृष्ट स्थान, स्थान प्रकार, कूटप्रकार, कूटोच्चारण और भंग – ऐसे एक समय में प्रत्ययों के पाँच प्रकार हैं।।७९१।।

आस्रव (प्रत्यय) के अधिकार

- **स्थान** ↓ एक जीव के एक काल में पाये जानेवाले प्रत्ययों का समूह
  - जघन्य
  - मध्यम
  - उत्कृष्ट
- **स्थान प्रकार** ↓ स्थान के कितने-कितने प्रकार
- **कूट प्रकार** ↓ भय-जुगुप्सा आदि के कारण प्रकार (कूट आकार रचना)
- **कूटोच्चारणविधान** ↓ अक्षसंचार द्वारा भंग निकालना
- **भंग**

दस अट्ठारस दसयं सत्तर णव सोलसं च दोण्हंपि।
अट्ठ य चोद्दस पणयं सत्त तिये दुति दुगेगमेगमदो।।७९२।।

अर्थ – (एक जीव के एक काल में संभवते प्रत्ययों के समूह को स्थान कहते हैं।) यह स्थान मिथ्यात्वादि में क्रम से जघन्य १०, उत्कृष्ट १८ हैं; (सासादन में) जघन्य १०, उत्कृष्ट १७; (मिश्र और अविरत इन दो में) जघन्य ९, उत्कृष्ट १६; (देशसंयत में) जघन्य ८, उत्कृष्ट १४; प्रमत्तादि तीन में जघन्य ५, उत्कृष्ट ७; अनिवृत्तिकरण में जघन्य २, उत्कृष्ट ३; सूक्ष्म सांपराय में २ का एक ही स्थान है (यहाँ मध्यम उत्कृष्ट भेद नहीं हैं)। (आगे उपशांतमोहादि में भी) एक का ही स्थान है; (अयोगी के शून्य है)।।७९२।।

१४ गुणस्थानों में जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट प्रत्यय स्थान

गुणस्थान	१	२	३, ४	५	६ से ८	९	१०	११ से १३	१४
उत्कृष्ट	१८	१७	१६	१४	७	३			
मध्यम	१७ से ११	१६ से ११	१५ से १०	१३ से ९	६				
जघन्य	१०	१०	९	८	५	२	२	१	

एक्कं च तिण्णि पंच य हेट्ठुवरीदो दु मज्झिमे छक्कं।
मिच्छे ठाणपयारा इगिदुगमिदरेसु तिण्णि देसोत्ति।।७९३।।

अर्थ – मिथ्यात्व में ९ स्थान कहे – उनमें ऊपर-नीचे के तीन युगल स्थानों में १, ३, ५ प्रकार हैं। मध्य के तीन स्थानों के ६-६ प्रकार हैं। सासादनादि देशसंयत पर्यंत आदि के और अंत के दो युगल स्थानों के क्रम से १-२ प्रकार हैं, मध्य स्थान के ३-३ प्रकार हैं। (आगे प्रमत्तादि गुणस्थानों के सर्व स्थानों का एक-एक ही प्रकार है)।।७९३।।

१४ गुणस्थानों में प्रत्यय स्थान प्रकार

गुणस्थान	प्रत्यय स्थान एवं कूट प्रकार संख्या									
१	स्थान	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
	कूट प्रकार	१	३	५	६	६	६	५	३	१
२	स्थान	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	
	कूट प्रकार	१	२	३	३	३	३	२	१	
३,४	स्थान	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	
	कूट प्रकार	१	२	३	३	३	३	२	१	
५	स्थान	८	९	१०	११	१२	१३	१४		
	कूट प्रकार	१	२	३	३	३	२	१		
६ से ८	स्थान	५	६	७						
	कूट प्रकार	१	१	१						
९	स्थान	२	३							
	कूट प्रकार	१	१							
१०	स्थान	२								
	कूट प्रकार	१								
११ से १३	स्थान	१								
	कूट प्रकार	१								

भयदुगरहियं पढमं एक्कदरजुदं दुसहियमिदि तिण्णं।
सामण्णा तियकूडा मिच्छा अणहीणतिण्णिवि य।।७९४।।

अर्थ – भयद्विक रहित पहला कूट, भय-जुगुप्सा इन दोनों में से कोई एक सहित दूसरा कूट और दोनों सहित तीसरा कूट – ऐसे ३ कूट सामान्य हैं। अनंतानुबंधी का विसंयोजन करने वाले मिथ्यादृष्टि के अनंतानुबंधी कषाय रहित ३ कूट है।।७९४।।

१४ गुणस्थानों में प्रत्ययों के कूट प्रकार

→

भय-जुगुप्सा रहित प्रथम कूट		भय अथवा जुगुप्सा सहित दूसरा कूट		भय, जुगुप्सा सहित तीसरा कूट	
-	०	भय/जुगुप्सा	१	भय, जुगुप्सा	२
योग	१५	योग	१५	योग	१५
हास्य-रति/शोक-अरति	२	हास्य-रति/शोक-अरति	२	हास्य-रति/शोक-अरति	२
वेद	३	वेद	३	वेद	३
कषाय	१६	कषाय	१६	कषाय	१६
पृथ्वीकायादि	६	पृथ्वीकायादि	६	पृथ्वीकायादि	६
इन्द्रिय व मन	६	इन्द्रिय व मन	६	इन्द्रिय व मन	६
मिथ्यात्व	५	मिथ्यात्व	५	मिथ्यात्व	५
अनंतानुबंधी सहित मिथ्यात्व के कूट (१३ योग)					
०	०	१	१	२	२
१११११११११११११	१	१११११११११११११	१	१११११११११११११	१
२ २	२	२ २	२	२ २	२
१ १ १	१	१ १ १	१	१ १ १	१
४ ४ ४ ४	४	४ ४ ४ ४	४	४ ४ ४ ४	४
१ २ ३ ४ ५ ६	१से६	१ २ ३ ४ ५ ६	१से६	१ २ ३ ४ ५ ६	१से६
१ १ १ १ १ १	१	१ १ १ १ १ १	१	१ १ १ १ १ १	१
१ १ १ १ १	१	१ १ १ १ १	१	१ १ १ १ १	१
११ से १६		**१२ से १७**		**१३ से १८**	
अनंतानुबंधी रहित मिथ्यात्व के कूट (१० योग)					
०	०	१	१	२	२
११११११११११	१	११११११११११	१	११११११११११	१
२ २	२	२ २	२	२ २	२
१ १ १	१	१ १ १	१	१ १ १	१
३ ३ ३ ३	**३**	**३ ३ ३ ३**	**३**	**३ ३ ३ ३**	**३**
१ २ ३ ४ ५ ६	१से६	१ २ ३ ४ ५ ६	१से६	१ २ ३ ४ ५ ६	१से६
१ १ १ १ १ १	१	१ १ १ १ १ १	१	१ १ १ १ १ १	१
१ १ १ १ १	१	१ १ १ १ १	१	१ १ १ १ १	१
१० से १५		**११ से १६**		**१२ से १७**	

भय–जुगुप्सा रहित प्रथम कूट		भय अथवा जुगुप्सा सहित दूसरा कूट		भय, जुगुप्सा सहित तीसरा कूट	
सासादन (१२ योग)					
० ११११११११११११ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४ १ २ ३ ४ ५ ६ १ १ १ १ १ १	० १ २ १ ४ १से६ १	१ ११११११११११११ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४ १ २ ३ ४ ५ ६ १ १ १ १ १ १	१ १ २ १ ४ १से६ १	२ ११११११११११११ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४ १ २ ३ ४ ५ ६ १ १ १ १ १ १	२ १ २ १ ४ १से६ १
१० से १५		**११ से १६**		**१२ से १७**	
सासादन (वैक्रियिक मिश्र योग)					
० १ २ २ **१ १** ४ ४ ४ ४ १ २ ३ ४ ५ ६ १ १ १ १ १ १	० १ २ १ ४ १से६ १	१ १ २ २ **१ १** ४ ४ ४ ४ १ २ ३ ४ ५ ६ १ १ १ १ १ १	१ १ २ १ ४ १से६ १	२ १ २ २ **१ १** ४ ४ ४ ४ १ २ ३ ४ ५ ६ १ १ १ १ १ १	२ १ २ १ ४ १से६ १
१० से १५		**११ से १६**		**१२ से १७**	
मिश्र (१० योग)					
० १११११११११११ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १ २ ३ ४ ५ ६ १ १ १ १ १ १	० १ २ १ ३ १से६ १	१ १११११११११११ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १ २ ३ ४ ५ ६ १ १ १ १ १ १	१ १ २ १ ३ १से६ १	२ १११११११११११ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १ २ ३ ४ ५ ६ १ १ १ १ १ १	२ १ २ १ ३ १से६ १
९ से १४		**१० से १५**		**११ से १६**	

भय–जुगुप्सा रहित प्रथम कूट		भय अथवा जुगुप्सा सहित दूसरा कूट		भय, जुगुप्सा सहित तीसरा कूट	
असंयत (१० योग)					
०	०	१	१	२	२
११११११११११११	१	१११११११११११	१	११११११११११११	१
२ २	२	२ २	२	२ २	२
१ १ १	१	१ १ १	१	१ १ १	१
३ ३ ३ ३	३	३ ३ ३ ३	३	३ ३ ३ ३	३
१ २ ३ ४ ५ ६	१से६	१ २ ३ ४ ५ ६	१से६	१ २ ३ ४ ५ ६	१से६
१ १ १ १ १ १	१	१ १ १ १ १ १	१	१ १ १ १ १ १	१
९ से १४		**१० से १५**		**११ से १६**	
असंयत (वैक्रियिक मिश्र व कार्मण योग)					
०	०	१	१	२	२
१ १	१	१ १	१	१ १	१
२ २	२	२ २	२	२ २	२
१ १	१	**१ १**	१	**१ १**	१
३ ३ ३ ३	३	३ ३ ३ ३	३	३ ३ ३ ३	३
१ २ ३ ४ ५ ६	१से६	१ २ ३ ४ ५ ६	१से६	१ २ ३ ४ ५ ६	१से६
१ १ १ १ १ १	१	१ १ १ १ १ १	१	१ १ १ १ १ १	१
९ से १४		**१० से १५**		**११ से १६**	
असंयत (औदारिक मिश्र योग)					
०	०	१	१	२	२
१	१	१	१	१	१
२ २	२	२ २	२	२ २	२
१	१	**१**	१	**१**	१
३ ३ ३ ३	३	३ ३ ३ ३	३	३ ३ ३ ३	३
१ २ ३ ४ ५ ६	१से६	१ २ ३ ४ ५ ६	१से६	१ २ ३ ४ ५ ६	१से६
१ १ १ १ १ १	१	१ १ १ १ १ १	१	१ १ १ १ १ १	१
९ से १४		**१० से १५**		**११ से १६**	

देशसंयत (९ योग)					
०	०	१	१	२	२
१११११११११	१	१११११११११	१	१११११११११	१
२ २	२	२ २	२	२ २	२
१ १ १	१	१ १ १	१	१ १ १	१
२ २ २ २	२	२ २ २ २	२	२ २ २ २	२
१ २ ३ ४ ५	१से५	१ २ ३ ४ ५	१से५	१ २ ३ ४ ५	१से५
१ १ १ १ १ १	१	१ १ १ १ १ १	१	१ १ १ १ १ १	१
८ से १२		**९ से १३**		**१० से १४**	
प्रमत्त (९ योग)					
०	०	१	१	२	२
१११११११११	१	१११११११११	१	१११११११११	१
२ २	२	२ २	२	२ २	२
१ १ १	१	१ १ १	१	१ १ १	१
१ १ १ १	१	१ १ १ १	१	१ १ १ १	१
	५		**६**		**७**
प्रमत्त (आहारकद्विक योग)					
०	०	१	१	२	२
१ १	१	१ १	१	१ १	१
२ २	२	२ २	२	२ २	२
१	१	**१**	१	**१**	१
१ १ १ १	१	१ १ १ १	१	१ १ १ १	१
	५		**६**		**७**
अप्रमत्त व अपूर्वकरण (९ योग)					
०	०	१	१	२	२
१११११११११	१	१११११११११	१	१११११११११	१
२ २	२	२ २	२	२ २	२
१ १ १	१	१ १ १	१	१ १ १	१
१ १ १ १	१	१ १ १ १	१	१ १ १ १	१
	५		**६**		**७**

अनिवृत्तिकरण (९ योग)					
३ वेद सहित		२ वेद सहित		१ वेद सहित	
१११११११११	१	१११११११११	१	१११११११११	१
१ १ १	१	१ १	१	१	१
१ १ १ १	१	१ १ १ १	१	१ १ १ १	१

	अनिवृत्तिकरण (९ योग)							
	४ कषाय		३ कषाय		२ कषाय		बादर लोभ	
योग	१११११११११	१	१११११११११	१	१११११११११	१	१११११११११	१
कषाय	१ १ १ १	१	१ १ १	१	१ १	१	१	१

	सूक्ष्म सांपराय (९ योग)		उपशांतमोह,क्षीणमोह		सयोग केवली	
	सूक्ष्म लोभ		९ योग		७ योग	
योग	१११११११११	१	१११११११११	१	१११११११	१
कषाय	१	१				

मिच्छत्ताणण्णदरं एक्केणक्खेण एक्ककायादी।

तत्तो कसायवेददुजुगलाणेक्कं च जोगाणं।।७९५।।

अर्थ – मिथ्यात्व में से कोई १, छह इन्द्रिय में से १, इनसे संयुक्त १, २ आदि काय की हिंसा, कषायों में से १ जाति, वेदों में से १, दो युगल में से १ और चकार से पाये जानेवाले स्थान में भय और जुगुप्सा में १ या दोनों और योगों में से १(जीवकाण्डजी के गुणस्थान अधिकार में विकथादि के अक्षसंचारादि द्वारा जैसे प्रमाद के भंग किये हैं, वैसे पाँच मिथ्यात्वादि के अक्षसंचारादि द्वारा आस्रवों के भंग जानना)।।७९५।।

मिथ्यात्व गुणस्थान में अनंतानुबंधी एवं भय, जुगुप्सा रहित कूटोच्चारण विधान

सत्य मनोयोग	असत्य मनोयोग	उभय मनोयोग	अनुभय मनोयोग	सत्य वचनयोग	असत्य वचनयोग	उभय वचनयोग	अनुभय वचनयोग	औदारिक काययोग	वैक्रियिक काययोग

हास्य/रति संयुक्त	अरति/शोक संयुक्त

नपुंसकवेदी	स्त्रीवेदी	पुरुषवेदी

३ प्रकार का क्रोध	३ प्रकार का मान	३ प्रकार की माया	३ प्रकार का लोभ

स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत	रसना इन्द्रिय के वशीभूत	घ्राण इन्द्रिय के वशीभूत	चक्षु वशीभूत	कर्ण वशीभूत	मन वशीभूत
१ काय हिंसक भंग = ६	२ काय हिंसक भंग = १५	३ काय हिंसक भंग = २०	४ काय हिंसक भंग = १५	५काय हिंसक भंग = ६	६ काय हिंसक भंग = १

एकांत मिथ्यात्वी	विपरीत मिथ्यात्वी	विनय मिथ्यात्वी	संशय मिथ्यात्वी	अज्ञान मिथ्यात्वी

अणरहिदसहिदकूडे बावत्तरिसय सयाण तेणउदी।
सट्ठी धुवा हु मिच्छे भयदुगसंजोगजा अधुवा।।७९६।।
चउवीसट्ठारसयं तालं चोद्दस असीदि सोलसयं।
छण्णउदी बारसयं बत्तीसं बिसद सोल बिसदं च।।७९७।।
सोलस बिसदं कमसो धुवगुणगारा अपुव्वकरणोत्ति।
अद्धुवगुणिदे भंगा धुवभंगाणं ण भेदादो।।७९८।। जुम्मं।।
छप्पंचादेयंतं रूवुत्तरभाजिदे कमेण हदे।
लद्धं मिच्छचउक्के देसे संजोगगुणगारा।।७९९।।

अर्थ – मिथ्यात्व में मिथ्यादृष्टि के अनंतानुबंधी रहित कूटों में ७२०० भंग है, अनंतानुबंधी सहित में ९३६० हैं (दोनों के मिलाने पर १६५६० ध्रुव गुण्य हैं)। इसके सिवाय एक-एक के प्रति भय-जुगुप्सा के संबंध से ४ भंग तथा प्राणी हिंसा के ६३ भंग होते हैं (इस प्रकार ४ और ६३ अध्रुव गुणकार हैं)। सो इन ४ व ६३ का ध्रुव गुण्य के साथ पुनः परस्पर गुणा करने से सब मिलकर ४१७३१२० भंग होते हैं।।७९६।।

अर्थ – 'ध्रुव गुण्य' अपूर्वकरण तक क्रम से (मिथ्यात्व में पूर्वोक्त,) सासादन में १८२४, मिश्र में १४४०, असंयत में १६८०, देशसंयत में १२९६, प्रमत्त में २३२, अप्रमत्त में २१६, अपूर्वकरण में २१६ हैं। इनका अपने-अपने अध्रुव गुणकारों के साथ गुणा करने से उस-उस जगह के भंग होते हैं। इससे आगे केवल ध्रुव भंगों का ही भंग है, क्योंकि वहाँ भय, जुगुप्सा और अविरति का अभाव होने से अध्रुव गुणकार नहीं है।।७९७-७९८।।

अर्थ – प्राणी हिंसा के ६ तथा ५ के प्रमाण से लेकर तक संख्या रखकर क्रम से गुणा करने से तथा १ से प्रारंभ कर एक-एक अधिक आगे की संख्या परस्पर गुणा करके उसका भाग देने पर जो लब्ध हो वह मिथ्यात्वादि चार गुणस्थानों में तथा देशसंयत में प्रत्येक द्विसंयोगी आदि गुणाकार रूप भंग होते हैं।।७९९।।

प्रत्यय के भंग निकालने के लिये ध्रुव गुण्यकार

गुणस्थान		ध्रुव गुण्यकार	कुल
१	अनं. सहित	५ मिथ्यात्व × ६(५ इंद्रिय व मन) × ४ कषाय चतुष्क × ३ वेद × २ (हास्य/शोक व रति/अरति) × १३ योग	
		५ × ६ × ४ × ३ × २ × १३	=९३६०
	अनं. रहित	५ मिथ्यात्व × ६(५ इंद्रिय व मन) × ३ कषाय चतुष्क × ३ वेद × २ (हास्य/शोक व रति/अरति) × १० योग	
		५ × ६ × ३ × ३ × २ × १०	=७२००

२		६×४×२ [(३ वेद × १२ योग (१३ में से वैक्रियिक मिश्र छोडकर)) + (२ वेद (स्त्री,पुरुष) × वैक्रियिक मिश्र योग)]		
		४८ × (३६ + २) = ४८ × ३८		=१८२४
३		६ (इंद्रिय व मन)×३ कषाय चतुष्क×३ वेद×२(हास्य युगल)×१० योग		
		६ × ४ × ३ × २ × १०		=१४४०
४		६×४×२ [(३ वेद × १० योग) + (२ वेद(पु. न.) × २ योग (वै. मिश्र,कार्मण)) + (पुरुषवेद × औदारिक मिश्र योग)]		
		४८ × (३० + ४ + १) = ४८ × ३५		=१६८०
५		६ (इंद्रिय व मन)×२ कषाय चतुष्क×३ वेद×२ (हास्य युगल)×९ योग		
		६ × ४ × ३ × २ × ९		=१२९६
६		४ × २ [(३ वेद × ९ योग) + (पुरुषवेद × २ योग(आहारकद्विक)]		
		८ × (२७ + २)		= २३२
७		संज्वलन कषाय चतुष्क × ३ वेद × २ (हास्य युगल) × ९ योग		
		४ × ३ × २ × ९		= २१६
८		संज्वलन कषाय चतुष्क × ३ वेद × २ (हास्य युगल) × ९ योग		
		४ × ३ × २ × ९		= २१६
		भंग*		
९	**३ वेद**	संज्वलन कषाय चतुष्क × ३ वेद × ९ योग = ४ × ३ × ९	= १०८	
	२ वेद	संज्वलन कषाय चतुष्क × २ वेद × ९ योग = ४ × २ × ९	= ७२	
	४कषाय	संज्वलन कषाय चतुष्क × ९ योग = ४ × ९	= ३६	
	३कषाय	संज्वलन मान, माया, लोभ × ९ योग = ३ × ९	= २७	
	२कषाय	संज्वलन माया, लोभ × ९ योग = २ × ९	= १८	
	१कषाय	संज्वलन लोभ × ९ योग = १ × ९	= ९	= २७०
१०		संज्वलन सूक्ष्म लोभ × ९ योग = १ × ९		= ९
११		९ योग		= ९
१२		९ योग		= ९
१३		७ योग		= ७
१४		–		
		** अनिवृत्तिकरणादि ऊपर के गुणस्थानों में केवल ध्रुव भंग ही है। वहाँ भय, जुगुप्सा, अविरति का अभाव होने से अध्रुव गुणकार नहीं हैं।*		

प्रत्यय के भंग निकालने के लिये अध्रुव गुणकार

६ काय जीवों की हिंसा (प्राणी अविरति) संबंधी भंग

यदि कोई विवक्षित द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि भंग निकालने हो तो विवक्षित राशि (प्रकृत में मिथ्यादृष्टि आदि ४ गुणस्थानों में प्राणी हिंसा-विवक्षित राशि का प्रमाण छह) प्रमाण से लेकर एक-एक कम करते-करते एक के अंत तक अंक स्थापित करने चाहिये। और उसके नीचे दूसरी पंक्ति में एक से लेकर विवक्षित राशि तक अंक लिखने चाहिये। पहली पंक्ति के अंकों को अंश या भाज्य और दूसरी के अंकों को हार या भागहार कहते हैं। यहाँ पर भिन्न गणित के अनुसार भंग निकालने चाहिये। इसलिये यहाँ क्रम से पहले भाज्यों के साथ अगले भाज्यों का और पहले भागहारों के साथ अगले भागहारों का गुणा करना। उसके बाद भाज्यों के गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हुई उसमें भागहारों के गुणा करने से उत्पन्न राशि का भाग देना चाहिये। इससे जो प्रमाण आवे उतने-उतने ही विवक्षित स्थान के भंग समझने चाहिये।

असंयत गुणस्थान तक कायहिंसा = ६ (पंच स्थावर एवं १ त्रस)

भाज्य	६	५	४	३	२	१
हार	१	२	३	४	५	६

काय हिंसा किनकी	भंग प्रकार	सूत्र	कुल भंग
पृथ्वीकायिक आदि की हिंसा	**प्रत्येक भंग**	$\frac{६}{१}$	= ६
पृथ्वीकायिक आदि २ की हिंसा	**द्विसंयोगी भंग**	$\frac{६×५}{१×२}$	= १५
पृथ्वी. आदि ३ की हिंसा	**त्रिसंयोगी भंग**	$\frac{६×५×४}{१×२×३}$	= २०
पृथ्वी. आदि ४ की हिंसा	**चतुःसंयोगी भंग**	$\frac{६×५×४×३}{१×२×३×४}$	= १५
पृथ्वी. आदि ५ की हिंसा	**पंचसंयोगी भंग**	$\frac{६×५×४×३×२}{१×२×३×४×५}$	= ६
पृथ्वी. आदि ६ की हिंसा	**छहसंयोगी भंग**	$\frac{६×५×४×३×२×१}{१×२×३×४×५×६}$	= १
		कुल भंग	**= ६३**

देशसंयत गुणस्थान में कायहिंसा = ५ (त्रसहिंसा छोड़कर)

भाज्य	५	४	३	२	१
हार	१	२	३	४	५

काय हिंसा किनकी	भंग प्रकार	सूत्र	कुल भंग
पृथ्वीकाय आदि की हिंसा	**प्रत्येक भंग**	$\frac{५}{१}$	= ५
पृथ्वी आदि २ की हिंसा	**द्विसंयोगी भंग**	$\frac{५\times४}{१\times२}$	= १०
पृथ्वी आदि ३ की हिंसा	**त्रिसंयोगी भंग**	$\frac{५\times४\times३}{१\times२\times३}$	= १०
पृथ्वी आदि ४ की हिंसा	**चतुःसंयोगी भंग**	$\frac{५\times४\times३\times२}{१\times२\times३\times४}$	= ५
पृथ्वी आदि ५ की हिंसा	**पंचसंयोगी भंग**	$\frac{५\times४\times३\times२\times१}{१\times२\times३\times४\times५}$	= १
		कुल भंग	**= ३१**

भय-जुगुप्सा संबंधी ४ भंग

१	२	३	४
भय-जुगुप्सा रहित	भय सहित	जुगुप्सा सहित	भय, जुगुप्सा सहित

कुल अध्रुव गुणकार

गुणस्थान	अध्रुव गुणकार	कुल
१ से ४	४ (भय, जुगुप्सा संबंधी) × ६३ (काय हिंसा संबंधी)	= २५२
५	४ (भय, जुगुप्सा संबंधी) × ३१ (काय हिंसा संबंधी)	= १२४

मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों में कुल भंग

गुणस्थान	ध्रुव गुण्यकार	अध्रुव गुणकार	ध्रुव × अध्रुव गुणकार	कुल भंग
१	१६५६०	४ × ६३ = २५२	१६५६० × २५२	४१७३१२०
२	१८२४	२५२	१८२४ × २५२	४५९६४८
३	१४४०	२५२	१४४० × २५२	३६२८८०
४	१६८०	२५२	१६८० × २५२	४२३३६०
५	१२९६	४ × ३१ = १२४	१२९६ × १२४	१६०७०४
६	२३२	४	२३२ × ४	९२८
७	२१६	४	२१६ × ४	८६४
८	२१६	४	२१६ × ४	८६४
९ से १४	** इन गुणस्थानों में केवल ध्रुव भंग ही है। वहाँ भय, जुगुप्सा, अविरति का अभाव होने से अध्रुव गुणकार नहीं हैं। इस विषय की तालिका पृष्ठ क्र. -(गाथा ७१६)- पर देखें*			

८ कर्मों के बंध के कारणभूत जीव के परिणाम

प्रत्यय के उदय के कार्यभूत ⟶	ऐसे जीव के परिणाम ⟶	उनके ज्ञानावरणदि कर्म के बंध का कारणभूतपना हैं

वे कारण जिनसे उस उस कर्म का अनुभाग अधिक बँधता हैं

पडिणीगमंतराए उवघादो तप्पदोसणिण्हवणे।

आवरणदुगं भूयो बंधदि अच्चासणाएवि।।८००।।

अर्थ - प्रत्यनीक, अंतराय, उपघात, प्रद्वोष, निह्नव और आसादना - इन छह कार्यों के होने पर ज्ञानावरण और दर्शनावरण को भूयः अर्थात् स्थिति और अनुभाग को प्रचुरता युक्त बाँधता है। यदि ज्ञान के संबंध में ये छह हो तो ज्ञानावरण का बंध प्रचुर होता है और दर्शन के संबंध में ये छह हो तो दर्शनावरण का बंध प्रचुर होता है।।८००।।

ज्ञानावरण-दर्शनावरण

प्रत्यनीक	अंतराय	उपघात	प्रद्वेष	निह्नव	आसादना
शास्त्र व शाास्त्र के धारकादि में अविनय रूप प्रवृत्ति करना	ज्ञान व ज्ञान के साधनों की प्राप्ति में बाधा डालना	मन-वचन से प्रशस्त ज्ञान का दोषी होना व अभ्यासक जीवों को क्षुधादि बाधा करना	तत्त्वज्ञान में हर्ष का अभाव व मोक्ष के साधनभूत तत्त्वज्ञान का उपदेश अच्छा नहीं लगना	जानते हुये भी छिपाना, गुरु का नाम छिपाना	काय-वचन से अनु-मोदना न करना

भूदाणुकंपवदजोगजुंजिदो खंतिदाणगुरुभत्तो।
बंधदि भूयो सादं विवरीयो बंधदे इदरं।।८०१।।

अर्थ - जो जीव, भूत(सब प्राणियों) पर अनुकम्पा, व्रत और योग से युक्त, क्षमा, दान, गुरु भक्ति से युक्त हो वह (प्रचुर अनुभाग के साथ) साता वेदनीय को बाँधता है। इससे विपरीत से असाता वेदनीय को बाँधता है।।८०१।।

साता-असाता वेदनीय

साता

- अनुकम्पा ↓ भूत(सब प्राणियों) पर
- व्रत-समाधि
- क्षमा ↓ क्रोधादि का अभाव
- दान ↓ ४ प्रकार का
- भक्ति ↓ पंच गुरू में

↓

✻ इनसे अनुभाग प्रचुर बंधता है
✻ विशुद्ध परिणामों से स्थिति कम बाँधती है

असाता

↓

✻ साता वेदनीय के कारणों से विपरीत संक्लेश परिणाम
✻ इनसे अनुभाग -स्थिति दोनों प्रचुर बाँधती हैं

अरहंतसिद्धचेदियतवसुदगुरुधम्मसंघपडिणीगो।
बंधदि दंसणमोहं अणंतसंसारिओ जेण।।८०२।।

अर्थ - जो जीव, अरहंत, सिद्ध, चैत्य, तपश्चरण, श्रुत, गुरु, धर्म और संघ - इनसे प्रतिकूल हो वह दर्शनमोह को बाँधता है कि जिसके उदय से वह अनंत संसारी होता है।।८०२।।

दर्शनमोहनीय

❊ इनसे जीव अनंत संसारी होता है

- अरहंत
- सिद्ध
- चैत्य → प्रतिमा
- तप
- श्रुत → जैन शास्त्र
- गुरु → निर्ग्रंथ
- धर्म → जिन प्रणीत
- संघ → मुनि आदि के समूहरूप

↓

❊ इनसे प्रतिकूल हो

❊ इनके स्वरुप से विपरीतता का ग्रहण करें

तिव्वकसाओ बहुमोहपरिणदो रागदोससंतत्तो।
बंधदि चरित्तमोहं दुविहंपि चरित्तगुणघादी।।८०३।।

अर्थ – जो जीव तीव्र कषाय सहित हो, बहुत मोहरूप परिणमता हो, राग और द्वेष में आसक्त हो वह दो प्रकार के चारित्रमोह को बाँधता है, जिसके उदय से चारित्रगुण का नाश होता है।।८०३।।

चारित्र मोहनीय (दोनों प्रकार का)

❊ चारित्र गुण के नाश करने का स्वभाव

- तीव्र कषाय सहित
- बहुत मोहरूप परिणमना
- राग–द्वेष में आसक्ति

मिच्छो हु महारंभो णिस्सीलो तिव्वलोहसंजुत्तो।
णिरयाउगं णिबंधइ पावमइ रुद्दपरिणामी।।८०४।।
उम्मग्गदेसगो मग्गणासगो गूढहियय माइल्लो।
सइसीलो य ससल्लो तिरियाउं बंधदे जीवो।।८०५।।
पयडीए तणुकसाओ दाणरदी सीलसंजमविहीणो।
मज्झिमगुणेहि जुत्तो मणुवाउं बंधदे जीवो।।८०६।।
अणुवदमहव्वदेहि य बालतवाकामणिज्जराए य।
देवाउगं णिबंधइ सम्माइट्ठी य जो जीवो।।८०७।।

अर्थ – जो जीव मिथ्यादृष्टि हो, बहुत आरंभी हो, शील रहित हो, तीव्र लोभ से युक्त हो, पापकार्य करने की बुद्धि सहित हो, रौद्र परिणामी हो वह नरकायु को बाँधता है।।८०४।।

अर्थ – जो जीव विपरीत मार्ग का उपदेशक हो, भले मार्ग का नाशक हो, गूढ हृदयी हो, मायाचारी हो, मूर्खता सहित जिसका स्वभाव हो, शल्य सहित हो वह तिर्यंचायु को बाँधता है।।८०५।।

अर्थ – जो जीव स्वभाव से ही मंद कषायी हो, दान में प्रीतियुक्त हो, शील संयम रहित हो, मध्यम गुणों सहित हो वह मनुष्यायु को बाँधता है।।८०६।।

अर्थ – जो जीव सम्यग्दृष्टि है, वह केवल सम्यक्त्व से वा साक्षात अणुव्रत महाव्रतों से देवायु को बाँधता है। (जो मिथ्यादृष्टि जीव है, वह) अज्ञानरूप बाल तप से व अकाम निर्जरा से देवायु को बाँधता है।।८०७।।

आयु

नरकायु	तिर्यंचायु	मनुष्यायु	देवायु
✻ मिथ्यादृष्टि ✻ बहुत आरंभी (हिंसादि पाप पोषक क्रिया) ✻ शील (व्रत) रहित ✻ तीव्र लोभी ✻ पाप कार्य में लगी बुद्धिवाला ✻ रौद्र परिणामी	✻ विपरीत मार्ग का उपदेशक ✻ भले मार्ग का नाशक ✻ गूढ़ हृदय (जिसके परिणाम दूसरे के जानने में न आये) ✻ मायाचारी ✻ मूर्खता युक्त स्वभाव ✻ मिथ्यात्वादि शल्यों युक्त	✻ प्रकृति से ही मंद कषायी ✻ दान में प्रीति ✻ शील संयम रहित ✻ मध्यम गुणों से युक्त	**सम्यग्दृष्टि –** ✻ सम्यक्त्व ✻ साक्षात अणुव्रत-महाव्रत **मिथ्यादृष्टि –** ✻ बाल तप(अज्ञानता सहित आचरण) ✻ अकाम निर्जरा (बिना इच्छा दुःख सहना)

मणवयणकायवक्को माइल्लो गारवेहिं पडिबद्धो।
असुहं बंधदि णामं तप्पडिवक्खेहिं सुहणामं।।८०८।।

अर्थ – जो जीव, मन-वचन-काय से वक्र हो, मायाचारी हो, गारव से युक्त हो, वह अशुभ नामकर्म को बाँधता है। इनसे विपरीत स्वभाव वाला शुभ नामकर्म को बाँधता है।।८०८।।

नाम कर्म

अशुभ नामकर्म
- मन-वचन-काय से वक्र (सरल नहीं)
- मायाचारी (कपटी)
- गारव युक्त (अपनी प्रशंसा चाहनेवाला)

शुभ नामकर्म

⟵ इनसे विपरीत
- ✻ सरल
- ✻ निष्कपट
- ✻ गारव रहित

अरहंतादिसु भत्तो सुत्तरुची पढणुमाणगुणपेही।
बंधदि उच्चागोदं विवरीओ बंधदे इदरं।।८०९।।

अर्थ – जो जीव, अरहंतादि (पाँच परमेष्ठियों) में भक्तिवंत हो, श्रुत में रूचिवंत हो, अध्ययन के लिये विचार, विनयादि गुणों का दर्शक हो, वह ऊँच गोत्र को बाँधता है। इनसे विपरीत से नीच गोत्र को बाँधता है।।८०९।।

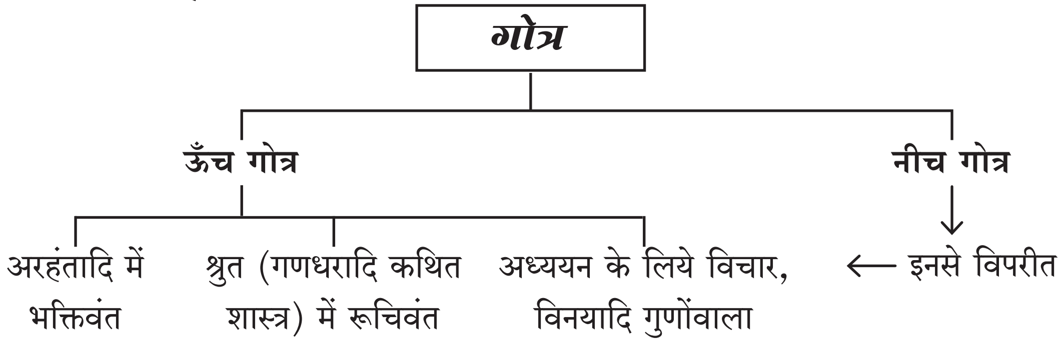

पाणवधादीसु रदो जिणपूजामोक्खमग्गविग्घयरो।
अज्जेइ अंतरायं ण लहइ जं इच्छियं जेण।।८10।।

अर्थ – जो जीव, प्राणीयों की हिंसा करने में प्रीतीवंत हो और जिनेश्वर की पूजा व रत्नत्रय की प्राप्तिरूप मोक्षमार्ग में विघ्न डाले वह अंतराय कर्म का उपार्जन करता है कि जिसके उदय से वांछित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है।।८१०।।

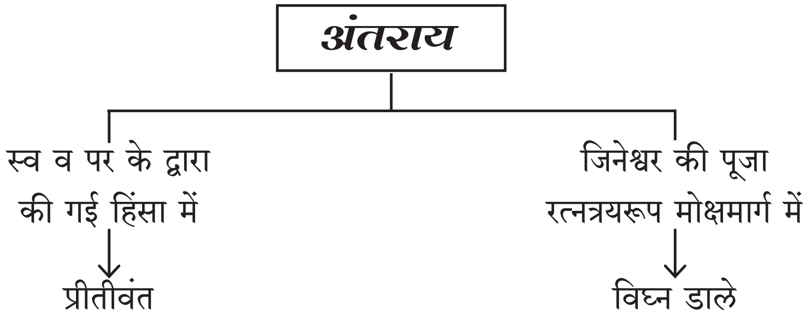

अधिकार ७ - भाव चूलिका अधिकार

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
मंगलाचरण पूर्वक कथन प्रतिज्ञा	८११	१	४१३
मूल व उत्तर भाव	८१२-८१९	८	४१३
भंग प्रकार	८२०	१	४१६
१४ गुणस्थानों एवं सिद्धों में मूल भाव व उनके भंग	८२१-८२२	२	४१७
उत्तर भावों के स्थान व भंग	८२३-८७५	५३	४२१
एकांतवादियों के ३६३ भेद	८७६-८९५	२०	४४९
कुल गाथाएँ	**८११-८९५**	**८५**	

मंगलाचरण

गोम्मटजिणिंदचंदं पणमिय गोम्मटपयत्थसंजुत्तं।
गोम्मटसंगहविसयं भावगयं चूलियं वोच्छं।।८११।।

अर्थ - गोम्मट जिनेन्द्र अर्थात् 'वर्धमान स्वामी' वा 'नेमिनाथ स्वामी' का प्रतिबिम्ब, वही है चन्द्रमा, उसको नमस्कार करके समीचीन पद, शब्द और अर्थ से संयुक्त अथवा समीचीन पदार्थों के वर्णन से संयुक्त ऐसे जो गोम्मटसार ग्रंथ में है और तीर्थंकर के शास्त्र के गोचर भावों के कथन को जो प्राप्त है ऐसी भावगतचूलिका को कहूँगा।।८११।।

जेहिं दु लक्खिज्जंते उवसमआदीसु जणिदभावेहिं।
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं।।८१२।।
उवसम खइओ मिस्सो ओदयियो पारिणामियो भावो।
भेदा दुग णव तत्तो दुगुणिगिवीसं तियं कमसो।।८१३।।
कम्मुवसमम्मि उवसमभावो खीणम्मि खइयभावो दु।
उदयो जीवस्स गुणो खओवसमिओ हवे भावो।।८१४।।
कम्मुदयजकम्मिगुणो ओदयियो तत्थ होदि भावो दु।
कारणणिरवेक्खभवो सभावियो होदि परिणामो।।८१५।। जुम्मं।।

अर्थ - अपने प्रतिपक्षी कर्मों के उपशमादिक के होने पर उत्पन्न हुए औपशमिकादि भावों से जीव पहचाने जाते हैं, वे भाव 'गुण' ऐसी संज्ञा रूप सर्व दर्शी ने कहे हैं।।८१२।।

अर्थ - वे मूल भाव पाँच है - औपशमिक, क्षायिक, मिश्र(क्षायोपशमिक), औदयिक और पारिणामिक। उनके भेद क्रम से २, ९, १८, २१, ३ हैं।।८१३।।

अर्थ – प्रतिपक्षी कर्म के उपशम होने से 'औपशमिक' भाव होता है, कर्मों के अत्यंत क्षय होने से क्षायिक भाव होता है, प्रतिपक्षी कर्मों का उदय भी हो परंतु जीव का गुण भी जहाँ प्रकट हो वह मिश्ररूप क्षायोपशमिक भाव होता है। कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ संसारी जीव का गुण औदयिक भाव है, (उपशमादि) कारण के बिना जीव का जो स्वाभाविक भाव है वह पारिणामिक भाव है।।८१४-८१५।।

भाव

- जीव पहचाने जाते हैं
- 'गुण' ऐसी संज्ञा

मूल भाव

नाम	औपशमिक	क्षायिक	मिश्र(क्षायोपशमिक)	औदायिक	पारिणामिक
प्रतिपक्षी कर्म का	उपशम	संपूर्ण क्षय	उदय भी हो और जीव का गुण भी जहाँ प्रगट हो	उदय	कर्म के उपशमादि की अपेक्षा से रहित
भेद	२	९	१८	२१	३
संबंधित कर्म	मोहनीय	४ घातिया		८ कर्म	–

उवसमभावो उवसमसम्मं चरणं च तारिसं खइओ।
खाइयणाणं दंसण सम्म चरित्तं च दाणादी।।८१६।।

अर्थ – औपशमिक भाव – उपशम सम्यक्त्व और उपशम चारित्र के भेद से दो प्रकार का है। उसी प्रकार क्षायिक भाव – क्षायिकज्ञान-दर्शन-सम्यक्त्व-चारित्र-दानादि (दान,लाभ,भोग,उपभोग,वीर्य) ऐसे नौ प्रकार का है।।८१६।।

औपशमिक भाव

- **औपशमिक सम्यक्त्व** ↓ मोहनीय की ७,६ अथवा ५ प्रकृतियों के दबने से
- **औपशमिक चारित्र** ↓ मोहनीय की २१ प्रकृतियों के दबने से

खाओवसमियभावो चउणाण तिदंसण तिअण्णाणं।
दाणादिपंच वेदगसरागचारित्तदेसजमं।।८१७।।

अर्थ – क्षायोपशमिक भाव – ४ ज्ञान, ३ दर्शन, ३ कुज्ञान, दानादि ५, वेदक सम्यक्त्व, सराग चारित्र और देशसंयम ऐसे १८ प्रकार का है।।८१७।।

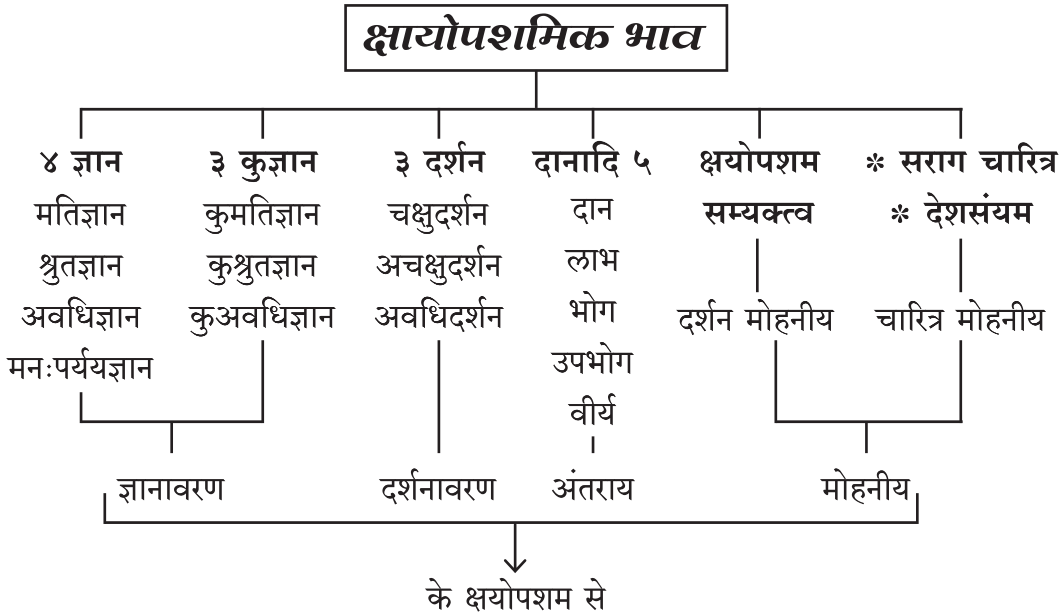

ओदयिया पुण भावा गदिलिंगकसाय तह य मिच्छत्तं।
लेस्सासिद्धासंजमअण्णाणं होंति इगिवीसं।।८१८।।

अर्थ – औदयिक भाव –४ गति, ३ लिंग(वेद), ४ कषाय, मिथ्यात्व, ६ लेश्या, असिद्धत्व, असंयम, अज्ञान ऐसे २१ प्रकार का है।।८१८।।

औदयिक भाव

४ गति	४ कषाय	३ वेद	६ लेश्या	४ शेष
नरक गति	क्रोध	स्त्रीवेद	कृष्ण	* **मिथ्यादर्शन**
तिर्यंच गति	मान	पुरुषवेद	नील	* **अज्ञान**(अप्रकट ज्ञान)
मनुष्य गति	माया	नपुंसकवेद	कापोत	* **असंयम**(चारित्र का अभाव)
देव गति	लोभ		पीत	* **असिद्धत्व**(सामान्य कर्म के उदय रूप - सिद्ध पद का अभाव)
			पद्म	
			शुक्ल	

जीवत्तं भव्वत्तमभव्वत्तादी हवंति परिणामा।
इदि मूलुत्तरभावा भंगवियप्पे बहू जाणे।।८१९।।

अर्थ - जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व ऐसे तीन पारिणामिक भाव हैं। इस तरह मूलभाव ५ और उत्तरभाव ५३ हैं, भंग विकल्प से बहुत जानना।।८१९।।

पारिणामिक भाव

- **जीवत्व** → द्रव्य स्वभाव चेतना परिणाम
- **भव्यत्व** → सम्यग्दर्शन प्रकट होने की योग्यता
- **अभव्यत्व** → सम्यग्दर्शन प्रकट न होने की योग्यता

ओघादेसे संभवभावं मूलुत्तरं ठवेदूण।
पत्तेये अविरुद्धे परसगजोगेवि भंगा हु।।८२०।।

अर्थ - ओघ और आदेश मे संभवित मूलभाव और उत्तरभावों को स्थापन करके प्रमादों को अक्ष संचार (भेदों के बोलने के विधान) के समान यहाँ पर भी प्रत्येक भंग और विरोध रहित परसंयोगी तथा स्वसंयोगी भी भंग होते हैं।।८२०।।

भंग विधान

प्रमादों के अक्ष संचारवत्

- **ओघ** (गुणस्थान)
- **आदेश** (मार्गणास्थान)

→ मूलभाव, उत्तरभाव

भंग प्रकार

- **प्रत्येक भंग** → जुदे-जुदे भाव रूप
- **संयोगी भंग**
  - **स्वसंयोगी**
    - * निज भावों के भेदों के संयोग रूप
    - * ***जैसे***-औदयिक-औदयिक का
  - **अविरुद्ध परसंयोगी**
    - * अन्य-अन्य भाव के संयोग रूप
    - * ***जैसे***-औपशमिक-औदयिक का

मिच्छतिये तिचउक्के दोसुवि सिद्धेवि मूलभावा हु।
तिग पण पणगं चउरो तिग दोण्णि य संभवा होंति।।८२१।।

अर्थ - मिथ्यात्वादि तीन में; असंयतादि चार में; उपशम श्रेणी के चार में; क्षपक श्रेणी के चार में - (ऐसे तीन चौकड़ी में); सयोगी, अयोगी - दो में; सिद्ध जीवों में संभव होने वाले मूल भाव क्रम से ३, ५, ५, ४, ३, २ हैं।।८२१।।

१४ गुणस्थान एवं सिद्धों में मूलभाव (नानाजीव, नानाकाल अपेक्षा)

गुणस्थान	मूलभाव	कुल मूलभाव
१ से ३	क्षायोपशमिक, औदयिक, पारिणामिक	३
४ से ११	औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक, पारिणामिक	५
१२	क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक, पारिणामिक	४
१३-१४	क्षायिक, औदयिक, पारिणामिक	३
सिद्ध	क्षायिक, पारिणामिक	२

१४ गुणस्थान एवं सिद्धों में उत्तरभाव (नानाजीव, नानाकाल अपेक्षा)

→

गुणस्थान	औपशमिक		क्षायिक		क्षायोपशमिक		औदयिक		पारिणामिक		कुल
१		0		0	१०	३ कुज्ञान +२ दर्शन + ५ लब्धि	२१	सर्व	३	सर्व	३४
२		0		0	१०		२०	मिथ्यात्व बिना सर्व	२	जीवत्व भव्यत्व	३२
३		0		0	११	मिश्ररुप ३ ज्ञान + ३ दर्शन + ५ लब्धि	२०		२		३३
४	१	सम्यक्त्व	१	सम्यक्त्व	१२	३ ज्ञान +३ दर्शन + ५ लब्धि, सम्यक्त्व	२०		२		३६
५	१		१		१३	" + देशचारित्र	१४	२ गति(मनुष्य,तिर्यंच)+४ कषाय +३ वेद +३ शुभलेश्या + असिद्धत्व + अज्ञान	२		३१
६	१		१		१४	" – देशचारित्र + सरागचारित्र, मनःपर्ययज्ञान	१३	पूर्वोक्त १४ – तिर्यंच गति	२		३१
७	१		१		१४		१३		२		३१
८–९	२	सम्यक्त्व, चारित्र	२	सम्यक्त्व,चारित्र	१२	पूर्वोक्त १४ – सम्यक्त्व –चारित्र	११	पूर्वोक्त १३ – २ (पीत–पद्म लेश्या)	२		२९
१०	२		२		१२		५	पूर्वोक्त ११–लोभ बिना ३ कषाय–३ वेद	२		२३
११	२		१	सम्यक्त्व	१२		४	पूर्वोक्त ५ – लोभ कषाय	२		२१
१२		0	२	सम्यक्त्व,चारित्र	१२		४		२		२०
१३		0	९	सर्व		0	३	मनुष्यगति, असिद्धत्व, शुक्ल लेश्या	२		१४
१४		0	९			0	२	मनुष्यगति, असिद्धत्व	२		१३
सिद्ध		0	४	सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य		0		0	१	जीवत्व	५

तत्थेव मूलभंगा दसछव्वीसं कमेण पणतीसं।
उगुवीसं दस पणगं ठाणं पडि उत्तरं वोच्छं।।८२२।।

अर्थ - इन्हीं पूर्वोक्त छह में मूलभंग क्रम से १०, २६, ३५, १९, १०, ५ होते हैं। आगे गुणस्थानों के प्रति उत्तर भावों को कहूँगा।।८२२।।

१४ गुणस्थान एवं सिद्धों में एक जीव के एक काल अपेक्षा पाये जाने वाले मूलभावों के भंग

गुण-स्थान	मूल भाव	परसंयोगी भंग			स्वसंयोगी भंग		कुल
१ से ३	३	प्रत्येक भंग	३	जुदे-जुदे औद.,मिश्र,पारि.		औद.-औद.	
		द्विसंयोगी भंग	३	औद.-मिश्र,औद.-पारि.,मिश्र-पारि.		मिश्र-मिश्र	
		त्रिसंयोगी भंग	१	औद.-मिश्र-पारि.		पारि.-पारि.	
		कुल=$२^३$-१=	७		३		१०
४ से ७	५*	प्रत्येक भंग	५	जुदे-जुदे औप.,क्षा.,मिश्र,औद.,पारि.		औद.-औद.	
		द्विसंयोगी भंग	९	औप.-मिश्र,औप.-औद.,औप-पारि., क्षा.-मिश्र,क्षा.-औद.,क्षा.-पारि., मिश्र-औद.,मिश्र-पारि.,औद.-पारि.		मिश्र-मिश्र पारि.-पारि.	
		त्रिसंयोगी भंग	७	औप.-मिश्र-औद.,औप.-मिश्र-पारि., औप.-औद.-पारि.,क्षा.-मिश्र-औद., क्षा.-मिश्र-पारि., क्षा.-औद.-पारि., मिश्र-औद.-पारि.,			
		चतुःसंयोगीभंग	२	औप.-मिश्र-औद.-पारि., क्षा.-मिश्र-औद.-पारि.			
		कुल =	२३		३		२६
८से११ उपशम **	५	प्रत्येक भंग	५	$\frac{५}{१}$		औप.-औप. औद.-औद.	
		द्विसंयोगी भंग	१०	$\frac{५×४}{१×२}$		मिश्र-मिश्र पारि.-पारि.	
		त्रिसंयोगी भंग	१०	$\frac{५×४×३}{१×२×३}$		***	

८से११ उपशम		चतुःसंयोगीभंग	५	५×४×३×२ / १×२×३×४			
		पंचसंयोगी भंग	१	५×४×३×२×१ / १×२×३×४×५			
		कुल=२^५–१=**३१**			४		**३५**
८से१२ क्षपक	४	प्रत्येक भंग	४	४ / १		क्षा.–क्षा. औद.–औद. मिश्र–मिश्र पारि.–पारि.	
		द्विसंयोगी भंग	६	४×३ / १×२			
		त्रिसंयोगी भंग	४	४×३×२ / १×२×३			
		चतुःसंयोगीभंग	१	४×३×२×१ / १×२×३×४			
		कुल=२^४–१=**१५**			४		**१९**
१३ – १४	३	प्रत्येक भंग	३	३ / १		क्षा.–क्षा. औद.–औद. पारि.–पारि.	
		द्विसंयोगी भंग	३	३×२ / १×२			
		त्रिसंयोगी भंग	१	३×२×१ / १×२×३			
		कुल=२^३–१= **७**			**३**		**१०**
सिद्ध	२	प्रत्येक भंग	२	२ / १		क्षा.–क्षा. पारि.–पारि.	
		द्विसंयोगी भंग	१	२×१ / १×२			
		कुल=२^२–१= **३**			२		**५**

**** यहाँ औपशमिक–क्षायिक के संयोगरुप भंग नहीं हैं, क्योंकि यहाँ औपशमिक का और क्षायिक का कोई भी भेद परस्पर मिलता नहीं हैं।***

***** यहाँ क्षायिक सम्यक्त्व के होते हुये उपशम चारित्र पाया जाता है, इसलिए उपशम–क्षायिक के संयोगरूप भाव भी है।***

****** यहाँ क्षायिक–क्षायिक के संयोगरुप भंग नहीं है, क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व है, पर अन्य क्षायिक चारित्रादि भाव नहीं हैं।***

उत्तरभंगा दुविहा ठाणगया पदगयात्ति पढम्मि।
सगजोगेण य भंगाणयणं णत्थित्ति णिद्दिट्टिं।।८२३।।

अर्थ – उत्तर भावों के भंग दो प्रकार हैं – स्थानगत और पदगत। पहले स्थानगत भंग में स्व संयोगी भंग नहीं पाये जाते हैं, ऐसा कहा है।।८२३।।

उत्तर भावों के भंग के प्रकार

स्थानगत
↓
'एक जीव के एक काल में जितने-जितने भाव पाये जाये, उनका समूह = स्थान'
स्थान की अपेक्षा भंग
↓
अन्य कोई स्थान संभव न होने से स्वसंयोगी भंग नहीं होते हैं

पदगत
↓
'एक जीव के एक काल में जो भाव पाये जाते,उनकी एक जाति व जुदे-जुदे भाव=पद'
पद की अपेक्षा भंग

जाति	सर्व
जहाँ एक जाति का ग्रहण किया जाता है	जुदे-जुदे सर्व भावों का ग्रहण करके जो भंग किये जाते हैं
✼ ***जैसे*** – मिश्र भाव में ज्ञान के ४ भेद होने पर भी १ जाति का ग्रहण करना	
✼ यहाँ स्वसंयोगी भंग भी पाये जाते हैं, जैसे दान होने पर लाभ पाया जाता हैं	

मिच्छदुगे मिस्सतिये पमत्तसत्ते य मिस्सठाणाणि।
तिग दुग चउरो एक्कं ठाणं सव्वत्थ ओदयियं।।८२४।।
तत्थावरणजभावा पणछस्सत्तेव दाणपंचेव।
अयदचउक्के वेदगसम्मं देसम्मि देसजमं।।८२५।।
रागजमं तु पमत्ते इदरे मिच्छादिजेट्ठठाणाणि।
वेभंगेण विहीणं चक्खुविहीणं च मिच्छदुगे।।८२६।।
अवधिदुगेण विहीणं मिस्सतिए होदि अण्णठाणं तु।
मणणाणेणवधिदुगेणुभयेणूणं तदो अण्णे।।८२७।।

अर्थ - मिथ्यात्वादि दो में, मिश्रादि तीन में, प्रमत्तादि सात में क्रम से मिश्र(क्षायोपशमिक) भाव के स्थान ३, २, ४ है। औदयिक भाव का स्थान सब गुणस्थानों में एक-एक ही है।।८२४।।

अर्थ - इन पूर्वोक्त मिथ्यात्वादि तीनों में आवरण (ज्ञानावरण-दर्शनावरण) के निमित्त से उत्पन्न हुए क्षायोपशमिक भाव ५,६,७ हैं। दानादि पाँच भाव मिथ्यात्व से लेकर क्षीणमोह तक हैं। वेदक सम्यक्त्व असंयतादि ४ में है। देशसंयम देशसंयत में ही है।।८२५।।

अर्थ - सराग चारित्र प्रमत्त और अप्रमत्त में ही है। इस तरह यथासंभव भाव मिलाने से मिथ्यात्वादि क्षीणमोह तक क्रम से क्षायोपशमिक भाव के उत्कृष्ट स्थान १०, १०, ११, १२, १३, १४, १४, १२, १२, १२, १२, १२ रूप होते हैं। मिथ्यात्वादि दो में विभंग रहित ९ का स्थान, चक्षु दर्शन से भी रहित ८ का स्थान (और पूर्वोक्त १० का स्थान - ऐसे तीन-तीन स्थान) हैं।।८२६।।

अर्थ - मिश्रादि तीन में (एक तो अपना-अपना उत्कृष्ट स्थान, और) अवधिद्विक से रहित मिश्र में ९ का स्थान, असंयत में १० का स्थान, देशसंयत में ११ का स्थान - ऐसे दो-दो स्थान हैं। प्रमत्तादि सात में (एक-एक तो अपना-अपना उत्कृष्ट स्थान और) एक-एक स्थान मनःपर्ययज्ञान, अवधिद्विक, उभय(तीनों रहित) - ऐसे चार-चार स्थान हैं।।।८२७।।

क्षायोपशमिक (मिश्र) भावों के गुणस्थान

भाव	३ अज्ञान	२ दर्शन	३ ज्ञान, अवधिदर्शन	मनःपर्यय ज्ञान	दानादि ५ लब्धि	वेदक सम्यक्त्व	देशसंयम	सराग चारित्र
गुणस्थान	१-२	१से १२	३ से १२	६ से १२	१ से १२	४ से ७	५	६-७

क्षायोपशमिक भावों के स्थान

गुणस्थान	उत्कृष्ट स्थान	विभंग रहित	चक्षुदर्शन, विभंग रहित	मनःपर्यय ज्ञान रहित	अवधिज्ञान, अवधिदर्शन रहित	मनःपर्यय, अवधिद्विक रहित	कुल स्थान
१-२	१०	९	८				३
३	११				९		२
४	१२				१०		२
५	१३				११		२
६-७	१४			१३	१२	११	४
८ से १२	१२			११	१०	९	४

एक जीव के एक काल में पाये जाने वाले औदयिक भाव

गुणस्थान		गति	वेद	कषाय	मिथ्या-त्व	लेश्या	असिद्ध-त्व	असंयम	अज्ञान	कुल
१		४ में कोई १	३ में कोई १	४ में कोई १	१	६ में कोई १	१	१	१	८
२ से ४		”	”	”	०	”	”	”	”	७
५		तिर्यंच-मनु. में कोई १	”	”	०	शुभ३ में कोई १	”	०	”	६
६-७		मनुष्य	”	”	०	”	”	०	”	६
८-९(सवेद)		१	”	”	०	शुक्ल	”	०	”	६
९	(अवेद)	१	०	”	०	”	”	०	”	५
	(क्रोध रहित)	१	०	३ में कोई १	०	”	”	०	”	५
	(मान रहित)	१	०	२ में कोई १	०	”	”	०	”	५
	(माया रहित)	१	०	लोभ	०	”	”	०	”	५
१०		१	०	”	०	”	”	०	”	५
११-१२		१	०	०	०	”	”	०	”	४
१३		१	०	०	०	”	”	०	०	३
१४		१	०	०	०	०	”	०	०	२
सिद्ध		०	०	०	०	०	०	०	०	०
औदयिक भाव का स्थान सर्व १४ गुणस्थानों में १-१ ही हैं										

लिंगकसाया लेस्सा संगुणिदा चदुगदीसु अविरुद्धा।
बारस बावत्तरियं तत्तियमेत्तं च अडदालं।।८२८।।
णवरि विसेसं जाणे सुर मिस्से अविरदे य सुहलेस्सा।
चदुवीस तत्थ भंगा असहायपरक्कमुद्दिट्ठा।।८२९।।

अर्थ - नरकदि चार गतियों में विरोध रहित यथासंभव लिंग, कषाय, लेश्याओं का आपस में गुणा करने पर क्रम से १२, ७२, ७२, ४८ भंग होते हैं।।८२८।।

अर्थ - इतना विशेष जानना :- देवगति में मिश्र और अविरत गुणस्थान में ३ शुभलेश्या ही हैं; इस कारण वहाँ पर २४ ही भंग होते हैं, ऐसा असहाय पराक्रम वाले श्री वर्द्धमानस्वामी ने कहा है।।८२९।।

औदयिक भावों के बदलने से प्राप्त भंग

गुणस्थान	नरक		तिर्यंच		मनुष्य		देव		कुल
१-२	१ नपुंसकवेद ×४ कषाय×३ अशुभ लेश्या	१२	३ वेद × ४ कषाय × ६ लेश्या	७२	३ वेद × ४ कषाय × ६ लेश्या	७२	२ वेद × ४ कषाय × ६ लेश्या	४८	२०४
३-४	"	१२	"	७२	"	७२	२ वेद × ४ कषाय ×३ शुभ लेश्या	२४	१८०
५			३ वेद × ४ कषाय ×३ शुभ लेश्या	३६	३ वेद × ४ कषाय × ३ शुभ लेश्या	३६			७२
६-७					"	३६			३६
८-९(सवेद)					३ वेद × ४ कषाय × शुक्ल ले.	१२			१२
९ (अवेद)					४ कषाय×ले.	४			४
९ (क्रोध रहित)					३ कषाय×ले.	३			३
९ (मान रहित)					२ कषाय×ले.	२			२
९ (माया रहित)					लोभ कषाय	१			१
१०					× लेश्या	१			१
११-१३					लेश्या	१			१

चक्खूण मिच्छसासणसम्मा तेरिच्छगा हवंति सदा।
चारिकसायतिलेस्साणब्भासे तत्थ भंगा हु।।८३०।।
खाइयअविरदसम्मे चउ सोल बिहत्तरी य बारं च।
तद्देसो मणुसेव य छत्तीसा तब्भवा भंगा।।८३१।।

अर्थ - चक्षु दर्शन रहित मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि सदा तिर्यंच ही होते हैं; इस कारण १ नपुंसकवेद, ४ कषाय और ३ लेश्याओं को आपस में गुणा करने से वहाँ पर १२ भंग नियम से है।।८३०।।

अर्थ - क्षायिक अविरत सम्यग्दृष्टि के (नारकादि चार गतियों में क्रम से) ४, १६, ७२, १२ भंग होते हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि देशसंयत मनुष्य ही होता है, अतः वहाँ ३६ भंग होते हैं।।८३१।।

चक्षुदर्शन रहित, औदयिक भावों के बदलने से प्राप्त भंग

गुणस्थान	नरक	तिर्यंच		मनुष्य	देव	कुल
१		१ नपुंसकवेद × ४ कषाय × ३ अशुभ लेश्या	१२			१२
२		"	१२			१२

क्षायिक सम्यक्त्व अपेक्षा, औदयिक भावों के बदलने से प्राप्त भंग

गुणस्थान	नरक		तिर्यंच		मनुष्य		देव		कुल
४	१ नपुंसकवेद × ४ कषाय × कापोत लेश्या	४	१ पुरुषवेद × ४ कषाय × कापोतादि ४ लेश्या	१६	३ वेद × ४ कषाय × ६ लेश्या	७२	पुरुषवेद ×४ कषाय ×३ शुभ लेश्या	१२	१०४
५					३ वेद × ४ कषाय × ३ शुभ लेश्या	३६			३६

परिणामो दुट्ठाणो मिच्छे सेसेसु एक्कठाणो दु।
सम्मे अण्णं सम्मं चारित्ते णत्थि चारित्तं।।८३२।।

अर्थ – पारिणामिक भाव के मिथ्यात्व में दो स्थान हैं – जीवत्व भव्यत्व, जीवत्व अभव्यत्व। शेष गुणस्थानों में एक ही स्थान है–जीवत्व भव्यत्व। गुणस्थानों में प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भेद बताने के लिये विशेष बात कहते हैं कि सम्यक्त्व सहित स्थान में दूसरा सम्यक्त्व नहीं होता और चारित्र सहित स्थान में दूसरा चारित्र नहीं होता।।८३२।।

पारिणामिक भावों के गुणस्थानों में स्थान

गुणस्थान	स्थान संख्या	विवरण
१	२	जीवत्व भव्यत्व, जीवत्व अभव्यत्व
२ से १४	१	जीवत्व भव्यत्व

सम्यक्त्वादि में एक काल में एक जीव को संभावित भाव

- **सम्यक्त्व**
  - औपशमिक, या,
  - क्षायिक, या
  - क्षायोपशमिक
- **चारित्र**
  - औपशमिक,या
  - क्षायिक,या
  - क्षायोपशमिक
    - देशसंयम, या
    - सराग चारित्र
- **ज्ञान,दर्शन, दानादि ५ लब्धि**
  - क्षायिक,या
  - क्षायोपशमिक

उत्तर भावों के स्थान भंग

मिच्छदुगयदचउक्के अट्ठट्ठाणेण खयियठाणेण।
जुद परजोगजभंगा पुध आणिय मेलिदव्वा हु।।८३३।।
उदयेणक्खे चढिदे गुणगारा एव होंति सव्वत्थ।
अवसेसभावठाणेणक्खे संचारिदे खेवा।।८३४।।
दुसु दुसु देसे दोसुवि चउरुत्तर दुसदगसिदिसहिदसदं।
बावत्तरि छत्तीसा बारमपुव्वे गुणिज्झपमा।।८३५।।
बारचउतिदुगमेक्कं थूले तो इगि हवे अजोगित्ति।
पुण बार बार सुण्णं चउसद छत्तीस देसोत्ति।।८३६।।जुम्मं।
वामे दुसु दुसु दुसु तिसु खीणो दोसुवि कमेण गुणगारा।
णव छब्बारस तीसं वीसं वीसं चउक्कं च।।८३७।।
पुणरवि देसोत्ति गुणो तिदुणभछछक्कयं पुणो खेवा।
पुव्वपदे अड पंचयमेगारमुगुतीसमुगुवीसं।।८३८।।
उगुवीस तियं तत्तो तिदुणभछच्छक्कयं च देसोत्ति।
चउसुवसमगेसु गुणा तालं रूऊणया खेरवा।।८३९।।
मिच्छादिठाणभंगा अट्ठारसया हवंति तेसीदा।
बारसया पणवण्णा सहस्ससहिया हु पणसीदा।।८४०।।
रूवहियडवीससया सगणउदा दससया णवेणहिया।
एक्कारसया दोण्हं खवगेसु जहाकमं वोच्छं।।८४१।।
पुव्वंपंचणियट्टीसुहुमे खीणे दहाण छव्वीसा।
तत्तियमेत्तो दसअडछच्चदुचदुचदुय एगूणं।।८४२।।
उवसामगेसु दुगुणं रूवहियं होदि सत्त जोगिम्हि।
सत्तेव अजोगिम्मि य सिद्धे तिण्णेव भंगा हु।।८४३।।

अर्थ - मिथ्यात्वादि दो में क्षायोपशमिक के आठ के स्थान में पूर्व कथित औदयिक भंगों सहित, तथा असंयतादि चार में क्षायिक सम्यक्त्व के स्थान में पूर्व कथित औदयिक भंगों सहित परसंयोग से उत्पन्न हुए भंगों को जुदे-जुदे लेकर अपनी-अपनी राशि में मिलाना चाहिये।।८३३।।

अर्थ - गुणस्थानों में पूर्व में कहे मिश्र, औदयिक और पारिणामिक भाव के स्थानों को अक्ष संचार विधान से बदलने से भंग उत्पन्न करने के लिये अनुक्रम से स्थापित करके वहाँ औदयिक भावों के स्थान में अक्ष संचार द्वारा जो भंग होते है, वे भंग गुणकार जानना और अवशेष भावों के स्थान में अक्ष संचार द्वारा जो भंग होता है, वे क्षेप जानना।।८३४।।

अर्थ - औदयिक भाव के गुण्यरूप प्रत्येक भंग मिथ्यात्वादि दो में २०४ हैं, मिश्रादि दो में १८० हैं, देशसंयत में ७२ हैं, प्रमत्तादि दो में ३६ हैं, अपूर्वकरण में १२ हैं, अनिवृत्तिकरण के पाँच भागों में क्रम से १२, ४, ३, २, १ हैं, इसके बाद अयोगी पर्यंत १-१ है। फिर मिथ्यात्वादि देशसंयत

पर्यंत चक्षुदर्शन रहित या क्षायिक सम्यक्त्वी की अपेक्षा क्रम से १२, १२, शून्य, १०४ और ३६ गुण्यरूप भंग हैं।।८३५-८३६।।

अर्थ – उन गुण्यों को जिनके द्वारा गुणा करते है ऐसे गुणकार क्रम से मिथ्यात्व में ९, सासादनादि दो में ६, असंयतादि दो में १२, प्रमत्तादि दो में ३०, अपूर्वकरणादि तीन में २०, क्षीणमोह में २०, सयोगी अयोगी दो में ४ हैं।।८३७।।

अर्थ – फिर भी उनमें चक्षुदर्शन रहित व क्षायिक सम्यक्त्व की अपेक्षा मिथ्यात्व से लेकर देशसंयत तक गुणकार क्रम से ३, २, शून्य, ६, ६ जानना। गुण्य को गुणाकार से गुणा करने पर जो प्रमाण होता है, उसमें जिनको मिलाया जाता है – ऐसे क्षेप पूर्वोक्त गुणस्थानों में प्रत्येक में मिथ्यात्व में ८, सासादनादि दो में ५, असंयतादि दो में ११, प्रमत्तादि दो में २९, अपूर्वकरणादि तीन में १९ हैं।।८३८।।

अर्थ – क्षीणमोह में १९, सयोगी अयोगी में ३ हैं। चक्षुदर्शन रहित वा क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा मिथ्यात्वादि देशसंयम पर्यंत क्रम से ३, २, शून्य, ६, ६ क्षेप हैं। उपशमश्रेणी के चार गुणस्थानों में गुणकार ४० तथा क्षेप उसमें से १ कम अर्थात् ३९ हैं।।८३९।।

अर्थ – पूर्वोक्त गुण्य को गुणकारों से गुणा करके क्षेप मिलाने पर उत्तर भावों के स्थानों के भंग मिथ्यात्व में १८८३, सासादन में १२५५, मिश्र में १०८५ होते हैं।।८४०।।

अर्थ – असंयत में २८०१, देशसंयत में १०९७, प्रमत्तादि दो में ११०९ भंग होते हैं। क्षपकश्रेणी वालों के भंग यथाक्रम से कहते हैं।।८४१।।

अर्थ – अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण के पाँच भाग, सूक्ष्म सांपराय, क्षीणमोह इन आठ क्षपकों में क्रम से एक कम दस गुणा २६ में एक कम ऐसे २५९, पुनः उतने ही २५९, पुनः दस गुणा १० में एक कम ऐसे ९९, दस गुणा ८ में एक कम ऐसे ७९, दस गुणा ६ में एक कम ऐसे ५९, दस गुणा ४ में एक कम ऐसे ३९, दस गुणा ४ में एक कम ऐसे ३९, दस गुणा ४ में एक कम ऐसे ३९ भंग होते हैं।।८४२।।

अर्थ – उपशम श्रेणी में पूर्वोक्त भंगों(क्षपकश्रेणी के भंगों) से दूने और एक अधिक भंग होते हैं अर्थात् ५१९,१९९,१५९,११९,७९। सयोगी में ७, अयोगी में भी ७ और सिद्ध भगवान के ३ ही भंग होते हैं। इस प्रकार स्थान भंग कहे।।८४३।।

पहले जानें

	स्वरुप
गुणकार	* औदयिक भावों के स्थान में अक्ष संचार द्वारा जो भंग होते हैं * जिससे गुणा करते हैं
क्षेप	* अवशेष भावों के स्थान में अक्ष संचार द्वारा जो भंग होते हैं * जिनको मिलाते हैं
गुण्य	* औदयिक भावों के भाव बदलने से प्राप्त भंग * जिसमें गुणा करते हैं
कुल भंग =	= (गुण्य × गुणकार) + क्षेप, ***जैसे*** – मिथ्यात्व चक्षुदर्शन सहित में (२०४×९)+८ = १८३६+८ = १८४४

प्रत्येक भंग

भावों के स्थान को यथासंभव पृथक्-पृथक् कहना

गुणकार	क्षेप
औदयिक के स्थान रूप प्रत्येक भंग	अवशेष भावों के स्थान रूप प्रत्येक भंग
जैसे – मिथ्यात्व में १	***जैसे*** – मिथ्यात्व में चक्षुदर्शन सहित में क्षायोपशमिक के २, पारिणामिक के २

द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि भंग

दो तीन आदि भावों के स्थानों के संयोग सहित भंग

गुणकार	क्षेप
औदयिक भाव के संयोग सहित द्विसंयोगी आदि भंग	औदयिक भाव का संयोग नहीं, अवशेष भावों के संयोग से द्विसंयोगी आदि भंग
जैसे – मिथ्यात्व में द्विसंयोगी भंग – औदयिक क्षायोपशमिक के २, औदयिक पारिणामिक के २	***जैसे*** – मिथ्यात्व में चक्षुदर्शन सहित में द्विसंयोगी भंग – क्षायोपशमिक पारिणामिक के ४

पुनरुक्त-अपुनरुक्त भंग

पुनरुक्त भंग	अपुनरुक्त भंग
उसी गुणस्थान में पूर्व में ग्रहण किया गया हो	उसी गुणस्थान में पूर्व में ग्रहण नहीं किया गया हो
जैसे – मिथ्यात्व में चक्षुदर्शन रहित में औदयिक पारिणामिक के स्थान के भंग मिथ्यात्व में चक्षुदर्शन सहित में ग्रहण किया गया होने से पुनरुक्त है	***जैसे*** – मिथ्यात्व में चक्षुदर्शन रहित में ८ के स्थान रूप क्षायोपशमिक भाव का प्रत्येक भंग अपुनरुक्त क्षेप रूप प्रत्येक भंग है

उत्तर भावों के स्थान भंग →

गुणस्थान		भाव	कुल स्थान	गुणकार /क्षेप	भंग प्रत्येक	द्वि.	त्रि.	चतुः	कुल गुणकार/ क्षेप	गुण्य	गुण्य× गुणकार	कुल भंग	गुणस्थान में कुल भंग
१	चक्षु	औद.	१	गुणकार	१	४	४		९	२०४	२०४×९	१८३६	
	दर्शन	क्षायो.	२	क्षेप	४	४	०		८		=	+ ८ =	
	सहित	पारि.	२								१८३६	१८४४	१८४४
					अपुनरुक्त भंग								+
	चक्षु	औद.	१	गुणकार	०	१	२		३	१२	१२ ×	३६ +	३९
	दर्शन	क्षायो.	१	क्षेप	१	२	०		३		३ =	३	=
	रहित	पारि.	२								३६	= ३९	१८८३
२	चक्षु	औद.	१	गुणकार	१	३	२		६	२०४	२०४×६	१२२४	
	दर्शन	क्षायो.	२	क्षेप	३	२	०		५		=	+ ५ =	
	सहित	पारि.	१								१२२४	१२२९	१२२९
					अपुनरुक्त भंग								+
	चक्षु	औद.	१	गुणकार	०	१	१		२	१२	१२ ×	२४ +	२६
	दर्शन	क्षायो.	१	क्षेप	१	१	०		२		२ =	२	=
	रहित	पारि.	१								२४	= २६	१२५५
३		औद.	१	गुणकार	१	३	२		६	१८०	१८० ×	१०८०	
		क्षायो.	२	क्षेप	३	२	०		५		६	+ ५ =	
		पारि.	१								=	१०८५	
											१०८०		१०८५
४	क्षायिक	औद.	१	गुणकार	१	४	५	२	१२	१८०	१८०×	२१६०	
	सम्यक्त्व	औप.	१	क्षेप	४	५	२	०	११		१२ =	+११=	
	रहित	क्षायो.	२								२१६०	२१७१	
		पारि.	१										
					अपुनरुक्त भंग								२१७१
	क्षायिक	औद.	१	गुणकार	०	१	३	२	६	१०४	१०४	६२४	+
	सम्यक्त्व	क्षा.	१	क्षेप	१	३	२	०	६		× ६ =	+ ६ =	६३०
	सहित	क्षायो.	२								६२४	६३०	=
		पारि.	१										२८०१

गुणस्थान		भाव	कुल स्थान	गुणकार /क्षेप	भंग				कुल गुणकार/ क्षेप	गुण्य	गुण्य× गुणकार	कुल भंग	गुणस्थान में कुल भंग
					प्रत्येक	द्वि.	त्रि.	चतुः					
५	क्षायिक सम्यक्त्व रहित	औद.	१	गुणकार	१	४	५	२	१२	७२	७२ ×	८६४	
		औप.	१	क्षेप	४	५	२	०	११		१२ =	+११=	
		क्षायो.	२								८६४	८७५	
		पारि.	१										
					अपुनरुक्त भंग								८७५
	क्षायिक सम्यक्त्व सहित	औद.	१	गुणकार	०	१	३	२	६	३६	३६ ×	२१६	+
		क्षा.	१	क्षेप	१	३	२	०	६		६ =	+ ६ =	२२२
		क्षायो.	२								२१६	२२२	=
		पारि.	१										१०९७
६–७		औद.	१	गुणकार	१	७	१४	८	३०	३६	३६ ×	१०८०	
		औप.	१	क्षेप	७	१४	८	०	२९		३० =	+ २९	
		क्षा.	१	यहाँ औपशमिक व क्षायिक सम्यक्त्व के							१०८०	=	
		क्षायो.	४	संयोगरुप भंग नहीं है, क्योंकि एक काल								११०९	
		पारि.	१	में एक ही सम्यक्त्व पाया जाता हैं									११०९
					क्षपक श्रेणी								
८–९(सवेद)		औद.	१	गुणकार	१	६	९	४	२०	१२	१२ ×	२४०	
		क्षा.	१	क्षेप	६	९	४	०	१९		२० =	+ १९	
		क्षायो.	४								२४०	=	
		पारि.	१									२५९	२५९
९	अवेद	”	”	”	”	”	”	”	२० १९	४	४×२० = ८०	८०+१९ = ९९	९९
	क्रोध रहित	”	”	”	”	”	”	”	२० १९	३	३×२० = ६०	६०+१९ = ७९	७९
	मान रहित	”	”	”	”	”	”	”	२० १९	२	२×२० = ४०	४०+१९ = ५९	५९
९ माया रहित,१०,१२		”	”	”	”	”	”	”	२० १९	१	१×२० = २०	२०+१९ = ३९	३९

गुणस्थान	भाव	कुल स्थान	गुणकार /क्षेप	भंग प्रत्येक	द्वि.	त्रि.	चतुः	पंच	कुल गुण. /क्षेप	गुण्य	गुण्य× गुणकार	कुल भंग	गुणस्थान में कुल भंग
१३-१४	औद. क्षा. पारि.	१ १ १	गुणकार क्षेप	१ २	२ १	१ ०			४ ३	१	१ × ४ = ४	४ + ३ = ७	७
सिद्ध	क्षा. पारि.	१ १	क्षेप	२	१				३			३	३
				उपशम श्रेणी									
८-९(सवेद)	औद. औप. क्षा. क्षायो. पारि.	१ १ १ ४ १	गुणकार क्षेप	१ ७	७ १५	१५ १३	१३ ४	४ ०	४० ३९	१२	१२ × ४० = ४८०	४८० + ३९ = ५१९	५१९
९ अवेद	”	”	”	”	”	”	”	”	४० ३९	४	४×४० = १६०	१६०+३९ = १९९	१९९
९ क्रोध रहित	”	”	”	”	”	”	”	”	४० ३९	३	३×४० = १२०	१२०+३९ = १५९	१५९
९ मान रहित	”	”	”	”	”	”	”	”	४० ३९	२	२×४० = ८०	८०+३९ = ११९	११९
९ माया रहित,१०,११	”	”	”	”	”	”	”	”	४० ३९	१	१×४० = ४०	४०+३९ = ७९	७९

दुविहा पुण पदभंगा जादिगपदसव्वपदभवात्ति हवे।
जातिपदखइगमिस्से पिंडेव य होदि सगजोगो।।८४४।।

अर्थ – पदभंग दो प्रकार के होते हैं, एक तो जातिपद भंग, दूसरे सर्वपद भंग। इनमें से जातिपदरूप जो क्षायिक भाव और मिश्र भाव इनके पिंड़पदस्वरूप भावों में स्वसंयोगी भी भंग पाये जाते हैं। क्षायिक में लब्धि और क्षायोपशमिक में ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि ये पिंडपदरूप हैं; क्योंकि ये अनेकभेद रूप हैं। अतएव इनमें स्वसंयोगी भंग भी होते हैं।।८४४।।

इस गाथा के विषय की तालिका पृष्ठ क्र. –(गाथा ८२३)– पर देखें

अयदुवसमगचउक्के एक्कं दो उवसमस्स जादिपदो।
खइगपदं तत्थेक्कं खवगे जिणसिद्धगेसु दु पण चदू।।८४५।।
मिच्छतिये मिस्सपदा तिण्णि य अयदम्मि होंति चत्तारि।
देसतिये पंचपदा तत्तो खीणोत्ति तिण्णिपदा।।८४६।।
मिच्छे अट्ठुदयपदा ते तिसु सत्तेव तो सवेदोत्ति।
छस्सुहुमोत्ति य पणगं खीणोत्ति जिणेसु चदुतिदुगं।।८४७।।
मिच्छे परिणामपदा दोण्णि य सेसेसु होदि एक्कं तु।
जातिपदं पडि वोच्छं मिच्छादिसु भंगपिंडं तु।।८४८।।

अर्थ – औपशमिक भाव के जातिपद असंयतादि चार में सम्यक्त्वरूप एक ही है, उपशमश्रेणी के चार गुणस्थानों में सम्यक्त्व और चारित्र ऐसे दो जातिपद हैं। क्षायिकभाव के जातिपद असंयतादि चार में क्षायिक सम्यक्त्वरूप एक ही है, क्षपकश्रेणी के चार गुणस्थानों में सम्यक्त्व और चारित्र ऐसे दो जातिपद हैं, सयोगी-अयोगी के सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, लब्धि – ऐसे ५ जातिपद हैं, सिद्धों में चारित्र के बिना ४ जातिपद होते हैं।।८४५।।

अर्थ – मिश्रभाव के जातिपद मिथ्यात्वादि तीन में ३-३ हैं, असंयत में चारित्र के बिना ४ हैं, देशसंयतादि तीन में ५ पद हैं, उसके बाद क्षीणमोह तक ३ पद हैं।।८४६।।

अर्थ – औदयिक भाव के जातिपद मिथ्यात्व में ८, सासादनादि तीन में ७, आगे अनिवृत्तिकरण के सवेद भाग तक ६, सूक्ष्म सांपराय तक ५, आगे क्षीणमोह तक ४, सयोगी में ३, अयोगी में २ हैं।।८४७।।

अर्थ – पारिणामिक भाव के जातिपद मिथ्यात्व में २ हैं। शेष गुणस्थानों में १ ही है। मिथ्यात्वादि में अब जातिपद की अपेक्षा भंगों के समुदाय को कहता हूँ।।८४८।।

उत्तर भावों के जातिपद

गुणस्थान	औपशमिक	क्षायिक	क्षायोपशमिक		औदयिक		पारिणामिक	
१			३	अज्ञान, दर्शन, लब्धि	८	गति, कषाय, लिंग, लेश्या, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व	२	भव्यत्व, अभव्यत्व
२			”		७	गति, कषाय, लिंग, लेश्या, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व	१	भव्यत्व
३			३	ज्ञान, दर्शन, लब्धि	”		”	

गुणस्थान	औपशमिक	क्षायिक	क्षायोपशमिक	औदयिक	पारिणामिक
४	१ सम्यक्त्व	१ सम्यक्त्व	४ ज्ञान, दर्शन, लब्धि सम्यक्त्व	७ गति, कषाय, लिंग, लेश्या, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व	१ भव्यत्व
५	”	”	५ ज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, देशसंयम	६ गति, कषाय, लिंग, लेश्या, अज्ञान, असिद्धत्व	”
६–७	”	”	५ ज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, सरागचारित्र	”	”
उपशम श्रेणी ८–९ सवेद	२ सम्यक्त्व, चारित्र	”	३ ज्ञान, दर्शन, लब्धि	”	”
उपशम श्रेणी ९ अवेद से १०	”	”	”	५ गति, कषाय, लेश्या अज्ञान, असिद्धत्व	”
उपशम श्रेणी ११	”	”	”	४ गति, लेश्या, अज्ञान असिद्धत्व	”
क्षपक श्रेणी ८–९ सवेद		२ सम्यक्त्व, चारित्र	”	६ गति, कषाय, लिंग, लेश्या, अज्ञान, असिद्धत्व	”
क्षपक श्रेणी ९ अवेद से १०		”	”	५ गति, कषाय, लेश्या अज्ञान, असिद्धत्व	”
क्षपक श्रेणी १२		”	”	४ गति, लेश्या, अज्ञान असिद्धत्व	”
१३		५ सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, लब्धि		३ गति, लेश्या, असिद्धत्व	”
१४		”		२ गति, असिद्धत्व	”
सिद्ध		४ सम्यक्त्व, ज्ञान दर्शन, लब्धि			१ जीवत्व
कुल	२	५	७	८	३

अट्ठ गुणिज्ञा वामे तिसु सग छच्चउसु छक्क पणगं च।
थूले सुहुमे पणगं दुसु चउतियदुगमदो सुण्णं।।८४९।।
बारट्ठट्ठछवीसं तिसु तिसु बत्तीसयं च चउवीसं।
तो तालं चउवीसं गुणगारा बार बार णभं।।८५०।।
वामे चउदस दुसु दस अडवीसं तिसु हवंति चोत्तीसं।
तिसु छव्वीस दुदालं खेवा छव्वीस बार बार णवं।।८५१।।
एक्कारं दसगुणियं दुसु छावट्ठी दसाहियं बिसयं।
तिसु छव्वीसं बिसयं वेदुवसामोत्ति दुसय बासीदी।।८५२।।
बादालं बेण्णिसया तत्तो सुहुमोत्ति दुसय दोसहियं।
उवसंतम्मि य भंगा खवगेसु जहाकमं वोच्छं।।८५३।।जुम्मं।
सत्तरसं दशगुणिदं वेदित्ति सयाहियं तु छादालं।
सुहुमोत्ति खीणमोहे बावीससयं हवे भंगा।।८५४।।
अडदालं छत्तीसं जिणेसु सिद्धेसु होंति णव भंगा।
एत्तो सव्वपदं पडि मिच्छादिसु सुणह वोच्छामि।।८५५।।जुम्मं।

अर्थ – मिथ्यात्व में गुण्य ८, सासादनादि तीन में ७, देशसंयतादि ३ और क्षपकश्रेणी-उपशमश्रेणी का अपूर्वकरण – ऐसे चार गुणस्थानों में ६, अनिवृत्तिकरण में ६ व ५, सूक्ष्म सांपराय में ५, उपशांतमोहादि दो में ४, सयोगी में ३, अयोगी में २ गुण्य हैं। सिद्ध भगवान के शून्य है।।८४९।।

अर्थ – मिथ्यात्व में गुणकार १२, सासादन में ८, मिश्र में ८, असयंत में २६, देशसंयतादि तीन में ३२, क्षपक अपूर्वकरणादि तीन में २४, उपशमक अपूर्वकरणादि चार में ४०, क्षीणमोह में २४, सयोगी में १२ और अयोगी में १२ हैं। सिद्ध भगवान के शून्य है।।८५०।।

अर्थ – मिथ्यात्व में क्षेप १४, सासादनादि दो में १०, असंयत में २८, देशसंयतादि तीन में ३४, क्षपक अपूर्वकरणाादि तीन में २६, उपशमक अपूर्वकरणाादि चार में ४२, क्षीणमोह में २६, सयोगी के १२, अयोगी के १२, सिद्ध के ९ है।।८५१।।

अर्थ – मिथ्यात्व में ११० भंग हैं, सासादनादि दो में ६६ हैं, असंयत में दस अधिक दो सौ (२१०), देशसंयतादि तीन में २२६, उपशमक अपूर्वकरणाादि अनिवृत्तिकरण के सवेदभाग तक २८२ हैं। आगे उपशमक वेदरहित अनिवृत्तिकरण से सूक्ष्म सांपराय तक २४२ हैं, उपशांतमोह में २०२ है। क्षपक में यथाक्रम से कहता हूँ।।८५२-८५३।।

अर्थ – अपूर्वकरण से सवेद अनिवृत्तिकरण तक दस गुणा सत्रह १७०, वेदरहित अनिवृत्तिकरण से सूक्ष्म सांपराय तक १४६, क्षीणमोह में १२२ भंग होते हैं। सयोगी के ४८, अयोगी के ३६, सिद्ध के ९ भंग होते हैं। आगे अब मैं सर्व पदों की अपेक्षा मिथ्यात्वादि में भंग कहता हूँ। सो हे भव्यो! तुम सुनो।।८५४-८५५।।

उत्तर भावों के जातिपद भंग

* गुण्य, गुणकार, क्षेप आदि पूर्ववत निकालना
* स्वसंयोगी भंग क्षेपरूप जानना

गुणस्थान	भाव	जाति पद	गुणकार क्षेप	भंग प्रत्येक	द्वि.	त्रि.	चतुः	पंच.	स्व.	गुण. क्षेप	गुण्य	गुण्य× गुणकार	कुल भंग
१	औद.	१	गुणकार	१	५	६				१२	८	८×१२	९६+
	क्षायो.	३	क्षेप	५	६	०			३	१४		= ९६	१४=
	पारि.	२											११०
२,३	औद.	१	गुणकार	१	४	३				८	७	७×८	५६+
	क्षायो.	३	क्षेप	४	३	०			३	१०		= ५६	१०=
	पारि.	१											६६
४*	औद.	१	गुणकार	१	७	१२	६			२६	७	७×२६	१८२
	औप.	१	क्षेप	७	१२	६	०		३	२८		= १८२	+२८=
	क्षा.	१											२१०
	क्षायो.	४											
	पारि.	१											
५,६,७*	औद.	१	गुणकार	१	८	१५	८			३२	६	६×३२	१९२
	औप.	१	क्षेप	८	१५	८	०		३	३४		= १९२	+३४=
	क्षा.	१											२२६
	क्षायो.	५											
	पारि.	१											
उपशम श्रेणी* ८-९ सवेद	औद.	१	गुणकार	१	७	१६	१३	३		४०	६	६×४०	२४०
	औप.	२	क्षेप	७	१६	१३	३	०	३	४२		= २४०	+४२=
	क्षा.	१											२८२
	क्षायो.	३											
	पारि.	१											
९ अवेद से १०	"	"	"	"	"	"	"	"	"	४०	५	५×४०	२००+४२
										४२		= २००	=२४२
११	"	"	"	"	"	"	"	"	"	४०	४	४×४०	१६०+४२
										४२		= १६०	=२०२

गुणस्थान		भाव	जाति पद	गुणकार क्षेप	भंग प्रत्येक	द्वि.	त्रि.	चतुः	पंच.	स्व.	गुण. क्षेप	गुण्य	गुण्य× गुणकार	कुल भंग
क्षपक श्रेणी	८-९ सवेद	औद.	१	गुणकार	१	६	११	६			२४	६	६×२४	१४४
		क्षा.	२	क्षेप	६	११	६	०		३	२६		= १४४	+२६=
		क्षायो.	३											१७०
		पारि.	१											
	९ अवेद से १०	”	”	”	”	”	”	”	”	”	२४	५	५×२४	१२०+२६
											२६		= १२०	=१४६
	१२	”	”	”	”	”	”	”	”	”	२४	४	४×२४	९६+२६
											२६		= ९६	=१२२
१३		औद.	१	गुणकार	१	६	५				१२	३	३×१२	३६+
		क्षा.	५	क्षेप	६	५	०			१	१२		= ३६	१२=
		पारि.	१											४८
१४		”	”	”	”	”	”	”	”	”	१२	२	२×१२	२४+१२
											१२		= २४	=३६
सिद्ध		क्षा.	४	क्षेप	५	४					९			९
		पारि.	१											
		** यहाँ तीनों सम्यक्त्व के संयोगरुप भंग नहीं है, क्योंकि एक काल में कोई एक ही सम्यक्त्व पाया जाता हैं*												

भव्विदराणण्णदरं गदीण लिंगाण कोहपहुदीणं।
इगिसमये लेस्साणं सम्मत्ताणं च णियमेण।।८५६।।

अर्थ - एक समय में एक जीव के भव्यत्व, अभव्यत्व इन दोनों में से एक ही नियम से होता हैं। गति, लिंग, क्रोधादि कषाय, लेश्या, सम्यक्त्व इनमें भी अपने-अपने भेदों में से १-१ ही एक समय में होता है, इस कारण ये पिंडपद हैं। क्योंकि एक काल में एक जीव के जिस भावसमूह में से १-१ ही पाये जाये उस भाव को पिंडपद कहते हैं।।८५६।।

सर्वपद के प्रकार

	पिंड पद	प्रत्येक पद
स्वरूप	वह भाव समूह जिसमें १ काल में १ जीव के.... ......१-१ ही पाया जाये	.....युगपद् भी पाये जाये
उदाहरण	***जैसे–*** ४ गति में से १ जीव के, एक काल में एक ही गति पायी जाती हैं	***जैसे–*** ज्ञान, लब्धि
अन्य नाम	प्रतिपक्ष से समानता होने से इसे **सदृश्यपद** भी कहते हैं	प्रतिपक्ष से समानता नहीं होने से इसे **असदृश्यपद** भी कहते हैं

पत्तेयपदा मिच्छे पण्णरसा पंच चेव उवजोगा।
दाणादी ओदयिये चत्तारि य जीवभावो य।।८५७।।
पिंडपदा पंचेव य भव्विदरदुगं गदी य लिंगं च।
कोहादी लेस्सावि य इदि वीसपदा हु उड्ढेण।।८५८।।

अर्थ – एक समय में जो युगपद् पाये जाये उसे प्रत्येक पद कहते हैं। ये प्रत्येक पद मिथ्यात्व में ५ उपयोग, दानादि ५ लब्धि, औदयिक भावों के ४ और १ जीवत्व भाव – ऐसे कुल १५ प्रत्येक पद हैं।।८५७।।

अर्थ – मिथ्यात्व गुणस्थान में ५ पिंडपद हैं, भव्य-अभव्य का युगल, गति, लिंग, क्रोधादि कषाय और लेश्या – ऐसे सब मिलकर १५+५ = २० पद होते हैं, सो इनको ऊपर-ऊपर स्थापन करना।।८५८।।

मिथ्यात्व में पद

प्रत्येक पद	१५	१०	३ कुज्ञान, २ दर्शन, ५ लब्धि
		४	मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व
		१	जीवत्व
पिंड पद	५	१	भव्य-अभव्य युगल
		४	गति, लिंग, कषाय, लेश्या
कुल	२०		

पत्तेयाणं उवरिं भव्विदरदुगस्स होदि गदि लिंगे।
कोहादिलेस्ससम्मत्ताणं रयणा तिरिच्छेण।।८५९।।

अर्थ – प्रत्येक पदों के ऊपर स्थापित भव्य अभव्य युगल, गति, लिंग, क्रोधादि कषाय, लेश्या और सम्यक्त्व इनकी रचना तिरछी (बराबर) करना।।८५९।।

मिथ्यात्व में रचना

पद	मिथ्यात्व में रचना	भेद
पिंड पद (तिर्यक् रचना)	कृ. नी. का. पी. प. शु.	पण्णट्ठी×३२६४
	क्रो. मा. मा. लो.	पण्णट्ठी×२८८
	पु. स्त्री न.	पण्णट्ठी×३६
	न. ति. म. दे.	पण्णट्ठी×८
	भ. अ.	पण्णट्ठी
प्रत्येक पद (उर्ध्व रचना)	जीवत्व	१६३८४
	असिद्धित्व	८१९२
	असंयम	४०९६
	अज्ञान	२०४८
	मिथ्यात्व	१०२४
	वीर्य	५१२
	उपभोग	२५६
	भोग	१२८
	लाभ	६४
	दान	३२
	अचक्षु	१६
	चक्षु	८
	विभंग	४
	कुश्रुत	२
	कुमति	१

एक्कादी दुगुणकमा एक्केक्कं रुधिऊण हेट्ठम्मि।
पदसंजोगे भंगा गच्छं पडि होंति उवरुवरिं।।८६०।।
इट्ठपदे रुऊणे दुगसंवग्गम्मि होदि इट्ठधणं।
असरित्थाणंतधणं दुगुणेगूणे सगीयसव्वधणं।।८६१।।

अर्थ – एक से लेकर दोगुणा-दोगुणा अनुक्रम से १-१ पद का आश्रय करके नीचे-नीचे के पदों के संयोग से गच्छ जितनेवां पद हो, उसके प्रमाण के प्रति ऊपर-ऊपर के भंग होते हैं।।८६०।।

अर्थ – विवक्षित जितनेवां पद हो उसमें एक कम करने से जो शेष रहे उतने २-२ के अंक

लिखकर वर्ग करने से (आपस में गुणा करने से) विवक्षित पद में भंगों का प्रमाणरूप इष्टधन होता है। यही प्रत्येकपद का अंतधन है। इस इष्टधन को दोगुणा करके उसमें एक घटाने से जो प्रमाण हो उतना प्रथमपद से लेकर विवक्षित पद तक सर्व पदों के भंगों का जोड़रूप सर्वधन होता है।।८६१।।

मिथ्यात्व गुणस्थान में प्रत्येक पद के कुल भंग :

पण्णट्ठी=पण.

प्रत्येक पद	प्रत्येक भंग	द्विसंयोगी आदि भंग	कुल भंग	कितनेवां पद (n)	कुल भंग निकालने का सूत्र $(२)^{n-१}$	प्रथम पद से विवक्षित पद तक सर्व पदों के जोड़ रुप सर्व धन =(कुल भंग×२)−१
जीवत्व	पृष्ठ क्र. गाथा ७९९ सूत्र से जानें की प्रत्येक, द्विसंयोगी आदि भंग किस प्रकार प्राप्त होंगे		१६३८४ $= \frac{पण.}{४}$	१५	$(२)^{१५-१}=२^{१४}$	(१६३८४×२)−१=३२७६७ $२^{n}-१=२^{१५}-१=\frac{पण्णट्ठी}{२}-१$
असिद्धत्व			८१९२	१४	$२^{१३}$	$=२^{१४}-१=\frac{पण्णट्ठी}{४}-१$
असंयम			४०९६	१३	$२^{१२}$	
अज्ञान			२०४८	१२	$२^{११}$	
मिथ्यात्व			१०२४	११	$२^{१०}$	
वीर्य			५१२	१०	$२^{९}$	
उपभोग			२५६	९	$२^{८}$	
भोग			१२८	८	$२^{७}$	
लाभ			६४	७	$२^{६}$	
दान			३२	६	$२^{५}$	
अचक्षु			१६	५	$२^{४}$	
चक्षु			८	४	$२^{३}$	
विभंग			४	३	$२^{२}$	
कुश्रुत			२	२	$२^{१}$	
कुमति			१	१	−	

आगे पिंडपद में १−१ गति, लिंग, कषाय, लेश्या के भंग दोगुणा−दोगुणा जानना

भव्य= जीवत्व×२= $\frac{पण्णट्ठी}{२}$	१गति= भव्यअभव्ययुगल ×२ =पण्णट्ठी×२	१लिंग=गति×२ २पण.×२=४पण.	१कषाय=लिंग×२ ४पण.×२ =८पण.	१लेश्या=कषाय×२ ८पण.×२ = १६पण.

मिथ्यात्व गुणस्थान में पिंडपद के कुल भंग

पण्णट्ठी=पण.

	नरक	तिर्यंच	मनुष्य	देव	कुल भंग
लेश्या	लिं.१,क.४,ले.३ १२ × १६पण. = १९२पण.	लिं.३,क.४,ले.६ ७२ × १६पण. = ११५२पण.	लिं.३,क.४,ले.६ ७२ × १६पण. = ११५२पण.	लिं.२,क.४,ले.६ ४८ × १६पण. = ७६८पण.	२०४×१६पण. = ३२६४पण.
कषाय	लिं.१, क.४ ४ × ८पण. = ३२पण.	लिं.३, क.४ १२ × ८पण. = ९६पण.	लिं.३, क.४ १२ × ८पण. = ९६पण.	लिं.२, क.४ ८ × ८पण. = ६४पण.	३६ × ८पण. = २८८पण.
लिंग	लिं.१ × ४पण. = ४पण.	लिं.३ × ४पण. = १२पण.	लिं.३ × ४पण. = १२पण.	लिं.२ × ४पण. = ८पण.	९ × ४पण. = ३६पण.
गति	**नरक**	**तिर्यंच**	**मनुष्य**	**देव**	**कुल भंग**
	२पण.	२पण.	२पण.	२पण.	८पण.
भव्य-अभव्य	**भव्यत्व**		**अभव्यत्व**		**कुल भंग**
	जीवत्व के भंग × २ = $\frac{\text{पण्णट्ठी}}{२}$		जीवत्व के भंग × २ = $\frac{\text{पण्णट्ठी}}{२}$		पण्णट्ठी
पिंडपदों के कुलभंग					**३५९७पण.**

तेरिच्छा हु सरित्था अविरददेसाण खयियसम्मत्तं।
मोत्तूण संभवं पडि खयिगस्सवि आणए भंगे।।८६२।।

अर्थ – गुणस्थानों में बताये गये पिंडपदरूप भावों की तिर्यक्(बरोबर) रचना कर और असंयत व देशसंयत गुणस्थान में क्षायिक सम्यक्त्व को छोड़कर अन्यभावों में गुणस्थानों का आश्रयकर यथासंभव भंग जानना। उन दोनों स्थानों में क्षायिक सम्यक्त्व के यथासंभव जुदे-जुदे भंग जानना।।८६२।।

इस गाथा के विषय की तालिका पृष्ठ क्र. -(गाथा ८६४-६५)- पर देखें

उड्ढतिरिच्छपदाणं दव्वसमासेण होदि सव्वधणं।
सव्वपदाणं भंगे मिच्छादिगुणेसु णियमेण।।८६३।।

अर्थ – मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में ऊर्ध्व रचना वाले प्रत्येकपद और तिर्यक् रचना वाले पिंडपद के भंगरूप धन को मिलाने से उस रूप गुणस्थान के सर्वपदों का भंगरूप सर्वधन नियम से होता है।।८६३।।

मिथ्यात्व गुणस्थान में कुल सर्वपद भंग

$$= \text{पिंडपद के कुल भंग} + \text{प्रत्येकपद के कुल भंग} = \text{३५९७ पण्णट्ठी} + \left(\frac{\text{पण्णट्ठी}}{\text{२}} - \text{१}\right)$$

$$= \text{पण्णट्ठी}\left(\frac{\text{३५९७}\times\text{२} + \text{१}}{\text{२}}\right) - \text{१} = \text{पण्णट्ठी}\times\frac{\text{७१९५}}{\text{२}} - \text{१}$$

मिच्छादीणं दुति दुसु अपुव्वअणियट्टिखवगसमगेसु।
सुहुमुवसमगे संते सेसे पत्तेयपदसंखा।।८६४।।
पण्णर सोलट्ठारस वीसुगुवीसं च वीसमुगुवीसं।
इगिवीस वीसचउदसतेरसपणगं जहाकमसो।।८६५।।जुम्मं।

अर्थ – वे प्रत्येकपद क्रम से मिथ्यात्वादि दो में १५, मिश्रादि तीन में १६, प्रमत्तादि दो में १८, क्षपकश्रेणि के अपूर्व और अनिवृत्तिकरण में २० तथा उपशमश्रेणि में इन दोनों गुणस्थानों में १९, उपशमक सूक्ष्मसांपराय में २०, उपशांतमोह में १९, शेष क्षपक सूक्ष्मसांपराय में २१, क्षीणमोह में २०, सयोगी में १४, अयोगी में १३, सिद्ध में ५ जानना।।८६४-८६५।।

मिथ्यात्वादि गुणस्थान में प्रत्येक पद की संख्या

गुणस्थान	१-२	३ से ५	६-७	उपशमक			क्षपक			१३	१४	सिद्ध
				८-९	१०	११	८-९	१०	१२			
पदसंख्या	१५	१६	१८	१९	२०	१९	२०	२१	२०	१४	१३	५

सासादन गुणस्थान में प्रत्येक पद के कुल भंग

प्रत्येक पद*	कुल भंग	कितनेवां पद (n)	समस्त पदों के कुल भंग	
भव्यत्व**	१६३८४	१५	$\text{२}^n - \text{१} = \text{२}^{\text{१५}} - \text{१} = \frac{\text{पण्णट्ठी}}{\text{२}} - \text{१}$	*ये विषय सम्यग्ज्ञान चंद्रिका की गाथा ८६१ की टीका से लिया गया है*
जीवत्व	८१९२	१४	$= \text{२}^{\text{१४}} - \text{१} = \frac{\text{पण्णट्ठी}}{\text{४}} - \text{१}$	
असिद्धित्व	४०९६	१३		
असंयम	२०४८	१२		
अज्ञान	१०२४	११		
वीर्य	५१२	१०		
उपभोग	२५६	९		

भोग	१२८	८		
लाभ	६४	७		
दान	३२	६		
अचक्षु	१६	५		
चक्षु	८	४		
विभंग	४	३		
कुश्रुत	२	२		
कुमति	१	१		
** मिथ्यात्व प्रत्येक पद का अभाव है*				
*** अभव्यत्व का अभाव होने से भव्यत्व भी प्रत्येक पद होगा*				

सासादन गुणस्थान में पिंडपद के कुल भंग

	नरक	तिर्यंच	मनुष्य	देव	कुल भंग
लेश्या	लिं.१,क.४,ले.३ १२ × ४पण. = ४८पण.	लिं.३,क.४,ले.६ ७२ × ४पण. = २८८पण.	लिं.३,क.४,ले.६ ७२ × ४पण. = २८८पण.	लिं.२,क.४,ले.६ ४८ × ४पण. = १९२पण.	२०४ × ४पण. = ८१६पण.
कषाय	लिं.१, क.४ ४ × २पण. = ८पण.	लिं.३, क.४ १२ × २पण. = २४पण.	लिं.३, क.४ १२ × २पण. = २४पण.	लिं.२, क.४ ८ × २पण. = १६पण.	३६ × २पण. = ७२पण.
लिंग	लिं.१ × पण. = पण.	लिं.३ × पण. = ३पण.	लिं.३ × पण. = ३पण.	लिं.२ × पण. = २पण.	९ × पण. = ९पण.
गति	**नरक**	**तिर्यंच**	**मनुष्य**	**देव**	
	पणट्ठी / २	पणट्ठी / २	पणट्ठी / २	पणट्ठी / २	२ पणट्ठी
पिंडपदों के कुलभंग					**८९९पण.**
ये विषय सम्यग्ज्ञान चंद्रिका की गाथा ८६१ की टीका से लिया गया है					

सासादन गुणस्थान में कुल सर्वपद भंग

$$\text{८९९पणट्ठी}+\frac{\text{पणट्ठी}}{\text{२}} - \text{१} = \text{पणट्ठी}\left(\frac{\text{८९९}\times\text{२} + \text{१}}{\text{२}}\right) - \text{१} = \text{पणट्ठी}\times\frac{\text{१७९९}}{\text{२}} - \text{१}$$

मिश्रादि गुणस्थानों में प्रत्येक पद भंग रचना

गुणस्थान / प्रत्येकपद	३	४	५	६–७	उपशमक श्रेणी		
					८–९	१०	११
कषाय						८ × पण.	
लेश्या					४ × पण.	४ × पण.	४ × पण.
गति				२ × पण.	२ × पण.	२ × पण.	२ × पण.
भव्यत्व	३२७६८	३२७६८	३२७६८	६५५३६	६५५३६	६५५३६	६५५३६
जीवत्व	१६३८४	१६३८४	१६३८४	३२७६८	३२७६८	३२७६८	३२७६८
औप. चारित्र					१६३८४	१६३८४	१६३८४
क्षायो.चारित्र				१६३८४			
असिद्धित्व	८१९२	८१९२	८१९२	८१९२	८१९२	८१९२	८१९२
देशसंयम			४०९६				
असंयम	४०९६	४०९६					
अज्ञान	२०४८	२०४८	२०४८	४०९६	४०९६	४०९६	४०९६
वीर्य	१०२४	१०२४	१०२४	२०४८	२०४८	२०४८	२०४८
उपभोग	५१२	५१२	५१२	१०२४	१०२४	१०२४	१०२४
भोग	२५६	२५६	२५६	५१२	५१२	५१२	५१२
लाभ	१२८	१२८	१२८	२५६	२५६	२५६	२५६
दान	६४	६४	६४	१२८	१२८	१२८	१२८
अवधिदर्शन	३२	३२	३२	६४	६४	६४	६४
अचक्षुदर्शन	१६	१६	१६	३२	३२	३२	३२
चक्षुदर्शन	८	८	८	१६	१६	१६	१६
मन:पर्ययज्ञान				८	८	८	८
अवधि	४	४	४	४	४	४	४
श्रुत	२	२	२	२	२	२	२
मति	१	१	१	१	१	१	१
कुल भंग	**पण.–१**	**पण.–१**	**पण.–१**	**४पण.–१**	**८पण.–१**	**१६पण.–१**	**८पण.–१**
ये विषय सम्यग्ज्ञान चंद्रिका की गाथा ८६१ की टीका से लिया गया है							

क्षपक श्रेणी में प्रत्येक पद भंग

गुणस्थान / प्रत्येकपद	क्षपक श्रेणी		
	८–९	१०	१२
सम्यक्त्व	८ × पण.	१६ × पण.	८ × पण.
कषाय		८ × पण.	
लेश्या	४ × पण.	४ × पण.	४ × पण.
गति	२ × पण.	२ × पण.	२ × पण.
भव्यत्व	६५५३६	६५५३६	६५५३६
जीवत्व	३२७६८	३२७६८	३२७६८
क्षा. चारित्र	१६३८४	१६३८४	१६३८४
असिद्धित्व	८१९२	८१९२	८१९२
अज्ञान	४०९६	४०९६	४०९६
वीर्य	२०४८	२०४८	२०४८
उपभोग	१०२४	१०२४	१०२४
भोग	५१२	५१२	५१२
लाभ	२५६	२५६	२५६
दान	१२८	१२८	१२८
अवधिदर्शन	६४	६४	६४
अचक्षुदर्शन	३२	३२	३२
चक्षुदर्शन	१६	१६	१६
मन:पर्ययज्ञान	८	८	८
अवधि	४	४	४
श्रुत	२	२	२
मति	१	१	१
कुल भंग	१६पण.–१	३२पण.–१	१६पण.–१

ये विषय सम्यग्ज्ञान चंद्रिका की गाथा ८६१ की टीका से लिया गया है

सयोगी, अयोगी, सिद्ध में प्रत्येक पद भंग

गुणस्थान / प्रत्येकपद	१३	१४	सिद्ध
लेश्या	८१९२		
मनुष्यगति	४०९६	४०९६	
भव्यत्व	२०४८	२०४८	
जीवत्व	१०२४	१०२४	१६
असिद्धत्व	५१२	५१२	
क्षा. वीर्य/ अनंत वीर्य	२५६	२५६	८
क्षा. उपभोग	१२८	१२८	
क्षा. भोग	६४	६४	
क्षा. लाभ	३२	३२	
क्षा. दान	१६	१६	
यथाख्यात चारित्र	८	८	
क्षा.सम्यक्त्व	४	४	४
केवलदर्शन	२	२	२
केवलज्ञान	१	१	१
कुल भंग	१६३८३	८१९१	३१

ये विषय सम्यग्ज्ञान चंद्रिका की गाथा ८६१ की टीका से लिया गया है

सयोगी, अयोगी, सिद्ध में प्रत्येक पद भंग

यहाँ पिंडपद न होने से प्रत्येक पद ही सर्व पद हैं

मिश्रादि गुणस्थानों में पिंडपद के कुल भंग

मिश्र गुणस्थान					
	नरक	**तिर्यंच**	**मनुष्य**	**देव**	**कुल भंग**
लेश्या	लिं.१,क.४,ले.३ १२ × ८पण. = ९६पण.	लिं.३,क.४,ले.६ ७२ × ८पण. = ५७६पण.	लिं.३,क.४,ले.६ ७२ × ८पण. = ५७६पण.	लिं.२,क.४,ले.३ २४ × ८पण. = १९२पण.	१८० × ८पण. = १४४०पण.
कषाय	लिं.१, क.४ ४ × ४पण. = १६पण.	लिं.३, क.४ १२ × ४पण. = ४८पण.	लिं.३, क.४ १२ × ४पण. = ४८पण.	लिं.२, क.४ ८ × ४पण. = ३२पण.	३६ × ४पण. = १४४पण.
लिंग	लिं.१ × २पण. = २पण.	लिं.३ × २पण. = ६पण.	लिं.३ × २पण. = ६पण.	लिं.२ × २पण. = ४पण.	९ × २पण. = १८पण.
गति	पण्णट्ठी	पण्णट्ठी	पण्णट्ठी	पण्णट्ठी	४ पण्णट्ठी
कुल पिंडपद भंग					**१६०६पण.**
अवरित सम्यक्त्व गुणस्थान					
				पूर्वोक्त =	१६०६पण.
सम्यक्त्व	**उपशम**		**वेदक**		+
सम्यक्त्व	पूर्वोक्त लेश्या के १८० × १६पण. = १४४०पण. × २ = २८८०पण.		पूर्वोक्त लेश्या के १८० × १६पण. = १४४०पण. × २ = २८८०पण.		= ५७६०पण.
क्षायिक सम्यक्त्व बिना कुल पिंडपद भंग					**७३६६पण.**
अवरित सम्यक्त्व - क्षायिक सम्यक्त्व					
	नरक	**तिर्यंच**	**मनुष्य**	**देव**	**कुल भंग**
सम्यक्त्व	लिं.१,क.४,,ले.१ (कापोत लेश्या) ४ × १६पण. =६४पण.	लिं.१,क.४,ले.४ (कापोत, ३शुभ लेश्या) १६ × १६पण. =२५६पण.	लिं.३,क.४,ले.६ ७२ × १६पण. = ११५२पण.	लिं.१,क.४,ले.३ (३ शुभ लेश्या) १२ × १६पण. = १९२पण.	१०४×१६पण. = १६६४पण.
क्षायिक सम्यक्त्व कुल पिंडपद भंग					**१६६४पण.**
ये विषय सम्यग्ज्ञान चंद्रिका की गाथा ८६१ की टीका से लिया गया है					

देशविरत गुणस्थान			
	तिर्यंच	मनुष्य	कुल भंग
सम्यक्त्व	लिं.३,क.४,ले.३,स.२ ७२ × १६पण.= ११५२पण.	लिं.३,क.४,ले.३,स.२ ७२ × १६पण.= ११५२पण.	१४४ × १६पण. = २३०४पण.
लेश्या	लिं.३,क.४,ले.३ ३६ × ८पण.= २८८पण.	लिं.३,क.४,ले.३ ३६ × ८पण.= २८८पण.	७२ × ८पण. = ५७६पण.
कषाय	लिं.३, क.४ १२ × ४पण.= ४८पण.	लिं.३, क.४ १२ × ४पण.= २४पण.	२४ × ४पण. = ९६पण.
लिं.	लिं.३ × २पण. = ६पण.	लिं.३ × २पण.= ६पण.	६×२पण.=१२पण.
गति	पण्णट्ठी	पण्णट्ठी	२ पण्णट्ठी
क्षायिक सम्यक्त्व बिना कुल पिंडपद भंग			**२९९०पण.**
देशविरत - क्षायिक सम्यक्त्व			**कुल पिंडपद**
सम्यक्त्व	क्षायिक सम्यक्त्व का अभाव हैं	लिं.३,क.४,ले.३,स.१ ३६ × १६पण.	**= १५७६पण.**

गुणस्थान		पिंडपद		भंग	कुल भंग	कुल पिंडपद
६–७		**सम्यक्त्व**	लिं.३,क.४,ले.३,स.३	१०८ × ३२पण.	= ३४५६पण.	
		लेश्या	लिं.३,क.४,ले.३	३६ × १६पण.	= ५७६पण.	
		कषाय	लिं.३, क.४	१२ × ८पण.	= ९६पण.	
		लिंग	लिं.३	३ × ४पण.	= १२पण.	**४१४०पण.**
उपशम श्रेणी	८–९ सवेद	**सम्यक्त्व**	लिं.३,क.४,स.२	२४ × ३२पण.	= ७६८पण.	
		कषाय	लिं.३, क.४	१२ × १६पण.	= १९२पण.	
		लिंग	लिं.३	३ × ८पण.	= २४पण.	**९८४पण.**
	९ अवेद	**सम्यक्त्व**	क.४,स.२	८ × १६पण.	= १२८पण.	
		कषाय	क.४	४ × ८पण.	= ३२पण.	**१६०पण.**
	१०	**सम्यक्त्व**	स.२	२ × १६पण.	= ३२पण.	**३२पण.**
	११	**सम्यक्त्व**	स.२	२ × ८पण.	= १६पण.	**१६पण.**
क्षपकश्रेणी	८–९ सवेद	**कषाय**	लिं.३, क.४	१२ × ३२पण.	= ३८४पण.	
		लिंग	लिं.३	३ × १६पण.	= ४८पण.	**४३२पण.**
	९ अवेद	**कषाय**	क.४	४ × १६पण.	= ६४पण.	**६४पण.**

मिच्छाइट्ठिप्पहुदिं खीणकसाओत्ति सव्वपदभंगा।
पण्णट्ठिं च सहस्सा पंचसया होंति छत्तीसा।।८६६।।
तग्गुणगारा कमसो पणणउदेयत्तरीसयाण दलं।
ऊणट्ठारसयाणं दलं तु सत्तहियसोलसयं।।८६७।।
तेवत्तरिं सयाइं सत्तावट्ठी य अविरदे सम्मे।
सोलस चेव सयाइं चउसट्ठी खयियसम्मस्स।।८६८।।
ऊणत्तीससयाइं एक्काणउदी य देसविरदम्मि।
छावत्तरि पंचसया खइयणरे णत्थि तिरियम्मि।।८६९।।
इगिदालं च सयाइं चउदालं च य पमत्त इदरे य।
पुव्वुवसमगे वेदाणियट्टिभागे सहस्समट्ठूणं।।८७०।।
अडसट्ठी एक्कसयं कसायभागम्मि सुहुमगे संते।
अडदालं चउवीसं खवगेसु जहाकमं वोच्छं।।८७१।।
अडदालं चारिसयापुव्वे अणियट्टिवेदभागे य।
सीदी कसायभागे ततो बत्तीस सोलं तु।।८७२।।
जोगिम्मि अजोग्गिम्मि य बेसदछप्पण्णयाण गुणगारा।
चउसट्ठी बत्तीसा गुणगुणिदेक्कूणया सव्वे।।८७३।।
सिद्धेसु सुद्धभंगा एक्कत्तीसा हवंति णियमेण।
सव्वपदं पडि भंगा असहायपरक्कमुद्दिट्ठा।।८७४।।

अर्थ – मिथ्यात्व से लेकर क्षीणमोह गुणस्थान तक सर्वपद भंगों का प्रमाण बताते हैं। वहाँ ६५५३६ गुण्य जानना, इस प्रमाण ही का नाम पण्णट्ठी है। इस गुण्य को आगे कहे जानेवाले गुणकारों से गुणा करते हैं।।८६६।।

अर्थ – उस गुण्य के गुणकार क्रम से इस प्रकार हैं – मिथ्यात्व में ७१९५ के आधे प्रमाण, सासादन में एक कम १८०० के आधे प्रमाण, मिश्र में १६०७ हैं।।८६७।।

अर्थ – असंयत सम्यक्त्व में ७३६७ गुणकार हैं और वहीं क्षायिक सम्यक्त्व में गुणकार १६६४ हैं।।८६८।।

अर्थ – देशसंयत में २९९१ गुणकार हैं। यहीं पर क्षायिक सम्यक्त्वी मनुष्य के ही ५७६ गुणकार हैं, ये तिर्यंच के नहीं हैं; क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्वी तिर्यंच देशव्रती नहीं होता हैं।।८६९।।

अर्थ – प्रमत्त और अप्रमत्त में ४१४४ गुणकार हैं, उपशम श्रेणी में अपूर्वकरण, सवेद अनिवृत्तिकरण में ८ कम एक हजार अर्थात् ९९२ हैं।।८७०।।

अर्थ – कषाय सहित और वेदरहित अनिवृत्तिकरण के भाग में १६८ गुणकार हैं, सूक्ष्मसांपराय में ४८ हैं, उपशांत मोह में २४ हैं। अब क्षपक श्रेणी में यथाक्रम से कहता हूँ।।८७१।।

अर्थ – अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के सवेदभाग में ४४८ गुणकार हैं, कषाय सहित वेद रहित अनिवृत्तिकरण के भाग में ८० हैं, उससे आगे सूक्ष्मसांपराय में ३२ और क्षीणमोह में १६ हैं।

ऐसे पण्णट्ठी के गुणकार कहे।८७२।।

अर्थ – सयोगी और अयोगी के २५६ गुण्य हैं, तथा गुणकार क्रम से ६४ और ३२ हैं। इस तरह गुण्य का गुणकारों के साथ गुणा करने पर जो प्रमाण हो उसमें एक कम करने से सर्वपद भंगों का प्रमाण होता है।।८७३।।

अर्थ – सिद्धों में गुण्य गुणकार के भेद रहित शुद्ध ३१ सर्वपद भंग नियम से होते हैं। इस प्रकार सहाय रहित पराक्रम वाले श्रीमहावीर स्वामी ने सर्वपदों के भंग कहे हैं।।८७४।।

मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में कुल सर्व पद भंग

गुणस्थान		कुल प्रत्येक पद	कुल पिंड पद	कुल सर्व पद (प्रत्येक और पिंड पदों का जोड़)
१		पण्णट्ठी/२ – १	३५९७ पण्णट्ठी	(७१९५/२ पण्णट्ठी) – १
२		”	८९९ पण्णट्ठी	(१७९९/२ पण्णट्ठी) – १
३		पण्णट्ठी – १	१६०६ पण्णट्ठी	१६०७ पण्णट्ठी – १
४		”	७३६६ पण्णट्ठी	७३६७ पण्णट्ठी – १
५		”	२९९० पण्णट्ठी	२९९१ पण्णट्ठी – १
६–७		४ पण्णट्ठी – १	४१४० पण्णट्ठी	४१४४ पण्णट्ठी – १
उपशम श्रेणी	८–९ सवेद	८ पण्णट्ठी – १	९८४ पण्णट्ठी	९९२ पण्णट्ठी – १
	९ अवेद	”	१६० पण्णट्ठी	१६८ पण्णट्ठी – १
	१०	१६ पण्णट्ठी – १	३२ पण्णट्ठी	४८ पण्णट्ठी – १
	११	८ पण्णट्ठी – १	१६ पण्णट्ठी	२४ पण्णट्ठी – १
क्षपक श्रेणी	८–९ सवेद	१६ पण्णट्ठी – १	४३२ पण्णट्ठी	४४८ पण्णट्ठी – १
	९ अवेद	”	६४ पण्णट्ठी	८० पण्णट्ठी – १
१०		३२ पण्णट्ठी – १		३२ पण्णट्ठी – १
१२		१६ पण्णट्ठी – १		१६ पण्णट्ठी – १
१३		१६३८३		१६३८३
१४		८१९१		८१९१
सिद्ध		३१		३१
क्षायिक सम्यक्त्व	४			१६६४ पण्णट्ठी – १
	५			५७६ पण्णट्ठी – १

आदेसेवि य एवं संभवभावेहिं ठाणभंगाणि।
पदभंगाणि य कमसो अव्वामोहेण आणेज्जो।।८७५।।

अर्थ – जैसे गुणस्थानों में भंग कहे वैसे ही आदेश अर्थात् मार्गणा स्थानों मे यथासंभव भावों के आश्रय से क्रम से स्थान भंग और पद भंग मोह रहित सावधान होकर यथासंभव जानना।।८७५।।

असिदिसदं किरियाणं अक्किरियाणं च आहु चुलसीदी।
सत्तट्ठण्णाणीणं वेणयियाणं तु बत्तीसं।।८७६।।

अर्थ – क्रियावादियों के १८०, अक्रियावादियों के ८४, अज्ञानवादियों के ६७ और वैनयिकवादियों के ३२ भेद हैं।।८७६।।

एकांतमतों के भेद

जिनमें सर्वथा एक नय का ग्रहण पाया जाये

- **क्रियावादी** → १८०
- **अक्रियावादी** → ८४
- **अज्ञानवादी** → ६७
- **वैनयिकवादी** → ३२

अत्थि सदो परदोवि य णिच्चाणिच्चत्तणेण य णवत्था।
कालीसरप्पणियदिसहावेहिं य ते हि भंगा हु।।८७७।।

अर्थ – प्रथम अस्ति ऐसा पद लिखना; उसके ऊपर स्वयं से, पर से, नित्यपने से, अनित्यपने से – ऐसे ४ पद लिखना; उनके ऊपर जीवादि ९ पदार्थ लिखना; उनके ऊपर काल, ईश्वर, आत्मा नियति, स्वभाव – ऐसे ५ पद लिखना – ऐसे १×४×९×५ = १८० भंग होते हैं।।८७७।।

क्रियावादीयों के मूल भंग

काल	ईश्वर		आत्मा		नियति		स्वभाव		५	**कुल भंग**
जीव	अजीव	पुण्य	पाप	आस्रव	संवर	निर्जरा	बंध	मोक्ष	९	**५×९×**
स्वयं से		पर से		नित्यपने से		अनित्यपने से			४	**४×१ =**
अस्ति									१	**१८०**
प्रमादों के भंगवत् अक्षसंचार विधान द्वारा मूल भंग के १८० भंग बनते हैं										

अत्थि सदो परदोवि य णिच्चाणिच्चत्तणेण य णवत्था।
एसिं अत्था सुगमा कालादीणं तु वोच्छामि।।८७८।।
कालो सव्वं जणयदि कालो सव्वं विणस्स्दे भूदं।
जागत्ति हि सुत्तेसुवि ण सक्कदे वंचिदुं कालो।।८७९।।

अण्णाणी हु अणीसो अप्पा तस्स य सुहं च दुक्खं च।
सग्गं णिरयं गमणं सव्वं ईसरकयं होदि।।८८०।।
एक्को चेव महप्पा पुरिसो देवो य सव्ववावी य।
सव्वंगणिगूढोवि य सचेयणो णिग्गुणो परमो।।८८१।।
जत्तु जदा जेण जहा जस्स य णियमेण होदि तत्तु तदा।
तेण तहा तस्स हवे इदि वादो णियदिवादो दु।।८८२।।
को करइ कंटयाणं तिक्खत्तं मियविहंगमादीणं।
विविहत्तं तु सहाओ इदि सव्वंपि य सहाओत्ति।।८८३।।

अर्थ - अस्ति, स्वयं से, पर से, नित्यपने से, अनित्यपने से - ये पाँच का व नव पदार्थ का अर्थ सुगम (सीधा) है। अतएव कालवाद आदि पाँचों का अर्थ क्रम से कहता हूँ।।८७८।।

अर्थ - काल ही सबको उत्पन्न करता है, काल ही सबका नाश करता है, सोते हुए प्राणियों को काल ही जगाता है - ऐसे काल के ठगने को कौन समर्थ हो सकता है? इस प्रकार काल ही से सब मानना यह कालवाद का अर्थ है।।८७९।।

अर्थ - आत्मा ज्ञानरहित है, अनीश अर्थात् अनाथ - कुछ करने में समर्थ नहीं है, उस आत्मा के सुख-दुःख, स्वर्ग-नरक में गमनादि सर्व ईश्वर द्वारा किया हुआ है। ऐसे सब ईश्वर द्वारा किया मानना ईश्वरवाद का अर्थ है।।८८०।।

अर्थ - संसार में एक ही महान् आत्मा है, वही पुरुष है, वही देव है और सर्व व्यापक है, सर्वांगपने से अगम्य (छुपा हुआ) है, चेतना सहित है, निर्गुण है और उत्कृष्ट है। ऐसे आत्मा से ही सबको मानना आत्मवाद का अर्थ है।।८८१।।

अर्थ - जो जिस काल में जिससे जैसे जिसके नियम से होना है वह उस काल में उससे तैसे उसके ही होता है - ऐसा नियम से ही सबको मानना उसे नियतिवाद कहते हैं।।८८२।।

अर्थ - काँटे को (आदि लेकर जो तीक्ष्ण चुभने वाली वस्तु हैं उनके) तीक्ष्णपना कौन करता है? मृग तथा पक्षी आदि के अनेक प्रकार पाये जाते है-उसे कौन करता है? ऐसा प्रश्न होने पर यही उत्तर मिलता है कि उसका कारण स्वभाव ही है। ऐसे सबको कारण के बिना स्वभाव से ही मानना स्वभाववाद का अर्थ है।।८८३।।

क्रियावादीयों के मूल भंग स्वरूप

भंग	अस्ति	स्वयं से	पर से	नित्य	अनित्य	पदार्थ	कालादि
स्वरूप	है	स्वरूप चतुष्टय	पररूप चतुष्टय	शाश्वत	क्षणिक	जीवादि नौ पदार्थ	आगे देखें

काल	ईश्वर	आत्मा	नियति	स्वभाव
काल ही से सब मानना	सब ईश्वर द्वारा किया मानना	आत्मा से ही सबको मानना	सब निश्चित ही मानना	सबका कारण स्वभाव ही मानना
देखें गाथा अर्थ ८७९ से ८८३				

णत्थि सदो परदोवि य सत्तपयत्था य पुण्णपाऊणा।
कालादियादिभंगा सत्तरि चदुपंतिसंजादा।।८८४।।
णत्थि य सत्तपदत्था णियदीदो कालदो तिपंतिभवा।
चोद्दस इदि णत्थित्ते अक्किरियाणं च चुलसीदी।।८८५।।

अर्थ - प्रथम नास्ति पद लिखना, उसके ऊपर स्वयं से, पर से - ये दो पद लिखना; उनके ऊपर पुण्य-पाप के बिना सात पदार्थ लिखना; उनके ऊपर काल को आदि लेकर ५ पद लिखना। ऐसे ४ पंक्तियों का गुणा करने से १×२×७×५ = ७० भंग होते हैं।।८८४।।

अर्थ - प्रथम नास्ति पद लिखना; उसके ऊपर सात पदार्थ लिखना; उनके ऊपर नियति, काल ऐसे दो पद लिखना - इस प्रकार तीन पंक्तियों के गुणा करने से १×७×२ = १४ भेद नास्तिपने से हैं। पहले के ७० और १४ ये सब मिलकर ८४ भेद अक्रियावादियों के होते हैं।।८८५।।

अक्रियावादीयों के ७० भंग

वस्तु को नास्तिरूप मानकर क्रिया का स्थापन नहीं करता

<table>
<tr><td colspan="2">काल</td><td colspan="2">ईश्वर</td><td colspan="2">आत्मा</td><td colspan="2">नियति</td><td>स्वभाव</td><td>५</td><td>कुल भंग</td></tr>
<tr><td>जीव</td><td colspan="2">अजीव</td><td>आस्रव</td><td colspan="2">संवर</td><td>निर्जरा</td><td colspan="2">बंध</td><td>मोक्ष</td><td>७</td><td rowspan="3">५×७×
२×१ =
७०</td></tr>
<tr><td colspan="4">स्वयं से</td><td colspan="5">पर से</td><td>२</td></tr>
<tr><td colspan="9">नास्ति</td><td>१</td></tr>
<tr><td colspan="11">प्रमादों के भंगवत् अक्षसंचार विधान द्वारा मूल भंग के ७० भंग बनते हैं</td></tr>
</table>

अक्रियावादीयों के १४ भंग

<table>
<tr><td colspan="4">नियति</td><td colspan="3">काल</td><td>२</td><td>कुल भंग</td></tr>
<tr><td>जीव</td><td>अजीव</td><td>आस्रव</td><td>संवर</td><td>निर्जरा</td><td>बंध</td><td>मोक्ष</td><td>७</td><td rowspan="2">२×७×१ =
१४</td></tr>
<tr><td colspan="7">नास्ति</td><td>१</td></tr>
<tr><td colspan="9">प्रमादों के भंगवत् अक्षसंचार विधान द्वारा मूल भंग के १४ भंग बनते हैं</td></tr>
</table>

अक्रियावादीयों के कुल भंग

७० + १४ = ८४ भंग

को जाणइ णवभावे सत्तमसत्तं दयं अवच्चमिदि।
अवयणजुद सत्ततयं इदि भंगा होंति तेसट्ठी।।८८६।।
को जाणइ सत्तचऊ भावं सुद्धं खु दोण्णिपंतिभवा।
चत्तारि होंति एवं अण्णाणीणं तु सत्तट्ठी।।८८७।।

अर्थ – जीवादि नव पदार्थों में से एक-एक को सप्त भंगों की अपेक्षा नहीं जानना। जैसे कि जीव अस्ति स्वरूप है ऐसा कौन जानता है? नास्ति, अथवा दोनों, अथवा अवक्तव्य, व बाकी तीन भंग मिले हुये – ऐसे ७ भंगों से – कौन जीव को जानता है? इस प्रकार ९ पदार्थों का ७ नयों से गुणा करने पर ६३ भंग होते हैं।।८८६।।

अर्थ – प्रथम शुद्धपदार्थ ऐसा लिखना; उसके ऊपर अस्ति, नास्ति, अस्तिनास्ति और अवक्तव्य ये चार लिखना, इन दोनों पंक्तियों से चार भंग उत्पन्न होते हैं। जैसे-शुद्धपदार्थ अस्ति आदिरूप है – ऐसा कौन जानता है? इत्यादि – ऐसे ४ तो ये और पूर्वोक्त ६३ सब मिलकर अज्ञानवाद के ६७ भेद होते हैं।।८८७।।

अज्ञानवादीयों के ६३ भंग

वस्तु का न जानना ही मानते हैं

जीव	अजीव	आस्रव	संवर	निर्जरा	बंध	मोक्ष	पुण्य	पाप	९	**कुल भंग**
अस्ति	नास्ति	अस्ति-नास्ति	अवक्तव्य	अस्ति अवक्तव्य	नास्ति अवक्तव्य	अस्ति नास्ति अवक्तव्य			७	**९×७ = ६३**
जैसे – जीव है कौन जानता है?, जीव नहीं है कौन जानता है? आदि										

अज्ञानवादीयों के ४ भंग

शुद्धपदार्थ				१	**कुल भंग**
अस्ति	नास्ति	अस्ति-नास्ति	अवक्तव्य	४	**१×४ = ४**

अज्ञानवादीयों के कुल भंग

६३ + ४ = ६७ भंग

मणवयणकायदाणगविणवो सुरणिवइणाणिजदिवुड्ढे।
बाले मादुपिदुम्मि च कायव्वो चेदि अट्ठचऊ।।८८८।।

अर्थ – देव, राजा, ज्ञानी, यति, बूढ़ा, बालक, माता, पिता – इन आठों का मन,वचन,काय और दान – इन चारों से विनय करना। इस प्रकार वैनयिकवाद के भेद ८×४ = ३२ होते हैं।।८८८।।

वैनयिकवादीयों के मूल भंग

गुण-अवगुण की परीक्षा रहित विनय ही से सिद्धि मानते हैं

देव	राजा	ज्ञानी	यति	बूढ़ा	बालक	माता	पिता	८	**कुल भंग**
मन		वचन		काय		दान		४	**८×४=३२**

सच्छंददिट्ठीहिं वियप्पियाणि तेसट्ठिजुत्ताणि सयाणि तिण्णि।
पाखंडिणं वाउलकारणाणि अण्णाणिचित्ताणि हरंति ताणि।।८८९।।

अर्थ – स्वच्छंद मनकल्पित दृष्टी अर्थात् श्रद्धानवाले जीवों के द्वारा कल्पित ३६३ पाखंडियों के वचन जीवों में व्याकुलता उत्पन्न करते हैं, मिथ्यात्व के उदय से अज्ञानी जीवों के चित्त को मोहित कर लेते हैं।।८८९।।

मिथ्या मान्यता का फल

- जीवों में व्याकुलता उत्पन्न करे
- अज्ञानी जीवों के चित्त को मोहित करे

आलसड्ढो णिरुच्छाहो फलं किंचिं ण भुंजदे।
थणक्खीरादिपाणं वा पउरुसेण विणा ण हि।।८९०।।
दइवमेव परं मण्णे धिप्पउरुसमणत्थयं।
एसो सालसमुत्तुंगो कण्णो हण्णइ संगरे।।८९१।।
संजोगमेवेति वदंति तण्णा णेवेक्कचक्केण रहो पयादि।
अंधो य पंगू य वणं पविट्ठा ते संपजुत्ता णयरं पविट्ठा।।८९२।।
सइउट्ठिया पसिद्धी दुव्वारा मेलिदेहिंवि सुरेहिं।
मज्झिमपंडवखित्ता माला पंचसुवि खित्तेव।।८९३।।

अर्थ – जो आलस्य से सहित हो, उद्यम करने में उत्साह रहित हो, वह कुछ भी फल नहीं भोगता। जैसे-स्तन का दूध पीना बिना पुरुषार्थ के कभी नहीं बन सकता। ऐसे पौरुषवादी पुरुषार्थ से ही सब कार्य की सिद्धि मानता है।८९०।।

अर्थ – मैं केवल दैव (भाग्य) को ही मानता हूँ, निरर्थक पुरुषार्थ को धिक्कार हो। देखो, साल वृक्ष की तरह ऊँचा कर्ण नाम का राजा, सो युद्ध में मारा गया – ऐसा दैववाद है। दैववादी दैव से ही सर्वसिद्धि मानता है।।८९१।।

अर्थ – तज्ञ संयोग से ही कार्यसिद्धि मानते हैं; एक पहिये से रथ नहीं चल सकता। जैसे एक अंधा दूसरा पांगला ये दोनों वन में प्रविष्ट हुए थे सो किसी समय आग लग जाने से ये दोनों मिलकर अर्थात् अंधे के ऊपर पांगला चढ़कर अपने नगर में पहुँच गये। इस प्रकार संयोगवाद है। संयोगवादी वस्तुओं के मिलाप से ही कार्य सिद्धि मानता है।।८९२।।

अर्थ – एक ही बार उठी हुई लोक प्रसिद्धि देवों से भी मिलकर दूर नहीं हो सकती। जैसे कि द्रौपदी ने मध्यम पांडव अर्जुन के ही गले में माला डाली परंतु उसने पाँचों पांडवों के गले में माला डाली – ऐसी प्रसिद्धि हो गई। ऐसे लोकवादी लोकप्रवृत्ति को ही सर्वस्व मानता हैं।।८९३।।

और भी एकांतवाद

नाम	स्वरूप		उदाहरण
पौरुषवाद	पुरुषार्थ	से ही सर्व सिद्धि मानना	*देखें गाथा अर्थ ८९० से ८९३*
दैववाद	दैव(भाग्य)		
संयोगवाद	वस्तुओं के मिलाप		
लोकवाद	लौकिक प्रवृत्तिरूप		

जावदिया वयणवहा तावदिया चेव होंति णयवादा।
जावदिया णयवादा तावदिया चेव होंति परसमया।।८९४।।
परसमयाणं वयणं मिच्छं खलु होइ सव्वहा वयणा।
जेणाणं पुण वयणं सम्मं खु कहंचिवयणादो।।८९५।।

अर्थ - जितने वचन बोलने के मार्ग हैं उतने ही नयवाद हैं और जितने नयवाद है उतने ही परसमय हैं।।८९४।।

अर्थ - परसमयी(मिथ्यामतियों) के वचन सर्वथा कहने से नियम से मिथ्या(असत्य) होते हैं और जैनमत के वचन कथंचित्(किसी एक प्रकार से) कहने से सम्यक(सत्य) है।।८९५।।

अनेक एकांतवाद

↓

जितने वचन के मार्ग

↓ उतने

नयवाद (किसी अपेक्षारूप) ⟶ **जितने नयवाद**

↓ उतने

परसमय(मिथ्यामत/एकांतवाद)
(अन्य अपेक्षा रहित सर्वथा ग्रहण)

सम्यक्वादी-मिथ्यावादी में अंतर

सम्यक्वादी	मिथ्यावादी
सम्यक्/सत्य वचन	मिथ्या/असत्य वचन
जैनी	परसमयी
स्याद्वादरूप	एकांतरूप
कथंचित् शब्द का ग्रहण	सर्वथा शब्द का ग्रहण
किसी अपेक्षा से	प्रतिपक्षी की अपेक्षा रहित ग्रहण
जैसे वस्तु द्रव्य अपेक्षा नित्य है, पर्याय अपेक्षा अनित्य हैं-ऐसा कहना सम्यक् है	जैसे वस्तु नित्य ही है-ऐसा कहना एकांत है

अधिकार ८ - त्रिकरण चूलिका अधिकार

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
मंगलाचरण	८९६	१	४५५
अध:प्रवृत्तकरण- स्वरूप, अंकसंदृष्टि, काल व अर्थसंदृष्टि	८९७-९०८	१२	४५५
अपूर्वकरण- स्वरूप, अंकसंदृष्टि, काल व अर्थसंदृष्टि	९०९-९१०	२	४६२
अनिवृत्तिकरण स्वरूप, काल	९११-९१२	२	४६४
कुल गाथाएँ	**८९६-९१२**	**१७**	

मंगलाचरण

णमह गुणरयणभूसण सिद्धंतामियमहद्धिभवभावं।
वरवीरणंदिचंदं णिम्मलगुणमिंदणंदिगुरुं।।८९६।।

अर्थ - हे गुणरूपीरत्न के आभूषण चामुंडराय! तुम सिद्धांतशास्त्ररूपी अमृतमय महासमुद्र में उत्पन्न हुए ऐसे उत्कृष्ट वीरनंदि नामा आचार्यरूपी चंद्रमा को नमस्कार करो तथा निर्मल गुणों वाले इंद्रनंदि नामा गुरू को नमस्कार करो।।८९६।।

इगिवीसमोहखवणुवसमणणिमित्ताणि तिकरणाणि तहिं।
पढमं अधापवत्तं करणं तु करेदि अपमत्तो।।८९७।।
जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहि सरिसगा होंति।
तम्हा पढमं करणं अधापवत्तोत्ति णिद्दिट्ठं।।८९८।।
अंतोमुहुत्तमेत्तो तक्कालो होदि तत्थ परिणामा।
लोगाणमसंखपमा उवरुवरिं सरिसवड्ढिगया।।८९९।।

अर्थ - अनंतानुबंधी ४ के बिना शेष २१ चारित्र मोहनीय की प्रकृतियों के क्षय अथवा उपशम करने के निमित्त अध:प्रवृत्तादि तीन करण हैं। उनमें से पहले अध:प्रवृत्तकरण को सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती करता है। यहाँ करण नाम परिणाम का है।।८९७।।

अर्थ - जिस कारण इस पहले करण में ऊपर के समय के भाव नीचे के समय संबंधी भावों के समान होते हैं, इस कारण पहले करण का अधःप्रवृत्त ऐसा नाम है।।८९८।।

अर्थ - उस अध:प्रवृत्तकरण का काल अंतर्मुहूर्त है। उस काल में संभवते विशुद्धिरूप कषायों के परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं। वे परिणाम पहले समय से लेकर आगे-आगे के समयों में समान वृद्धि (चय) से बढ़ते है।।८९९।।

तीन करण

अनंतानुबंधी ४ के बिना शेष २१ चारित्र मोहनीय की प्रकृतियों के क्षय अथवा उपशम करने के निमित्त

	अध:प्रवृत्त करण	अपूर्वकरण	अनिवृत्तिकरण
गुणस्थान	सातिशय ७वां	८वां	९वां
परिणाम	ऊपर समय वाले जीवों के परिणाम नीचे समय वालों से मिलते हैं	प्रतिसमय अपूर्व (जो पहले न हुये हों) ऐसे नवीन परिणाम होते हैं	जहाँ संस्थानादि का भेद होने पर भी परिणामों में भेद नहीं
	अध:प्रवृत्त करण	**अपूर्वकरण**	**अनिवृत्तिकरण**
एक समयवर्ती जीवों के परिणाम	समान भी, भिन्न भी	समान भी, भिन्न भी	समान ही
भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम	समान भी, भिन्न भी	भिन्न ही	भिन्न ही
अनुकृष्टि रचना	होती है	नहीं	नहीं
परिणामों की संख्या	असंख्यात लोकप्रमाण (ऊपर-२ समान वृद्धि सहित)	असंख्यात लोकप्रमाण (अध:प्रवृत्तकरण से असंख्यातगुणे)	असंख्यात - जितने इसके समय
काल (तीनों का अंतर्मुहूर्त)	सबसे बड़ा	अध:प्रवृत्तकरण से संख्यात गुणा हीन	अपूर्वकरण से संख्यात गुणा हीन
अंक संदृष्टि	१६ समय	८ समय	४ समय
आवश्यक	१. प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता २. स्थितिबंधापसरण ३. पाप-प्रकृतियों का अनुभागबंधापसरण ४. पुण्य-प्रकृतियों का अनुभाग बढ़ता हुआ	पूर्व के चार + ५. गुणश्रेणी निर्जरा ६. गुण संक्रमण ७. स्थिति कांडकघात ८.अनुभागकांडकघात	पूर्व के आठ + ९. सूक्ष्म कृष्टि
	(ये आवश्यक नवीन बंध में होते हैं)	***(ये ४ कार्य सत्ता के कर्मों में होते हैं)***	

कार्य	उपशम या क्षपक श्रेणी की सम्मुखता	चारित्रमोहनीय की २१ प्रकृतियों के उपशम या क्षय की तैयारी	चारित्रमोहनीय की २० प्रकृतियों का उपशम या क्षय
विशेष		आठवें के प्रथम भाग में जब तक निद्रा-प्रचला की बंध-व्युच्छित्ति नहीं होती मरण नहीं होता	ध्यानरूपी अग्निशिखा के द्वारा कर्मवन को दग्ध करने में समर्थ

अध:प्रवृत्तकरण

बावत्तरितिसहस्सा सोलस चउ चारि एक्कयं चेव।
धणअद्धाणविसेसे तियसंखा होइ संखेज्जे।।९००।।

अर्थ - अध:प्रवृत्तकरण के परिणामों की संख्या को साधने के लिये अंकों की संदृष्टि द्वारा कथन दिखाते हैं। वहाँ सर्वधन ३०७२, ऊर्ध्व अध्वान(गच्छ) १६, तिर्यक् गच्छ ४, ऊर्ध्व विशेष(चय) ४, तिर्यक् विशेष १ और चय के सिद्ध करने के लिये संख्यात की सहनानी ३ का अंक है।।९००।।

अध:प्रवृत्तकरण की अंक संदृष्टि

	अन्य नाम	स्वरूप	मानें-
सर्वधन		करण के सर्वसमय संबंधी परिणामों का समूह	३०७२
उर्ध्वरुप अध्वान	गच्छ, पद	करण के सर्व समयों का प्रमाण *(ऊपर रचना करना)*	१६
तिर्यक् रुप गच्छ	अनुकृष्टि	एक समय के खंडों का प्रमाण *(बराबर रचना करना)*	४
उर्ध्वरुप विशेष	चय,प्रचय,उत्तर	प्रतिसमय क्रम से बढ़ने वाले परिणामों का प्रमाण	४
तिर्यक्रुप विशेष	चय	प्रत्येक खंड में क्रम से बढ़नेवाले परिणामों का प्रमाण	१
संख्यात		चय का प्रमाण निकालने के लिये	३

आदिधणादो सव्वं पचयधणं संखभागपरिमाणं।
करणे अधापवत्ते होदित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं।।९०१।।
उभयधणे संमिलिदे पदकदिगुणसंखरूववहदपचयं।
सव्वधणं तं तम्हा पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं।।९०२।।

अर्थ - अध:प्रवृत्तकरण में सर्व प्रचयधन, आदि धन के संख्यातवें भाग प्रमाण है - ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा हैं।।९०१।।

अर्थ – आदिधन और प्रचयधन दोनों को मिलाने से सर्वधन होता है अथवा गच्छ के वर्ग को संख्यात से और चय से गुणा करने पर सर्वधन का प्रमाण होता है। इसलिये पद का वर्ग और संख्यात का भाग सर्वधन को देने पर जो प्रमाण होता है, वही प्रचय का प्रमाण कहा है।।९०२।।

आदिधन और प्रचयधन स्वरूप

आदिधन	जो-जो चय बढ़ते हैं उनके बिना सर्व समय संबंधी आदि के प्रमाण का जोड़
प्रचयधन	सर्व समय संबंधी चयों का जोड़ (प्रत्येक समय के चय का प्रमाण प्रथम समय की अपेक्षा होगा)
	$\frac{\text{आदिधन}}{\text{प्रचयधन}}$ = संख्यात

आदिधन और प्रचयधन का प्रमाण

	सूत्र	अंक संदृष्टि
उर्ध्वचय	$\frac{\text{सर्वधन}}{(\text{उर्ध्वगच्छ})^{२} \times \text{संख्यात}}$	$= \frac{३०७२}{(१६)^{२} \times ३} = \frac{३०७२}{२५६ \times ३} = ४$
प्रचयधन	$\frac{(\text{उर्ध्वगच्छ}-१)}{२} \times \text{उर्ध्वचय} \times \text{उर्ध्वगच्छ}$	$= \frac{१६-१}{२} \times ४ \times १६ = \frac{१५}{२} \times ४ \times १६ = ४८०$
आदिधन	= सर्वधन-प्रचयधन	= ३०७२-४८० = **२५९२**

चयधणहीणं दव्वं पदभजिदे होदि आदिपरिमाणं।

आदिम्मि चये उड्ढे पडिसमयधणं तु भावाणं।।९०३।।

अर्थ – सर्वधन में से चयधन कम करने पर जो प्रमाण हो उसमें गच्छ का भाग देने से पहले समय संबंधी विशुद्ध परिणामों का प्रमाण होता है। उन प्रथम समय के भावों में एक-एक चय बढ़ने पर प्रति समय के अध:प्रवृत्तकरण के भावों का प्रमाण होता है।।९०३।।

अध:प्रवृत्तकरण के प्रति समय के परिणामों का प्रमाण

विशुद्ध परिणाम	सूत्र	अंक संदृष्टि	
प्रथम समय	$\frac{\text{आदिधन}}{\text{उर्ध्वगच्छ}}$	$= \frac{२५९२}{१६}$	= १६२
द्वितीय समय	प्रथम समय संबंधी परिणामों का प्रमाण+चय	१६२+४	= १६६
तृतीय समय	द्वितीय समय संबंधी परिणामों का प्रमाण+चय	१६६+४	= १७०

आगे के समय...	इसी प्रकार एक-एक चय बढ़ाने पर चतुर्थ, पंचम आदि समयों के परिणामों का प्रमाण होता है	१७४,१७८,१८२,१८६, १९०,१९४,१९८,२०२, २०६,२१०,२१४,२१८, २२२

पचयधणस्साणयणे पचयं पभवं तु पचयमेव हवे।
रूऊणपदं तु पदं सव्वत्थवि होदि णियमेण।।९०४।।

अर्थ – प्रचयधन के लाने के लिये सब जगह उत्तर और प्रभव(आदि) ये दोनों प्रचय के प्रमाण होते हैं। यहाँ गच्छ का प्रमाण विवक्षित गच्छ के प्रमाण से १ कम नियम से होता है, क्योंकि पहले स्थान में चय का अभाव है।।९०४।।

अन्य करण सूत्र से प्रचयधन निकालने की विधि

(श्रेणी व्यवहार विधान)

० + ४ + ८ + १२ + १६ + ...		
आदि	= आदि में जो हो	= ४
उत्तर/ऊर्ध्व चय	= जितना-जितना बढ़ता हो	= ४
गच्छ	यहाँ पहले स्थान में चय का अभाव हैं,अतः गच्छ = विवक्षित गच्छ -१ = १६-१	= १५
प्रचयधन =	$\left[\left(\frac{(\text{गच्छ}-१)}{२} \times \text{उर्ध्वचय}\right) + \text{आदि}\right] \times \text{उर्ध्वगच्छ}$	
	$=\left[\left(\frac{(१५-१)}{२}\times ४\right)+४\right]\times १५ = \left[\left(\frac{(१४)}{२}\times ४\right)+४\right]\times १५ = ३२\times १५$	=४८०

पडिसमयधणेवि पदं पचयं पभवं च होइ तेरिच्छे।
अणुकट्टिपदं सव्वद्धाणस्स य संखभागो हु।।९०५।।
अणुकट्टिपदेण हदे पचये पचयो दु होइ तेरिच्छे।
पचयधणूणं दव्वं सगपदभजिदं हवे आदी।।९०६।।
आदिम्मि कमे वड्ढदि अणुकट्टिस्स य चयं तु तेरिच्छे।
इदि उड्ढतिरियरयणा अधापवत्तम्मि करणम्मि।।९०७।।

अर्थ – प्रति समय का धन लाने के लिये अनुकृष्टि के गच्छ, चय, आदि सबकी रचना तिर्यक्‌रूप ही है। अनुकृष्टि का गच्छ ऊर्ध्व गच्छ के संख्यातवें भाग प्रमाण है।।९०५।।

अर्थ – अनुकृष्टि के गच्छ का भाग ऊर्ध्व चय में देने से जो प्रमाण हो वह अनुकृष्टि का चय है। प्रथम समय संबंधी अनुकृष्टि के सर्वधन में प्रचयधन कम करके जो प्रमाण आये, उसमें अपने गच्छ का भाग देने से अनुकृष्टि के प्रथम खंड का प्रमाण होता है।।९०६।।

अर्थ – उस प्रथम खंड से तिर्यक्‌रूप अनुकृष्टि का एक-एक चय क्रम से बढ़ता जाता है तब द्वितीयादि खंडों का प्रमाण होता हैं। इस प्रकार ऊर्ध्वरूप और तिर्यक्‌रूप दोनों ही रचना अधः प्रवृत्तकरण में है।।९०७।।

अध:प्रवृत्तकरण की अनुकृष्टि रचना के गच्छ, चय आदि

अनुकृष्टि = नीचे और ऊपर के समयों में परिणामों की समानता के खंड होना

		सूत्र	अंक संदृष्टि	
तिर्यक् गच्छ (अनुकृष्टि गच्छ)		उर्ध्वगच्छ / संख्यात (यहाँ संख्यात का प्रमाण ४ लेना, अतः अनुकृष्टि गच्छ)	= १६ / ४	= ४
तिर्यक् चय (अनुकृष्टि चय)		अनुकृष्टि गच्छ / उर्ध्व चय	= ४ / ४	= १
अनुकृष्टि में प्रचयधन		[(अनुकृष्टि गच्छ−१) / २ ×तिर्यक्चय]×अनुकृष्टि गच्छ	[(४−१) / २ ×१]×४ = ३ / २ × ४	= ६
अनु. सर्वधन		= प्रथम समय संबंधी परिणाम	= १६२	
प्रथम समय संबंधी	प्रथम खंड	= अनुकृष्टि का सर्वधन−अनुकृष्टि का प्रचयधन / अनुकृष्टि का गच्छ	= १६२−६ / ४	=३९
	द्वितीय	प्रथम खंड + तिर्यक् चय	= ३९+१	=४०
	तृतीय	द्वितीय खंड + तिर्यक् चय	= ४०+१	=४१
	चतुर्थ	तृतीय खंड + तिर्यक् चय	= ४१+१	=४२
इसी प्रकार **दूसरे समय संबंधी** अनुकृष्टि के खंडों में ४०, ४१, ४२, ४३ प्रमाण होता है				
इस प्रकार दूसरे समय संबंधी और पहले समय संबंधी ४०, ४१, ४२ की समानता हुई				
इसी प्रकार तृतीयादि समयों में अनुकृष्टि रचना द्वारा खंडों में परिणामों का प्रमाण और नीचे के समय संबंधी परिणामों की समानता जानना				
इस प्रकार ऊर्ध्वरुप और तिर्यक्‌रुप दोनों रचना अध:प्रवृत्तकरण में है				

अध:प्रवृत्तकरण संबंधी अनुकृष्टि रचना का यंत्र

समय न.	परिणामों की संख्या	कहाँ से कहाँ तक	अनुकृष्टि रचना			
१६	२२२	६९१-९१२	५४ ६९१-७४४	५५ ७४५-७९९	५६ ८००-८५५	५७ ८५६-९१२
१५	२१८	६३८-८५५	५३ ६३८-६९०	५४ ६९१-७४४	५५ ७४५-७९९	५६ ८००-८५५
१४	२१४	५८६-७९९	५२ ५८६-६३७	५३ ६३८-६९०	५४ ६९१-७४४	५५ ७४५-७९९
१३	२१०	५३५-७४४	५१ ५३५-५८५	५२ ५८६-६३७	५३ ६३८-६९०	५४ ६९१-७४४
१२	२०६	४८५-६९०	५० ४८५-५३४	५१ ५३५-५८५	५२ ५८६-६३७	५३ ६३८-६९०
११	२०२	४३६-६३७	४९ ४३६-४८५	५० ४८५-५३४	५१ ५३५-५८५	५२ ५८६-६३७
१०	१९८	३८८-५८५	४८ ३८८-४३५	४९ ४३६-४८५	५० ४८५-५३४	५१ ५३५-५८५
९	१९४	३४१-५३४	४७ ३४१-३८७	४८ ३८८-४३५	४९ ४३६-४८५	५० ४८५-५३४
८	१९०	२९५-४८५	४६ २९५-३४०	४७ ३४१-३८७	४८ ३८८-४३५	४९ ४३६-४८५
७	१८६	२५०-४३५	४५ २५०-२९४	४६ २९५-३४०	४७ ३४१-३८७	४८ ३८८-४३५
६	१८२	२०६-३८७	४४ २०६-२४९	४५ २५०-२९४	४६ २९५-३४०	४७ ३४१-३८७
५	१७८	१६३-३४०	४३ १६३-२०५	४४ २०६-२४९	४५ २५०-२९४	४६ २९५-३४०
४	१७४	१२१-२९४	४२ १२१-१६२	४३ १६३-२०५	४४ २०६-२४९	४५ २५०-२९४
३	१७०	८०-२४९	४१ ८०-१२०	४२ १२१-१६२	४३ १६३-२०५	४४ २०६-२४९
२	१६६	४०-२०५	४० ४०-७९	४१ ८०-१२०	४२ १२१-१६२	४३ १६३-२०५
१	१६२	१-१६२	३९ १-३९	४० ४०-७९	४१ ८०-१२०	४२ १२१-१६२

यथार्थ में अध:करण के परिणामों की संख्या, विशुद्धि आदि

<table>
<tr><td rowspan="2">संख्या</td><td colspan="3">असंख्यात लोक प्रमाण</td></tr>
<tr><td colspan="3">अन्य प्रत्याख्यानादि कषायों के साथ उदय में आने वाले संज्वलन कषाय के उदयरूप संक्लेश स्थान हैं, उनके असंख्यातवें भाग</td></tr>
<tr><td rowspan="7">विशुद्धि</td><td rowspan="3">प्रथम खंड</td><td>जघन्य परिणाम</td><td>जघन्य विशुद्धि, अनंत अविभाग प्रतिच्छेद अनंतगुण वृद्धिरूप - सर्वज्ञ द्वारा देखे गये</td></tr>
<tr><td>उत्कृष्ट</td><td>जघन्य से अनंतगुणा</td></tr>
<tr><td>परिणामों की संख्या</td><td>असंख्यात लोक प्रमाण षट्स्थान वृद्धिरूप स्थान (षट्स्थान वृद्धिरूप स्थान का स्वरूप जीवकाण्डजी के ज्ञानमार्गणा अधिकार में पर्यायसमास श्रुतज्ञान के वर्णन से जानें)</td></tr>
<tr><td rowspan="2">द्वितीय खंड</td><td>जघन्य</td><td>प्रथम खंड के उत्कृष्ट से अनंतगुणा</td></tr>
<tr><td>उत्कृष्ट</td><td>जघन्य से अनंतगुणा</td></tr>
<tr><td colspan="3">इसी प्रकार सर्व खंडों में अपने-अपने जघन्य से अपना-अपना उत्कृष्ट अनंतगुणा हैं</td></tr>
<tr><td colspan="3">उस उत्कृष्ट से अनंतर स्थान का जघन्य अनंतगुणा है</td></tr>
<tr><td colspan="4">प्रथम समय का प्रथम खंड और अंत समय का अंत खंड बिना अन्य ऊपर के खंड संबंधी परिणामों की नीचे के खंड संबंधी परिणामों से यथासंभव समानता है</td></tr>
<tr><td colspan="4">इस प्रकार इस करण का नाम अध:प्रवृत्तकरण है</td></tr>
</table>

अंतोमुहुत्तकालं गमिऊण अधापवत्तकरणं तु।
पडिसमयं सुज्झंता अपुव्वकरणं समल्लियइ।।९०८।।

अर्थ - सातिशय अप्रमत्तसंयमी समय-समय प्रति अनंतगुणी परिणामों की विशुद्धता से बढ़ता हुआ अंतर्मुहूर्त काल तक अध:प्रवृत्तकरण को करता है, पुन: उसको समाप्त करके अपूर्वकरण को प्राप्त होता है।।९०८।।

इस गाथा के विषय की तालिका पृष्ठ क्र. -(गाथा ८७७)- पर देखें

अपूर्वकरण

छण्णउदिचउसहस्सा अट्ठ य सोलस धणं तदद्धाणं।
परिणामविसेसोवि य चउ संखापुव्वकरणसंदिट्ठी।।९०९।।
अंतोमुहुत्तमेत्ते पडिसमयमसंखलोगपरिणामा।
कमउड्ढापुव्वगुणे अणुकट्टी णत्थि णियमेण।।९१०।।

अर्थ - अपूर्वकरण में अंकों की संदृष्टि इस प्रकार है - सर्वधन ४०९६, अध्वान(गच्छ) ८, परिणाम विशेष(चय) १६ और संख्यात का प्रमाण ४ है।।९०९।।

अर्थ - अपूर्वकरण का काल अंतर्मुहूर्त मात्र है। उसमें प्रति समय में समान चय (वृद्धि) से बढ़ते हुए असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम पाये जाते हैं। उनमें अनुकृष्टि रचना नियम से नहीं है, क्योंकि यहाँ प्रति समय के परिणामों में अपूर्वता होने से नीचे के समय के परिणामों से ऊपर के समय के परिणामों में समानता नहीं पायी जाती है।।९१०।।

अपूर्वकरण की अंक संदृष्टि

	स्वरूप	मानें-
सर्वधन	अपूर्वकरण के सर्व स्थानों का प्रमाण	४०९६
गच्छ	अपूर्वकरण के काल के समयों का प्रमाण	८
विशेष/चय	प्रतिसमय क्रम से बढ़ने वाले परिणामों का प्रमाण	१६
संख्यात	चय का प्रमाण निकालने के लिये	४

अपूर्वकरण - चय आदि का प्रमाण

		सूत्र	अंक संदृष्टि	
चय		$\frac{\text{सर्वधन}}{(\text{गच्छ})^{2} \times \text{संख्यात}}$	$= \frac{४०९६}{८^{२} \times ४}$	= १६
प्रचयधन		$\frac{(\text{गच्छ}-१)}{२} \times \text{चय} \times \text{गच्छ}$	$= \frac{८-१}{२} \times १६ \times ८$	= ४४८
परिणामों का प्रमाण	**प्रथम समय**	$\frac{\text{सर्वधन}-\text{प्रचयधन}}{\text{गच्छ}}$	$= \frac{४०९६-४४८}{८}$	= ४५६
	द्वितीय	प्रथम समय संबंधी परिणामों का प्रमाण+चय	४५६+१६	= ४७२
	तृतीय	द्वितीय समय संबंधी परिणामों का प्रमाण+चय	४७२+१६	= ४८८
	आगे के समय...	इसी प्रकार एक-एक चय बढ़ाने पर चतुर्थ, पंचम आदि समयों के परिणामों का प्रमाण होता है	५०४,५२०,५३६,५५२,५६८	

अपूर्वकरण की अंक संदृष्टि रचना का यंत्र

समय न.	परिणामों की संख्या	कहाँ से कहाँ तक
८	५६८	३५२९ से ४०९६
७	५५२	२९७७ से ३५२८
६	५३६	२४४१ से २९७६
५	५२०	१९२१ से २४४०
४	५०४	१४१७ से १९२०
३	४८८	९२९ से १४१६
२	४७२	४५७ से ९२८
१	४५६	१ से ४५६

यथार्थ में अपूर्वकरण के परिणामों की संख्या, विशुद्धि आदि

<table>
<tr><td rowspan="4">परिणाम संख्या</td><td colspan="2" rowspan="2">सर्व</td><td>असंख्यात लोक प्रमाण</td></tr>
<tr><td>अध:प्रवृत्तकरण से असंख्यातगुणा</td></tr>
<tr><td colspan="2">प्रथम समय</td><td>असंख्यात लोक प्रमाण</td></tr>
<tr><td colspan="2">द्वितीयादि समय</td><td>असंख्यात लोक प्रमाण + चय अधिक</td></tr>
<tr><td rowspan="6">विशुद्धि</td><td rowspan="3">प्रथम समय</td><td>जघन्य परिणाम</td><td>अध:करण के अंत खंड के उत्कृष्ट परिणाम से अनंतगुणा</td></tr>
<tr><td>उत्कृष्ट</td><td>जघन्य से अनंतगुणा</td></tr>
<tr><td>परिणामों की संख्या</td><td>असंख्यात लोक प्रमाण षट्स्थान वृद्धिरूप स्थान</td></tr>
<tr><td rowspan="2">द्वितीय समय</td><td>जघन्य</td><td>प्रथम समय के उत्कृष्ट से अनंतगुणा</td></tr>
<tr><td>उत्कृष्ट</td><td>जघन्य से अनंतगुणा</td></tr>
<tr><td colspan="2"></td><td>ऐसे ही अंत समय के उत्कृष्ट तक जानना</td></tr>
<tr><td colspan="4">पूर्व समय के उत्कृष्ट से आगे के समय का जघन्य अधिक ही होता है</td></tr>
<tr><td colspan="4">इसलिये प्रति समय के परिणाम अपूर्व ही होते है</td></tr>
<tr><td colspan="4">इसी कारण से यहाँ अनुकृष्टि नहीं होती है और इस करण को अपूर्वकरण कहते हैं</td></tr>
</table>

अनिवृत्तिकरण

एकम्हि कालसमये संठाणादीहिं जह णिवट्टंति।
ण णिवट्टंति तहंवि य परिणामेहिं मिहो जे हु।।९११।।

अर्थ - जो जीव अनिवृत्तिकरण काल के विवक्षित एक समय में शरीर, संस्थान, वर्ण, आयु आदि की अपेक्षा जैसे निवर्तते(भेदरूप) हैं अर्थात् किसी जीव के कैसे संस्थान, वर्णादि पाये जाते हैं, किसी जीव के अन्य कैसे ही पाये जाते हैं, वैसे परिणामों की अपेक्षा अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरणवत् भेदरूप नहीं होते हैं। जिनको अनिवृत्तिकरण मांड़कर पहला समय होता है, ऐसे त्रिकाल संबंधी अनंत जीवों के समान परिणाम ही होते हैं, अन्य-अन्यरूप सर्वथा नहीं होते हैं। इसी प्रकार द्वितीयादि समयवर्ती जीवों के परस्पर में समानता है।।९११।।

होंति अणियट्टिणो ते पडिसमयं जस्सिमेक्कपरिणामो।
विमलयरझाणहुदवहसिहाहिं णिद्दड्ढकम्मवणा।।९१२।। जुम्मं।

अर्थ - जिस करण में अनेक जीवों के प्रति समय के परिणाम एकरूप-एकरूप ही हैं, वे परिणाम, अतिशय निर्मल ध्यानरूपी अग्निशिखा से जिन्होंने कर्मरूपी वन दग्ध किये हैं, ऐसे अनिवृत्तिरूप कहलाते हैं। उसके काल प्रमाणरूप गच्छ अंक संदृष्टि की अपेक्षा ४ है, यथार्थ में अंतर्मुहूर्त प्रमाण है।।९१२।।

अधिकार ९ - कर्मस्थिति रचना अधिकार

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
मंगलाचरण व कथन प्रतिज्ञा	९१३	१	४६६
आबाधा - आठ कर्मों की उदय व उदीरणा अपेक्षा	९१४-९१८	५	४६७
कर्मस्थिति रचना प्रकार	९१९-९२२	४	४६९
कर्मस्थिति रचना - अंकसंदृष्टि व अर्थसंदृष्टि	९२३-९३९	१७	४७१
त्रिकोणयंत्र रचना में प्रतिसमय बंध एवं उदयरूप द्रव्य	९४०-९४२	३	४८१
त्रिकोणयंत्र रचना में सत्त्वरूप द्रव्य का प्रमाण एवं निषेकों के जोड़ने की विधी व त्रिकोणयंत्र	९४३-९४४	२	४८२
स्थिति भेद व स्वामी	९४५-९४६	२	४९०
स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान	९४७-९६२	१६	४९२
स्थिति संबंधी अनुभागबंधाध्यवसायस्थान	९६३-९६४	२	४९९
ग्रंथकर्ता की प्रशस्ति	९६५-९७२	८	५०१
कुल गाथाएँ	**९१३-९७२**	६०	

सिद्धे विसुद्धणिलये पणट्ठकम्मे विणट्ठसंसारे।
पणमिय सिरसा वोच्छं कम्मट्ठिदिरयणसब्भावं।।९१३।।

अर्थ - प्रकर्षपने नष्ट हुए है घाति अघाति कर्म जिनके, विशेषपने नष्ट किया है संसार जिन्होंने तथा शुद्ध आत्मप्रदेशों में है स्थान जिनका - ऐसे जो सिद्ध परमेष्ठी उनको मस्तक झुकाकर नमस्कार करके कर्म स्थिति रचना का सत्तारूप कथन करता हूँ।।९१३।।

मंगलाचरण में

नमस्कार
↓
सिद्ध परमेष्ठी को
कैसे हैं वे?

नष्ट हो गये हैं
↓
✻ घाति-अघाति कर्म
✻ संसार

निवास है
↓
शुद्ध आत्मप्रदेशों में

प्रतिज्ञा
↓
कर्म स्थिति रचना की सत्ता
↓
प्रति समय के निषेकों में कितना-कितना कार्मण द्रव्य पाया जाता है

कम्मसरूवेणागयदव्वं ण य एदि उदयरूवेण।
रूवेणुदीरणस्स व आबाहा जाव ताव हवे।।९१४।।
उदयं पडि सत्तण्हं आबाहा कोडिकोडि उवहीणं।
वाससयं तप्पडिभागेण य सेसट्ठिदीणं च।।९१५।।

अर्थ – कार्मणशरीर नामक नामकर्म के उदय से योग द्वारा आत्मा में कर्मस्वरूप से परिणमता हुआ जो पुद्‌गलद्रव्य जब-तक उदयस्वरूप अथवा उदीरणा स्वरूप न हो तब-तक के उस काल को आबाधा कहते हैं।।९१४।।

अर्थ – आयुकर्म को छोड़कर सात कर्मों की उदय की अपेक्षा आबाधा एक कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति की सौ वर्ष जानना और बाकी स्थितियों की आबाधा इसी प्रतिभाग से जानना।।९१५।।

आबाधा

कर्मबंध होने के पश्चात् जितने काल तक उदय या उदीरणा रूप न प्रवर्ते उतना काल

आबाधा निकालने की विधि

	स्थिति	आबाधा
अगर –	१ कोड़ाकोड़ी सा.	१०० वर्ष
तो –	७० कोड़ाकोड़ी सा.	७००० वर्ष
इसी प्रकार सभी स्थितियों की आबाधा जानना		

प्रमाण	१ कोड़ाकोड़ी सा.
फल	१०० वर्ष
इच्छा	७० कोड़ाकोड़ी सा.
लब्ध	७००० वर्ष आबाधा

मूल प्रकृतियों की उत्कृष्ट आबाधा

मिथ्यात्व	चारित्र मोहनीय	ज्ञानावरण,दर्शनावरण,वेदनीय,अंतराय	नाम,गोत्र
७००० वर्ष	४००० वर्ष	३००० वर्ष	२००० वर्ष

अंतोकोडाकोडिट्ठिदिस्स अंतोमुहुत्तमाबाहा।
संखेज्जगुणविहीणं सव्वजहण्णट्ठिदिस्स हवे।।९१६।।

अर्थ – अंत:कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति की अंतर्मुहूर्त आबाधा है। सब जघन्य स्थितियों की उससे संख्यातगुणी कम आबाधा होती है।।९१६।।

जघन्य आबाधा

स्थिति	आबाधा
अंत:कोड़ाकोड़ी सा.	अंतर्मुहूर्त
सर्व कर्मों की ज. स्थिति	अंतर्मुहूर्त ↑ से संख्यातगुणा हीन

१ सागर की आबाधा

स्थिति	आबाधा	
१ कोड़ाकोड़ी सागर	= १०० वर्ष = १०० × ३६० × ३० मुहूर्त = १०८०००० मुहूर्त	अर्थात् १ सागर स्थिति की आबाधा श्वासोच्छ्वास का संख्यातवाँ भाग है
$\frac{\text{१ करोड़ × १ करोड़ सागर}}{\text{१०८००००}}$ ९२५९२५९२ $\frac{\text{६४}}{\text{१०८}}$ सागर	= १ मुहूर्त (३७७३ श्वासोच्छ्वास)	
१ सागर	$\frac{\text{३७७३ श्वासोच्छ्वास}}{\text{९२५९२५९२} \times \frac{\text{१६}}{\text{२७}}} = \frac{\text{श्वासोच्छ्वास}}{\text{संख्यात}}$	

पुण्वाणं कोडितिभागादासंखेपअद्ध वोत्ति हवे।
आउस्स य आबाहा ण ट्ठिदिपडिभागमाउस्स।।९१७।।

अर्थ – आयुकर्म की आबाधा १ कोटि पूर्व के तीसरे भाग से लेकर असंक्षेपाद्धा प्रमाण है। (अन्य कर्मों जैसे) आयुकर्म की आबाधा स्थिति के अनुसार भाग की हुई नहीं है।।९१७।।

आयुकर्म की आबाधा

उत्कृष्ट
↓
$\frac{\text{१ कोटि पूर्व}}{\text{३}}$

१ पूर्व =८४ लाख×८४ लाख वर्ष
= ७० लाख ५६ हजार करोड़ वर्ष

जघन्य
↓
* अंतर्मुहूर्त अथवा असंक्षेपाद्धा
* $\frac{\text{आवली}}{\text{अंस.}}$ अथवा $\frac{\text{आवली}}{\text{स.}}$

असंक्षेपाद्धा = अ+संक्षेप+अद्धा
जिससे और संक्षेप (कम) काल नहीं हो सकता

आयुकर्म की उत्कृष्ट आबाधा

- **कर्मभूमिया मनुष्य अथवा तिर्यंच** → $\frac{\text{१ कोटि पूर्व}}{\text{३}}$
- **देव नारकी** → * ६ माह
- **भोगभूमिया जीव** → * ६ माह अथवा ९ माह

आवलियं आबाहा उदीरणमासिज्ज सत्तकम्माणं।
परभवियआउगस्स य उदीरणा णत्थि णियमेण।।९१८।।

अर्थ – उदीरणा की अपेक्षा से सात कर्मों की आबाधा एक आवली मात्र है और परभव की आयु जो बाँध ली है उसकी उदीरणा नियम से नहीं होती।।९१८।।

उदीरणा की अपेक्षा आबाधा

- **ज्ञानावरणादि ७ कर्म** → **१ आवली** (अचलावली)
- **आयु**
  - **भुज्यमान** * जिस आयु को जीव भोग रहा है → उदीरणा संभव हैं
  - **बध्यमान** * आगामी उत्तर भव की आयु → उदीरणा नहीं होती

स्थिति रचना

आबाहूणियकम्मट्ठिदी णिसेगो दु सत्तकम्माणं।
आउस्स णिसेगो पुण सगट्ठिदी होदि णियमेण।।९१९।।

अर्थ – अपनी-अपनी कर्मों की स्थिति में आबाधा का काल घटाने से जो काल शेष रहे, उतने समय प्रमाण सात कर्मों के निषेक जानना और आयुकर्म के निषेक अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण हैं – ऐसा नियम से समझना।।९१९।।

निषेक

प्रतिसमय खिरने वाले कर्म परमाणुओं का समूह

आयु को छोड़कर शेष ७ कर्म → कर्म स्थिति-आबाधा काल

आयु कर्म → आयु कर्म की स्थिति (क्योंकि आयु कर्म की आबाधा पूर्व भव में ही हो गई)

आबाहं वोलाविय पढमणिसेगम्मि देय बहुगं तु।
तत्तो विसेसहीणं बिदियस्सादिमणिसेओत्ति।।९२०।।
बिदिये बिदियणिसेगे हाणी पुव्विल्लहाणिअद्धं तु।
एवं गुणहाणिं पडि हाणी अद्धद्धयं होदि।।९२१।।

अर्थ - आबाधा काल को छोड़कर जो अनंतर समय है वहाँ प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक में (अन्य निषेकों से) बहुत अधिक द्रव्य देना। दूसरे निषेक से लेकर द्वितीय गुणहानि के प्रथम निषेक पर्यंत विशेष (चय) हीन कर्म परमाणु देना चाहिये।।९२०।।

अर्थ - द्वितीय गुणहानि के दूसरे निषेक में प्रथम गुणहानि के चय प्रमाण से आधा चय घटाना चाहिये। (इतने ही चय तृतीय गुणहानि के पहले निषेक तक घटाना चाहिये)। इसी प्रकार गुणहानि-गुणहानि प्रति चय आधा-आधा अनुक्रम से जानना।।९२१।।

निषेकों में द्रव्य का प्रमाण

गुणहानि	निषेक	
प्रथम	प्रथम	सबसे अधिक
	द्वितीय	= प्रथम निषेक-चय *(आदि निषेक से अंत निषेक तक जितना जितना प्रमाण घटता है)*
	तृतीयादि	= पूर्व निषेक-चय
द्वितीय	प्रथम	= प्रथम गुणहानि का अंतिम निषेक-चय
	द्वितीय	= प्रथम निषेक-आधा चय
	तृतीयादि	= पूर्व निषेक-आधा चय
तृतीय	प्रथम	= पूर्व गुणहानि का अंतिम निषेक-पूर्व गुणहानि चय
	द्वितीय	= प्रथम निषेक-पूर्व गुणहानि के चय का आधा
	तृतीयादि	= पूर्व निषेक-अपना अपना चय

दव्वं ठिदिगुणहाणीणद्धाणं दलसला णिसेयछिदी।
अण्णोण्णगुणसलावि य जाणेज्जो सव्वठिदिरयणे।।९२२।।
तेवट्ठिं च सयाइं अडदाला अट्ठ छक्क सोलसयं।
चउसट्ठिं च विजाणे दव्वादीणं च संदिट्ठी।।९२३।।

अर्थ – सब कर्मों की स्थिति रचना में – द्रव्य, स्थिति आयाम, गुणहानि आयाम, नानागुणहानि, निषेकहार अर्थात् दो गुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि – ये छह राशियाँ जानना चाहिये।।९२२।।

अर्थ – इन द्रव्यादिकों के अंकों की सहनानी क्रम से द्रव्य ६३००, स्थिति ४८, गुणहान्यायाम ८, नानागुणहानि ६, दोगुणहानि १६, अन्योन्याभ्यस्तराशि ६४ जानना।।९२३।।

कर्मों की स्थिति रचना में छह राशियाँ

राशि	स्वरूप	अंक संदृष्टी
द्रव्य	एक समय में बंधनेवाले कुल कर्म परमाणु	= ६३००
स्थिति आयाम	आबाधा छोड़कर कुल स्थिति के समयों का प्रमाण	= ४८ समय
गुणहानि आयाम	*जहाँ दोगुणहीन-दोगुणहीन द्रव्य दिया जाता है ऐसी गुणहानि में समयों का प्रमाण * एक गुणहानि में निषेकों का प्रमाण	= ८ समय
नानागुणहानि	सर्व स्थिति की गुणहानियों का प्रमाण	= ६
दो गुणहानि/निषेकहार	गुणहानि के प्रमाण से दोगुणा	= ८ × २ = १६ समय
अन्योन्याभ्यस्तराशि	नानागुणहानि प्रमाण दो के अंक लिखकर आपस में गुणा करने से प्राप्त राशि	= $२^{\text{नाना गुणहानि}}$ = $२^{६}$ = ६४

दव्वं समयपबद्धं उत्तपमाणं तु होदि तस्सेव।
जीवसहत्थणकालो ठिदिअद्धा संखपल्लमिदा।।९२४।।
मिच्छे वग्गसलायप्पहुदिं पल्लस्स पढममूलोत्ति।
वग्गहदी चरिमो तच्छिदिसंकलिदं चउत्थो य।।९२५।।
वग्गसलायेणवहिदपल्लं अण्णोण्णगुणिदरासी हु।
णाणागुणहाणिसला वग्गसलच्छेदणूणपल्लछिदी।।९२६।।
सव्वसलायाणं जदि पयदणिसेये लहेज्ज एक्कस्स।
किं होदित्ति णिसेये सलाहिदे होदि गुणहाणी।।९२७।।
दोगुणहाणिपमाणं णिसेयहारो दु होइ तेण हिदे।
इट्ठे पढमणिसेये विसेसमागच्छदे तत्थ।।९२८।।

अर्थ – (यथार्थ कथन में) द्रव्य तो पहले प्रदेश बंधाधिकार में कहे हुए समयप्रबद्ध के प्रमाण है और उस समयप्रबद्ध का जीव के साथ स्थित रहने का काल स्थिति आयाम है, वह स्थिति संख्यात पल्य प्रमाण है।।९२४।।

अर्थ – मिथ्यात्व कर्म में पल्य की वर्गशलाका को आदि लेकर पल्य के प्रथम मूल पर्यंत उन वर्गों का आपस में गुणा करने से चरम राशि अर्थात् अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण होता है। उनकी अर्धच्छेद राशियों को संकलित अर्थात् जोड़ने से चौथी राशि अर्थात् नानागुणहानि का प्रमाण होता है।।९२५।।

अर्थ – इस प्रकार पल्य की वर्गशलाका का भाग पल्य में देने से अन्योन्याभ्यस्त राशि का प्रमाण होता हैं और पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों को पल्य के अर्धच्छेदों में घटाने से जो प्रमाण हो उतनी नानागुणहानि राशि होती है।।९२६।।

अर्थ – सब नानागुणहानि शलाकाओं के यदि पूर्वोक्त स्थिति के सब निषेक होते हैं तो एक गुणहानि शलाका के कितने होने चाहिये? इस प्रकार त्रैराशिक गणित के अनुसार निषेकों में शलाकाओं का भाग देने से जो प्रमाण हो वह गुणहानिआयाम का प्रमाण होता है।।९२७।।

अर्थ – गुणहानिआयाम का दोगुणा प्रमाण निषेकहार(दोगुणहानि) होता है। उसका प्रयोजन यह है कि निषेकहार का भाग विवक्षित गुणहानि के पहले निषेक में देने से उस गुणहानि में विशेष(चय) का प्रमाण आता है।।९२८।।

मिथ्यात्व कर्म की यथार्थ में छह राशियों का प्रमाण

राशि	विधी	प्रमाण
द्रव्य		समयप्रबद्ध
स्थिति		संख्यात पल्य
नानागुणहानि	प्राप्त करने की विधि आगे की तालिका में देखें	पल्य के अर्धच्छेद–पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद
अन्योन्याभ्यस्तराशि		पल्य / पल्य की वर्गशलाका
गुणहानि आयाम	सर्व स्थिति / नाना गुणहानि	संख्यात पल्य / प.के छे.–प. की वर्गशलाका के छे.
दो गुणहानि	गुणहानिआयाम×२	उपर्युक्त से दोगुणा
दोगुणहानि से विशेष का प्रमाण प्राप्त होता हैं		
विवक्षित गुणहानि का विशेष(चय)	= विवक्षित गुणहानि का प्रथम निषेक / दो गुणहानि	

नानागुणहानि व अन्योन्याभ्यस्तराशि प्राप्त करने की विधि

अन्योन्याभ्यस्तराशि	नानागुणहानि
निम्न राशियों को परस्पर में गुणा करें-	**निम्न राशियों को जोड़े-**
पल्य का प्रथम वर्गमूल	पल्य का प्रथम वर्गमूल के अर्धच्छेद
पल्य का द्वितीय वर्गमूल	पल्य का द्वितीय वर्गमूल के अर्धच्छेद
ऊपर- ऊपर वर्ग करें	ऊपर- ऊपर दो गुणा करें
(पल्य की वर्गशलाका)^2	पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद×२
पल्य की वर्गशलाका	पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद
कुल = $\frac{\text{पल्य}}{\text{पल्य की वर्गशलाका}}$	**कुल = पल्य के अर्धच्छेद -पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद**

अंक संदृष्टी द्वारा कथन

मानें- पल्य=पण्णट्ठी(६५५३६)

अन्योन्याभ्यस्तराशि		नानागुणहानि	
पण्णट्ठी के वर्गमूलों का गुणा		**पण्णट्ठी के अर्धच्छेदों का जोड़-**	
पण्णट्ठी का प्रथम वर्गमूल	=२५६	पण्णट्ठी के प्रथम वर्गमूल के अर्धच्छेद	= ८
पण्णट्ठी की वर्गशलाका का वर्ग	= १६	पण्णट्ठी की वर्गशलाका के वर्ग के अर्धच्छेद	= ४
पण्णट्ठी की वर्गशलाका	= ४	पण्णट्ठी की वर्गशलाका के अर्धच्छेद	= २
कुल= $\frac{(२५६)^2}{४}$ = $\frac{६५५३६}{४}$	= **१६३८४**	**कुल** = (८×२)-२	= **१४**
सूत्र :- $\frac{(\text{अंतिम राशि})^2}{\text{आदि राशि}}$		**सूत्र :-** (अंतिम राशि×२)-आदि राशि	

रूऊणण्णोण्णब्भत्थवहिददव्वं च चरिमगुणदव्वं।
होदि तदो दुगुणकमो आदिमगुणहाणिदव्वोत्ति।।९२९।।

अर्थ – एक कम अन्योन्याभ्यस्तराशि का भाग सर्व द्रव्य में देने से अंत गुणहानि का द्रव्य होता है और इससे दोगुणा-दोगुणा द्रव्य प्रथम गुणहानि तक होता है।।९२९।।

प्रत्येक गुणहानि का द्रव्य

अंतिम गुणहानि में द्रव्य का प्रमाण	= कुल कर्म परमाणु / अन्योन्याभ्यस्त राशि-१ = ६३०० / ६४-१ = १००				
अंतिम गुणहानि के द्रव्य से दोगुणा-दोगुणा द्रव्य प्रथम गुणहानि तक होता है:-					
द्रव्य	१००	२००	४००	८००	१६००	३२००
गुणहानि	षष्ठम (अंतिम)	पंचम	चतुर्थ	तृतीय	द्वितीय	प्रथम

रूऊणद्धाणद्धेणूणेण णिसेयभागहारेण।
हदगुणहाणिविभजिदे सगसगदव्वे विसेसा हु।।९३०।।

अर्थ – एक कम गुणहानिआयाम के प्रमाण को आधा करके निषेक भागहार में घटाने से जो प्रमाण आता है, उससे गुणहानिआयाम को गुणा करने से जो प्रमाण हो, उसका भाग अपने-अपने द्रव्य में देने से उस गुणहानि का विशेष(चय) का प्रमाण होता है।।९३०।।

प्रत्येक गुणहानि में चय प्राप्त करने की विधी

सूत्र :-	अंक संदृष्टी
(निषेक भागहार - $\frac{\text{गच्छ-१}}{२}$) × गच्छ = **मानें** P	(१६- $\frac{८-१}{२}$)×८=**१००**
अपनी-अपनी गुणहानि में चय का प्रमाण= $\frac{\text{अपना-अपना द्रव्य}}{P}$	$\frac{\text{अपना-अपना द्रव्य}}{\textbf{१००}}$

अंक संदृष्टी से प्रत्येक गुणहानि का चय

प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पंचम	षष्ठम
३२०० / १०० = ३२	१६०० / १०० = १६	८०० / १०० = ८	४०० / १०० = ४	२०० / १०० = २	१०० / १०० = १

पचयस्स य संकलणं सगसगगुणहाणिदव्वमज्झम्हि।
अवणियगुणहाणिहिदे आदिपमाणं तु सव्वत्थ।।९३१।।

अर्थ – सर्व प्रचयधन को अपने-अपने गुणहानि के सर्व द्रव्य में से घटाने पर जो प्रमाण हो उसमें गुणहानिआयाम का भाग देने से जो संख्या आती है, वह आदि धन का अर्थात् चय रहित अंत के निषेक का प्रमाण होता है।।९३१।।

प्रत्येक गुणहानि का अंत व सर्व निषेक प्राप्त करने की विधी

	सूत्र :-	अंक संदृष्टी	
प्रचयधन	[(गच्छ-१ / २) × चय] × गुणहानिआयाम	[(८-१ / २)×३२]×८	=८९६
अंत निषेक का प्रमाण =	अपना सर्व द्रव्य-अपना प्रचयधन / गुणहानिआयाम	३२००-८९६ / ८	= २८८
अंत निषेक से आदि निषेक तक	एक-एक चय अधिक करना	२८८+३२, ३२०+३२....	=३२० =३५२
आदि निषेक			=५१२
द्वितीयादि गुणहानि में	✻चय का प्रमाण आधा-आधा ✻प्रचयधन का प्रमाण आधा-आधा ✻ सर्व द्रव्य भी सर्वत्र आधा-आधा ✻ उपर्युक्त सूत्र से सर्वत्र अंत निषेक का प्रमाण आता है ✻ उसमें से चय अधिक करने से आदि निषेक तक प्राप्त होते हैं		

अंक संदृष्टि द्वारा निषेक रचना का यंत्र

समय	प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	पंचम गुणहानि	षष्ठम गुणहानि
अष्ठम	२८८	१४४	७२	३६	१८	९
सप्तम	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
षष्ठम	३५२	१७६	८८	४४	२२	११
पंचम	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
चतुर्थ	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
तृतीय	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
द्वितीय	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
प्रथम	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
८ समय	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

सव्वासिं पयडीणं णिसेयहारो य एयगुणहाणी।
सरिसा हवंति णाणागुणहाणिसलाउ वोच्छामि।।९३२।।

अर्थ – सर्व मूल-उत्तर प्रकृतियों का निषेकहार और एक गुणहानिआयाम ये दोनों तो एक से ही होते हैं और नानागुणहानि शलाका स्थिति के अनुसार होने से समान नहीं हैं, इस कारण उनको कहता हूँ।।९३२।।

आयु बिना ७ कर्मों की स्थिति रचना में छह राशियाँ

राशि	७ कर्मों में
द्रव्य	जैसा जहाँ समयप्रबद्ध हो
स्थिति आयाम	जैसी जहाँ स्थिति हो
गुणहानि आयाम	सर्व में समान
दो गुणहानि	
नानागुणहानि	स्थिति के अनुसार
अन्योन्याभ्यस्तराशि	नानागुणहानि के अनुसार

मिच्छत्तस्स य उत्ता उवरीदो तिण्णि तिण्णि संमिलिदा।
अट्ठगुणेणूणकमा सत्तसु रइदा तिरिच्छेण।।९३३।।
तत्थंतिमच्छिदिस्स य अट्ठमभागो सलायछेदा हु।
आदिमरासिपमाणं दसकोडाकोडिपडिबद्धे।।९३४।।

अर्थ – जो मिथ्यात्व के पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों से लेकर पल्य के प्रथम वर्गमूल के अर्धच्छेद तक दूने-दूने अर्धच्छेद एक-एक वर्गस्थान में कहे, उनको स्थापन करना। ऊपर से पल्य के प्रथम वर्गमूल से लेकर तीन-तीन वर्ग स्थानों की अर्धच्छेद राशि मिलाने पर वे आठ-आठ गुणे हीन अनुक्रम से होते हैं। सर्व जोड़ी हुई असंख्यात राशि जुदे-जुदे सात स्थानों में आगे-आगे रचनारूप करना।।९३३।।

अर्थ – उन पूर्वोक्त सात पंक्तियों में से पहली पंक्ति में जो तीन-तीन का जोड़ देने पर राशियाँ हुयी, उन सबको जुदी-जुदी फल राशि करना और सबमें १० कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण इच्छा राशि करना और ७० कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाणराशि करना। ऐसे त्रैराशिक करके फलराशि को इच्छा राशि से गुणा करके प्रमाण राशि का भाग देने पर जो-जो प्रमाण होगा वह-वह लिखकर उन सबका जोड़ देने पर जो प्रमाण होगा, उतनी १० कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति संबंधी नाना गुणहानि शलाका होती है।।९३४।।

आगे की तालिकाओं में प्रयुक्त कुछ चिन्ह

पल्य	प.	अर्धच्छेद	छे.	वर्गमूल	मू.	वर्गशलाका	व.

शेष ६ कर्मों की नानागुणहानि व अन्योन्याभ्यस्तराशि निकालने के लिये विधान

नानागुणहानि शलाका की पंक्ति की प्राप्ति

मिथ्यात्व की नाना गुणहानि प्राप्त करने के लिये जिन राशियों को जोड़ा था, उन्हीं सर्व राशियों को ३-३ करके जोड़े

१	+ २	+ ३	= जोड़े	
प.प्रथम मू.छे. = प.छे./२	+ प.द्वितीय मू.छे. = प.छे./४	+ प.तृतीय मू.छे. = प.छे./८	**= प.छे. ७/८**	↑
प.चतुर्थ मू.छे. = प.छे./१६	+ प.पंचम मू.छे. = प.छे./३२	+ प.षष्ठम मू.छे. = प.छे./६४	**= प.छे. ७/६४**	
प.सप्तम मू.छे.	+ प.अष्ठम मू.छे.	+ प.नवम मू.छे.	**= प.छे. ७/५१२**	
इसी प्रकार ३-३ वर्ग स्थानों के छे. जोड़ना				**ऊपर-ऊपर ८-८ गुणा**
प.की व. अष्ठम छे. =प.की व.छे.×२५६	+प.की व.सप्तम छे. =प.की व.छे.×१२८	+प.की व.षष्ठम छे. =प.की व.छे.×६४	**= प.की व.छे. ×४४८**	
प.की व. पंचम छे. =प.की व.छे.×३२	+प.की व.चतुर्थ छे. =प.की व.छे.×१६	+प.की व.तृतीय छे. =प.की व.छे.×८	**= प.की व.छे. ×५६**	
प.की व.द्वितीय छे.	+प.की व.प्रथम छे.	+प.की व.छे.	**= प.की व.छे. ×७**	

सर्व जोड़ की ७ पंक्तियों में रचना

छे. $\frac{७}{८}$	छे. $\frac{७}{८}$	छे. $\frac{७}{८}$	छे. $\frac{७}{८}$	छे. $\frac{७}{८}$	छे. $\frac{७}{८}$	छे. $\frac{७}{८}$
छे. $\frac{७}{६४}$	छे. $\frac{७}{६४}$	छे. $\frac{७}{६४}$	छे. $\frac{७}{६४}$	छे. $\frac{७}{६४}$	छे. $\frac{७}{६४}$	छे. $\frac{७}{६४}$
छे. $\frac{७}{५१२}$	छे. $\frac{७}{५१२}$	छे. $\frac{७}{५१२}$	छे. $\frac{७}{५१२}$	छे. $\frac{७}{५१२}$	छे. $\frac{७}{५१२}$	छे. $\frac{७}{५१२}$
⋮	⋮	⋮	⋮	⋮	⋮	⋮
व.छे. ×४४८	व.छे. ×४४८	व.छे. ×४४८	व.छे. ×४४८	व.छे. ×४४८	व.छे. ×४४८	व.छे. ×४४८
व.छे.×५६	व.छे.×५६	व.छे.×५६	व.छे.×५६	व.छे.×५६	व.छे.×५६	व.छे.×५६
व.छे.×७	व.छे.×७	व.छे.×७	व.छे.×७	व.छे.×७	व.छे.×७	व.छे.×७

१० कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति की नाना गुणहानि शलाका

उपर्युक्त प्रथम पंक्ति में सर्व राशियों में १० कोड़ाकोड़ी सागर का गुणा व ७० कोड़ाकोड़ी सागर का भाग देकर सर्व का जोड़ :-	
सूत्र =	$\frac{(\text{अंतधन} \times \text{गुणकार}) - \text{आदिधन}}{\text{गुणकार} - १}$
अंतधन =	$\frac{\text{छे.}\ ७}{८} \times \frac{१० \text{ कोड़ाकोड़ी सागर}}{७० \text{ कोड़ाकोड़ी सागर}} = \frac{\text{छे.}}{८}$
आदिधन =	$\text{व.छे.} \times ७ \times \frac{१० \text{ कोड़ाकोड़ी सागर}}{७० \text{ कोड़ाकोड़ी सागर}} = \text{व.छे.}$
नाना गुणहानि शलाका =	$\frac{\left(\frac{\text{छे.}}{८} \times ८\right) - \text{व.छे.}}{८ - १} = \frac{\text{छे.} - \text{व.छे.}}{७}$

१० कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति की अन्योन्याभ्यस्तराशि

$= २^{\text{नाना गुणहानि}} = २^{\frac{(\text{छे.}-\text{व.छे.})}{७}}$				
$\frac{\text{छे.}-\text{व.छे.}}{७} =$	$\frac{\text{छे.}}{७} - \frac{\text{व.छे.}}{७} =$	$\left(\frac{\text{छे.}}{७} \times \frac{८}{८}\right) - \frac{\text{व.छे.}}{७} =$	$\frac{७\ \text{छे.}}{७\times८} + \frac{\text{छे.}}{७\times८} - \frac{\text{व.छे.}}{७} =$	$\frac{\text{छे.}}{८} + \frac{\text{छे.}}{५६} - \frac{\text{व.छे.}}{७}$
अतः अन्योन्याभ्यस्तराशि =	$२^{\frac{\text{छे.}}{८}} \times २^{\frac{\text{छे.}}{५६} - \frac{\text{व.छे.}}{७}}$	= (प. का तृतीय वर्गमूल) × कुछ कम(असं. × प.का पंचम वर्गमूल)		
	= असं. × प. का तृतीय वर्गमूल			

इगिपंतिगदं पुध पुध अप्पिट्ठेण य हदे हवे णियमा।
अप्पिट्ठस्स य पंती णाणागुणहाणिपडिबद्धा।।९३५।।
अप्पिट्ठपंतिचरिमो जेत्तियमेत्ताण वग्गमूलाणं।
छिदिणिवहोत्ति णिहाणिय सेसं च य मेलिदे इट्ठा।।९३६।।
इट्ठसलायपमाणे दुगसंवग्गे कदे दु इट्ठस्स।
पयडिस्स य अण्णोण्णभत्थपमाणं हवे णियमा।।९३७।।
आवरणवेदणीये विग्घे पल्लस्स बिदियतदियपदं।
णामागोदे बिदियं संखातीदं हवंतित्ति।।९३८।।

अर्थ – शेष छह पंक्तियों में से एक-एक पंक्ति में जैसे १० कोड़ाकोड़ी सागर संबंधी प्रथम पंक्ति में १० कोड़ाकोड़ी का गुणा व ७० कोड़ाकोड़ी का भाग दिया था वैसे ही जुदे-जुदे अपने इष्ट का गुणा करने से नियमकर अपनी-अपनी इष्टराशि जो २० कोड़ाकोड़ी सागरादि है, उसकी नानागुणहानि शलाका की पंक्तियाँ होती हैं।।९३५।।

अर्थ – अपनी-अपनी इष्ट पंक्ति में जहाँ तक अंतस्थान हो वहाँ तक उतने वर्गमूलों के अर्धच्छेदों का समूहरूप ऐसा निश्चय करके सबको मिलाने पर अपने-अपने इष्ट(विवक्षित) की नानागुणहानि होती है।।९३६।।

अर्थ – अपनी-अपनी इष्ट नानागुणहानि शलाका के प्रमाण दो के अंक लिखकर आपस में गुणने से नियमकर अपनी इष्ट प्रकृति की अन्योन्याभ्यस्त राशि का प्रमाण होता है।।९३७।।

अर्थ – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अंतराय इन चार कर्मों में अन्योन्याभ्यस्त राशि का प्रमाण, पल्य के द्वितीय वर्गमूल को असंख्यात तृतीय वर्गमूल से गुणित करने पर जो प्रमाण हो, वह है। नाम तथा गोत्रकर्म की अन्योन्याभ्यस्त राशि का प्रमाण असंख्यातगुणे पल्य के द्वितीय वर्गमूल प्रमाण है।।९३८।।

शेष ६ पंक्तियों में नानागुणहानि व अन्योन्याभ्यस्तराशि

कर्म स्थिति	नानागुणहानि	अन्योन्याभ्यस्तराशि
२० कोड़ाकोड़ी सागर नाम, गोत्र	कुछ कम २/७ छे.	असं. × कुछ कम प. का द्वितीय वर्गमूल
३० कोड़ाकोड़ी सागर ज्ञानावरण,दर्शनावरण,वेदनीय,अंतराय	कुछ कम ३/७ छे.	असं. × कुछ कम प. का तृतीय वर्गमूल × प. का द्वितीय वर्गमूल
४० कोड़ाकोड़ी सागर	कुछ कम ४/७ छे.	असं. × कुछ कम प. का प्रथम वर्गमूल
५० कोड़ाकोड़ी सागर	कुछ कम ५/७ छे.	असं. × कुछ कम प. का तृतीय वर्गमूल × प. का प्रथम वर्गमूल
६० कोड़ाकोड़ी सागर	कुछ कम ६/७ छे.	असं. × कुछ कम प. का द्वितीय वर्गमूल × प. का प्रथम वर्गमूल
७० कोड़ाकोड़ी सागर	छे. – व.छे.	पल्य / पल्य की वर्गशलाका

आउस्स य संखेज्ञा तप्पडिभागा हवंति णियमेण।
इदि अत्थपदं जाणिय इट्ठठिदिस्साणए मदिमं।।९३९।।

अर्थ – आयुकर्म में संख्याते प्रतिभाग नियम से होते हैं, उसकी नानागुणहानि शलाका नियम से स्थिति के बटवारे के अनुसार है। इसलिये विवक्षित स्थान जानकर बुद्धिमान जीव विवक्षित स्थिति की नानागुणहानि शलाका का प्रमाण जानें।।९३९।।

आयुकर्म की नानागुणहानि शलाका

त्रैराशिक विधान से प्राप्त करें		
	स्थिति	**नानागुणहानि शलाका**
अगर –	७० कोड़ाकोड़ी सागर	प. के छे. – प.की व. के छे.
तो –	३३ सागर	(छे.–व.छे. / ७० कोड़ाकोड़ी सागर) × ३३ सागर
इसीप्रकार	आयु की सर्व स्थिति में प्राप्त करें	

उक्कस्सट्ठिदिबंधे सयलाबाहा हु सव्वठिदिरयणा।
तक्काले दीसदि तो धोधो बंधट्ठिदीणं च।।९४०।।

अर्थ – विवक्षित प्रकृति का उत्कृष्ट स्थिति बंध होने पर उसके बंध के समय में ही उत्कृष्ट स्थिति की आबाधा और सर्व स्थिति की रचना देखी जाती है। उस स्थिति के अंत निषेक से नीचे-नीचे प्रथम निषेक तक स्थितिबंधरूप स्थितियों की एक-एक समय हीनता पायी जाती है।।९४०।।

प्रत्येक निषेक की स्थिति

निषेक	स्थिति
अंतिम	सर्व स्थिति
द्विचरम	सर्व स्थिति-१ समय
¦	¦ १-१ समय हीन
द्वितीय	आबाधा + २ समय
प्रथम	आबाधा + १ समय

आबाधाणं बिदियो तदियो कमसो हि चरमसमयो दु।
पढमो बिदियो तदियो कमसो चरिमो णिसेओ दु।।९४१।।
समयपबद्धपमाणं होदि तिरिच्छेण वट्टमाणम्मि।
पडिसमयं बंधुदओ एक्को समयप्पबद्धो दु।।९४२।।

अर्थ – बंध के अनंतर समय में आबाधा काल का दूसरा समय, तीसरा समय इस प्रकार १-१ समय बढ़ते-बढ़ते आबाधा काल के अंत में अंतिम समय होता है। उसके पश्चात् पहले समय में पहला निषेक, दूसरे समय में दूसरा निषेक, तीसरे समय में तीसरा निषेक – इस क्रम से स्थिति के अंत समय में अंतिम निषेक होता है।।९४१।।

अर्थ – त्रिकोण रचना में विवक्षित किसी एक वर्तमान समय में – तिर्यक् अर्थात् बराबर रचनारूप एक-एक निषेक मिलकर सम्पूर्ण एक समयप्रबद्ध प्रमाण द्रव्य होता है। प्रति समय में एक समयप्रबद्ध बँधता है और एक समयप्रबद्ध ही उदयरूप होता हैं।।९४२।।

१ समय में बंध प्राप्त कर्म प्रकृति की आबाधा व निषेक रचना

रचना कब होती है?	बंध समय में
किसकी रचना होती है?	✻ सर्व आबाधा की ✻ सर्व निषेकरूप स्थिति की

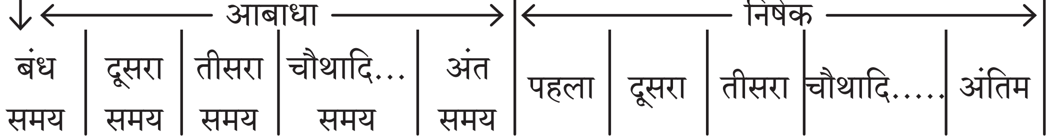

प्रति समय बंध-उदय → एक समयप्रबद्ध

उदय रचना

* विवक्षित वर्तमान एक समय में –
जितने बंधे कर्मों की **निर्जरा** हो गयी वो तो हो गयी
अवशेष निषेकों में – प्रथम समय में बंधे समयप्रबद्ध के अंतिम निषेक से लेकर – अंतिम समयप्रबद्ध के प्रथम निषेक तक
१–१ निषेक मिलकर संपूर्ण **१ समयप्रबद्ध प्रमाण** उदयरूप द्रव्य होता है
* जिस–जिस समय में जितने–जितने परमाणुओं का समूहरूप निषेक है, उस–उस समय उतने–उतने परमाणु उदयरूप होते हैं
* उदयरूप समय के अनंतर वे परमाणु **कर्म स्वभाव को छोड़** देते हैं

सत्तं समयपबद्धं दिवड्ढगुणहाणिताडियं ऊणं।
तियकोणसरूवट्ठिददव्वे मिलिदे हवे णियमा।।९४३।।

अर्थ – सत्त्वद्रव्य, कुछ कम डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण होता है। वह त्रिकोण रचना के सर्व द्रव्य का जोड़ देने से नियम से इतना ही होता है।।९४३।।

सत्त्वरूप द्रव्य का प्रमाण

यथार्थ	कुछ कम डेढ़ गुणहानि × समयप्रबद्ध
अंक संदृष्टी	कुछ कम १.५ × ८ × ६३०० = ७१३०४

सत्त्व द्रव्य में निषेक रचना - त्रिकोण रचना

गल गये निषेक	सत्ता रूप निषेक	
४७	अंतिम	प्रति समय १ समयप्रबद्ध निर्जरित होता और १ ही समयप्रबद्ध बंधता है, इसलये प्रति समय सत्त्व डेढ़ गुणहानि समयप्रबद्ध बना ही रहता है
४६	अंतिम २	
¦	¦	
प्रथम, द्वितीय	४६	
प्रथम	४७	
–	सर्व (४८)	
जोड़	७१३०४	

विवक्षित समय में एक समयप्रबद्धरूप उदय रचना

गल गये निषेक	उदयरूप निषेक	प्रमाण	आगे के समयों में उदय प्राप्त निषेक
४७	अंतिम	९	–
४६	द्विचरम	१०	अंतिम
४५	त्रिचरम से पूर्व	११	अंतिम, द्विचरम
⋮	⋮	⋮	⋮
२	तृतीय	४४८	चतुर्थादि ४५ निषेक
१	द्वितीय	४८०	तृतीयादि ४६ निषेक
०	प्रथम	५१२	द्वितीयादि ४७ निषेक
जोड़	**१ समयप्रबद्ध**	६३००	

विवक्षित उदय समय के अनंतर समय की उदय रचना

पूर्व समय में उदय		अनंतर समय(वर्तमान) में उदय	
जिस समयप्रबद्ध का	अंतिम निषेक	यहाँ उसका	सर्व निषेक गलने से कोई नहीं
	द्विचरम निषेक		चरम निषेक
	त्रिचरम निषेक		द्विचरम निषेक
	⋮		⋮
	तृतीय निषेक		चतुर्थ निषेक
	द्वितीय निषेक		तृतीय निषेक
	प्रथम निषेक		द्वितीय निषेक
–		पूर्व समयप्रबद्ध के पश्चात् बंधे हुये समयप्रबद्ध का प्रथम निषेक	
जोड़		**१ समयप्रबद्ध**	
इसी प्रकार प्रति समय १-१ समयप्रबद्ध का उदय होता है			

उवरिमगुणहाणीणं धणमंतिमहीणपढमदलमेत्तं।

पढमे समयपबद्धं ऊणणकमेणट्ठिया तिरिया।।९४४।।

अर्थ – त्रिकोण रचना में विवक्षित वर्तमान समय में प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक में तो तिर्यक रूप बराबर लिखे हुये निषेकों के समुदायरूप संपूर्ण समयप्रबद्ध प्रमाण होता है। उसके ऊपर द्वितीय निषेक से लेकर अंतिम गुणहानि के अंतिम निषेक तक अनुक्रम से चय हीन के क्रम से तिर्यक् (बराबर) रचनारूप स्थित द्वितीयादि गुणहानि का जोड़ अंतिम गुणहानि के जोड़ को अपनी-अपनी पूर्व गुणहानि के जोड़ में से घटाने पर जो-जो प्रमाण हो उसका आधा होता है।।९४४।।

त्रिकोण रचना यंत्र

गाथा ५ एवं ९४३ अनुसार सत्त्व द्रव्य की अंकसंदृष्टि

४८	९																			
४७	१०	९																		
४६	११	१०	९																	
४५	१२	११	१०	९																
४४	१३	१२	११	१०	९															
४३	१४	१३	१२	११	१०	९														
४२	१५	१४	१३	१२	११	१०	९													
४१	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९												
४०	१८	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९											
३९	२०	१८	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९										
३८	२२	२०	१८	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९									
३७	२४	२२	२०	१८	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९								
३६	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९							
३५	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९						
३४	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९					
३३	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९				
३२	३६	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९			
३१	४०	३६	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९		
३०	४४	४०	३६	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	
२९	४८	४४	४०	३६	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
२८	५२	४८	४४	४०	३६	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०
२७	५६	५२	४८	४४	४०	३६	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१५	१४	१३	१२	११
२६	६०	५६	५२	४८	४४	४०	३६	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१५	१४	१३	१२
२५	६४	६०	५६	५२	४८	४४	४०	३६	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१५	१४	१३
२४	७२	६४	६०	५६	५२	४८	४४	४०	३६	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१५	१४
२३	८०	७२	६४	६०	५६	५२	४८	४४	४०	३६	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१५
२२	८८	८०	७२	६४	६०	५६	५२	४८	४४	४०	३६	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६
२१	९६	८८	८०	७२	६४	६०	५६	५२	४८	४४	४०	३६	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८
२०	१०४	९६	८८	८०	७२	६४	६०	५६	५२	४८	४४	४०	३६	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०
१९	११२	१०४	९६	८८	८०	७२	६४	६०	५६	५२	४८	४४	४०	३६	३२	३०	२८	२६	२४	२२
१८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२	६४	६०	५६	५२	४८	४४	४०	३६	३२	३०	२८	२६	२४
१७	१२८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२	६४	६०	५६	५२	४८	४४	४०	३६	३२	३०	२८	२६
१६	१४४	१२८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२	६४	६०	५६	५२	४८	४४	४०	३६	३२	३०	२८
१५	१६०	१४४	१२८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२	६४	६०	५६	५२	४८	४४	४०	३६	३२	३०
१४	१७६	१६०	१४४	१२८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२	६४	६०	५६	५२	४८	४४	४०	३६	३२
१३	१९२	१७६	१६०	१४४	१२८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२	६४	६०	५६	५२	४८	४४	४०	३६
१२	२०८	१९२	१७६	१६०	१४४	१२८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२	६४	६०	५६	५२	४८	४४	४०
११	२२४	२०८	१९२	१७६	१६०	१४४	१२८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२	६४	६०	५६	५२	४८	४४
१०	२४०	२२४	२०८	१९२	१७६	१६०	१४४	१२८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२	६४	६०	५६	५२	४८
९	२५६	२४०	२२४	२०८	१९२	१७६	१६०	१४४	१२८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२	६४	६०	५६	५२
८	२८८	२५६	२४०	२२४	२०८	१९२	१७६	१६०	१४४	१२८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२	६४	६०	५६
७	३२०	२८८	२५६	२४०	२२४	२०८	१९२	१७६	१६०	१४४	१२८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२	६४	६०
६	३५२	३२०	२८८	२५६	२४०	२२४	२०८	१९२	१७६	१६०	१४४	१२८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२	६४
५	३८४	३५२	३२०	२८८	२५६	२४०	२२४	२०८	१९२	१७६	१६०	१४४	१२८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२
४	४१६	३८४	३५२	३२०	२८८	२५६	२४०	२२४	२०८	१९२	१७६	१६०	१४४	१२८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०
३	४४८	४१६	३८४	३५२	३२०	२८८	२५६	२४०	२२४	२०८	१९२	१७६	१६०	१४४	१२८	१२०	११२	१०४	९६	८८
२	४८०	४४८	४१६	३८४	३५२	३२०	२८८	२५६	२४०	२२४	२०८	१९२	१७६	१६०	१४४	१२८	१२०	११२	१०४	९६
१	५१२	४८०	४४८	४१६	३८४	३५२	३२०	२८८	२५६	२४०	२२४	२०८	१९२	१७६	१६०	१४४	१२८	१२०	११२	१०४

त्रिकोण रचना यंत्र

इस त्रिकोण में स्थित सर्व द्रव्य का जोड़ ७१३०४ है, इतना द्रव्य सदा सत्ता में रहेगा

९

१० ९

११ १० ९

१२ ११ १० ९

१३ १२ ११ १० ९

१४ १३ १२ ११ १० ९

१५ १४ १३ १२ ११ १० ९

१६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

१८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

२० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

२२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

२४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

२६ २४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

२८ २६ २४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

३० २८ २६ २४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

३२ ३० २८ २६ २४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

३६ ३२ ३० २८ २६ २४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

४० ३६ ३२ ३० २८ २६ २४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

४४ ४० ३६ ३२ ३० २८ २६ २४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

४८ ४४ ४० ३६ ३२ ३० २८ २६ २४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

५२ ४८ ४४ ४० ३६ ३२ ३० २८ २६ २४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

५६ ५२ ४८ ४४ ४० ३६ ३२ ३० २८ २६ २४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

६० ५६ ५२ ४८ ४४ ४० ३६ ३२ ३० २८ २६ २४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

६४ ६० ५६ ५२ ४८ ४४ ४० ३६ ३२ ३० २८ २६ २४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

७२ ६४ ६० ५६ ५२ ४८ ४४ ४० ३६ ३२ ३० २८ २६ २४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

८० ७२ ६४ ६० ५६ ५२ ४८ ४४ ४० ३६ ३२ ३० २८ २६ २४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

८८ ८० ७२ ६४ ६० ५६ ५२ ४८ ४४ ४० ३६ ३२ ३० २८ २६ २४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

९६ ८८ ८० ७२ ६४ ६० ५६ ५२ ४८ ४४ ४० ३६ ३२ ३० २८ २६ २४ २२ २० १८ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९

त्रिकोण रचना का जोड़

मानें-	प्रमाण
समयप्रबद्ध	६300
गुणहानि आयाम	८
नानागुणहानि	६
कुल निषेक	४८

<table>
<tr><th>गुणहानि</th><th>निषेक</th><th>पंक्ति</th><th></th><th>जोड़</th></tr>
<tr><td rowspan="3">अंतिम गुणहानि
¦
तृतीयादि गुणहानि</td><td>अंतिम निषेक</td><td>अंतिम पंक्ति</td><td>सिर्फ अंतिम निषेक ९</td><td>९</td></tr>
<tr><td>¦</td><td>¦</td><td rowspan="8">¦ ऊपर-ऊपर १-१ चय कम करते जाना</td><td>¦</td></tr>
<tr><td>प्रथम निषेक</td><td>प्रथम पंक्ति</td><td>१५००</td></tr>
<tr><td rowspan="4">द्वितीय गुणहानि</td><td>अंतिम निषेक</td><td>गुणहानि प्रमाण पंक्ति</td><td rowspan="3">¦</td></tr>
<tr><td>¦</td><td>¦</td></tr>
<tr><td>द्वितीय निषेक</td><td>द्वितीय पंक्ति</td></tr>
<tr><td>प्रथम निषेक</td><td>प्रथम पंक्ति</td><td>३१००</td></tr>
<tr><td rowspan="5">प्रथम गुणहानि (८-८ पक्तियों की प्रत्येक गुणहानि)</td><td>अंतिम निषेक</td><td>गुणहानि आयाम प्रमाण पंक्ति</td><td rowspan="2">¦</td></tr>
<tr><td>¦</td><td>¦</td></tr>
<tr><td>तृतीय निषेक</td><td>तृतीय पंक्ति</td><td>४४८ से ९ तक के ४६ निषेक</td><td>पूर्व पंक्ति का जोड़-४८०</td></tr>
<tr><td>द्वितीय निषेक</td><td>द्वितीय पंक्ति</td><td>४८० से ९ तक के ४७ निषेक</td><td>६३००-५१२</td></tr>
<tr><td>प्रथम निषेक</td><td>प्रथम पंक्ति</td><td>५१२ से ९ तक के ४८ निषेक</td><td>६३००</td></tr>
</table>

उपर्युक्त सत्त्वरूप द्रव्य का प्रमाण

= कुछ कम डेढ़ गुणहानि × समयप्रबद्ध
= दो गुणहानि×समयप्रबद्ध - प्रथम ऋण - द्वितीय ऋण

दो गुणहानि × समयप्रबद्ध का विवरण

प्रथम गुणहानि के द्रव्य का जोड़

= ६३०० × ८
* यहाँ प्रत्येक ८ पंक्तियों का जोड़ समयप्रबद्ध प्रमाण(६३००) ही अभी के लिये मान लिया गया है
* जो चय प्रत्येक ७ पंक्तियों में हीन किये गये हैं, उनका प्रमाण आगे प्रथम ऋणरूप में प्राप्त किया जायेगा
* पश्चात् उसे घटा दिया जायेगा

अंतिम गुणहानि के द्रव्य का जोड़

= १०० × ८
यहाँ १०० ये प्रमाण पूर्व के पृष्ठ क्र.४६९ की अंतिम गुणहानि के जोड़ से प्राप्त किया गया है

द्वितीयादि गुणहानि के द्रव्य का जोड़

गुणहानि	सूत्र	द्रव्य का जोड़
	(अपनी-अपनी पूर्व गुणहानि का जोड़ -अंतिम गुणहानि का जोड़) / २	
द्वितीय	((६३०० × ८) - (१०० × ८)) / २	= ३१०० × ८
तृतीय	((३१०० × ८) - (१०० × ८)) / २	= १५०० × ८
चतुर्थ	((१५०० × ८) - (१०० × ८)) / २	= ७०० × ८
पंचम	((७०० × ८) - (१०० × ८)) / २	= ३०० × ८

सर्व गुणहानियों के जोड़ का विधान

गुणहानि	द्रव्य का जोड़	सभी में अंतिम गुणहानि का प्रमाण मिलाये (द्वितीय ऋण)*	कुल धन
प्रथम	६३०० × ८	+ १०० × ८	६४०० × ८
द्वितीय	३१०० × ८	+ १०० × ८	३२०० × ८
तृतीय	१५०० × ८	+ १०० × ८	१६०० × ८
चतुर्थ	७०० × ८	+ १०० × ८	८०० × ८
पंचम	३०० × ८	+ १०० × ८	४०० × ८
अंतिम	१०० × ८	+ १०० × ८	२०० × ८
** आगे इस द्वितीय ऋण को घटा दिया जायेगा*			

उपर्युक्त कुल धनों का जोड़	
	= (प्रथम गुणहानि का धन×गुण्य − अंतिम गुणहानि का धन) / (गुण्य−१)
	= (६४००×८×२ − २००×८) / (२−१) = ६४००×८×२ − १००×८×२ = ६३००×८×२
	= समयप्रबद्ध × गुणहानि × २ = **दोगुणहानि × समयप्रबद्ध = १००८००**

प्रथम ऋण प्राप्त करने का विधान

गुणहानि	सर्व घटानेरूप चय	
अंतिम गुणहानि	१६,१५,१४,१३,१२,११,१०	सर्व का जोड़ = प्रथम ऋण
	¦	
	१६,१५	
	१६	
	–	
¦	¦	
प्रथम गुणहानि	५१२,४८०,४४८	
	५१२,४८०	
	५१२	
	–	

प्रथम गुणहानि में ऋण का प्रमाण

पंक्ति	सर्व घटानेरूप चय	जोड़
यहाँ पर सर्व चय का प्रमाण ५१२ ले लिया गया है। आगे प्रथम ऋण प्राप्त करने के लिये इसमें से अधिक लिया गया प्रमाण घटा दिया जायेगा		
अष्ठम	५१२, ५१२, ५१२, ५१२, ५१२, ५१२, ५१२	$५१२ \times \frac{८ \times (८-१)}{२}$
सप्तम	५१२, ५१२, ५१२, ५१२, ५१२, ५१२	
षष्ठम	५१२, ५१२, ५१२, ५१२, ५१२	$५१२ \times \frac{८ \times ७}{२}$
पंचम	५१२, ५१२, ५१२, ५१२	
चतुर्थ	५१२, ५१२, ५१२	= ५१२ × ४ × ७
तृतीय	५१२, ५१२	**= १४३३६**
द्वितीय	५१२	

प्रथम गुणहानि में जो अधिक चय का प्रमाण उसको निकालने की विधी

पंक्ति	सर्व अधिक चय	=		=	
अष्ठम	३२, ६४, ९६, १२८, १६०, १९२	=३२×	१, २, ३, ४, ५, ६	=३२×	२१
सप्तम	३२, ६४, ९६, १२८, १६०		१, २, ३, ४, ५		१५
षष्ठम	३२, ६४, ९६, १२८		१, २, ३, ४		१०
पंचम	३२, ६४, ९६		१, २, ३		६
चतुर्थ	३२, ६४		१, २		३
तृतीय	३२		१		१
				= ३२ × ५६	
				= १७९२	

प्रथम गुणहानि का कुल ऋण | १४३३६–१७९२ | **= १२५४४**

प्रथम ऋण का प्रत्येक गुणहानि का प्रमाण

आगे–आगे की गुणहानि का ऋण प्रथम गुणहानि से आधा–आधा प्राप्त होगा:–						
गुणहानि	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पंचम	षष्ठम (अंतिम)
प्रथम ऋण	१२५४४	६२७२	३१३६	१५६८	७८४	३९२

सर्व गुणहानियों का कुल प्रथम ऋण का जोड़

= प्रथम गुणहानि के ऋण का जोड़ × गुण्य − अंतिम गुणहानि के ऋण का जोड़ / गुण्य−१
= १२५४४ × २ − ३९२ / २−१ = २५०८८ − ३९२ = **२४६९६**

द्वितीय ऋण प्राप्त करने का विधान

प्रथम गुणहानि में अधिक जोड़ी गई राशि(अंतिम गुणहानि प्रमाण) × नानागुणहानि
= १०० × ८ × ६ = **४८००**

सत्त्वरूप द्रव्य का प्रमाण/ त्रिकोण रचना का जोड़

= दो गुणहानि × समयप्रबद्ध	− प्रथम ऋण	− द्वितीय ऋण	
= १००८००	− २४६९६	− ४८००	**= ७१३०४**
= कुछ कम डेढ़ गुणहानि × समयप्रबद्ध			
= कुछ कम डेढ़ × ८ × ६३०० = कुछ कम १२ × ६३०० = **कुछ कम ७५६००**			

अंतोकोडाकोडिट्ठिदित्ति सव्वे णिरंतरट्ठाणा।
उक्कस्सट्ठाणादो सण्णिस्स य होंति णियमेण।।९४५।।
संखेज्जसहस्साणिवि सेढीरूढम्मि सांतरा होंति।
सगसगअवरोत्ति हवे उक्कस्सादोदु सेसाणं।।९४६।।

अर्थ – आयु के बिना सात कर्मों के उत्कृष्ट स्थिति से लेकर अंत:कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण जघन्य स्थिति तक एक-एक समय कम का क्रम लिये हुए जो निरंतर स्थिति के भेद हैं वे संख्यात पल्य प्रमाण नियम से संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के होते हैं।।९४५।।

अर्थ – सम्यक्त्व, देशसंयम, सकलसंयम, उपशमक-क्षपक श्रेणी के सम्मुख हुए ऐसे क्रम से मिथ्यादृष्टि, असंयत, देशसंयत, अप्रमत्त अथवा अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानवर्ती, उपशम-क्षपक श्रेणी चढ़े हुये जीव हैं, उनके सांतर अर्थात् एक-एक समय कम के नियम रहित स्थिति के भेद संख्यात हजार हैं। और संज्ञी के पर्याप्त-अपर्याप्त को छोड़कर शेष १२ जीवसमासों में अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति से लेकर अपनी-अपनी जघन्य स्थिति तक एक-एक समय कम लिये हुए निरंतर स्थिति के भेद होते हैं।।९४६।।

निरंतर स्थिति भेद व स्वामी

स्वामी	निरंतर स्थिति भेद		
संज्ञी पंचेन्द्रिय	७ कर्मों की अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति	⟵१-१ समय हीन⟶	अंत:कोड़ाकोड़ी सागर तक
	⟵संख्यात पल्य प्रमाण⟶		
संज्ञी से रहित शेष १२ जीवसमास	अपनी-अपनी, अपने-अपने कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति	⟵१-१ समय हीन⟶	जघन्य स्थिति तक

सांतर स्थिति भेद व स्वामी

एक-एक समय कम के नियम रहित

भेद संख्या	संख्यात हजार भेद		
स्वामी	मिथ्यादृष्टि	सम्यक्त्व	के सम्मुख
	असंयत	देशसंयम	
	देशसंयत	सकलसंयम	
	अप्रमत्त	उपशमक-क्षपक श्रेणी	
	अपूर्वकरणाादि तीन	उपशमक-क्षपक श्रेणी	
किस प्रकार	✻ अधःकरण में पहले समय से लेकर अंतमुर्हूर्त तक ज्ञानावरणादि प्रकृतियों की अपने योग्य अंतःकोडाकोडी सागर प्रमाण स्थिति बांधती हैं		
	✻ पश्चात् अंतर्मुहर्त तक पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण हीन स्थिति बंधती हैं		
	✻ पश्चात् अंतर्मुहूर्त तक उपर्युक्त से भी उतनी हीन स्थिति बंधती हैं		
	✻ ऐसे ही संख्यात हजार बार हीन-हीन करके स्थिति बंधती हैं		
	✻ इसी प्रकार अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय प्रत्येक में भी प्रति अंतर्मुहूर्त में संख्यात हजार बार यथायोग्य हीन-हीन स्थिति बंधती हैं		
	✻ ऐसे अपने-अपने कर्मों की जघन्य स्थिति तक बंधती है		
	✻ इस प्रकार सांतर स्थिति के भेद संख्यात हजार होते है		

स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान

आउट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा असंखलोगमिदा।
णामागोदे सरिसं आवरणदु तदियविग्घे य।।९४७।।

सव्वुवरि मोहणीये असंखगुणिदक्कमा हु गुणगारो।
पल्लासंखेज्जदिमो पयडिसमाहारमासेज्ज।।९४८।।

अर्थ – आयु के स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान सबसे कम होने पर भी यथायोग्य असंख्यात लोकप्रमाण हैं। उनसे पल्य के असंख्यातवें भाग गुणे नाम व गोत्र के परस्पर समान है। उनसे पल्य के असंख्यातवें भाग गुणे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अंतराय – इन चारों के स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान हैं, वे परस्पर में समान है।।९४७।।

अर्थ – सर्व के ऊपर उनसे पल्य के असंख्यातवें भाग गुणे, सबसे अधिक मोहनीय कर्म के स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान है। इस प्रकार प्रकृतियों के स्थिति भेदों की अपेक्षा तीनों जगह क्रम से असंख्यात गुणे स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान है। यहाँ पर गुणकार का प्रमाण पल्य का असंख्यातवाँ भाग जानना।।९४८।।

स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान

अन्य नाम
↓
कषायाध्यवसाय स्थान

स्वरूप
↓
* स्थिति के भेदों को कारणभूत परिणाम, अथवा
* अपने-अपने उदय से उत्पन्न आत्मा के परिणाम

८ कर्मों के स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान का प्रमाण

कर्म	प्रमाण	
आयु	सबसे कम	असं. लोकप्रमाण
नाम-गोत्र	परस्पर समान	↓ से $\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}$ गुणा
ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अंतराय	"	↓ से $\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}$ गुणा
मोहनीय	सबसे अधिक	↓ से $\frac{\text{प.}}{\text{असं.}}$ गुणा
** यहाँ सर्व मूल प्रकृतियों के समान नहीं पाये जाते, ऐसे जो कषायों के उदयस्थान, उनका यहाँ ग्रहण है*		
** स्थिति की अपेक्षा प्ररूपणा नहीं है*		

अवरट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा असंखलोगमिदा।
अहियकमा उक्कस्सट्ठिदिपरिमाणोत्ति णियमेण।।९४९।।
अहियागमणणिमित्तं गुणहाणी होदि भागहारो दु।
दुगुणं दुगुणं वड्ढी गुणहाणिं पडि कमेण हवे।।९५०।।
ठिदिगुणहाणिपमाणं अज्झवसाणम्मि होदि गुणहाणी।
णाणागुणहाणिसला असंखभागो ठिदिस्स हवे।।९५१।।
लोगाणमसंखपमा जहण्णउड्ढिम्मि तम्हि छट्ठाणा।
ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणं होंति सत्तण्हं।।९५२।।

अर्थ – सबसे जघन्य स्थिति बंध के कारण जो अध्यवसाय स्थान (परिणामों के स्थान) है वे असंख्यातलोक प्रमाण हैं। उससे आगे उत्कृष्टस्थिति तक एक-एक चय क्रम से अधिक-अधिक नियम से है।।९४९।।

अर्थ – विवक्षित गुणहानि में अधिक(चय) का प्रमाण लाने के लिये अंत के निषेक में दोगुणहानि का भाग दिया जाता है। उससे आगे प्रत्येक गुणहानि के प्रति क्रम से दोगुणा-दोगुणा चय का (वृद्धि का) प्रमाण होता है।।९५०।।

अर्थ – पहले बंध कथन में अवसर पर जैसे कर्मस्थिति की रचना में गुणहानि का प्रमाण कहा है, वैसा ही यहाँ कषायाध्यवसाय स्थानों में भी गुणहानि का प्रमाण है। जो नानागुणहानि का प्रमाण उस जगह कहा है उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण यहाँ कषायाध्यवसायस्थानों में नानागुणहानि का प्रमाण होता है।।९५१।।

अर्थ – आयु बिना शेष सात मूल प्रकृतियों के स्थितिबंधाध्यवसाय स्थानों के सर्व गुणहानियों संबंधी जो चय हैं, उनमें से प्रथम जघन्य वृद्धि अर्थात् प्रथम गुणहानि संबंधी जो चय का प्रमाण है, उसमें परिणामों के अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा असंख्यातलोकप्रमाण बार अनंतभागवृद्धि आदिरूप षट्स्थानपतित वृद्धि पायी जाती है।।९५२।।

मोहनीय संबंधी स्थितिबंधाध्यवसाय की गुणहानि रचना

स्थिति	
जघन्य	अंतःकोड़ाकोड़ी सागर = संख्यात पल्य प्रमाण
उत्कृष्ट	७० कोड़ाकोड़ी सागर = जघन्य से संख्यात गुणा
स्थिति के कुल भेद	(उत्कृष्ट-जघन्य) + १
स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान	
उपर्युक्त में से सर्व जघन्य स्थिति संबंधी	असं. लोक प्रमाण
जघन्य से ऊपर उत्कृष्ट तक	एक-एक चय अधिक-अधिक

चय		
विवक्षित गुणहानि का		$\frac{\text{अंत निषेक}}{\text{दोगुणहानि}}$ अथवा $\frac{\text{प्रथम निषेक}}{\text{गुणहानि+१}}$
अंक संदृष्टि :– अंतिम गुणहानि		$\frac{\text{अंत निषेक}}{२\times८} = \frac{१६}{१६} = १$ अथवा, $\frac{\text{प्रथम निषेक}}{८+१} = \frac{९}{९} = १$
आगे की गुणहानि में		दोगुणा–दोगुणा प्रमाण
गुणहानि रचना		
स्थिति		सर्व स्थिति भेद
नाना गुणहानि		$\frac{\text{स्थिति रचना की नाना गुणहानि का प्रमाण}}{\text{असं.}} = \frac{\text{छे.–व.छे.}}{\text{असं.}}$
गुणहानि आयाम		$\frac{\text{स्थिति}}{\text{नाना गुणहानि}} = \frac{\text{सर्व स्थिति भेद}}{\text{नाना गुणहानि}}$
प्रथम गुणहानि	**प्रमाण**	गुणहानि आयाम प्रमाण :– जघन्य स्थिति से प्रारंभ करके स्थिति के भेद
	प्रथम निषेक प्रमाण	जघन्य स्थिति को कारणभूत कषायाध्यवसाय स्थान
	द्वितीय निषेक	जघन्य+१ समय अधिक स्थिति को कारणभूत कषायाध्यवसाय स्थान = प्रथम निषेक+चय
	आगे के निषेक	इसी प्रकार चय अधिक–अधिक अंत निषेक तक
द्वितीय गुणहानि	**प्रमाण**	प्रथम गुणहानि प्रमाण उसके ऊपर की स्थिति के भेद
		निषेक, चय आदि का प्रमाण प्रथम गुणहानि से दोगुणा
आगे की गुणहानि में		इसी प्रकार अंतिम गुणहानि तक है
सातों कर्मों में		ऐसे ही सातों कर्मों में रचना होती है
सातों मूल कर्मों में प्रथम जघन्य वृद्धि (प्रथम गुणहानि संबंधी चय का प्रमाण) में		परिणामों के अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा असं. लोक प्रमाण बार अनंतभाग वृद्धि आदिरूप षट्स्थानपतित वृद्धि होती हैं

आउस्स जहण्णट्ठिदिबंधणजोग्गा असंखलोगमिदा।
आवलिअसंखभागेणुवरुवरिं होंति गुणिदकमा।।९५३।।

अर्थ – आयुकर्म के सर्व जघन्य स्थिति बंध के योग्य अध्यवसाय स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं। उससे आगे–आगे उत्कृष्ट स्थिति तक क्रम से आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित स्थान होते है।।९५३।।

आयुकर्म स्थितिबंधाध्यवसाय रचना

	अध्यवसाय स्थान प्रमाण	
जघन्य स्थिति	असं. लोक प्रमाण	
जघन्य + १ समय स्थिति	असं. लोक प्रमाण × $\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$	
आगे-आगे उत्कृष्ट स्थिति तक	पूर्व स्थिति के स्थान × $\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$	
नाना जीवों की अपेक्षा	नीचे की स्थिति के कारणभूत स्थान ऊपर की स्थिति के कारणभूत स्थान	समानता भी
इसलिये यहाँ अनुकृष्टि रचना का विधान है		

आयुकर्म अनुकृष्टि रचना - अंक संदृष्टि

माने-	स्थिति भेद	संख्यात पल्य	१६
	जघन्य स्थिति योग्य स्थान	असं. लोक प्रमाण	२२
	द्वितीयादि स्थिति में गुणकार	$\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$	४
अनुकृष्टि गच्छ			४
अनुकृष्टि चय			१
चयधन			६
जघन्य अनुकृष्टि	प्रथम खंड प्रमाण	$\frac{\text{जघन्य स्थिति योग्य स्थान}}{\text{अनुकृष्टि गच्छ}} = \frac{२२-६}{४}$	४
	द्वितीयादि खंड (चय अधिक)	५, ६, ७	
द्वितीय स्थिति भेद	प्रमाण	२२ × ४ =	८८
	प्रथम खंड	$\frac{८८-६}{४}$ =	$\frac{४१}{२}$
सर्वत्र जो नीचे के स्थिति भेद के द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ अनुकृष्टि खंड में हो, उसे ऊपर के स्थिति भेद के प्रथम, द्वितीय, तृतीय अनुकृष्टि खंड में लिखना			
उसके ऊपर के स्थिति भेद के सर्व द्रव्य में से तीनों खंडों का प्रमाण जोड़कर घटाने पर अवशेष रहे वह चतुर्थ खंड में प्रमाण लिखना			

आयुकर्म के स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान का अंकसंदृष्टि यंत्र

स्थिति भेद	स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान	अनुकृष्टि रचना			
		प्रथम खंड	द्वितीय खंड	तृतीय खंड	चतुर्थ खंड
पंचमादि उत्कृष्ट तक	पूर्व स्थान × ४	नीचे के क्रम से ही ऊपर तक रचना जानना			
चतुर्थ	१४०८	७	७०	२६९	१०६२
तृतीय	३५२	६	७	७०	२६९
द्वितीय	८८	५	६	७	७०
जघन्य	२२	४	५	६	७

पल्लासंखेज्जदिमा अणुकट्ठी तत्तियाणि खंडाणि।
अहियकमाणि तिरिच्छे चरिमं खंडं च अहियं तु।।९५४।।
लोगाणमसंखमिदा अहियपमाणा हवंति पत्तेयं।
समुदायेणवि तच्चिय ण हि अणुकिट्टिम्मि गुणहाणी।।९५५।।

अर्थ – स्थितिबंधाध्यवसाय स्थानों की अनुकृष्टि रचना में पल्य के असंख्यातवें भाग अनुकृष्टि पदों का प्रमाण है और उतने ही अनुकृष्टि के खंड होते हैं। वे खंड तिर्यक् (बराबर) रचना किये गये क्रम से अनुकृष्टि के चयकर अधिक-अधिक हैं। परंतु जघन्य खंड से अंत का खंड कुछ विशेष से ही अधिक है दोगुणा तीनगुणा नहीं होता है।।९५४।।

अर्थ – प्रति गुणहानि के अनुकृष्टि के चय का प्रमाण दोगुणा-दोगुणा है, फिर भी सामान्य से असंख्यातलोकमात्र ही है, और सब चय समूह को मिलाने से भी असंख्यातलोक प्रमाण ही होता है। अनुकृष्टि के गच्छों में गुणहानि की रचना नहीं है।।९५५।।

अनुकृष्टि रचना विधान

अनुकृष्टि रचना में गच्छ, खंड, चय का प्रमाण

अनुकृष्टि गच्छ व अनुकृष्टि के खंड	$\frac{\text{स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान का गुणहानि आयाम}}{\text{संख्यात}} = \frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}}$	
प्रथम खंड का प्रमाण	असं. लोक प्रमाण	
द्वितीयादि खंड का प्रमाण	अनुकृष्टि चय से अधिक-अधिक	असं. लोक प्रमाण
अंत खंड का प्रमाण	प्रथम से अधिक ही(दोगुणा,तीनगुणा नहीं)	असं. लोक प्रमाण

प्रति गुणहानि में चय का प्रमाण		दोगुणा-दोगुणा
सर्व चय समुदाय प्रमाण		असं. लोक प्रमाण
अनुकृष्टि गच्छ में नहीं है		गुणहानि रचना
द्रव्य		जघन्य स्थिति बंध योग्य कषाय परिणाम
अनुकृष्टि चय		$\frac{\text{प्रथम गुणहानि का चय}}{\text{अनुकृष्टि गच्छ}} = \frac{\text{प्रथम गुणहानि का चय}}{\frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}}}$
प्रचयधन		$\left[\left(\frac{\text{अनुकृष्टि गच्छ}-१}{२}\right) \times \text{अनुकृष्टि चय}\right] \times \text{अनुकृष्टि गच्छ}$
प्रथम गुणहानि	प्रथम खंड प्रमाण	$\frac{\text{द्रव्य}-\text{प्रचयधन}}{\text{गच्छ}}$
	द्वितीयादि खंड	पूर्व खंड के प्रमाण + अनुकृष्टि चय
	अंतिम खंड	जघन्य खंड + (गच्छ-१) × चय
द्वितीयादि गुणहानि		प्रथम गुणहानि के अनुकृष्टि चय, द्रव्य, खंडों से दोगुणा-दोगुणा
अंक संदृष्टि अपेक्षा जैसे पृष्ठ क्र. -- पर अधःकरण में रचना जानी थी, वैसे ही यहाँ जानना		

पढमं पढमं खंडं अण्णोण्णं पेक्खिऊण विसरित्थं।
हेट्ठिल्लुक्कस्सादोऽणंतगुणादुवरिमजहण्णं पण्ण।।९५६।।
बिदियं बिदियं खंडं अण्णोण्णं पक्खिऊण विसरित्थं।
हेट्ठिल्लुक्कस्सादोऽणंतगुणादुवरिमजहण्णं।।९५७।।
चरिमं चरिमं खंडं अण्णोण्णं पेक्खिऊण विसरित्थं।
हेट्ठिल्लुक्कस्सादोऽणंतगुणादुवरिमजहण्णं।।९५८।।

अर्थ - इस प्रकार अनुकृष्टि रचना में प्रथमादि गुणहानियों में पहले-पहले खंड परस्पर अपेक्षा से विसदृश (असमान) है। क्योंकि अपने-अपने नीचे के प्रथम खंड के उत्कृष्ट स्थान से ऊपर के प्रथम खंड के जघन्य स्थान चय प्रमाण अधिक और शक्ति की अपेक्षा से भी अनंतगुणे हैं।।९५६।।

अर्थ - गुणहानियों में प्रथमादि निषेकों का दूसरा-दूसरा खंड गुणहानि के अंत निषेक के दूसरे खंड तक निरंतर एक-एक चय से अधिक हैं, इसलिये सामान नहीं हैं। नीचे के दूसरे खंड के उत्कृष्ट से ऊपर के दूसरे खंड का जघन्य भी अनंतगुणा है। इसी प्रकार तीसरे आदि खंडों की असमानता है।।९५७।।

अर्थ - गुणहानि के प्रथमादि निषेकों के अंत के खंड अंत निषेक के अंत खंड तक निरंतर एक-एक चय से अधिक है, इसलिये संख्या से सामान नहीं है। पुनः शक्ति से भी नीचे के अंत खंड के उत्कृष्ट स्थान से भी ऊपर के अंत खंड का जघन्य स्थान अनंतगुणा है।।९५८।।

ऊर्ध्व रचना में असमानता

प्रथमादि गुणहानियों में प्रथम-प्रथम खंड	विसदृश (असमान) है
- संख्या अपेक्षा	प्रथम खंड के उत्कृष्ट स्थान से ऊपर के प्रथम खंड का जघन्य स्थान (अनुकृष्टि) चय प्रमाण अधिक है
- शक्ति अपेक्षा	अनंत गुणा
इसी प्रकार द्वितीयादि अंत खंड तक असमानता है	

हेट्ठिमखंडुक्कस्सं उव्वंकं होदि उवरिमजहण्णं।
अट्ठंकं होदि तदोऽणंतगुणं उवरिमजहण्णं।।९५९।।

अर्थ - चूंकि तिर्यक्‌रूप रचना में ऊपर-ऊपर लिखे हुये खंडों के अपने-अपने नीचे लिखे हुये खंडों का उत्कृष्ट अध्यवसाय स्थान उर्वंक अर्थात् पूर्वस्थान से अनंतभागवृद्धियुक्त है। तथा ऊपर-ऊपर के खंड के जघन्य अध्यवसायस्थान अष्टांक अर्थात् अनंतगुणवृद्धियुक्त हैं। इस कारण नीचे के खंड के उत्कृष्ट से ऊपर के खंड का जघन्य अनंतगुणा कहा हैं।।९५९।।

तिर्यक् रचना में खंडों में अंतर

अपने-२ खंड के उत्कृष्ट के पूर्व के स्थान से	**अनंत भाग वृद्धिरूप** →	अपने-२ खंड का उत्कृष्ट स्थान	**अनंत गुण वृद्धिरूप** →	आगे-आगे के खंड का जघन्य स्थान

अवरुक्कस्सठिदीणं जहण्णमुक्कस्सयं च णिव्वग्गं।
सेसा सव्वे खंडा सरिसा खलु होंति उड्ढेण।।९६०।।

अर्थ - जघन्य स्थिति को कारणभूत प्रथम निषेक का जघन्य अर्थात् पहला खंड और उत्कृष्ट स्थिति को कारणभूत अंत निषेक का उत्कृष्ट अर्थात् अंत खंड - ये दोनों तो निर्वर्ग हैं, अर्थात् किसी भी खंडों से सर्वथा समान नहीं हैं। अवशेष सर्व खंड ऊर्ध्व रचना से अन्य खंडों के समान हैं।।९६०।।

ऊर्ध्व रचना में खंडों की समानता-असमानता

* जघन्य स्थिति का प्रथम खंड
* उत्कृष्ट स्थिति का अंत खंड

↓

किसी भी खंडों से सर्वथा समान नहीं

शेष सर्व खंड

↓

उर्ध्व रचना से अन्य खंडों के समान है

अट्ठण्हंपि य एवं आउजहण्णट्ठिदिस्स वरखंडं।
जावय तावय खंडा अणुकट्ठिपदे विसेसहिया।।९६१।।
तत्तो उवरिमखंडा सगसगउक्कस्सगोत्ति सेसाणं।
सव्वे ठिदियणखंडाऽसंखेज्जगुणक्कमा तिरिये।।९६२।।जुम्मं।।

अर्थ – आठों ही कर्मों की रचना विशेष जैसे कही है वैसे ही समान है। आयुकर्म के अनुकृष्टि गच्छ में खंड हैं, वे जघन्य स्थिति के अंत खंड तक ही चय से अधिक हैं। उसके उत्कृष्ट खंड से ऊपर की स्थिति के खंड अपने-अपने उत्कृष्ट खंड तक तथा अवशेष स्थितियों के अपने-अपने जघन्य खंड से अपने-अपने उत्कृष्ट खंड तक सर्व बराबर रचनारूप असंख्यातगुणा हैं।।९६१-९६२।।

८ कर्मों की स्थिति रचना - सार

सर्व कर्मों की रचना	समान है
स्थिति आदि का प्रमाण	यथासंभव है
आयु कर्म विशेष	अनुकृष्टि गच्छ में खंड जघन्य स्थिति के अंत खंड तक चय अधिक हैं
	अवशेष स्थितियों के अपने-अपने जघन्य खंड से अपने-अपने उत्कृष्ट खंड तक असंख्यातगुणा हैं

अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान

रसबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखलोगमेत्ताणि।
अवरट्ठिदिस्स अवरट्ठिदिपरिणामम्हि थोवाणि।।९६३।।
तत्तो कमेण वड्ढदि पडिभागेण य असंखलोगेण।
अवरट्ठिदिस्स जेट्ठट्ठिदिपरिणामोत्ति णियमेण।।९६४।।

अर्थ – अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान असंख्यातलोक से असंख्यातलोक गुणित – ऐसे असंख्यातलोक प्रमाण हैं। इसमें जघन्य स्थिति संबंधी स्थिति बंधाध्यवसाय स्थानों में जघन्य स्थितिबंध

योग्य अध्यवसायों के प्रमाण से असंख्यातलोक गुणे अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान हैं, फिर भी अन्य स्थितिबंधाध्यवसाय संबंधी अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान की अपेक्षा थोड़े है।।९६३।।

अर्थ - उसके बाद क्रम से जघन्य स्थिति के जघन्य परिणाम संबंधी प्रथम निषेकरूप अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान से लेकर उत्कृष्ट स्थिति के उत्कृष्ट परिणाम संबंधी अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान तक असंख्यात लोकरूप प्रतिभागहार बढ़ते-बढ़ते अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान नियम से होते है।।९६४।।

अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान प्रमाण

		अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान प्रमाण
कुल प्रमाण		असं. लोक × असं. लोक
जघन्य स्थिति संबंधी	**जघन्य स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान संबंधी**	असं. लोक प्रमाण(सबसे कम)
	द्वितीय स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान संबंधी	चय प्रमाण अधिक
	तृतीयादि अंत तक स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान संबंधी	पूर्व से चय प्रमाण अधिक
	द्वितीयादि गुणहानि में	निषेक,चय आदि का प्रमाण दोगुणा-२ है
इसी प्रकार द्वितीयादि स्थिति योग्य द्वितीयादि निषेकों में भी उत्कृष्ट स्थितिरूप अंत निषेक तक रचना जानना, स्थिति आदि का प्रमाण यथासंभव जानना		
यहाँ नानागुणहानिशलाका है या नहीं है इसतरह आचार्यों के मत से दोनों उपदेश हैं		

अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान में गुणहानि रचना

द्रव्य	वहाँ जघन्य स्थिति संबंधी स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों के प्रमाण से असंख्यातलोकगुणा
स्थिति	जघन्य स्थिति संबंधी स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों का जो प्रमाण
नानागुणहानि	$\frac{\text{आवली}}{\text{असं.} \times \text{असं.}}$
अन्योन्याभ्यस्तराशि	$\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$
उपर्युक्त राशियों से जघन्य स्थिति संबंधी अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान की गुणहानि संबंधी सर्व रचना जानना	

आचार्य नेमिचन्द्र देव द्वारा समाचार

गोम्मटसंगहसुत्तं गोम्मटदेवेण गोम्मटं रइयं।
कम्माण णिज्जरट्ठं तच्चट्ठुवधारणट्ठं च।।९६५।।

अर्थ – ये गोम्मटसार ग्रंथ के संग्रहरूप सूत्र गोम्मटदेव अर्थात् श्री वीरवर्धमान नामक तीर्थंकर देव द्वारा गोम्मट अर्थात् नय-प्रमाण के गोचर, ज्ञानावरणादि कर्मों की निर्जरा और तत्त्वार्थ का निश्चय होने के लिये रचे हैं।।९६५।।

जम्हि गुणा विस्संता गणहरदेवादिइड्ढिपत्ताणं।
सो अजियसेणणाहो जस्स गुरू जयउ सो राओ।।९६६।।
सिद्धंतुदयतडुग्गयणिम्मलवरणेमिचंदकरकलिया।
गुणरयणभूसणंबुहिमइवेला भरउ भुवणयलं।।९६७।।

अर्थ – गणधर देवादि मुनि जो बुद्धि आदि ऋद्धि को प्राप्त हुये हैं, उनके गुण जिनमें विश्राम करके स्थित हैं, गणधरादि के से गुण जिनमें पाये जाते हैं – ऐसे अजितसेन नामक मुनिनाथ जिस राजा के व्रत देनेवाले गुरु है, वह राजा सर्वोत्कृष्टपने से वर्तो।।९६६।।

अर्थ – सिद्धांतरूपी उदयाचल पर्वत में ज्ञानादि से उदयमान हुआ ऐसा निर्मल और उत्कृष्ट नेमिनाथरूपी चन्द्रमा अथवा नेमिचन्द्र आचार्यरूपी चन्द्रमा, उनके वचनरूप किरणों से बढ़ा हुआ गुणरत्नभूषणांबुधि अर्थात् गुणरूपी रत्नों से शोभित ऐसा चामुंडराय नामक राजा, वही हुआ समुद्र, उसकी मतिवेला अर्थात् बुद्धिरूपी बेला, वह भुवनतलं भरतु, अर्थात् जगत में फैलकर भुवनतल को पूरे अथवा समस्त जगत में अतिशय करके फैले- ऐसा आशीर्वाद है।।९६७।।

राजा को आर्शी वचन

गणधर देवादि से गुण जिनमें पाये जाते हैं
↓ **ऐसे**
'अजितसेन मुनिनाथ' जिनके व्रत देनेवाले गुरु है
↓ **ऐसा**
राजा जयवंत वर्ते

उपमा	
उदयाचल पर्वत	सिद्धांतरूपी पर्वत
चन्द्रमा	निर्मल और उत्कृष्ट श्री नेमिनाथ तीर्थंकर अथवा नेमिचन्द्र आचार्य
चन्द्रमा की किरणें	उनके वचन
गुणरूपी समुद्र	चामुंडराय राजा
मतिवेला	उसकी बुद्धिरूपी बेला
भुवनतल	समस्त जगत में फैले

गोम्मटसंगहसुत्तं गोम्मटसिहरुवरि गोम्मटजिणो य।
गोम्मटरायविणिम्मियदक्खिणकुक्कडजिणो जयउ।।९६८।।

अर्थ – गोम्मटसार संग्रहरूप सूत्र जयवंत वर्तो। गोम्मट शिखर के ऊपर गोम्मट जिन जयवंत प्रवर्तो। चामुंडराय नामक राजा के ही द्वारा निर्मापित दक्षिण कुक्कुट जिन जयवंत प्रवर्तो।।९६८।।

जिनसूत्र व जिनबिम्ब को नमस्कार

जयवंत वर्ते

- **गोम्मटसार संग्रहरूप सूत्र**
- **चामुंडराय राजा द्वारा निर्मापित प्रतिबिम्ब**
  - गोम्मट शिखर के ऊपर जिन मंदिर में विराजित ↓ एक हाथ प्रमाण इन्द्रनील मणिमय नेमिनाथ तीर्थंकर का प्रतिबिम्ब
  - जगत में रुढ़ी से जिनका नाम ↓ दक्षिण कुक्कुट जिन है उनका प्रतिबिम्ब

जेण विणिम्मियपडिमावयणं सव्वट्ठसिद्धिदेवेहिं।
सव्वपरमोहिजोगिहिं दिट्ठं सो गोम्मटो जयउ।।९६९।।

अर्थ – जिसके द्वारा निर्मापित जिनप्रतिमा का मुख सर्वार्थसिद्धि के वासी देवों ने अवधिज्ञान से देखा और सर्वावधि, परमावधि के धारक योगीश्वरों ने देखा, वह चामुंडराय राजा सर्वोत्कृष्टपने से वर्तो।।९६९।।

वज्जयणं जिणभवणं ईसिपभारं सुवण्णकलसं तु।
तिहुवणपडिमाणिक्कं जेण कयं जयउ सो राओ।।९७०।।

अर्थ – वज्र समान है जिसका अवनितल, ईषत है प्राग्भार जिसका, सुवर्णमयी हैं कलश जिसके, तीनभुवन में उपमा के अयोग्य प्रतिमा – ऐसा जिनभवन जिसने निर्मापण किया, वह राजा विराजमान रहो।।९७०।।

जिनभवन निर्मापित करने के लिये आर्शी वचन

चामुंडराय राजा विराजमान रहो, जिसके द्वारा जिनभवन निर्मापित किया गया है

↓

कैसा है भवन?	**वज्र समान है**	जिसका अवनितल (पीठबंध)
	ईषत है	जिसका प्राग्भार (पृथ्वी)
	सुवर्णमयी हैं	जिसका कलश
	तीन लोक में	जिसकी उपमा न दी जा सके ऐसी प्रतिमा

जेणुब्भियथंभुवरिमजक्खतिरीटग्गकिरणजलधोया।
सिद्धाण सुद्धपाया सो राओ गोम्मटो जयउ।।९७१।।

अर्थ – जिनके द्वारा चैत्यालय में स्तंभ स्थापित किया, उसके ऊपर स्थित यक्ष का आकार उसके मुकुट के अग्रभाग की किरणरूपी जल द्वारा सिद्ध परमेष्ठी के आत्मप्रदेशों के आकाररूप शुद्ध दो चरण धोये गये, वह चामुंडराय राजा जीतिवंत हो।।९७१।।

चैत्यालय में स्तंभ स्थापित करने के लिये आर्शी वचन

कैसा है स्तंभ?

↓ जिसके ऊपर स्थापित है

सिद्ध परमेष्ठी के आत्मप्रदेशों के आकाररूप शुद्ध दो चरण धोते हुये

↓ किसके द्वारा

यक्ष का आकार, उसके मुकुट के अग्रभाग की किरणरूपी जल द्वारा

सिद्ध स्थान तक यक्ष के मुकुट किरण कैसे प्राप्त हो सकते हैं ?	उपमा अलंकार से कहने में दोष नहीं है	
	यहाँ ऐसा अर्थ जानना कि –	चैत्यालय में स्तंभ बहुत ऊंचा बना है,
		उसके ऊपर यक्ष का आकार है,
		उसके मुकुट में ज्योतिवंत पदार्थ लगे हैं

गोम्मटसुत्तल्लिहणे गोम्मटरायेण जा कया देसी।
सो राओ चिरकालं णामेण य वीरमत्तंडी।।९७२।।

अर्थ – गोम्मटसार ग्रंथ के सूत्र लिखने में गोम्मटराजा द्वारा जो देशीभाषा की, वह राजा नाम से वीरमार्तंड चिरकाल तक जीतिवंत प्रवर्तो।।९७२।।

देशीभाषा टीका करने के लिये आर्शी वचन

चिरकाल तक जीतिवंत प्रवर्ते

↓ **कौन**

वीरमार्तंड राजा चामुंडराय

↓ **किसके द्वारा**

गोम्मटसार ग्रंथ के सूत्र की जिन्होंने देशीभाषा टीका की

परिशिष्ट

विचारणीय विषय

गाथा ३११ – पृष्ठ १७८ – औदारिक काययोग में स्थावर, एकेन्द्रियादि ४ की उदय व्युच्छिति मिथ्यात्त्व में ही हो जाना चाहिये, क्योंकि एकेन्द्रियादि को ससादन अपर्याप्त काल में ही होता हैं।
गाथा ३४९ – पृष्ठ २०५ – एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय और पाँचों स्थावरकाय में सासादन गुणस्थान में मनुष्यायु सत्त्व योग्य नहीं होना चाहिये, क्योंकि इन मार्गणाओं में सासादन गुणस्थान अपर्याप्त काल में ही होता है और तब तक आयु का बंध नहीं होता है।
गाथा ३६५ – पृष्ठ २१६ – मिथ्यात्त्व गुणस्थान में एक जीव को एक काल में एक साथ तीर्थंकर प्रकृति और आहारक चतुष्क का सत्त्व नहीं होने का नियम होने से (गाथा ३३३), १४६ का सत्त्वस्थान किस प्रकार संभव है।
सत्त्वस्थान में किन्हीं स्थानों पर आहारकद्विक को जोड़ा या हीन किया गया है (जैसे **पृष्ठ २१३** सामान्य सत्त्व में सासादन में १४५ का सत्त्व है); किन्हीं स्थानों पर आहारकचतुष्क को जोड़ा या हीन किया गया है (जैसे **पृष्ठ २१६** मिथ्यात्व गुणस्थान में)
गाथा ३७२ – पृष्ठ २१८ –मिश्र में एक ही संख्या के २ सत्त्वस्थान कैसे? बद्धायु में १४१ और अबद्धायु में १४०। संख्या १ होने पर स्थान १ ही होना चाहिये, भंग २।
गाथा ५५१ – पृष्ठ ३०८ – प्रथमोपशम सम्यक्त्व में किसी भी नारकी को तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं होता है, पर सम्यग्ज्ञान चंद्रिका में बताया गया हैं।
पृष्ठ ३६८ – गाथा ७०३ में १३वें गुणस्थान में समुद्घात के उदयस्थान नहीं बताये गये हैं।
पृष्ठ ३७६ – गाथा ७३२ में तीर्थंकर सहित ३० के बंध का निषेध क्यों नहीं किया ? आहारकद्विक सहित ३० के बंध का निषेध किया जबकि आहारकद्विक तो असंयमी को वैसे भी बंधती ही नहीं हैं।
पृष्ठ ३८७ – गाथा ७८० में २८ के उदय सहित ९० के सत्त्व में २८ के बंध का निषेध किया है **जबकि गाथा ७५२** की टीका अनुसार २८ का बंध बताया गया हैं।
गाथा ८२२ – पृष्ठ ४१४ – सिद्धों में पारिणामिक का पारिणामिक के साथ भंग बताया गया हैं।